पक्षपातरहित अनुभवप्रकाश

ॐ

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुम्बई.

पक्षपातरहित-अनुभवप्रकाश

स्वामी विशुद्धानन्दजी प्रसिद्ध काली कमलीवाले
बाबा विरचित

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन
बम्बई

संस्करण : फरवरी २०१५, संवत् २०७१

मूल्य : ३५० रुपये मात्र

मुद्रक एवं प्रकाशकः

खेमराज श्रीकृष्णदास,™

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

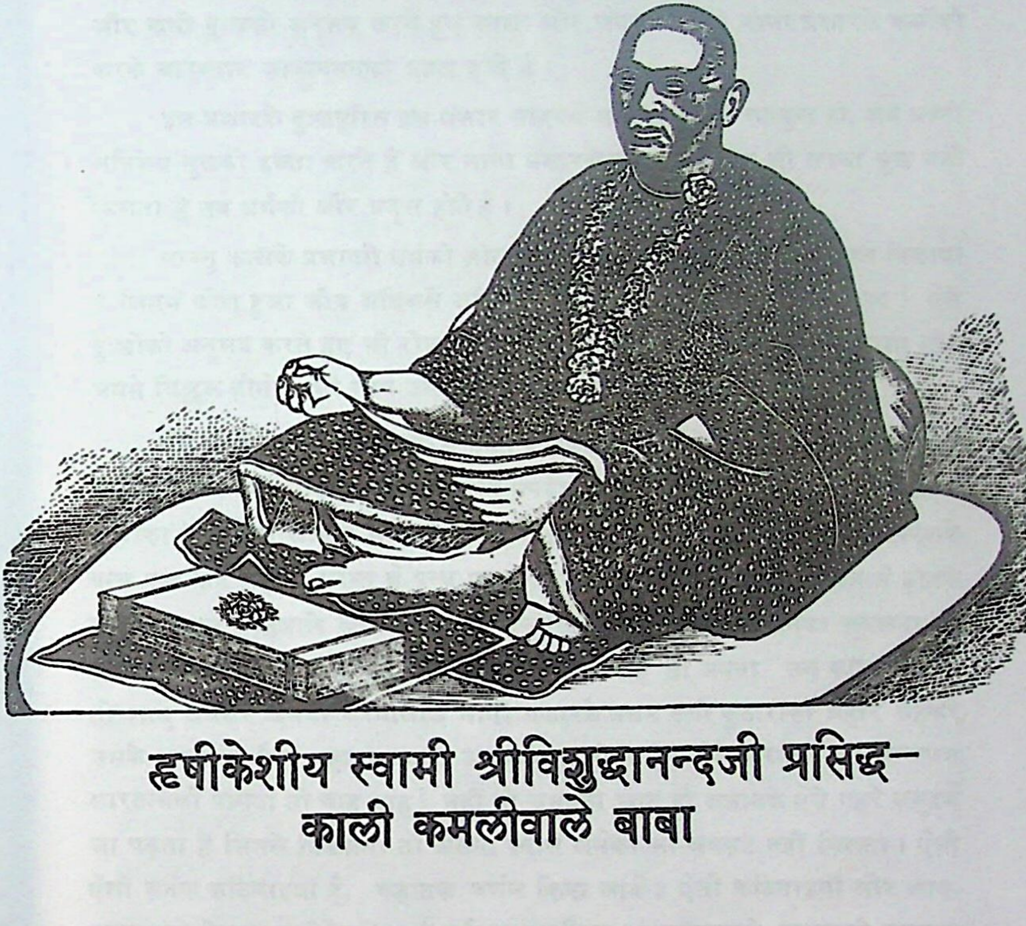
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,

मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers
Khemraj Shrikrishnadass
Prop: Shri Venkateshwar Press
Khemraj Shrikrishnadass Marg,
7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.khe-shri.com
E-mail : khemraj@vsnl.com

**Printed by Sanjay Bajaj for M/s Khemraj Shrikrishnadass
Prop. Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400004,
at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate
Pune -411 013.**



हृषीकेशीय स्वामी श्रीविशुद्धानन्दजी प्रसिद्ध-
काली कमलीवाले बाबा

प्रस्तावना

इस अनादि कालके द्वन्द्वज संसारमें, नाना प्रकारके द्वन्द्वमें फँसे हुए प्राणी कभी सुख और कभी दुःखको अनुभव करते हुए आशा और भयके वश हो नाना प्रकारके कर्मोको करके बारम्बार आवागमनको प्राप्त होते हैं।

इस प्रकारके दुःखपूरित इस संसार सागरमें अत्यन्त दुःखसे व्याकुल हो, जब प्राणी अतिशय सुखकी इच्छा करते हैं और नाना प्रकारके प्रयत्न करनेपर भी सच्चा सुख नहीं मिलता है तब धर्मकी ओर प्रवृत्त होते हैं।

परन्तु कालके प्रभावसे धर्मकी ओटमें नाना प्रकारके पक्षपातने ऐसा जाल बिछाया है जिसमें फँसा हुआ जीव अधिकसे अधिक दुःखोंको ही अनुभव करता है। हाय! ऐसे दुःखोंको अनुभव करते हुए भी रोचक और भयानक वचनोंके पाशमें फँसे हुए आशा और भयसे विह्वल होनेपर भी जीव उस दुःखसे अलग नहीं हो सकते।

ऐसे धर्मके नामसे दुःखसागरमें डूबते हुओंको निकालनेके हेतु सत्यधारी सत्योपदेशक महात्माओंकी धर्म व्याख्यान रूप वाणीका उपदेश मात्र ही सहारा है, ऐसे सत्योपदेशमय ग्रन्थोंका तो पवित्र संस्कृत भाषामें भण्डार भरा है। यद्यपि भाषामें भी सत्योपदेशके ग्रन्थ कुछ कम नहीं हैं परन्तु वे ग्रन्थ पद्य रूपमय सारगर्भित कठिन कवितामें होनेके कारण, सरल बुद्धिवाले वर्तमान कालके धर्माभिलाषी मुमुक्षुओंको, उनका समझना भी अत्यन्त कठिन हो जाता है, यदि वे उसको समझना चाहें तो अपना सब काम छोड़ या तो साधु बनकर अथवा घरवालोंके नाना प्रकारके बचन रूपी कुठारोंका प्रहार सहकर उसके समझनेके लिये बहुत समयकी आवश्यकता होती है। ऐसे करनेपर भी भाग्यवश सारतत्वको पागया तो वाह वाह! नहीं तो उभयतो भ्रष्ट हो अज्ञानके ऐसे गहरे समुद्रमें जा पड़ता है जिससे निकलना तो अलग, श्वास लेनेका भी अवसर नहीं मिलता। ऐसी ऐसी अनेक कठिनाइयां हैं, कहांतक वर्णन किया जावे। ऐसी कठिनाइयों और आवश्यकताको देखकर हृषीकेशनिवासी प्रसिद्ध ब्रह्मनिष्ठ परमोपकारी सत्यधारी महात्मा श्री १०८ गोस्वामी विशुद्धानन्दजी प्रसिद्ध कमलीवाले बाबाने अत्यन्त अनुग्रह और करुणा कर सत्य धर्म्मके मुमुक्षुओंके हेतु यह अमूल्य ग्रन्थ "पक्षपातरहित अनुभव प्रकाश" लिखा है।

इस पुस्तकमें चार वेद, षट् शास्त्र का सार और अठारह पुराणोंकी वे सब कथायें जिनको प्रायः अर्द्धप्रबुद्ध अथवा कलियुगी विचारके लोग असम्भव अथवा गप्प बतलाकर नाना प्रकारके सन्देह करके उनकी निन्दापर उतारू होते हैं, सबका आध्यात्मिक अर्थ

ऐसा स्पष्ट और प्रत्यक्ष युक्तियों द्वारा वर्णन किया है, जिससे एक बार भी इस पुस्तकको बांचनेवाला कभी सन्देह और शंकामें नहीं पड़ सकता ।

ऐसे धर्मरत्नके भण्डार रूप पुस्तकके कर्ता बाबाजीका जीवन चरित्र कैसा उपदेश पूरित और पुण्य रूप होवेगा परन्तु शोक है, इस बातका बहुत प्रयत्न करनेपर भी बाबाजीका पूर्ण जीवन चरित्र नहीं मिल सका इस कारण एक छोटासा संक्षिप्त जीवन चरित्र दिया है ।

इस पुस्तककी भाषा प्रथम पंजाबी भाषा मिश्रित थी और वर्तमान कालकी प्रचलित हिन्दी भाषासे विलग नवीन ही ढंगकी थी तथा पुस्तकमें विषयोंका विभाग कुछ भी नहीं था, जिससे किसी भी विषयको ढूंढनेके लिये बहुत समय और बहुत परिश्रमकी आवश्यकता होती थी । सो स्वामी युगलानन्द कबीर पन्थी भारत पथिकने अत्यन्त शुद्ध और प्रचलित भाषाकी परिपाटीके अनुसार शुद्ध हिन्दी भाषा करके विषयोंका विभाग भी कर दिया है तथा बाबा जीकी एक संक्षिप्त जीवनी भी लिख दी है जो आगे छपी है। अनुक्रमणिका भी बहुत सुन्दर बनाई गई है जिससे किसी भी विषयके निकालनेमें विशेष परिश्रम होना सम्भव नहीं है । प्रथमावृत्ति पत्रे नुमा छपी थी परन्तु अबकी आवृत्ति बहुत सज्जनोंके आग्रहसे बुकसाइजमें उत्तम कागज और उत्तम जिल्दकी छपवाई गई है ।

सत्य धर्म और परलोकके सुख प्रद आत्मज्ञानके जिज्ञासु तथा मुमुक्षुओंसे निवेदन है कि, जिस प्रकार प्रथमावृत्ति, द्वितीयावृत्ति, तृतीयावृत्ति और चतुर्थावृत्तिको लेकर सज्जनोंने अपनी उदारता प्रगट की है उसी प्रकार इस पञ्चमादि आवृत्तिको भी आश्रय देकर इसके द्वारा धर्म्ममें स्वयं प्रवृत्त होंगे और दूसरे अधिकारियोंको प्रवृत्त करावेंगे जिससे मैं अपने परिश्रमको सफल और अपनेको कृतकृत्य मानूगा ।

सर्वसज्जनोंका कृपाभिलाषी–

खेमराज श्रीकृष्णदास;

"श्रीवेंकटेश्वर" (स्टीम्) प्रेस–बम्बई.

हृषीकेशीय स्वामी श्रीविशुद्धानन्दजी प्रसिद्ध काली कमलीवाले बाबाका संक्षिप्त जीवन-चरित्र

यद्यपि बाबाजीका पूर्ण जीवन चरित्र लिखनेका विचार था और यदि पूर्ण जीवन चरित्र लिखा जाता तो गृहस्थसे लेकर संन्यासीतक सर्व श्रेणीके लोगोंको परम उपदेशप्रद और लौकिक पारलौकिक पथका सहायक बन जाता। परन्तु शोक है कि, बहुत परिश्रम करने पर भी कामना पूर्ण नहीं हो सकी इस कारण जहां तक फुटकर बातें बाबाजीके विषयमें प्राप्त हो सकी हैं उनको संक्षेपसे लिखता हूँ--

बाबाजीने गृहस्थ त्यागने पर बहुत दिनोंतक सत्संग और देशाटन, तीर्थाटनमें काल बिताया। प्रथम अवस्थामें समय २ पर आकर हृषीकेशमें निवास करते थे। यह हृषीकेश हरिद्वारसे बारह कोश उत्तर बदरीनाथके मार्गमें तपोवनके नामसे प्रसिद्ध स्थान है जहां विचारवान् विद्वान् और तितिक्षु संतलोग नियत समय तक (प्रत्येक वर्षमें) वास करके ब्रह्म विचारमें निमग्न रहते हैं और ब्रह्म जिज्ञासु लोग भी वहां वासकर ब्रह्मनिष्ठ महात्माओंसे आत्मज्ञानका लाभ प्राप्त करते हैं। कुछ दिनों उपरान्त बाबाजी को यह स्थान (हृषीकेश) ऐसा भाया कि, अपना बहुत समय वहां ही बिताने लगे। उस समय हृषीकेशमें न तो आज कलके समान कोई क्षेत्र था न विशेष सेठ साहूकारों का आवागमन था। उस समय वहांके रहनेवाले साधु महात्मा बडे परिश्रम और कष्टसे जंगली फल और पदार्थोंसे शरीरयात्रा करते और इधर उधर पहाडके गुफाओं आदि स्थानोंमें रहते थे। यद्यपि उस स्थानका नाम ही तपोवन है तथापि साधुओं को वहां बहुत कष्ट उठाना पडता था। सन्तोंके ये कष्ट बाबाजीसे सहन नहीं सके, आपने परोपकारको ही परम धर्म जानकर सन्तोंको सुख देनेकी इच्छा से क्षेत्र लगाने का विचार किया। हृषीकेश छोडकर बाबाजी फिरते हुए कलकत्ता पहुँचे। कलकत्ते के प्रसिद्ध महाजन सूर्य्यमलको उपदेश देकर हृषीकेशमें अन्नक्षेत्र स्थापित कराया जिसके पीछे सन्तों को किसी प्रकारसे कष्ट नहीं हुआ। प्रसिद्ध लक्ष्मण झूलेका (बदरीनाथके मुख्य मार्ग का) पुल, हरिद्वारमें धर्मशाला व क्षेत्र आदि जो सेठ सूर्यमलने स्थापन किये बाबाजी के ही उपदेशका फल था।

इतने ही पर नहीं वरन् जिस शहरमें आप पधारते वहांके सेठ साहूकार रईसोंको इस प्रकार उपदेश देकर पुण्य मार्गमें लगा देते कि, जिससे उनके दोनों लोक सुधरते। साधु ब्राह्मण तथा दीनदुखियोंको देखकर आप अति विह्वल हो जाते, यही कारण था कि, आपका कोई समय भी दीन दुःखियों और साधु ब्राह्मणोंकी सहायता बिना नहीं जाता था। आप केवल लौकिक सहायता ही नहीं करते थे वरन् आपमें अधमसे अधम पुरुषको दुष्टाचरणसे हटाकर सदाचारमें लगा देनेकी ऐसी शक्ति और युक्ति थी कि, कोई भी आपका वचन सुनने पीछे पुण्य मार्गपर चले विना नहीं रहता था।

भारत वर्षके पुण्य शाली कौन ऐसे सेठ साहूकार हैं जिन्होंने बाबाजीका दर्शन कर धर्म्म मार्गमें प्रवृत्ति नहीं की हो। आत्मज्ञानके उपदेश करनेमें आप ऐसे कुशल थे कि, मुमुक्षओंको आपकी थोडी ही सत्संगतिसे आत्मसाक्षात्कार हो जाता था। आपने सहस्रों नवीन शिक्षा पाये हुए नास्तिक तुल्य सनातन धर्म और स्वदेशके अश्रद्धालु पुरुषोंको उपदेश देकर ईश्वर भक्ति और परोपकारमें लगा दिया। आपके वचनमें ऐसी मोहित करनेवाली आकर्षण शक्ति थी कि जिसने आपका वचन सुना वह सदाके लिये आपकी वाणीके सुननेका अनुरागी बनगया। आपको किसी मत अथवा वेष विशेष कुछ सम्बन्ध न था। आप केवल दो कम्बल रखते थे। ऐसे निरपेक्ष और अलिंग होनेपर भी सर्व वेषोंके साधुओं तथा सर्व धर्मोंके लोगोंपर आपकी समदृष्टि रहती थी। सर्व धर्मोंको आप समान समझकर ही सर्वलोगोंको अपने २ धर्ममेंही रहकर सदाचरणमें वर्तने का उपदेश किया करते थे। आपने अंत समयमें अपने विचारोंको स्थायी रहने और जीवोंको सदाके लिये शिक्षकके समान वर्तमान रहने अथवा ऐसे कहा जाय कि अपने समान ही उपदेश कर्ता स्वरूपमें "पक्षपात रहित अनुभवप्रकाश" नामक एक अमूल्य पुस्तक लिखा है।

यदि इस पुस्तकको धर्मका भण्डार सत्यका आगार और सदाचारका कोश कहा जावे तो अत्युक्ति न होगी। इस पुस्तकमें एक एक विषयका ऐसा स्पष्ट और नित्यके लौकिक उदाहरणों द्वारा निरूपण किया है कि, धर्म मार्गसे अत्यन्त अनभिज्ञ और अश्रद्धालु पुरुष भी इसको सुनकर धर्मके तत्त्वको समझने लगता है और धर्म पथमें प्रवृत्त हो जाता है। इस ग्रन्थके आठ सर्ग किये हैं। प्रत्येक सर्गमें संसार भरमें प्रतिष्ठित ईश्वरी नियमके अनुकूल और सबके मन भाव निष्पक्ष साधारण धर्मका निरूपण किया है। पुराणोंकी नाना प्रकारकी आश्चर्यमय कथाओंका यथार्थ सार और आध्यात्मिक अर्थ तथा भाव इस प्रकार स्पष्ट करके समझाया है कि, जैसा आज तक किसी अन्य पुस्तकमें देखनेमें नहीं आता। इस पुस्तकका एक वार श्रवण करनेवाला अथवा पाठ करने वाला अवश्य धर्ममें श्रद्धालु हो जावेगा।

मनुष्य जीवनको सुखपूर्वक वितानेवाले, अपने धनकी रक्षा करनेवाले, अपने संतान को सुधारनेकी इच्छा रखनेवाले तथा सर्व प्रकारके लौकिक सुखकी पारलौकिक इच्छा रखनेवाले इस पुस्तकको पाकर ही सब ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। यद्यपि बाबाजी के जीवन वृत्तांत और भी बहुत कुछ सुने गये हैं तथापि यहां दिग्दर्शन मात्र लिखा है।

इति श्रीस्वामी युगलानन्द कवीरपन्थी भारतपथिक (शिवहरवाले) द्वारा सङ्कलित कमलीवाले बाबाका संक्षिप्त "जीवन चरित्र" संशोधित समाप्त हुआ ॥

श्रीः

पक्षपातरहित अनुभवप्रकाशकी

विषयानुक्रमणिका

★

इति विषयानुक्रमणिका समाप्ता

ॐ

श्रीगुरुभ्यो नमः

पक्षपातरहित-अनुभवप्रकाश

★

प्रथम सर्ग १.

आत्मानात्म विवेचनविषयक पराशरमैत्रेय संवाद

एक समय किसी एक एकांत स्थानमें वसिष्ठके पौत्र और शक्तिके पुत्र पराशरजी अपनी इच्छापूर्वक बैठे थे, तिसही कालमें मित्राके पुत्र मैत्रेयने आकर वेदविधि पूर्वक पराशरको गुरु जानके आप अपनी पूर्ण श्रद्धासे शिष्य-भावको प्राप्त हो हाथ जोड़कर शिष्यरीत्यनुसार प्रश्न किया कि–

हे भगवन्! इस संसाररूपी देहमंदिरमें मैं कौन हूं? क्या श्रोत्रादिक ज्ञान इंद्रियोंका समूह हूँ? अथवा एक एक ज्ञानेंद्रिय हूं? वाक् आदिक कर्म इंद्रियोंका समूह हूँ? एक एक वाक् आदिक इंद्रियरूप हूँ? प्राणादिक वायुओंका समुदाय रूप हूँ? वा एक एक प्राणादिक वायुरूप हूँ? मन आदिक चतुष्टय अंतःकरणरूप हूँ? वा मन बुद्धि आदिक एक एक रूप हूँ? स्थूल सूक्ष्मरूप जो आकाशादिक पंचमहाभूत है, उनका समुदाय हूँ रूप वा आकाशादि एक एक रूप हूँ वा तिन्होंका कार्यरूप जो देह सो हूँ, काम क्रोधादिक पच्चीस प्रकृतिरूप हूँ? स्थावररूप हूँ वा जंगमरूप हूँ, व्यापकरूप हूँ, परिच्छिन्नरूप हूँ, परमाणुरूपहूँ वा अपरमाणुरूप हूँ, भूतपिशाचादिरूप हूँ, किसीका प्रतिबिंब हूँ, बिंबरूप हूँ. हे भगवन्! मैं जीव हूँ वा ईश्वररूप हूँ वा ब्रह्म हूँ वा जड़रूप हूँ वा चेतनरूप हूँ

वा सर्वशक्तिमान हूँ वा सर्वशक्तिसहित हूँ ? माया और अविद्याके संबंधवाला हूँ वा तिनके संबंधते रहित हूँ ? माया वा अविद्या करके मोहित हूँ, सुख दुःखका कारण जो धर्माधर्म, उनवाला हूँ वा तिनते रहित हूँ ? धर्माधर्मका कार्य जो सुख दुःख उनका भोक्ता हूँ वा अभोक्ता हूँ ? क्रियावान् हूँ वा अक्रिय हूँ ? शांति आदि मनके धर्मरूप हूँ वा धर्मीरूप हूँ वा तिनते रहित हूँ ? समाधिरूप हूँ वा विक्षेपरूप हूँ वा तिनते रहित हूँ ? रूपादिक विषयरूप हूँ वा तिनते रहित हूँ ? नित्य वा अनित्य हूँ ? दृश्य हूँ वा द्रष्टा हूँ वा दृश्य द्रष्टा उभयरूप हूँ वा तिनते रहित हूँ ? ब्राह्मणादिक वर्णी हूँ वा ब्रह्मचारी आदि आश्रमी हूँ वा तिनते रहित हूँ ? हे दीनबंधु ! कृपालु गुरो ! इस देहविषे मैं सगुणरूप हूँ वा निर्गुणरूप हूँ ? देव हूँ वा मनुष्य रूप हूँ वा स्त्री हूँ वा पुरुषरूप हूँ वा नपुंसकरूप हूँ ? पर करके देखनेमें आता हूँ वा नहीं ग्रहणरूप हूँ वा त्यागरूप हूँ, इयत्तावाला हूँ वा इयत्ता रहित हूँ, सारांश यह कि अनंत हूँ कि, अन्तवाला हूँ, मधुर रसादिरूप हूँ वा तिनते रहित हूँ, ऋषि हूँ वा मुनि हूँ, अनेकशास्त्ररीत्यनुसार (२५) वा एकसो पच्चीस (१२५) वा सत्ताईस (२७) आदि- प्रकृतिरूप हूँ वा तिनते रहित हूँ, व्यापक हूँ कि, अव्यापक हूँ कि, असङ्ग हूँ कि संगी हूँ, मैं मृत्युको प्राप्त होता हूँ कि नहीं । चक्षुआदिज्ञानेंद्रियोंके प्रकाशक और अभिमानी सूर्यादिदेवता रूप हूँ, वा तिनते रहित हूँ, वाक् आदि कर्मेंद्रियोंके अभिमानी अग्नि आदि देवतारूप हूँ कि, तिनते रहित हूँ तैसे ही मन आदि अंतःकरणचतुष्टयके अभिमाती चंद्रमादि देवता हूँ कि नहीं, मनादिकोंके संकलपादि धर्मरूप हूँ वा नहीं, तात्पर्य यह है कि पंच-

ज्ञानेंद्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय, अंतःकरणचतुष्टय और शब्दादिकचतुर्दश (श्रोत्रादिक इंद्रियोंके विषय) तथा चतुर्दश तिनके देवता आदि चतुर्दश त्रिपुटीरूप हूँ ? वा नहीं ? वा तिनते रहित हूँ ? वा श्रोत्रादिक इन्द्रियोंके बधिरत्वादिक धर्मरूप हूँ ? वा तिनते रहित हूँ ? तथा दूर हूँ ? कि, समीप हूँ ? लंबा हूँ कि, चौड़ा हूँ ? ऊर्ध्वरूप हूँ ? कि, अधोरूप हूँ ? वा दिशा वा उपदिशा रूप हूँ ? वा तिनते रहित हूँ ? प्रयागादि तीर्थरूप हूँ वा नहीं वा प्रयागादि तीर्थोंके अभिमानी वेणीमाधव आदिक हूँ ? वा नहीं ? वक्ररूप हूँ ? वा अवक्ररूप हूँ ? मातारूप हूँ वा पुत्ररूप हूँ मातादिभावते रहित हूँ ? समव्याहृतिरूप भूरादि ऊपरके लोक हूँ वा अतलादि नीचेके लोक हूँ ? तिन लोकोंमें रहनेवाला हूँ ? वा नहीं ? रसादि सप्तधातुरूप हूँ वा नहीं ? आकाशादिक पंचभूतोंके शब्दादि गुणरूप हूँ ? वा तिनते रहित हूँ ? वा कोई उत्तम पदार्थ हूँ वा मध्यम हूँ ? वा कोई निकृष्ट पदार्थ हूँ ? जाग्रतरूप हूँ ? वा स्वप्नरूप हूँ वा सुषुप्ति रूप हूँ ? वा तुरीयरूप हूँ ? वा तुरीयातीत हूँ ? वा जाग्रत स्वरूप सुषुप्तिके अभिमानी विश्व तैजस प्राज्ञनामा जीव हूँ वा जाग्रदादि अवस्थाके अभिमानी रहित हूँ ? व्यष्टि स्थूल शरीर हूँ ? या व्यष्टि, सूक्ष्मशरीर हूँ ? वा व्यष्टि कारण शरीर हूँ ? वा स्थूल, सूक्ष्म, कारण, समष्टिरूप हूँ वा तिनते रहित हूँ ? पंचकोश रूप हूँ ? वा तिनते रहित हूँ ? वैखरी मध्यमा पश्यंती परा वाणीरूप हूँ, वा तिनते रहित हूँ ? समष्टिकारण शरीर हूँ ? वा समष्टि सूक्ष्म शरीर हूँ वा समष्टिस्थूल शरीर हूँ ? वा तिन समष्टि स्थूलादि शरीरोंके अभिमानी विराट् हिरण्यगर्भ ईश्वर क्रमते हूँ ? वा समष्टि स्थूलादि अभिमानते रहित हूँ ? सत्वगुणरूप हूँ वा रजोगुणरूप वा तमोगुणरूप हूँ ? तिनते रहित हूँ ? अमानित्वादि दैवी सम्पदारूप हूँ ? वा दंभादि आसुरी संपदारूप हूँ ? षट्ऊ-

मिमान् हूँ वा नहीं हूँ ? षट् भावविकारवान् हूँ वा नहीं हूँ ? श्रोत्रादिक इंद्रियोंका तथा मन आदिकोंका मैं विषय हूँ ? वा अविषय हूँ ? तात्पर्य यह कि, मनादिक इंद्रियके द्वारा मैं जाननेमें आता हूँ वा नहीं ? स्वप्रकाश हूँ ? वा परप्रकाश हूँ ? कर्मवान् हूँ वा नहीं हूँ, कर्म उपासनाका फल भोक्ता हूँ ? या नहीं, तथा कर्म और उपासनाका मैं कर्ता हूँ ? कि, कोई अन्य कर्ता है ? और मैं निष्कर्तव्य हूँ ? कि सकर्तव्य हूँ ? मैं बंधरूप हूँ ? कि, मोक्षस्वरूप हूँ ? वा तिनते रहित हूँ कारणस्वरूप हूँ ? कि, कार्य्य-स्वरूप हूँ ? वा तिनते रहित हूँ ? गुरुके उपदेश वा शास्त्र द्वारा मैं जाननेमें आता हूँ ? कि, नहीं ? देश, काल, वस्तु-स्वरूप हूँ ? कि, वा तिनते रहित हूँ ? नाम, रूप, स्वरूप हूँ ? वा तिनते रहित हूँ ?

हे भगवन् मैं आदि हूँ ? कि, अनादि हूँ ? सच्चिदानंद-स्वरूप हूँ ? कि, नहीं ? यज्ञ दानादि रूप हूँ ? कि, तिनते रहित हूँ ? पंडित हूँ ? कि, अपंडित हूँ ? स्वामी हूँ ? कि, दास हूँ- स्थावर हूँ कि, जंगम हूँ, बालक हूँ कि, युवा हूँ, वृद्धि हूँ वा बालकादि अवस्था रूप हूँ वा नहीं, सुन्दररूप हूँ, कि, असुन्दररूप हूँ, अंधकाररूप हूँ ? कि, प्रकाशरूप हूँ, सुख दुःख रूप हूँ कि तिनते रहित हूँ, लक्ष्यरूप हूँ, वाच्यरूप हूँ, हेयोपादेयरूप हूँ कि, तिनते रहित, कर्मरूप हूँ कि, अकर्म रूप हूँ, सब जगत्का उपादान कारण अज्ञान वा मायारूप वा तिनते रहित हूँ ? इत्यादि उक्त पदार्थोंके मध्यमें मैं कौन हूँ ? हे शांतिदायक कृपालो ! सर्वहितेच्छु सर्व शिष्योंके संताप नाशक करुणानिधे ! हे अज्ञाननाशक दीनबंधो ! हे यथार्थदर्शी ! हे संशयविध्वंसक सद्गुरो ! इस संशयरूपी समुद्रसे आप कृपा करके मुझको पार करो क्योंकि. मैं तुम्हारी शरणको प्राप्त हूँ । इस

प्रकार श्रद्धावान् शिष्य मैत्रेयकी रस भरी वाणी सुनके श्रीपराशर मुनिने सर्व प्रश्नोंका केवल एक ही उत्तरसे समाधान किया कि-

हे मैत्रेय ! पूर्वोक्त, जो तुमने देहसे लेकर अज्ञान पर्यंत सब पदार्थ कहे हैं. सो तू नहीं है. क्योंकि अज्ञान और अज्ञानके कार्य जो सर्व पदार्थ हैं, वे परस्पर व्यभिचारी हैं, परस्पर अपेक्षावाले हैं, आपसमें कार्य कारण भाववाले हैं, चेतनके दृश्य हैं, देश, काल, वस्तु, परिच्छेदवाले हैं, षड्भाव विकारवाले हैं, अतिशयतादि दोष वाले हैं। भ्रम ज्ञानके विषय हैं जड़ हैं, वाचारंभणमात्र हैं, स्वप्नवत् प्रतीति मात्र हैं, अविद्याके परिणाम हैं, चेतनके विवर्त हैं, और रज्जु सर्पकी न्यांई केवल मिथ्या ही तुम्हारे स्वरूपमें कल्पित प्रतीतमात्र होते हैं, स्वप्नदृश्यकी न्यांई हैं, वस्तुतः सत्य नहीं हैं, हे मैत्रेय ! वास्तवसे जो तुमने देहसे लेकर अज्ञान पर्यंत पूर्वपदार्थ कहे हैं, तथा अन्य भी अनेक पदार्थ हैं सो सर्व मन वाणीके गोचर हैं और तुम्हारा स्वरूप अवाङ्मनसगोचर है। सो साक्षात् कहनेको हम भी समर्थ नहीं; तैसे ही तुम भी उसको साक्षात् दृश्यरूपता करके जाननेको समर्थ नहीं; काहेते ? सर्वजीव जिस विषय सुखको नित्य प्रति अनुभव करते हैं. वह जो शब्दस्पर्शादि विषय जन्य सुख है, तिसको भी जब साक्षात् दृश्यकी न्यांई कहनेको तथा जाननेको कोइ भी समर्थ नहीं होता तो सर्व प्रकारसे अवाङ्मनसगोचर जो सर्वका आत्मस्वरूप सुख है, तिसको साक्षात् किसी मिस विना विद्वान् कैसे कहेंगे और कैसे मुमुक्षु जानेंगे किंतु कहना और जानना कुछ भी नहीं होगा, किसी एक मिससे इसका कहना और जानना दोनों ही हो सकता है;जैसे मन करके भी अचिंतनीय है रचना जिसकी, ऐसा जो

यह जगत् है, तिस जगत्‌की उत्पत्ति पालन और संहार रूप व्यवहार जो करनेवाला है सोई जगत्‌का स्वामी परमात्मा है । इस तटस्थलक्षण कर जैसे परमात्माका रूप जाननेमें आता है तथा जैसे चित्रोंको देखकर चित्रेलेका होना अनुमान किया जाता है, तैसे ही हे सुबुद्धिमान् मैत्रेय ! सुख दुःखादि सर्व पदार्थ जिस करके सिद्ध होते हैं, वही तुम्हारा स्वरूप है । तथा जो मनके फुरनेते प्रथम स्वतः सिद्ध हैं, पुनः मनके शुभाशुभ फुरनेका जो साक्षीरूप करके निर्विकार स्थित है; पुनः मनके फुरनेके अभावका जो अवधिरूप करके स्थित है; सो तुम्हारा स्वरूप है । जैसे षट् प्रकारके रूपकी न्यून अधिकताको परिणाम करनेवाला चक्षुइंद्रिय रूपसे भिन्न, . सर्वरूपके विकारोंसे रहित, रूपका उपचारक द्रष्टा है । तथा–जैसे शब्दके न्यून अधिकताको परिमाण करनेवाला श्रोत्र इंद्रिय शब्दसे भिन्न शब्द विकारोंसे रहित शब्दका उपचारक ज्ञाता है । तथा–जैसे गंधके उत्तम मध्यम भावको तथा गंधकी उत्पत्ति नाशको परिमाण करनेवाला घ्राण इंद्रिय, गंधसे भिन्न, सर्व गंधके विकारोंसे रहित, गंधका उपचारक द्रष्टा है । जैसे षट्प्रकारके रसकी न्यून अधिकताको परिमाण करनेवाला, रसनेंद्रिय रससे भिन्न, सर्व रसके विकारोंसे रहित और रसका मुख्यज्ञाता जो आत्मा, उसकी उपाधि होनेते गौणज्ञाता रससे भिन्न है, जैसे–स्पर्श विषयके न्यून अधिक भावको परिमाण करनेवाला, स्पर्शके सर्व विकारोंसे रहित; स्पर्श विषयका उपचारक ज्ञाता, त्वचा इन्द्रिय स्पर्शते भिन्न है–काहेते, रूपादिकपदार्थ भिन्न देशमें स्थित हैं और रूपादिकोंके परिमाण करनेवाले चक्षु आदिक उपचारक द्रष्टा भिन्न देशमें अर्थात् देहविषे स्थित हैं इसी से रूपादिकोंके गुणदोषको चक्षु

आदिक इंद्रियरूप द्रष्टा स्पर्श नहीं करते; तथा रूपादिक पदार्थ अपने द्रष्टा चक्षु आदिकोंको जानते भी नहीं तैसे ही प्रत्यक्ष आत्मा भी, इस देहरूप संघात विषे मन, वाणीके कथन चिंतनते रहित स्थित हुआ, जिसपर काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार. लज्जा, अलज्जा, धृति भय, अभय, शांति, अशांति, अथार्थ, ज्ञान, अयथार्थ ज्ञान, स्मृति, अस्मृति, दंभ, अदंभ, मान अमान, सर्व मनका शुभाशुभ स्फुरण, हर्ष शोक, ध्यान अध्यान, बंध, मोक्ष, ग्रहण, त्याग, जाग्रत; स्वप्न, सुषुप्ति मरण, मूर्च्छा, समाधि आदिक सारांश यह कि, दैवी, आसुरी गुण वा मन सहित सर्व मनके धर्म जिसकर सिद्ध होते हैं. तात्पर्य यह कि, जिस करके पूर्वोक्त सर्व पदार्थ जाननेमें आते हैं, सोई तुम्हारा स्वरूप है। दुःख सुखादि पदार्थोंको अंतर कडीवत् (तराजू) जो परिमाणकरनेवाला है जिसका मनादिकों करके परिमाण किया जा सकता नहीं सो मनादिकोंका साक्षी, प्रकाशक, परमात्मासे अभिन्न, महाकाशसे अभिन्न घटाकाशकी न्यांई प्रत्यक् आत्मा तुम्हारा स्वरूप है तथा प्राणादिकोंके क्षुधा पिपासादिक धर्मोंको जो जानता है, तथा प्राण अपानादिकके न्यून अधिक भावको जो जानता है सो प्रत्यक् आत्मा तुम्हारा स्वरूप है जो शरीर तथा शरीरके शयनादिक सर्व धर्मोंको जानता है, बहिर्घट द्रष्टाकी न्यांई, तथा चक्षु आदिक इंद्रियोंका और चक्षुआदिक इंद्रियोंके मंद बधिर-त्वादिक. सर्व धर्मोंकी न्यूनता अधिकताको, जो अंतर जाननेवाला है सोई प्रत्यक् आत्मा तुम्हारा स्वरूप है। जो शरीरात्मक पञ्चमहाभूतोंको तथा शरीरके अन्तर रहनेवाले पंचमहाभूतोंके कार्यरूप क्रोधादिक पच्चीस वा सत्ताईस वा एकसो पच्चीस (१२५) प्रकृतियोंको, तथा

भूत, भविष्यत् वर्तमान कालको जो सिद्ध करता है तथा भूत भविष्यत् वर्तमानकालमें होनेवाले पदार्थोंका जो सिद्ध करनेवाला है, सो तुम्हारा स्वरूप है। जो मन, बुद्धि अहंकार चित्तादिक अंतःकरणको तथा अंतःकरणकी सात्त्विकादिक वृत्तियोंको सिद्ध करनेवाला है, सो तुम्हारा स्वरूप है। जो सगुण वा निर्गुण परमेश्वरके ध्यान अध्यानका अंतर साक्षी ज्ञाता है और भाव अभावको तथा सर्व अस्तिनास्तिपदार्थोंको जो सिद्ध करता है सोई तुम्हारा स्वरूप है। जो सात्त्विकी वृत्तियोंकी उत्पत्ति अनुत्पत्तिको तथा राजसी वृत्तियोंकी अनुत्पत्ति उत्पत्तिको तथा तामसी वृत्तियोंकी उत्पत्ति अनुत्पत्तिको जानता है, सोई तुम्हारा प्रत्यक् स्वरूप है। जो सात्त्विकी वृत्ति अंतःकरणते उदय होकर नष्ट होगई और जब तक राजसी वा तामसी वा पुनः सात्त्विकी वृत्ति उदय भई नहीं, तिस संधिमें स्थित होकर देहली दीपक न्यायकर सात्त्विकी वृत्तियोंके अस्तभावको और दूसरी राजसी तामसी तथा सात्त्विकी वृत्तियोंके अनुदयको अपने स्वप्रकाशरूप करके, जो सिद्ध करता है, सोई तुम्हारा स्वरूप है। तैसी जब राजसीवृत्ति उदय होकर नष्ट होगई और सात्त्विकी तामसी वा पुनः राजसी वृत्ति उदय नहीं भई, तैसेही जब तामसी वृत्ति उत्पन्न होकर पुनः नष्ट होगई और जबतक सात्त्विकी वा राजसी वा पुनः तामसी वृत्ति उत्पन्न हुई नहीं, तबलग तिसकालमें, जिस शांतरूप निर्विकल्प प्रकाश करके पूर्वोक्त व्यवहार सिद्ध होता है, सोई सतरूप तुम्हारा स्वरूप है, । तात्पर्य यह कि, सर्व वृत्तियोंकी सन्धियोंमें स्थित हुआ देहली दीपक न्यायवत् सर्व वृत्तियोंके भाव अभावको जो सिद्ध करनेवाला है सो प्रत्यक् आत्मा तुम हो। जिसको मन मनन कभी भी

नहीं कर सकता, जिसको बुद्धि निश्चय नहीं कर सकती और जिसको चित्त चिंतन नहीं कर सकता और जिसको अहंकार अहंपना नहीं कर सकता क्यों कि जाति गुण क्रियादि संबंधवाले पदार्थोंको ही ये मनादिक चिंतन कर सकते हैं और यह प्रत्यक् आत्मा जाति गुण क्रियादि संबंधवान् दृश्यपदार्थोंसे रहित है; तिनका द्रष्टा है तथा यह नियम है कि, दृश्य द्रष्टाको प्रकाश नहीं कर सकता उलटा द्रष्टाही दृश्यको प्रकाश करता है, सूर्य दीपकादिकोंमें यह प्रसिद्ध दृष्टांत है इसीलिये मन आदिकोंके साक्षी द्रष्टा आत्माको पूर्वोक्त मन आदिक प्रकाश नहीं कर सकते । किंतु मन बुद्धि आदिके भावाभावको तथा उन्होंके न्यून अधिक भावको तथा मन आदिकोंके शांति अशांति धृति अधृति आदिक धर्मोंको जो जानता है; सोई सत्य वस्तु तुम्हरा स्वरूप है। यह जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्त्यादि प्रपंच जिस करके सिद्ध होते हैं और जिस करके पंचकोशोंका परिमाण होता है तथा जो पंचकोशोंसे अतीत, पंचकोशोंका साक्षी, प्रकाशक वा स्वामी है, सोई चैतन्य वस्तु तुम्हारा स्वरूप है ।

हे शिष्य ! सर्व पदार्थ व्यभिचारी हैं इसीसे मिथ्या हैं जो अव्यभिचारी वस्तु है सोई सत्य है; जैसे घटमें पट नहीं है और पटमें घट नहीं है किन्तु सर्व घट पटादिकोंमें मृत्तिका अनुस्यूत अव्यभिचारी है तैसे अज्ञानसे लेकर देहपर्यंत सर्व पदार्थ परस्पर एक दूसरेमें नहीं है अर्थात् सबका सबमें अभावरूप अव्यभिचार है; इसीसे मिथ्या हैं; परन्तु, अस्ति, भाति, प्रियरूप प्रत्यक् आत्मा, तिन सर्व पूर्वोक्त पदार्थोंमें अनुस्यूत अव्यभिचारी है, इसीसे वह सत्य है; जैसे-भूषण व्यभिचारी हैं अरु सुवर्ण अव्य-

भिचारी है। और भी अनेक दृष्टांत हैं सोई दिखलाते हैं, जैसे-वर्तमान जाग्रत अवस्थाके सिद्धकर्ता, प्रत्यक् आत्माका, जाग्रत् अवस्थाके साथ अन्वयनाम अभेद है और स्वप्न, सुषुप्ति, मूर्च्छा, मरण, समाधि आदिक अवस्थाका जाग्रत् अवस्थासे व्यतिरेक नाम अभाव है। तथा जाग्रत् अवस्थाके सिद्धकर्ता आत्मासे भी इनका व्यतिरेक नाम अभाव है तैसेही-स्वप्नावस्थामें आत्माका स्वप्न अवस्थाके साथ अन्वय नाम अभेद है, जाग्रत सुषुप्ति, मरण, मूर्छा, समाधिका स्वप्न अवस्थाके साथ व्यतिरेक है तथा आत्माके साथ भी व्यतिरेक है; तैसेही-सुषुप्ति अवस्थाका सिद्धकर्ता प्रत्यक् आत्मा सुषुप्तिसे अन्वय नाम मिला है जाग्रत, स्वप्न, मरण समाधि आदिक अवस्थाका सुषुप्ति अवस्थान व्यतिरेक है अर्थात् भेद है तथा उक्त आत्मासे भी उनका व्यतिरेक नाम भेद है। सारांश यह कि, जब जाग्रत् अवस्था है तब स्वप्नादिक अवस्थाका अभाव है, परन्तु जाग्रत्के सिद्ध करनेवाले, केवल आत्मस्वरूपका अभाव कदाचित् नहीं; किंतु हाजिर हजूर है, उलटा स्वप्नादिकोंका अभाव और जाग्रत्का भाव प्रत्यक् आत्मा करके ही सिद्ध होता है, तैसे ही जब स्वप्नकी अवस्था होती है तब जाग्रतादिक अवस्थाका अभाव होता है परन्तु स्वप्नके सिद्धकर्ता आत्माका अभाव नहीं है उलटा जाग्रतादिकोंके अभावको और स्वप्नके भावको सिद्धकर्ता यह प्रत्यक् आत्माही है। तैसेही-जिस कालमें सुषुप्ति होती है तिस कालमें स्वप्नादिक अवस्थाका अभाव है परन्तु सुषुप्तिके सिद्धकर्ता आत्माका अभाव नहीं उलटा सुषुप्तिके भावको और स्वप्नादिकोंके अभावको तुम्हारा प्रत्यक् आत्मा स्वरूप ही सिद्धकर्ता है। इसी रीतिसे जब समाधि नाम

चित्तकी एकाग्र अवस्था होती है तब जाग्रतादिक अवस्थाका अभाव होता है सही, परंतु तिस कालमें जाग्रतादिक विक्षेप अवस्थाके अभावको तथा समाधिरूप एकाग्रताके भावको सिद्ध करनेवाला प्रत्यक् आत्माका अभाव नहीं है, यही रीति मरण आदिक अवस्थामें भी जान लेनी। तैसेही-घटादिक पदार्थोंका पटादिक पदार्थोंमें अभाव है, तथा पटादिक पदार्थोंका घटादिक पदार्थोंमें अभाव है, परन्तु जिस सच्चिदानन्द शब्दोंके पर्य्यायरूप यह अस्ति भाति प्रियशब्दोंका अर्थरूप प्रत्यक्-आत्मा करकेही घट पटादिकोंकी सिद्ध होती है, तिसका अभाव कदाचित् नहीं है। तैसेही--जब सत्त्वगुण होता है तब रजोगुण और तमोगुण नहीं होते. परन्तु सत्त्वगुणके भावको और रजोगुण तथा तमोगुणके अभावका जो सिद्धकर्ता प्रत्यक् आत्मा है तिसका अभाव नहीं तैसेही जब रजोगुण आता है तब सत्त्व तमोगुणका अभाव होता है; परंतु रजोगुणके भावको और सत्त्वतमगुणके अभावका सिद्धकर्ता आत्माका अभाव नहीं है तैसे ही जब तमोगुण आता तब सत्त्वगुण रजोगुणके अभाव होता है, परंतु तमोगुणके भावको अरु रज तथा सत्त्वगुणके अभावको जो आत्मा सिद्धकर्ता है तिसका आभास नहीं। तैसे ही-जब अज्ञान होता है तब ज्ञान नहीं होता और जब ज्ञान होता है तब अज्ञान नहीं होता; परन्तु आत्मा तिनको सिद्ध करनेवाला; हाजिर हजूर सदा सर्वदा ही वर्तमान है तैसेही-जब शुभ संकल्प चिंतन निश्चय और शुभ अहंपन होता है, तब अशुभ संकल्प, अशुभ निश्चय, अशुभ चिंतन और अशुभ अहपन नहीं होता है। तैसे ही--जब अशुभ संकल्प, निश्चय, चिंतन, अहंपन होता ह, तब शुभ संकल्प, निश्चय, चितन. अहंपना नहीं होता,

परंतु, तिनके सिद्धकर्ता आत्माका कदाचित् भी अभाव नहीं होता, सदा हाजिर हजूर है तैसे ही--कामवृत्तिके उदय होनेसे क्रोधादिक वृत्तियोंका अभाव होता है और जब क्रोधवृत्ति उदय होती है तब कामादिक वृत्तियोंका अभाव होता है परंतु तिनके सिद्ध करनेवाले आत्माका अभाव नहीं होता। इसी रीतिसे--सर्व पदार्थोंमें जान लेना। सारांश यह कि, जब सम्यक् विचार करे तो यही सिद्ध होता है कि, घट और भूषणादिक सब कल्पित पदार्थ मृत्तिका सुवर्णादिक, अपने-अपने अधिष्ठानविषे हैं ही नहीं केवल सुवर्णादिक अधिष्ठान ही हैं परंतु यह बात अलौकिक बुद्धिके नेत्रोंसे देखी जाती है, चर्म बुद्धिरूपी नेत्रोंसे यह देखी नहीं जाती। हे मैत्रेय ! जो पदार्थ किसी कालमें होवे और किसी कालमें नहीं होवे और तैसे ही जो पदार्थ किसी देशमें होवे, किसीमें नहीं होवे तैसेही जो पदार्थ किसी वस्तुमें होवे और किसी वस्तुमें नहीं होवे, सो पदार्थ व्यभिचारी नाम मिथ्या होता है और जो सर्व देशमें सर्वकालमें होवे और जो सर्व वस्तुमें होवे सोई वस्तु अव्यभिचारी नाम सत्य होती है, जैसे--सर्प दंड माला लकीर वृक्षकी जड इत्यादिक पदार्थ आपसमें भी व्यभिचारी नाम भिन्न भिन्न हैं और रज्जुसे भी भिन्न हैं, तात्पर्य्य यह है कि सर्प प्रतीति कालमें दंडकी प्रतीति होती नहीं। जब दंडकी प्रतीति होती है तब सर्पादिकोंकी प्रतीति होती नहीं तैसे ही--जब मालाकी प्रतीति होती है तब सर्प दण्डादिकोंकी प्रतीति होती नहीं परंतु रज्जुका अभाव किसी कालमें भी नहीं बरन इदंरूप रज्जु ही सर्पादिकोंमें अनुस्यूत नाम व्यापक है। तैसे ही भूषणोंका भी आपसमें व्यभिचार नाम भेद है। क्यों कि वे आपसे भिन्न २ हैं परंतु कल्पित भूषणोंको सिद्ध करनेवाले

सुवर्णका भूषणोंमें व्यभिचार नाम अभाव नहीं, इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं इस लिये हे शिष्य ! जो कल्पित तथा अव्यभिचारी जाग्रतादिक, सत्य असत्य सर्व पदार्थोंका सिद्धकर्ता परमात्मा महाकाशसे अभिन्न घटाकाशकी न्याँई, सर्वत्र व्यभिचारी, जो प्रत्यक् आत्मवस्तु है सोई तुम्हारा स्वरूप है। जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों करके जाननेमें नहीं आता किन्तु जिस करके प्रत्यक्षादि प्रमाण सिद्ध होते हैं और प्रमाता प्रमाण, प्रमेय, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य इत्यादि त्रिपुटी जिसकी सत्तामात्रसे सिद्ध होती है, सोई चैतन्य तुम्हारा स्वरूप है, जो प्रत्यक्षादि षट् प्रमाणों करके जाननेमें आता है सो माया तत्कार्य जगत्का रूप है तुम्हारा रूप नहीं। सर्व जगत्का उपादान कारण अज्ञान तथा सुषुप्ति कालका आवृतसुख सुषुप्तिमें जिसकी सत्तासे सिद्ध होता है, तथा जाग्रतमें भी भ्रम अभ्रम वा भूल वा अभूल वा स्मरण अस्मरण रूप ज्ञान अज्ञान जिस करके सिद्ध होता है, सोई तुम्हारा स्वरूप है।

हे शिष्य ! मस्तक पर चंदन लगानेसे शीतलता होती है तथा पाँवमें अग्निका स्पर्श होनेसे वा पाँवमें कांटा लगनेसे जलन होती है, सो मस्तककी शीतलता तथा पाँवमें जलन, जिस बुद्धि उपहितचैतन्य करके एक ही कालविषे जानी जाती है, सोई निराकारसच्चिदानंद पूर्वोक्त शीतलादिक पदार्थोंके भावाभावको जाननेवाला, प्रत्यक् आत्मा तुम्हारा स्वरूप है। हे शिष्य ! यदि यह कहो कि, सर्वपदार्थोंको बुद्धि जानती है सो नहीं। क्योंकि जो बुद्धिको प्रकाशता है :सोई सर्व पदार्थोंको प्रकाशता है, किन्तु बुद्धि आदिक किसीको भी नहीं प्रकाश कर सकते। जैसे-बारियांवाले मंदिरमें छिद्रोंवाले घटमें, अँधेरीरात्रिमें दीपक धरा होवे तथा मंदिरकी बारियोंके

वा घटके छिद्रोंके अग्रभागमें स्वाभाविकही, अनेक प्रकारोंके नील पीतादिरंगवाले पदार्थ भी धरे होवें इसमें तुमको विचार करना चाहिये कि मंदिर की बारियोंके वा घटके छिद्रोंके अग्रभाग धरे जो नील पीतादि रंगवाले पदार्थ हैं, सो किस करके तिन पदार्थोंका प्रकाश होता है ? बारियोंकरके भी तिन बारियोंके अग्रभाग धरे पदार्थोंका प्रकाश नहीं होता, तथा मंदिरकी, दीवालोंसे भी तिन बारियोंके अग्रभागधरे पदार्थोंका वा मंदिरके अंतरधरे पदार्थोंका प्रकाश नहीं होता तथा मंदिरके भीतर धरे जो पलंग बर्तन आदि अनेक पदार्थ हैं; तिनसेभी बारियोंके अग्रधरे पदार्थोंका वा मंदिरका प्रकाश नहीं होता । तथा तेलका आधारभूत जोमिट्टीरूप कांचका गिलास है तिससे भी किसी पदार्थका प्रकाश नहीं होता । तथा गिलासके मध्य धरे तेलसे भी उस अपने आधारभूत परंपरा गिलासका तथा अन्य किसी पदार्थका प्रकाश नहीं होता । परंपराकरके पृथ्वीके कार्यभूत रुईकी बत्तीसे भी अपना साक्षात् वा परंपराकरके आधारभूत जो तेल गिलास तथा मंदिरादिक पदार्थोंका मंदिरकी दीवालोंका तथा बारियोंके अग्रभागमें धरे पदार्थोंका तथा मंदिर भीतर धरे अनेक पलंग आदिक पदार्थोंका किसी रीतिसे भी प्रकाश नहीं होता तथा बारियोंके अग्रभागमें धरे नील पीतादिक पदार्थोंसे किसी पदार्थका प्रकाश नहीं होता किंतु शेष रही जो चम्पेकी कलीकी नाँई अग्निरूप लाटज्योति सोई, बारियोंके अग्रधरे नील पीतादिरंगोंवाले पदार्थोंको बारियोंको, दिवालोंको- मंदिरको, भीतरके भीतर धरे पलंग आदिक पदार्थोंको, गिलासको, तेलको तथा पूर्वोक्त बत्तीको, बत्तीपर आरूढ अग्निरूपी लाट ही सर्वको प्रकाश करता है । पूर्वोक्त रीतिसे अन्य कोई पदार्थ

प्रकाश करता नहीं, लाटको अन्य लाट भी प्रकाश करता नहीं यह दृष्टांत अपरोक्ष सर्वके अनुभव सिद्ध है तैसेही यहां पंचभूतोंका कार्य जो मंदिररूप है और श्रोत्रादि इंद्रिय बारियां रूप हैं, शब्द स्पर्शादिक, श्रोत्रादिक इंद्रियोंकी विषय, बारीके अग्रभाग धरे पदार्थोंकी न्याई हैं, त्वचा दिवालरूप हैं, मांस चूना और गोरेके तुल्य हैं, पृष्ठमें दीर्घ अस्थि शहतीर तुल्य है। छोटी अस्थियां बलिया (कडी) आदिक अनेक काष्ठरूप हैं। पच्चीस प्रकृतियाँ मंदिर भीतरधरे पलंग वर्तन आदिकके समान हैं। प्राण १ श्रद्धा २ सूक्ष्म आकाश, वायु, ज्योति, अप और पृथ्वी ७ दश इंद्रिय ८, अन्न, वीर्य ११ तप, मंत्र, कर्म्म लोक लोकोंके विषय १६ ये षोडश कला हैं. वा पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंचकर्मेंद्रिय, पंचप्राण, एक अंतःकरण गिननेते उन्नीस होते हैं। इन षोडशकला प्रधान सूक्ष्म शरीर गिलास तुल्य हैं; षोडश तत्त्व हुए; मन बुद्धि दो गिननेते सत्रह हुए। चार गिननेते तिनके मध्यमें प्राण रुधिर के तुल्य हैं; काहते? जैसे शरीरमें रुधिर व्यापक है तैसे प्राण भी शरीरमें व्यापक हैं; अन्तःकरण तेल तुल्य है, बुद्धिवाती तुल्य है, मंदिरमें आकाशके तुल्य अज्ञान है, जैसे बत्ती आरूढ अग्नि ही बत्ती सहित सर्व पदार्थोंको प्रकाशता है, तैसेही बुद्धि पर आरूढ प्रत्यक् चैतन्य आत्माही बुद्धिसहित देह आदि अज्ञान पर्य्यंत सर्व जड अनात्मही पदार्थोंको प्रकाशता है; ताते बुद्धि आदि सर्व पदार्थोंके जाननेहारे साक्षी आत्माको, तुम अपना स्वरूप जानो। हे शिष्य! सुख दुःख हर्ष शोक तथा धर्माधर्मका जो ज्ञाता है, जिस करके ग्रहण और त्याग दोनों सिद्ध होते हैं तथा स्थूल सूक्ष्म, कारण, शरीर और तिन तीनों शरीरोंके धर्मोंका, जिस करके प्रकाश होता है और जिसको कोई

भी दृश्य पदार्थ प्रकाश नहीं कर सकता सो प्रत्यक् चैतन्य स्वयंज्योति तुम्हारा स्वरूप है। तात्पर्य्य यह कि बुद्धि, आकाश, काल, दिशा अतिसूक्ष्म अज्ञान आदिक सर्व अनात्म दृश्यपदार्थोंको तथा पृथ्वी, अप, तेज, वायु और तिनके कार्य्य देह पर्वतादिक अस्तिस्थूल पदार्थोंको आत्मा सम ही प्रकाशता है। जैसे हमलोगोंकी दृष्टिसे परमाणु अतींद्रिय है और देह पर्वत आदिक अतिस्थूल हैं परन्तु सूर्यकी दृष्टिसे परमाणु सूक्ष्म नहीं और देह पर्वतादिक स्थूल नहीं। काहे कि, सूर्य परमाणु आदिकपदार्थको तथा पर्वतादिक पदार्थको तुल्य ही प्रकाशता है तैस--पृथ्वी आदिक कार्य्योंकी अपेक्षा करके पृथ्वी आदि कार्य्योंके कारण अज्ञानको अनादि आदि, अतुच्छ तथा सूक्ष्मपना है, चैतन्यकी तरफसे नहीं। तू अस्ति, भाति, प्रिय, समान, चैतन्य, स्वमहिमामें स्थित हुआ अंतःकरणरूप अविद्या, मायादिक उपाधिके योगते-जीवत्व ईश्वरत्वभाव, ब्रह्मभाव, सर्व दृश्यका साक्षीभाव तथासच्चिदानंदादिक विशेष रूप करके अंतःकरणमें तथा मायामें स्फुरण होता है परन्तु समान विशेष भावमें तो चैतन्य स्वरूप सम है, उपाधि करके समान विशेष भाव है, वास्तव नहीं। जैसे रूप मात्रा, समान अग्नि, सर्व घट पटादिक पदार्थोंमें सूर्यकांत मणिमें तथा सूर्य्यमें सम हैं, परन्तु सूर्य्य और सूर्यकांत मणिके संयोगरूप उपाधिके संबंधके समान अग्नि ही दाहकता, उष्णता, प्रकाशकता, विशेष अग्निभावको प्राप्त हो जाती है, नहीं तो अग्नि निजस्वरूपसे समान विशेष भावमें सम है। तात्पर्य यह कि जो बुद्धि आदिक सर्व अनात्म दृश्य पदार्थोंकी इयत्ता नाम परिमाण करनेवाला है और जिसकी किसी बुद्धि आदिक दृश्य अनात्म पदार्थोंसे इयत्ता नाम परिमाण करा जाता नहीं, सोई तुम्हारा

स्वरूप है। काहेते ? द्रष्टासे ही दृश्यकी इयत्ता होती है, दृश्यसे द्रष्टाकी इयत्ता नहीं होती है। जैसे--चक्षु आदिक इंद्रियोंसे ही रूपादिक दृश्य पदार्थोंकी इयत्ता होती है रूपादिक दृश्य पदार्थोंसे चक्षु आदिक इंद्रिय गौण द्रष्टाकी इयत्ता नहीं होती। जो सब देश काल वस्तुमें अस्ति, भाति, प्रियस्वरूपसे, तिन देश कालादिकोंका अधिष्ठान, सर्वदा हाजिर हजूर है जो हृदयदेशविषे, मन आदिकोंका साक्षी, चैतन्य पुरुष स्थित है, जो मनके चिंतनमें नहीं आता, जो मन आदिकोंको देखनेहारा है, तिसीको तुम अपना स्वरूप ब्रह्म जानो और जो मन वाणीके चिंतन कथनमें आता है तिसको तुम अज्ञान, माया, तत्कार्य प्रपंच जानो. सो तुम्हारा स्वरूप ब्रह्म नहीं, वह संसारी मायाका स्वरूप है।

हे शिष्य ! देह आदि माया पर्य्यंत सर्व दृश्य, अनात्म पदार्थ किसी कालमें होते हैं और किसी कालमें नहीं होते तैसे ही--सर्व पदार्थ किसी देशमें होते हैं, किसी देशमें नहीं होते; तैसेही--सर्व अनात्म पदार्थ आपसमें एक दूसरेमें व्यभिचार स्वभाववाले हैं इसीसे सर्वपदार्थ मिथ्या, जड और अप्रकाश स्वरूप हैं, दुःखरूप तथा मायाके कार्य्यरूप हैं, उत्पत्ति विनाश और न्यून अधिक स्वभाववाले हैं, तथा आपसमें विरोधी अविरोधी स्वभाववाले और तुच्छरूप हैं, इसीसे मिथ्या हैं किंतु चैतन्य पूर्वोक्त सर्व पदार्थोंके स्वभावते अतीत है इसीसे सत्य है। यद्यपि पूर्वोक्त सर्व पदार्थोंका उपादानकारक माया अज्ञान अपने कार्यकी अपेक्षा करके, अनादि और अतुच्छ है तथा अव्यभिचारी है, सर्व देश काल वस्तुमें व्यापक है अतीन्द्रिय और सूक्ष्म है तथापि जबलग हृदय देशमें प्रत्यक् आत्मासे अभिन्न, ब्रह्म वस्तुका बोध नहीं हुआ

तबतक ही अज्ञान वा मायामें अनादिपना आदिक पूर्वोक्त धर्म हैं। जैसे जबतक गुफामें वा ब्रह्मांडमें दीपक वा सूर्य्य उदय नहीं हुआ तबलग ही अंधकारमें अनादिपन आदिक धर्म हैं, किन्तु जब दीपक वा सूर्य उदय हुआ तब गुफामें वा ब्रह्मांडमें अंधकार खोजनेसे भी मिलता नहीं तैसेही जब ज्ञानरूपी हृदयदेशमें सूर्य उदय हुआ तब अज्ञान वा मायाका अत्यंताभाव है । क्योंकि घटादिकोंकी न्याई अज्ञान भी आत्मामें कल्पित है और यह नियम है कि, जो कल्पित होता है सो मिथ्या होताही है इससे कार्य्यकारणरूप कल्पित प्रपंचको आत्मा चैतन्यका, सत्ता और स्फूर्ति देना समानही धर्म है न्यून अधिक नहीं। तैसे ही--कल्पित पदार्थोंमें भी स्वअधिष्ठानमें कल्पितत्व धर्म भी समानही है, न्यून अधिक नहीं अर्थात् कल्पित पदार्थोंमें कार्य कारण भाव नहीं होता स्वप्न पदार्थवत् । तातें--अज्ञानादि देहपर्य्यंत सर्वपदार्थ व्यभिचारी होनेते मिथ्या हैं और तू चैतन्य एकरस अव्यभिचारी आनन्दस्वरूप है।

हे शिष्य ! तू साक्षी चैतन्य आत्मा ही अस्ति, भाति, प्रिय, समानरूप करके समान अग्निकी न्याईं सब देशमें, सब कालमें तथा सर्व वस्तुमें हाजिर हजूर और अपरोक्ष स्थित है। यह बात विद्वान् लोक जानते हैं । अस्ति, भाति, प्रिय, समानरूप तूही अन्तःकरणनामक उपाधिके विषे सच्चिदानन्द, बुद्धि आदिकोंका साक्षीरूप करके विशेष स्फुरण होता है--परन्तु समान विशेषमें तुझ चैतन्यका भेद नहीं, जैसे-सर्वत्र व्यापक रूप मात्र समान अग्नि ही, काष्ठ मथनादि द्वारा दाहकता, उष्णता, प्रकाशता विशेष रूप करके स्थित होता है, परन्तु अग्निका समान वा विशेष स्वरूपसे भेद नहीं--तैसे--सूर्यका प्रकाश सर्वमें

एकरस व्यापक है, परन्तु वही प्रकाश सूर्यकांतमणिके संबंधसे विशेष रूपताको प्राप्त होता है । तैसेही-अस्ति, भाति, प्रियरूप सर्वत्र सामान्य चैतन्य आत्मा ही अपनी महिमामें स्थित अंतःकरणरूप अविद्या मायादिक उपाधिके योगसे जीवभाव, ईश्वरभाव, ब्रह्मभाव तथा सर्व-दृश्य प्रपंचका साक्षिभाव और सच्चिदानंद भाव इत्या-दिक विशेषरूप करके अंतःकरणमें तथा मायामें स्फुरित होता है। परन्तु समान विशेष भावोंमें सामान्य चैतन्य-स्वरूपसे सम ही है । क्योंकि, उपाधि करके समान विशेष भाव हैं वास्तव नहीं।

हे शिष्य ! तू अवाङ्मनसगोचर चैतन्य आनंदस्वरूप है, तेरे ही आनंदकी लेश लेकर सर्व प्रपंच आनंदमान हो रहा है। तात्पर्य्य यह कि, यह जो असत् जड और दुःखरूप सर्व दृश्य जगत् है सो तुझ सच्चिदानंद स्वरूप हीसे सत् चित् और आनंदरूप होरहा है, हे साधो ! जैसे अन्नके बने हुये मोदक, जलेबी आदि मधुर पदार्थ स्वयं मधुर रहित होके भी एक गुडके द्वारा ही मधुर होते हैं, आपसमें कौंचा कडाही आदि किसी अन्य साधन द्वारा मधुर नहीं होते और गुड किसी पदा-र्थसे मधुर नहीं होता, क्योंकि वह स्वरूपहीसे मधुर है तैसे ही देहादिक सर्व पदार्थ, तुझ चैतन्य आत्मा करके ही शोभायमान हो रहे हैं और तुझ दृश्यके द्रष्टा आत्माको दृश्य पदार्थ कोई भी शोभायमान नहीं कर सकते इसीसे--तुम्हारा स्वरूप प्रत्यक् आत्मा स्वयं प्रकाशरूप है, हे बुद्धिमान् शिष्य ! जैसे--पंच महाभूत अपने कार्य-रूप भौतिक पदार्थमें, लौकिक दृष्टि करके प्रविष्ट भी हैं तथा अप्रविष्ट भी हैं । जैसे--सुवर्ण अपने कार्य भूषणोंमें प्रविष्ट भी है तथा अप्रविष्ट भी है । जैसे-मृत्तिका अपने

कार्यरूप सर्वघटोंमें प्रविष्ट भी है तथा अप्रविष्ट भी है। जैसे रज्जु अपनेमें अध्यस्त सर्पादिकोंमें प्रविष्ट भी है तथा अप्रविष्ट भी है। जैसे--स्वप्नद्रष्टा अपने विवर्त स्वप्न-पदार्थोंमें प्रविष्ट भी है और अप्रविष्ट भी है ऐसे ही और भी अनेक दृष्टांत हैं, तैसे ही सर्व नामरूपात्मक जगत्का विवर्त उपादानकारण सच्चिदानंद स्वरूप तुम्हारा आत्मा भी अपनेमें कल्पित नामरूपसंबंध क्रियावान् सर्व-पदार्थोंमें प्रविष्ट और अप्रविष्ट दोनों हैं । प्रविष्ट कैसे है सो सुनो नामरूप संबंधक्रियावान् जगत्रूपभूषणोंका मिलना है ऐसा अवयव कोई नहीं जो अस्ति भाति प्रियरूप प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मात्मारूप सुवर्णसे खाली होवे तात्पर्य यह कि--तू अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा सुवर्ण है और नामरूपात्मक जगत्रूपी भूषणोंमें ऐसा व्यापक हो रहा है, मानो -नामरूपात्मक भूषणोंका स्वरूप, तुझ आत्मा सुवर्णसे जुदा कुछ है ही नहीं । मानो आत्माने उनका अंत्यताभाव कर दिया है यह बात बुद्धिमान् जानते हैं। जैसे देह, अस्ति भाति प्रिय ब्रह्मरूप सुवर्णके विना नामरूप भूषण कहीं खोजनेसे मिलते नहीं, किन्तु आत्मा-रूप सुवर्ण नाम रूप भूषणोंविषे व्यापक है; इसीलिये कहा गया है कि--अस्ति भाति प्रियरूप ब्रह्म सुवर्ण नाम रूप भूषणोंविषे प्रविष्ट है तैसेही अप्रविष्ट भी हैं क्योंकि, प्रविष्टपना एक वस्तुविषे दूसरी वस्तुका होता है किन्तु-अस्ति भाति प्रिय स्वरूप ब्रह्मरूपी सुवर्ण नामरूपात्मक भूषण पृथक् है नहीं, परन्तु अस्ति भाति प्रियस्वरूप ब्रह्म-रूपी सुवर्णका नाम रूपात्मक जगत्रूपी भूषणोंविषे प्रविष्टपना भी नहीं बन सकता; अज्ञजनोंको यद्यपि प्रविष्टपना, दोनों विरुद्ध धर्म, एक अधिकरणमें नहीं बन सकते तथापि यहां मुमुक्षुके बोधवास्ते यह सब वर्णन है।

क्योंकि नामरूप कल्पित पदार्थोंके अधिष्ठान आत्माकी तो उन कल्पित पदार्थोंमें अव्यापकताकी प्रतीति होती है और कल्पित पदार्थोंकी प्रधानता प्रतीति होती है, इसवास्ते--कल्पित पदार्थोंमें अधिष्ठानकी अनुस्यूतता असंगता; सत्यरूपता तथा मुख्य प्रतीयमानता वा प्रधानता और अद्वैतरूपताके बोधवास्ते ही यह युक्ति वर्णन की गई है। अथवा अधिष्ठानके अज्ञानसे प्रतीत होता जो नामरूपात्मक कल्पित प्रपंच है तिसकी-तुच्छ रूपता तथा अत्यंताभावरूपता बोधनके लिये या अधिष्ठानसे पृथक् अन्य पदार्थोंकी सत्ताके अभाव तथा अधिष्ठानकी प्रतीति पूर्वक ही कल्पित पदार्थोंकी प्रतीति वा अधिष्ठानकी ही प्राप्तिसे सर्व कल्पित पदार्थोंकी प्राप्ति तथा अधिष्ठानके स्फुरणसे ही सर्व कल्पित पदार्थोंकी स्फूर्ति अथवा अधिष्ठानके श्रवण मनन निदिध्यासन और साक्षात्कारसे अधिष्ठानमें कल्पितसर्व पदार्थोंका श्रवण मनन निदिध्यासन और साक्षात्कार होता है इत्यादि तत्त्व मुमुक्षुको बोध करने वास्ते ही प्रविष्ट अप्रविष्ट इत्यादि पूर्वोक्त श्रुतिका परिश्रम है वास्तवमें प्रविष्टता अप्रविष्टता आत्मामें है नहीं दृष्टांत तथा दार्ष्टांतविषे यह अर्थ सर्व विद्वानोंको अनुभव सिद्ध हैं। तातें--हे अधिकारी जानो ! जो तुम ऐसा मानते हो कि, हम आत्माको जानते हैं तो तुम नहीं जानते; काहेते ! जो जाननेमें आता है, सो दृश्य होता है तथा जड अनित्य किसीका कार्य्य मिथ्या व्यभिचारी तथा न्यूनाधिकाभाव आदि विशेषणोंवाला होता है जो तुम आग्रहसे आत्माको ज्ञानका विषय ही मानोगे तो वेदादिक सर्वशास्त्र और विद्वानोंके अनुभवसे विरोध होवेगा क्योंकि, किसी शास्त्र और विद्वानने आत्माको दृश्य नहीं माना है, अतएव

आत्मा ज्ञानका विषय है, विपरीत बुद्धि है यथार्थ नहीं। ताते यही जानो कि सर्व प्रकारसे आत्मा तुम्हारा स्वरूप अवाङ्मनसगोचर है। जो वस्तु मन आदिकों करके जाननेमें न आवे, स्वयम् अपरोक्ष होवे और मन आदि जिसके द्वारा जानेजाँय अर्थात् उलटा मनादिकोंको प्रकाशे सो वस्तु स्वयंप्रकाश स्वरूप होती है। ऐसा लक्षण इस बुद्धि आदिकोंके साक्षी आत्मामें ही घटता है अन्य दृश्य वस्तुमें नहीं घटता है।

हे शिष्य! तू चैतन्य आत्मस्वरूप, सुषुप्ति स्वप्न कालमें भी सोवता नहीं, जो तू सोजावे तो तुझको सोनेका ज्ञान कैसे होवे! इस वास्ते तेल और बत्ती विना इस देहरूप मंदिरमें तू चैतन्य दीपक, सर्वकाल अखंडज्योति है। साधुस्वभाववाले अधिकारीजनो। जैसे कोई उदासीन पुरुष अटारीके चौथे अम्बाले पर ऊंची जगहमें स्थित हो तिसके नीचे चारों ओरसे चौरस्ता चलता हो और तिन चौरस्तोंमें आप अपनी कामनाके अनुसार कोई तो जर, जोरू, जमीनके ग्रहण वास्ते अथवा मोक्षवास्ते अनेक प्रकारकी स्त्री, पुरुष, राजा, साधु, पंडित, वेश्या, हस्ती, घोड़ा, रथ, भंगी, आदि इधर उधर जाते, आते हों, तथा शांतिमान्, अशांतिमान्, क्रोधी, आलसी, अभिमानी, दंभी अर्थात् अशुभ गुणवान् और शुभगुणवान् स्त्री, पुरुष जाते आते हों तथा अनेक विधिके नाटक करनेवाले जाते आते हों तथा बाजा बजानेवाले चले जाते आते हों। सारांश यह है कि, राजसी, तामसी, सात्त्विकी पदार्थों सहित पुरुष और स्त्री इधर उधर जाते आते हों तथा अनेक विधिके इंद्रजालिक लोक अपने गुण दोषों सहित आते जाते हों तथा उन्हीं रस्तोंमें अनेक शुद्ध अशुद्ध आदिक दोषवाले पदार्थ भी पडे हों अनेक विधिके विवाद

भी होते रहते हों, परंतु-तिन गुण दोष सहित स्त्री पुरुषादिक पदार्थोंका शुद्धि अशुद्धि सहित रस्तोंका नित्य स्थित ऊंचे मंदिरके गुण दोषोंका रस्तोंके भी गुण दोषोंका ऊंचे स्थित द्रष्टा पुरुषकूं स्पर्श भी नहीं होता। तैसेही--अन्य देहोंकी दृष्टिसे यह पांचभौतिक मनुष्यशरीर, ऊंचे मंदिर स्थानापन्न समझो, पंच ज्ञानेन्द्रियों और पंच कर्मेन्द्रियोंके छिद्र रस्तोंके समान हैं, वा ज्ञानेन्द्रियोंके विषय-शब्द, स्पर्श, रूप रस, गंध और कर्मेन्द्रियोंके विषय शब्द उच्चारण, ग्रहण, त्याग, गमनागमन, मलमूत्रका त्याग इत्यादि तथा मनादिकोंके विषय रस्तोंके समान हैं वा सात्विकी, राजसी, तामसी स्वभावके लियेही सर्व देह-इंद्रियमनादिकोंकी प्रवृत्ति निवृत्ति होती है इसलिये--सत्त्व रज तमगुणही रस्ता (मार्ग) के समान है देहरूप मंदिर के पंचभूतोंको चूना पत्थरकी न्याईं जानो, माया वा अज्ञानको भूमिरूप जानो तथा समष्टि स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरके अभिमानी जो विराट् हिरण्यगर्भ ईश्वर वा स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरोंके अभिमानी जो विश्व, तैजस, प्राज्ञ हैं वही मंदिरके अभिमानी जो पुरुषोंके समान हैं। समष्टि वा व्यष्टि स्फुरणात्मक आप अपने २ मतोंके अनुसार जीवकी वा ईश्वरकी फुरणाही मंदिरके बनानेवाले चतारे (राज) के समान है तथा दश इंद्रिय, प्राण, अपान समान, उदान, व्यान ये पञ्चप्राण और, नाग कूर्म कृकल, देवदत्त, धनंजय ये पञ्च उपप्राण; चतुष्टय अंतःकरण तथा पचीस वा एकसौ पचीस वा सत्ताईस २७ जो प्रकृति हैं; वही भिन्न भिन्न आने जानेवाले लोगोंके समान हैं, चक्षु-आदिक इंद्रियोंकी तथा चक्षु आदिक इंद्रियोंके सूर्य्यादिक देवताओंकी जो अपने २ विषयोंमें स्वतंत्रप्रवृत्ति और निवृत्ति है, वही आप अपनी कामनाके समान हैं। सुख

दुःख, हर्ष शोक, मान अपमान, बंध मोक्षादिक पदार्थको ही सांसारिक पदार्थ (जर जोरू जमीन) के समान जानना। तथा पुण्य पाप रस्तोंकी शुद्धि अशुद्धिके तुल्य है, तथा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्तिकी अपेक्षा जो तुरीय नाम चतुर्थी अवस्था है सो चौथे अंबालके समान जाननी, पूर्वोक्त सर्व दृश्यके न्यून अधिक भावको जाननेवाला, तथा पूर्वोक्त सर्व पदार्थोंके भावाभावको तथा तिनके सर्व धर्मोंको जाननेवाला जो ' सच्चिदानंद, साक्षी, स्वप्रकाश, निर्विकार, निर्विकल्प, आत्मा है सोई उदासीन पुरुषकी न्याईं स्थित तेरा स्वरूप है अर्थात् सो तूही " है। हे शिष्य ! तू चैतन्य आत्मा सर्व पदार्थोंमें स्थित भी निर्विकार स्थित है। जैसे आकाश कज्जलकी कोठडीमें स्थित भी निर्विकार और अचल स्थित है।

हे शिष्य ! जैसे आकाशमें सप्तऋषियोंसे आदि लेके सर्व चंद्र, सूर्यादिक नक्षत्र, तारामंडलका चक्र दिन रात फिरता रहता है. क्योंकि रात्रिके आदिकालमें, जिस स्थानमें जो नक्षत्र देखनेमें आते हैं, रात्रिके मध्यमें अन्य स्थानमें तथा रात्रिके अंत भागमें वही नक्षत्र अन्य स्थानमें देखनेमें आते हैं इससे जाना जाता है कि तारोंका चक्र फिरता रहता है, परन्तु ध्रुव तारा अचल एकरस रहता है, जो अन्य ताराओंकी न्याईं ध्रुव भी चल होवे तो तिसका नाम ध्रुव नहीं किन्तु अध्रुव है। तैसे--माया वा अज्ञानरूप आकाशमें नक्षत्र ताराके समान देहादिक पदार्थोंका चक्र निरंतर फिरता रहता है । कैसे ? सो सुनो--जैसे अनेक बार जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्था होती हैं, पुनः मिट जाती हैं, पुनः होती हैं, पुनः मिट जाती हैं, तैसे ही बालक युवा वृद्ध अवस्था अनेक शरीरोंमें अनेक बार प्राप्त हुई तथा मिट गई। तैसे ही कभी भविष्यत्

काल वर्तमान काल हो जाता है वही वर्तमानकाल भूतकाल हो जाता है और पुनः पुनः भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल होता रहता है, तैसे ही सत्वादिक गुणोंका भी अदल बदल होता रहता है। जो जाग्रदादिक अवस्था के अदल बदलसे जाग्रदादिक अवस्थाके अंतर्भूत स्थूल, सूक्ष्म, कारणशरीर तथा तिनके अभिमानी विश्व, तैजस, प्राज्ञ तैसे ही पंचकोशोंका भी अदल बदल जान लेना। तैसे ही वैखरी मध्यमा पश्यन्ती परा नाम वाणी का, तैसे ही ग्रहण, त्याग, दिन, रात; ज्ञान अज्ञान, काम क्रोध, लोभ, मोह, शांति आदिकोंका अदल बदल जानलेना। तात्पर्य यह कि कभी दैवी गुण, कभी आसुरी गुणोंका चक्र निरंतर फिरता रहता है, कभी संयोग कभी वियोग हो जाता है, संयोग का वियोग हो जाता है, वियोगका संयोग हो जाता है। तैसेही--मन चित्त, अहंकारका चक्र भी फिरता रहता है इसीसे पूर्वोक्त सर्व चक्र मिथ्या हैं, परन्तु जिस करके पूर्वोक्त सर्व चक्र फिरते सिद्ध होते हैं वा अदल बदल होते सिद्ध होते हैं "सोई चैतन्य निर्विकार, निर्विकल्प अचल, असंग, तुम्हारा स्वरूप है" जो प्रत्यक् आत्मा भी पूर्वोक्त चक्रवत् चलायमान होगा तो अनित्य हो जावेगा।

इति पक्षपातरहितानुभवप्रकाशस्य प्रथम. सर्गः ।। १ ।।

द्वितीय सर्ग २.

हेमैत्रेय ! इसी प्रसंग ऊपर एक इतिहास कहता हूँ सो अमृत समान है, जब बुद्धिरूपी श्रोत्रसे श्रवण करेगा और विचाररूपी पात्रसे पीवेगा, तब तू अमृतभावको प्राप्त होवेगा पर ऐसा न हो कि, एक कानसे सुने और दूसरे कानसे निकाल देवे, इससे प्रयोजन तेता सिद्ध न होगा।

अथ ध्रुवाख्यान

स्वायंभुव मनुके कुलमें, उत्तानपाद और प्रियव्रत नाम दो भाई चक्रवर्ती राजा हुए । उत्तानपादकी दो स्त्रियां थीं, एकका नाम सुरुचि और दूसरीका नाम सुनीति था, जिनमेंसे सुरुचि राजाको अत्यन्त प्यारी थी, पहली स्त्री सुनीतिसे ध्रुवनाम पुत्र हुआ वह पिताका अति प्रियथा, एक दिन जब कि राजा सिंहासनपर बैठा था तब ध्रुव आकर राजाकी गोदमें बैठ गया, तिस कालमें सुरुचि भी राजाके पास बैठी थीं । सुरुचिके मनमें यह बात सहन न हुई क्रोधसे ध्रुवसे बोली-- अरे ! तू राजाकी गोदसे निकल जा नहीं तो तेरे प्राण चले जायँगे, जो तेरी इच्छा राजाकी गोदमें बैठनेकी थी तो मेरे उदर विषे आकर जन्म लेता । जब ध्रुव इतने कहनेसे भी गोदसे न उतरा तब तो बहुत क्रोधमें आके सुरुचिने एक हाथसे ध्रुवके मुखपर ऐसी चपेट मारी कि ध्रुव मूर्च्छा खाकर धरतीपर गिर पडा । सचेत होनेके पीछे बहुत रुदन करता करता अपनी माताके पास आया ध्रुवको व्याकुल देखके माता बोली कि हे पुत्र ! किस कारण व्याकुल हुआ है ? तब ध्रुवने सब हाल कह सुनाया तब माताने कहा हे पुत्र ! सुरुचिने सत्य कहा है क्योंकि, जब तेरे जन्मके ग्रह नीच थे, तभी मेरे उदरविषे आया, नहीं तो उसीके उदरविषे आता । सुन ! अब क्रोध किये क्या होता है ? हे पुत्र ! राज्य और यश आदि ऐश्वर्य तिसीको प्राप्त होता है जो तप करता है. ताते राज्यादिक पदार्थोंके भोगने की जो तेरो इच्छा होवे; तो गोविंदका भजन कर जो पूर्णकाम होवे। जो तू पूछे कि भजन कैसे करूं ! तो सुन "अपने आत्मा सहित सर्व पदार्थोंको गोविंदस्वरूप जान" ।

इस प्रकार माताका वचन सुनके ध्रुव वनको चला। आगे सप्तऋषि ब्रह्माके पुत्र बैठे थे, तिनको देखकर ध्रुवने नमस्कार किया और उन्होंने जब पूछा तो अपना वृत्तांत सब कह सुनाया और प्रश्न किया हे भगवन् ! मुझको गोविंदके भजनका उपदेश करो। ऋषियोंने कहा कि अरे ध्रुव ! अभी तू बालक है और इसी कारण तुझको वैराग्य हुआ है, शीतोष्णादि द्वन्द्व तैंने अभी सहन नहीं किया है और संसारका सुख भी तूने भोगा नहीं इससे तू उपदेशके योग्य नहीं है। तब ध्रुवने आग्रहसे कहा कि जो आप मुझको उपदेश नहीं करोगे तो मैं प्राणोंका त्याग करूंगा। तब ऋषियोंने दृढ निश्चय देखके आश्चर्य माना और मनहीमनमें कहने लगे यह ध्रुव नारायणको जरूर मिलेगा। ऋषि बोले कि ध्रुव ! तेरा क्या प्रयोजन है ? तब ध्रुवने कहा कि, भगवन् ! मैं मातापितासहित ऐसी पदवीको पाऊं जहां आगे कोई मनुष्य न पहुँचा हो। तब ऋषि बोले ध्रुव ! जो तू आपा त्यागकर गोविंदकी शरण प्राप्त होवे तो तेरी वांछा पूर्ण होवे। अत्रिने कहा हे ध्रुव ! जो सर्व दृश्यते अतीत है तथा सर्वमें व्यापक है तिसको अपने मनबिषे ऐसा जान कि, सर्व वही है। इसे निश्चय करके ही तू वांछित पद पावेगा। पुनः अन्य ऋषियोंने कहा--हे ध्रुव ! सर्व जगत् जिसकी शरणागत है तिसीको तू एकाग्रचित्त करके स्मरण कर, जिससे परमपद पावे। हे ध्रुव! सर्व कामनाते रहित होकर 'सर्वजगत् विष्णुमय जान'' जो संसारसे निराश होकर प्रेमसयुंक्त निष्काम होकर तिस जनार्दनका ध्यान करता है सो मनवांछित फलको पाता है। तिससे तू भी जगत्की दृष्टि उठाकर, जो सगुण वा निर्गुण जनार्दनमें मनको जोड़ेगा तो तेरा कार्य सिद्ध होवेगा।

इस प्रकार मुनियोंने अनेक प्रकारके उपदेश सहित मंत्र भी उपदेश किया, सो मंत्र यह है ॐ " नमो नारायणाय" । अब ध्रुव दृढ निश्चयको धारकर, तपका, आरम्भ करने लगा, जब ध्रुवका सब हाल उसके पिता राजाने सुना तब अपना एक अनुचर भेजा और उसके द्वारा कहवाया कि, हे ध्रुव ! तू चतुर्थांश राज्य ले और इस निश्चयका त्याग कर । परंतु ध्रुवने नहीं माना । पुनः कहा कि, अर्ध राज्य ले और इस प्रणको त्याग कर, तबभी ध्रुवने नहीं माना । पुनः कहा कि; सर्व राज्य ले, तब भी नहीं माना, बरन् अपने मनमें विचारने लगा कि, देखो एक पाँव संसारसे निराश होकर हरिकी तरफ रखनेसे मुझे अब सर्व राज्य मिलता है तो जो मैं सम्यक् हरिका चिंतन करूंगा तो अवश्य ही अनंत फल पाऊंगा, इसीवास्ते अत्यंत दृढ निश्चय धरकर कठिन तप करने लगा । यहांतक कि एक अंगुष्ठके ऊपर सर्व शरीरका भार रख दिया। तब यह सर्व हकीकत इंद्रादिदेवता सुनकर आश्चर्यवान् हुए और भयको भी प्राप्त हुए कि यह बालक हमारा स्वर्ग छीन लेगा । तब इंद्रादिक देवताओंने अनेक प्रकारसे ध्रुवके तपको नष्ट करनेके वास्ते राक्षस, अग्नि, वायु, अप्सरा, कामदेव आदि अनेक विघ्न भेजे, परंतु ध्रुव उनके विघ्नोंसे चलायमान न हुआ क्योंकि तिस कालमें ध्रुव अपने बीच न था, यह जानता कि, गुप्त और प्रगट सर्वत्र एक नारायण ही है। जब सर्व नारायण है तो भय किससे होवे ! भय दूसरे से होता है--जैसे जहाँ सर्व अग्नि हीअग्निहो, दूसरी काष्ठादि वस्तु न होवे, तब अग्नि किसको जलावे, अग्निको तो दाह करताही नहीं, तैसेही-जहां सर्व वायु ही है दूसरी वस्तु नहीं, तो वायु किसको शोषण करे ? तैसेही--जहां जलही जल है अन्य वस्तु नहीं,

तो जल किसको गाले ? जल जलको गाल ही नहीं सकता-ताते महात्मा ध्रुव सूक्ष्म और स्थूल परिच्छिन्न अहंकारको त्यागकर "अपने सहित सर्व नारायण है" इसी दृढ भावनाके कारण "अग्नि आदि सर्वजगत् नारायणही है" ऐसा देखने लगा अब उसको भय, मोह कहांसे होवे, पुनः उसी समयमें ध्रुवकी माता भी आकर बहुत विलाप करके कहने लगी--हे पुत्र ! मैंने सारे संसारमें एक तुझीको पाया है तू इस कठिन तपको छोड और मुझको सुख दे, क्यों अपना देह सुखाता है ? इस प्रकार अनेक प्रकारका माताका शब्द सुनकर भी मोहको न प्राप्त हुआ। पुनः राक्षसादि क्या देखते है कि ध्रुव नहीं, मानो भगवान् विष्णु बैठा है। विष्णुको देखकर उलटा राक्षसादि भयको प्राप्त हुए तिसके पश्चात इंद्रादि देवता विष्णुके पास जाके ध्रुवका सब हाल तथा अपना वृत्तांत भी कहते भये। तब विष्णुने यह बात सुनकर देवताओंको तो बिदा किया और स्वयं देवताओंकी प्रेरणा तथा ध्रुवकी ध्यानरूपी डोरीसे भी खिंचे हुए, जहां ध्रुव तप करता था तहां आये वहां देखा कि, ध्रुव नहीं साक्षात् नारायण बैठा है। इस प्रकार ध्यानकी प्रबलताको देखके विष्णुने प्रसन्न होकर कहा कि, हे पुत्र ! तू धन्य है जो दृश्यमान पदार्थोंसे दृष्टि उठाके मुझमें मनको जोडा है इस हेतु जो तेरी इच्छा हो सो वर मांग। यह बात सुनकर ध्रुवने नेत्र खोला और देखा कि, मैं भीतर जिसका ध्यान करता हूँ वही रूप बाहर खडा है। देखते ही रोमांच खडे होगये, प्रेम करके मतवालासा होगया, मन करके प्रभुके शरण पडा और प्रार्थना करने लगा. हे प्रभु ! मैं बालक हूँ, कुछ वेदपुराण पढा नहीं हूँ, कैसे तुम्हारी स्तुति करूँ ! पर स्तुति आपकी यही है जो मैं ध्रुव नहीं आप ही हो। हे

भगवन् ! आप ही सर्व जगत्के अधिष्ठान हो, आवागमन का आप विषे मार्ग नहीं, आप व्यापक सर्वके अंतर्यामी हो, योगियोंके ध्यानविषे आप विराजमान रहते हो, भ्रम करके हे भगवन्! मैं मूर्ख आपको बाहर खोजता था, ऐसे नहीं जानता था कि, आप मनमें ही छिपे हुए हो । द्वैताद्वैत सर्व आप हो, आप हो सर्व जगत्की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाले हो, परंतु निर्विकार हो। यह बहुत आनंद हुआ है कि आप योगियोंको दुर्लभ होके भी मेरे नेत्रोंके सन्मुख हुए हो ।

इस प्रकार ध्रुवकी स्तुति सुनकर विष्णुने कहा हे ध्रुव ! जो तेरी इच्छा हो सो वर मांग । ध्रुवने कहा--आदि अंत आपही हो आप अंतर्यामी सब हाल जानते हो, तथापि हे भगवन् ! मुझको माता पिता संयुक्त, ऐसा ठौर देओ जो सबसे ऊंची पदवी होवे और जहां जाके फिर कल्प पर्यंत गिरूं नहीं । विष्णुने कहा--तथास्तु । हे ध्रुव ! तुझको देह त्यागके अनंतर वह अटल पदवी मिलेगी जो यावत् चन्द्र सूर्य गतिमान् हैं तावत् स्थिर रहेगी । वरदान पानेपर एक बेर तो ध्रुवको कुछ अहंकार हुआ कि, मैं सबसे ऊंचा हूँ परन्तु उसी समय तपके प्रतापसे तथा प्रभुके दर्शनके प्रतापसे निरहंकार और शुद्ध हुआ है अंतःकरण जिसका ऐसा जो ध्रुव सो प्रभुके आगे प्रश्न करने लगा । हे स्वामी ! मैं कौन हूँ अटल पदवी लेनेवाला आप कौन हो अटल पदवी देनेवाले और अटल पदवीका क्या स्वरूप है तथा जगत्का क्या रूप है हे यथार्थवक्ता ! यथार्थ कहो कि, मैं कौन हूँ यह मेरा संन्देह दूर करो। विष्णुने कहा हे ध्रुव ! तुझको इन बातोंसे क्या प्रयोजन है इस प्रश्नके उत्तर देनेसे न तू रहता है न मैं, रहता हूँ न यह जगत् रह सकता है न अटल पदवी रहती है, तिससे

यह बात मत पूछ। अन्य प्रसंग पूछ। तब ध्रुवने कहा जो हो सो हो पर प्रश्नका उत्तर मुझको यथार्थ कहो। तब विष्णुने कहा कि, हे ध्रुव ! वास्तवते; न तू, न मैं, न जगत्, यह सब भ्रम मात्र है सत्य नहीं, सत्य एक अवाङ्मनसगोचर तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का जो साक्षी स्वरूप है-सोई है, तिसते व्यतिरेक वाणीका विलासमात्र है जैसे-रज्जुमें मिथ्या रज्जुसे भिन्न सर्पादिक, वाणीके विलास मात्र हैं । इसी कारणसे हे ध्रुव ! मैं अद्वैत हूँ। तब ध्रुवने कहा--मेरी कामना पूर्ण न हुई, व्यर्थही भ्रमकर यह निश्चय कियाहै कि विष्णुने मुझको अटलपदवी दीहै। जैसे-स्वप्नद्रष्टामें कल्पितजो स्वप्नकेनर तिनको स्वप्न द्रष्टा अटल पदवी देवे और स्वप्ननर अटलपदवी लेवे सो भ्रम मात्र है। विष्णुने कहा हे ध्रुव ! अटल पदवीको मत त्याग। काहेते ? ज्ञानीको जैसे पदार्थ प्रारब्ध करके प्राप्त होवें तिन्हींसे प्रसन्न रहता है। ध्रुवने कहा, जो सर्व तूही है तो फिर ज्ञानी अज्ञानी जुदे कहां हैं, पर कहो मेरा स्वरूप क्या है ? विष्णुने कहा बडा आश्चर्य्य है, जो स्वप्ननर स्वप्नद्रष्टासे कहै कि, हे स्वप्नद्रष्टा मेरा स्वरूप क्या है--जैसे सर्प रज्जुसे पूछे मेरा रूप क्या है--जैसे भूषण सुवर्णसे पूछे मेरा स्वरूप क्या है ? पर स्वप्नके नर भूषण सर्पादिक जानते नहीं (जड होनेते) कि. हम सर्वथा स्वप्न द्रष्टादिक रूप हैं. हे वह ? यदि स्वप्नके नरादिक ऊंची भुजा करके पुकारें कि, हम स्वप्नद्रष्टारूप नहीं किन्तु-स्वप्नद्रष्टाते भिन्न हैं स्वतंत्र हमारी सत्ता है, तो यह बात तिनकी सुनके विद्वान् लोग हँसेंगे और कहेंगे कि, ये वृथा प्रलाप करते हैं। जैसे कल्पित नाम रूप कहैं, कि अस्ति, भाति प्रियरूप जो अधिष्ठान सो रूप हम नहीं सो तिनका कहना हाँसीका आस्पद है। हे ध्रुव ! तैसे तू

मुझसे पूछता है मैं कौन हूँ यह भी हास्यका विषय है। हे ध्रुव ! अहंभाव त्वंभावका मुझमें मार्ग नहीं, केवल स्वयंप्रकाशस्वरूप अद्वितीय मैं हूँ। ध्रुवने कहा, तब तो मैंने व्यर्थ देहको कष्ट दिया है, काहेसे कि, जब आप अद्वितीय हो, तो मैं नहीं हूँ, जब मैं हीं नहीं, तब अटलपदवीसे, आपसे भजनसे तथा इस लोक परलोकसे क्या प्रयोजन है ? विष्णुने कहा, हे ध्रुव ! बालकोंकी न्याईं विलाप मतकर, अविद्या करके जो काम हुआ सो हुआ सो हुआ इसका क्या पश्चात्ताप है, जो तैंने किया है सो अपनी वासना करके ही किया है, मैंने तेरेको कछु दिया नहीं । ध्रुवने कहा आश्चर्य है मुझ मूर्ख ज्ञाननेत्रोंसे अंधेको अंधे कूपमें आपने डाला, क्योंकि, आपचैतन्यसे पृथक् यह अटलपदवीसहित संपूर्णजगत् अंधकूपरूप है, तथा मिथ्या है ताते हे प्रभु ! अब सोई उपाय कहो जिससे इस अंधकूपते निकसें । विष्णुने कहा-उपाय निकसनेका यही है कि, अपने सहित तथा अटलपदवीसहित सर्वजगत्कोगोविंद जान और पश्चात्तापका-त्यागकर । हे ध्रुव ! जबतक निद्रा दूर नहीं होती तब-तक स्वप्नरको स्वप्नके स्थानोंमें कहीं न कहीं यात्रा कर-नीही होगी और स्वप्नके स्थानोंमें बुद्धिमानोंको न्यूनाधिक भाव है नहीं। हे ध्रुव ! "सर्वशरीर सहित स्वप्न जगत् मिथ्या है और स्वप्नद्रष्टा ही सत्य है" यह जानना ही संसाररूपी अन्धकूपसे निकलना है। तब ध्रुवने कहा--कुछ चिंता नहीं जब सर्व गोविंद है तो पश्चात्ताप भी गोविंद है और न पश्चात्ताप भी गोविंद है । विष्णुने कहा अब हम जाते हैं तुम्हारा कल्याण हो और सन्त तुझको मिलेंगे। ऐसे कहकर विष्णु अंतर्धान हुए और ध्रुव किसी वनमें विचरने लगा। ध्रुव अपने मनमें विचार करने लगा

कि. संत अचाह होते हैं, मुझ सचाहको संत कैसे मिलेंगे, सचाह पुरुषसे वृक्षभी भय पाते हैं ताते मैं सचाहसे अचाह होऊँ, तब संतसंग हो पुनः यही निश्चय किया कि, सर्व नारायण है, जब सर्व नारायण है तो लोक परलोकसे क्या प्रयोजन है ?

हे मैत्रय ! ध्रुव ऐसाही विचार कर रहा था कि, वामदेवादि संत आगये । कैसे संत थे कि देह अभिमान रूपी पहरावेंते नग्न थे और यही कहते थे कि हम अवाङ्मनसगोचरभी सर्वरूप हैं तथा सर्वरूप हुए भी हम द्रष्टा असर्वरूप हैं जैसे स्वप्नद्रष्टा प्रपंचसे अवाङ्मनसगोचर हुआ भी स्वप्नमें सर्वरूप है तथा सर्वरूप होकर भी असर्वरूप है-और सर्वभोक्ता भी हम अभोक्ता है। अभोक्ता भी हम भोक्ता हैं, विकल्पसहित भी हम निर्विकल्प हैं । नीच, ऊँच, ग्रहण, त्यागादिक सर्वरूप हमही हैं । यह संपूर्ण नामरूप प्रपंच हमारे स्वरूपभूत सूर्य, तथा लाल किरणोंकी दमका हैं । सविकार सहित, स्वमाया कर प्रतीत होते भी हम निर्विकार हैं, चलते भी हम अचलते हैं और अचलते भी हम चलते हैं । उपाधिद्वारा करते भी हम अकरते हैं, अकर्ता भी हम कर्ता हैं । निद्रा सहित भी निद्रा रहित हैं निद्रा रहित भी सनिद्र हैं । इस रीतिसे परस्पर सर्व पदार्थोंको उलट पलट कर लेना; शरीरसहित भी अशरीर हैं, माया अविद्या सहित भी माया अविद्या रहित हैं, निर्गुणरूप हुए भी हम स्वमायाकर सगुणरूप हैं, मन वाणीके अविषय हुए भी सर्व मन वाणीके विषयरूप भी हमही हैं, अरूप भी सरूप हैं, अरस भी हम सरस हैं, अशब्दभी सशब्दरूप हैं, अस्पर्श भी सस्पर्शरूप हैं. सस्पर्श भी अस्पर्शरूप हैं, सगंध भी निर्गंधरूप हैं, निर्गंध भी सगंधरूप हैं जैसे स्वप्नद्रष्टा निद्रा कर स्वप्नमें सर्वरूप प्रतीत

होता हुआ भी, वास्तवते शुद्ध, निर्विकार, निर्विकल्प अद्वितीय, असर्वरूप है, पंचकोशोंते रहित भी हम चैतन्य पंचकोशरूप हैं, अपंचकोश हुए भी पंचकोशरूप हैं, षड्भावविकारोंते रहित भी हम चैतन्य षड्भावविकाररूप हैं, षड्भाव विकार हुए भी षड्भाव विकारोंते हैं।

सत रज, तम गुणोंते तथा तीन गुणोंके कार्य जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर तथा इंद्रिय तथा मन बुद्धि, चित्त अहंकार तथा प्राण और प्रकृतियोंते असंगी भी संगी है तथा संगी भी असंगी हैं। तात्पर्य यह कि सर्वनामरूप स्वरूप भी हम नाम रूपते रहित हैं और सर्वनामरूपते रहित भी हम चैतयन्नामरूप स्वरूप हैं। सर्व शब्द, स्पर्श, रूप रस गन्ध, तथा पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश, अहंकार, महत्तत्त्व ही तथा प्रकृतिरूप भी हम चैतन्य ही हैं और इनते रहित भी हमही चैतन्य हैं। काम क्रोधादिरूप भी हमही स्वप्न द्रष्टारूप हैं, तथा तिनते रहित तिनका साक्षीरूप भी हमही हैं अमानित्वादिक दैवी गुण तथा दम्भादिक आसुरी गुणरूप भी हमही हैं तथा तिनते रहित तिनका साक्षीरूप असंगी हमही चैतन्य हैं। ज्ञान, अज्ञान, शुभ, अशुभादि सर्व द्वन्द्वरूप स्वप्न भी हमही हैं, तथा तिनते रहित तिनका द्रष्टारूप भी हमही स्वप्नद्रष्टा हैं, स्वप्नमें ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि मूर्तिरूप हुए भी, हम स्वप्नद्रष्टा असंग, निर्विकार, तिनके प्रकाशक, चैतन्य, साक्षीभूत हैं। षड्ऊर्मी रूप भी हम षड्ऊर्मी रहित हैं।

जीव ईश्वर रूप भी, हम चैतन्य, जीव ईश्वर भावते रहित हैं आत्मानात्मा भेद सहित भी हम चैतन्य, तिस भेदसे रहित हैं। कायिक, वाचिक, मानसिक, सर्व चेष्टा करते भी हम चैतन्य अकर्ता हैं। फुरणारूप भी हम चैतन्य

वास्तवते अस्फुरणरूप हैं। माया कर महाकर्ता, महाभोक्ता, महात्यागी, हम चैतन्य आत्मा, वास्तवसे अकर्ता, अभोक्ता, अत्यागी हैं। सर्व देश, काल; वस्तुरूप भी हम पूर्ण चैतन्य आत्मा वास्तवते, देश काल वस्तुते तथा तिनके भेदते रहित हैं। धर्माधर्मरूप भी हम चैतन्य वास्तवते धर्माधर्मते रहित हैं। सुखदुःखरूप भी, हम अनंतात्मा वास्तवते सुखदुःखते रहित हैं। माया अविद्यामें हम चैतन्य सूर्यका वा आकाशका आभास पड़ता है तिसीको जीव ईश्वर कहते हैं और तिन आभासोंमेंही सर्वज्ञतादिकधर्म हैं समुद्र तथा तलावडीमें सूर्य वा आकाशके आभासवत् जैसे-सूर्य वा आकाशरूप बिम्ब समुद्र वा तलावडीके आभास सहित तिनकी सर्व चेष्टाते निर्लेप असंग शुद्ध निर्विकार है--तैसे हम बिम्बमूर्त चैतन्य माया अविद्या सहित जीव ईश्वर आभासोंकी सब चेष्टाते रहित निर्विकार निर्विकल्प हैं, हम चैतन्य ही इस नाम रूप जगत् की स्वमायाकर उत्पत्ति पालन संहार करते हुए भी वास्तवते निर्विकार हैं--स्वप्नद्रष्टावत्। हम नित्य सुख चिद्रूपही सर्व जगत् कर पूज्य हैं। जैसे-- स्वप्न जगत्कर स्वप्न द्रष्टाही पूज्य होता है।

हम चैतन्यही इस मन आदिक जड जगत्की चेष्टा कराते हैं जैसे तंत्री पुरुष जड पुतलियोंकी चेष्टा कराते हैं। हम चैतन्य आधार रहित भी सर्वके आधार हैं। हम चैतन्यही सर्व मन आदिक नामरूप जगत्के प्रकाशक द्रष्टा अधिष्ठान हैं। हम चैतन्यका प्रकाशक द्रष्टा अधिष्ठान अन्य नहीं। इसीसे हम चैतन्य स्वयंप्रकाश रूप हैं। भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों कालोंके तथा तीनों कालोंमें वर्तनेवाले पदार्थोंके हम चैतन्य ही सिद्धकर्ता हैं, हमारा कोई सिद्धकर्ता नहीं। हमारे चैतन्य स्वरूपमें ज्ञान अज्ञान

नहीं। जैसे-- सूर्यमें दिन रात नहीं उलटा सूर्यकर ही दिन-रात्रिकी सिद्धि होती है तैसे ज्ञान अज्ञानकी हम चैतन्य-कर ही सिद्धि होती है। सुख दुःखादिकों के साक्षी हम चैतन्य आत्माको सुख दुःखकी प्राप्ति निवृत्ति वास्ते किंचित् मात्र भी कर्तव्य नहीं। जैसे--दो पुरुषोंके झगड़ेमें साक्षी पुरुषको तिनकी हानिलाभमें किंचित् भी कर्तव्य नहीं। काहेते ? अकर्तव्यमें कर्तव्यबुद्धि ही भ्रांति है।

भ्रांतिकी निवृत्ति करने वास्ते वेदांतशास्त्रका विचार-रूप चिंतन ही मुख्य साधन है अन्य जप, तपादि साधन नहीं। जैसे-- अंधकारके दूर करनेका साधन, केवल दीपकका चसाना (जगाना) है अन्य नहीं। प्रारब्ध करके प्राप्त हुआ जो सुख दुःख तथा सुख दुःखके साधन स्त्री पुत्र इष्ट पदार्थ तथा ज्वरादिक अनिष्ट पदार्थ हैं तिनको अनुभव करते हुए भी हम चैतन्य सम हैं इसी समता-रूप पुष्पोंकर नित्य निजात्मा देवका यत्न बिना पूजन होता है। अपने स्वरूपका सम्यक् अपरोक्ष जानना रूप पुष्पों-कर ही सम्यक् देवका पूजन होता है। अथवा शम, दमा-दिक दैवी गुणही आत्मदेवकी प्रसन्नता वास्ते पुष्प हैं जन्मना, मरना, हर्ष, शोक पुण्य, पाप, स्वर्ग, नरक, बन्धन मोक्ष, श्रवण, मनन, निदिध्यासनादि सर्व देवके आगे पुष्प हैं। हेयोपादेय बुद्धिरहित, प्रारब्ध वेगकर जो प्राप्त होवे सोई आत्मा देवको भोग लगावे तथा आपा परि-च्छिन्न अहंकारको देवके आगे अर्पण करना यही देवकी पूजा है। मानो हम चैतन्य मनके पास बैठे हुए निरंतर मनरूप पुजारीकी पूजाके द्रष्टा हैं तथा मनरूप पुजारीके भी द्रष्टा हैं।

हे संतो ! पूर्वोक्त जितना विचार कथन चिंतन करा है. सो सर्व मायारूप मनका धर्म है, हम चैतन्य इस कथन

चिंतनसे रहित हैं, देहरूप घटका ही गमनागमन है, टूटना फूटना है तथा घटमें जलका शुद्ध मलिनपना है, स्थिर-चलनपना है, वास्तवते जलमें प्रतिबिम्बका भी नहीं है, तो मुझ घटाकाशरूप असंग चैतन्य बिंबका, पूर्वोक्त कोई भी धर्म कैसे होगा अर्थात् नहीं है, ताते हमारी हमको नमस्कार है, हमकोही सर्व दृश्य नमस्कार करता है, हमारी ही जय है ! जैसे--स्वप्नद्रष्टाको ही स्वप्नसृष्टि नमस्कार करती है, स्वप्नद्रष्टा विना स्वप्नसृष्टि सिद्ध ही नहीं होती, यही नमस्कार है, तद्वत् इस मिथ्या नाम रूप प्रपंचके हमही पूज्य हैं इस पंचभूतरूप संघात देवलमें हम साक्षी चैतन्य ही लिंगरहित शिवलिंग हैं। कर्म, उपासना, ज्ञान इन तीनों कांडोंकर हम ही (नित्य सुख चिद्-रूप आत्माही) मुमुक्षुओंको प्राप्त होने योग्य हैं। जैसे--फल पत्र और पुष्पोंकी उत्पत्ति नाशमें वृक्ष ज्योंका त्यों है; तैसे यह देह इंद्रिय, सुखदुःखादिक, सुषुप्ति आदि अवस्थाओंमें अभाव होनेसे जाग्रदादि अवस्थाओंमें उत्पत्ति होनेसे तथा जाग्रदादिकोंकी उत्पत्ति नाश होनेसे भी हम आत्मा ज्योंके त्यों हैं।

हे मैत्रेय ! इस प्रकार उत्तम उदार अमृतरूप वाणी ध्रुव सुनकर आश्चर्य्यवान् हुआ और उसके रोम खडे हो आये, शास्त्ररीति अनुसार विनयपूर्वक उन महान् पुरुषोंको प्राप्त हुआ।

पराशरने कहा, हे मैत्रेय ! ध्रुव माताका वचन सुनके वैराग्यको प्राप्त हुआ पर तुझको मैंने अनेक वचन वैराग्यके कहे हैं तो भी तुझको वैराग्य नहीं हुआ। मैत्रेयने कहा--मुझको ध्रुवकी न्याई किसीने दुःख नहीं दिया जो वैराग्य होवे पर कथा ध्रुवकी कहो। पराशरने कहा हे मैत्रेय ! कथा ध्रुवकी यही है, जो अपने सहित सर्वको

वासुदेव (निश्चय कर) जाने । मैत्रेयने कहा-जाननेसे सर्ववासुदेव होता नहीं स्वतः सिद्धही सर्व वासुदेव है जाननेसे क्या प्रयोजन है। जो कृत्रिम है सो नाशी है और जो अकृत्रिम है सो अविनाशी है । मैं आत्मा, सापेक्षक शब्दोंते तथा शब्दोंके अर्थते रहित हूँ मुझ विषे जानने न जाननेका मार्ग नहीं । पराशरने कहा--देह अभिमानरूपी कपटकी कफनी पहरे हुए खान पानादिक विषयोंमें बँधा है और कहता है सर्व मैं ही वासुदेव हूँ यह कपट है। मैत्रेयने कहा--सर्वव्यापक इसी कारण हूँ जो कामनामें तथा सर्व विषयोंमें, चाहना अचाहनामें, कपटमें, खानपानमें, कपट करनेवाले इत्यादि सबमें व्यापक ।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! जबलग जीवता न मरे और मरकर न जीवे तबलग अमृत (निश्चय) को न पावेगा--मरना नाम देह अभिमानका सांगोपांग त्यागना है। त्रिकालाबाध्यस्वरूप शिव साक्षीरूप आत्मा मैं हूँ; कदाचित् भी देहादिक संघात मैं नहीं इसी दृढ निश्चयकी कामना जीवना है । हे मैत्रेय ! जो पुरुष चाहनामें बँधा है सो नारायणसाक्षी निज आत्माकी पहिचान नहीं कर सकता । अज्ञानी कहता है, कि मैंने सारे रातदिन भजन गोविंदका किया पर दर्शन न हुआ । हे मूर्ख ! विचारनेत्रोंसे अंध ! गोविंद आत्मा तुझको कैसे प्राप्त होवे, काहे ? गोविंदको प्राप्त होवेवालेका गोविंद निज रूप है, तिसका तू अभ्यास करता नहीं बरन उससे उलटा इंद्रियोंके विषयसुखकी प्राप्तिका अभ्यास करता है, माता पितादिक सबंधी मरे तैंने अग्निमें जलाये परंतु यह न समझा कि मेरी अवस्था भी यही होगी, उलटा माता पितादिक संबंधियोंसेही अहंता ममता अधिक बढाई । ताते शरीरको नाशी और आपको अविनाशी जानकर, बंध

मोक्षके कर्तव्यसे रहित हो, पर तैंने तो माना है कि मैं परमऋषि हूँ, पंडित हूँ, परमहंस हूँ, तब जिसमें मन बाणीका मार्ग नहीं, तिसको तू देह अभिमानी कैसे जानेगा? हे मैत्रेय! जिस अवाङ्मनसगोचर पदविषे संतस्थित हैं तिस पदको वेद भी लज्जामान होकर कथन करता है. हे मैत्रेय! जिनने निजस्वरूप जाना है कहना तिनका चुप है वे अपने स्वरूपके पहिचानने विषे लज्जाते रहित हुए हैं इस झूठे देहरूप पहरावेते नग्न और निज स्वरूपमें ही मग्न हुए हैं मैत्रेयने कहा--कथा ध्रुवकी कहो. पराशरने कहा कथा ध्रुवकी यही है कि, जाने सर्व हरि है। हे मैत्रेय! ध्रुव माता पितादिक सर्वजगत्‌की लज्जाको त्यागकर गोविंदस्वरूप हो गया, पर तेरी क्या शक्ति है कि उसके जैसा होवै. मैत्रेयने कहा--मैं उस जैसा नहीं होता पर कथा उसकी कहो। पराशरने कहा--उस जैसा नहीं होता तो उसकी कथा सुननेसे क्या प्रयोजन है! मैत्रेयने कहा--तुम मेरे गुरु हो उस जैसा करो। पराशरने कहा--श्रद्धा तेरी जगतके पदार्थोंमें है मेरेमें नहीं, इससे कैसे करूं?

मैत्रेयने कहा--हे गुरो! मुझको अतीत करो अपना शिष्यकरके मंत्र उपदेश करो, शिखा सूत्रको लेकर परमहंस बनाओ, भेषका भगवाँ बस्तर देओ और कंठी बाँधो। पराशरने कहा--मेरे करनेसे कुछ प्रयोजन नहीं, क्योंकि, एक पैसेका गेरु लेकर कपडे रंगले शिखासहित रोम मूछ नाईसे दूर करवादे, यज्ञोपवीत आप उतार दे। बहुत भेषधारी हैं उन्हींका चेलाहो जा, एक पैसेकी दस कंठी मिलती हैं सो लेकर बाँधले, मंत्र उन्हीं अतीतों भेषधारियोंसे सुनले हे मैत्रेय! इन देहइंद्रियादिकोंके बाहरके व्यवहारके त्यागनेसे अतीत नहीं होता-काहेसे?कि, देह इंद्रियादि संघातही कर्म हैं,

संघात संघातसे अतीत नहीं हो सकता ! जो देहके कर्त्तव्यों के त्यागसे अतीत होता होवे तो आलसी. दरिद्री, रोगी, चिंतातुर, मूर्च्छित इत्यादि मनुष्य भी (देहके कर्तव्योंके त्यागसे) अतीत होवें परन्तु अतीत होनेका फल जो जन्ममरणादिकोंकी निवृत्ति है सो तिनको नहीं होती; ताते कायिक, वाचिक, मानसिक चेष्टामें परिच्छिन्न अहंकारका त्याग कर, जो ठीक ठीक अतीत होवे । क्योंकि, प्रथम अहं होता है, पश्चात् त्वं मम होता है जब अहं ही नहीं तब त्वं मम और ममताके विषय, देह पुत्रादि पदार्थ कैसे होवेंगे किंतु नहीं होवेंगे-- ताते त्यागके अहंकारपनका भी त्यागकर । हे मैत्रेय ! अज्ञान आदि देह पर्यंत कार्य्य कारण प्रपंचके पहरावेसे जो नग्न है सोई अतीत है । तात्पर्य्य यह कि, जैसे आकाश सबमें स्थित भी सबसे नग्न अतीत है; जैसे--रज्जुमें सर्पादिकोंकी प्रतीत होते भी रज्जु सर्पादिकोंते अतीत नाम नग्न है तैसे-- तू चैतन्य आत्मा ही इन देहादि प्रपचते नग्न है, अन्य कोई अतीत नहीं । मैत्रेयने कहा--मैं जलता हूँ दुःखसे छूट जाऊँगा और सुखको पाऊँगा, अतीत नहीं होता परन्तु देहको जलाता हूँ । पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! इस अनादि संसारमें लाखो बार तेरी और सब लोगोंकी देह उत्पन्न होकर जलतीं खाक होतीं, पृथ्वीमें मिलती आई हैं परन्तु दुःख न मिटे, ताते जड देहके जलानेसे दुःख नहीं मिटता । हे मैत्रेय ! बबीके मारने जलाने गालनेसे सर्प नहीं मरता, विष सर्पमें है, बंबीमें नहीं तैसे-देहरूप बंबीमें स्थित अहंकार रूप सर्पमें जन्म मरण, बन्ध मोक्ष, अहं त्वं, हर्ष शोक सुख, दुःखादिक विष है, देह रूप बंबीमें नहीं । जब तू अहंकाररूप सर्पको ज्ञानाग्नि करके राख करेगा, तब अहंकाररूप सर्पसहित पञ्चभूत

देहरूप बंवी भस्मीभूत हो जावेगी। अहंकाररूप कारणके नाशसे नाम, रूप, जगत् कार्य यत्न विना आपसे ही नाश होगा। जैसे दीपकके प्रकाश करनेसे यत्न विना अंधकार नाश होता है। प्रकाशके होनेसे अंधकार जाता नहीं दीखता कि कहां गया ? तातें हे मैत्रेय ! सर्व अनर्थोंका देनेवाला जो देहादिकोंविषे अहंकार है, तिसको जब तू जलावेगा (राख करेगा) तब शेष जो पद रहा है जिसमें मनवाणीका मार्ग नहीं। जो मैं वर्णन करूं और तू सुने परन्तु देहके जलानेसे सुख होता नहीं। देहके जलानेसे सुख हो तो सतीको भी सुख होवेगा सो होता नहीं क्योंकि, आवागमनसे छूटनेका नाम सुख है इसीलिये तुझे भी जन्म मरणादि अहंकारके जलानेसे ही सुख होगा। मैत्रेयने कहा--अहंकार मुझ चैतन्यस्वरूप विषे है नहीं और बिना हुए वस्तुका त्याग करना लज्जाका काम है। जब अहंकार मुझमें है नहीं तब क्या त्यागूँ और क्या ग्रहण करूं। जैसे आकाशको भूत भौतिक पदार्थोंका ग्रहण त्याग नहीं बनता। हे गुरो ! जैसे--मलस्पर्श बिना मलके दूर करनेका उपाय करना मूर्खता है। ग्रहण त्यागते रहित यत्न विना ही निर्विकल्प निर्विकार मुझ चैतन्यमें स्वतः ही अहंकारका अत्यंताभाव है, लाखों तरहके अहंकार अरु कोटानकोटि तरहके संकल्प; कोटानकोटि तरहके निश्चय, हजारों तरहके चिंतन, हजारों तरहके शोक मोहादिक हजारों तरहके खानपान और शयनादिक तथा अनेक प्रकारके चक्षु आदिक इंद्रियोंके रूपदर्शनादिक व्यवहार। सारांश यह कि, मनादिक धर्मी और तिन अनात्मा मनादिकोंके संकलपादिक धर्म, मुझ अवाङ्मनसगोचर चैतन्य पूर्ण आकाशविषे बिजली मेघादिवत् हजारों दफा होकर मिट जाते हैं और उत्पन्न होते हैं

परन्तु मुझ चैतन्य आकाशका रोममात्र भी छेदन नहीं होता। जैसे--भूताकाशमें मेघ, बिजली, वर्षा, अन्धेरी, अन्धकार; प्रकाश, सूर्य्य, चांद, तारामंडल, स्वर्ग, नरक, मलिन और शुद्ध पदार्थ इत्यादिक अनेक पदार्थ होते हैं पुनः मिट जाते हैं; परन्तु आकाश ज्योंका त्यों है जैसे समुद्रमें तरङ्ग, बुदबुदा, फेन उत्पन्न होकर मिट जाते हैं परन्तु समुद्र ज्योंका त्यों है तैसे--मुझ चैतन्य समुद्रविषे, अनंत ब्रह्मांडरूपी तरंग उत्पन्न होकर मिट जाते हैं परन्तु मैं चैतन्य ज्योंका त्यों हूँ. पराशरने कहा हे मैत्रेय! बडा आश्चर्य है, अहंकार बिना, वा अंतः-करण बिना, " मुझ निर्विकल्प चैतन्यविषे अहंकार है नहीं और जगत् रूप तरंग होने मिटनेसे हानि लाभका मुझमें अभाव है" यह वृत्तांत तुझ निर्विकल्प चैतन्यको कैसे मालूम हुआ है! हे मैत्रेय! " मुझ चैतन्यमें अहंकार नहीं यह जानना ही अहंकार है। इसीसे कहता हूँ तू अवाङ्मनसगोचर निज स्वरूपविषे, यह जाननारूप अन होता अहंकारका त्याग कर " जो सुखी होवै। मैत्रेयने कहा, मैं सुखी नहीं होता क्योंकि सुखी होना न होना भी अहंकार ही है, पराशरने कहा--यही समझ संतोंकी है परन्तु तैंने तो निर्विकल्पको सविकल्प जाना है और सविकल्पको निर्विकल्प जाना है हे मैत्रेय! तू सम्यग्दर्शी हो जो संत पदवी पावै मैत्रेयने कहा--जब मैं ही नहीं तो संतपदवी कहां है और संत कहां हैं? पराशरने कहा--हे मैत्रेय! जब तू नहीं तब यह अपना अभाव तैंने जाना कैसे? जैसे--वंध्यापुत्र शशश्रृंङ्ग अपने अभावको जानते नहीं परन्तु तू चैतन्य भावरूप नाम सत्यरूप है। परन्तु तुझ चैतन्यमें जाननेका मार्ग नहीं. काहेते ? तुझ सच्चिदानंद स्वरूपते भिन्न असत् जड दुःखरूप सर्व कल्पित पदार्थ हैं

और सर्वत्र कल्पित पदार्थ अधिष्ठानको जानते ही नहीं केवल चैतन्य अधिष्ठान ही अपनेमें कल्पित पदार्थोंको जानता है, बुद्धि द्वारा अद्वैत होनेते जानता भी नहीं। काहेते ? मनकी कल्पनारूप विकारसे आत्मा निर्विकल्प है, जाने तो निर्विकल्प नहीं इससे जानता हुआ भी आत्मा निर्विकल्प है स्वप्नद्रष्टावत् जैसे--रज्जु शुक्तिमें कल्पित सर्प दंड माला रजतादिक अपने अधिष्ठान शुक्ति रज्जुको जानते नहीं तथा जैसे स्वप्ननर स्वप्नद्रष्टाको जानते ही नहीं, स्वप्नद्रष्टा चैतन्य ही जानता है जैसे--स्वप्न नर स्वाधिष्ठानको जानते ही नहीं कि, हमारा कोई स्वामी है वा नहीं, रूपवान् है वा नहीं, महान् है वा तुच्छ है, सत्य वा असत्य है, इत्यादि। तैसेही--अधिष्ठान रज्जु शुक्ति सुवर्णादिकभी अपनेमें कल्पित सर्प, दंड, माला, रजत भूषणादि पदार्थोंको जानते ही नहीं। जैसे--स्वप्नद्रष्टा अपनेमें कल्पित स्वप्ननर घट पट, सर्पादि नाम रूपको जानता ही नहीं कि, स्त्री पुरुष घट पट सर्पादिक हैं वा नहीं, रूपवान् हैं वा नहीं, किसी दूसरेने हममें कल्पना किया है वा नहीं, दीर्घ कालके प्रतीतिमान् हैं वा नहीं, सुखरूप हैं वा दुःखरूप हैं व्यावहारिक सत्तावाले हैं वा प्रातीतिक सत्तावाले हैं; सत्यरूप हैं वा असत्य रूप हैं, अनादि हैं वा सादि हैं, सोते जागते मूर्च्छा पाते हैं वा नहीं, बन्ध मोक्षवान् हैं वा नहीं, माया अज्ञानके कार्य्य हैं वा नहीं दृश्यरूप हैं वा नहीं, हर्ष शोकके देनेवाले हैं वा नहीं, क्रियावान् हैं वा नहीं, विकारवान् हैं वा नहीं, आपसमें कार्यकारण भाववाले हैं वा नहीं, इत्यादिक उपरोक्त अनेक विकल्पोंको स्वप्नद्रष्टा अधिष्ठान जानता ही नहीं अथवा उपाधि से जानता भी है तो वास्तवते नहीं अद्वितीय निर्विकार होनेते, क्योंकि, जानना

द्वैतमें होता है । स्वप्नकल्पित पदार्थोंकी अधिष्ठानते पृथक् सत्ता होती नहीं किन्तु तिस स्थलमें स्वप्नद्रष्टा ही है स्वप्ननर घट, पट, रज्जु, सर्पादिकोंका अत्यंताभाव है बल्कि स्वप्नद्रष्टा आपको भी नहीं जानता आत्माश्रय दोष होनेते । जानता जुदा पदार्थ है जिसको जानता है वह जुदा पदार्थ है और जाननेवाला जुदा पदार्थ है । जानना अहंकार त्रिपुटी विना होता नहीं और आत्मामें अहंकार है नहीं तो हे मैत्रेय ! तू चैतन्य अधिष्ठान कैसे जानता है कि, कल्पित अहंकारादिक मुझमें है ही नहीं । मधुरता शीतलता द्रवतारूप जल अपनेमें अन्यकर कल्पित तरंगोंको जानता ही नहीं, तैसे ही अस्ति भाति प्रियरूप, तुझ आत्मामें, अन्यकर कल्पना स्वरूप जगत्को तू कैसे जानताहै । जैसे मंदिरमेंका दीपक, मंदिर और मंदिरमें स्थित पदार्थोंको जानता ही नहीं अपनी महिमामें ही स्थित है तैसे ही मंदिरमें स्थित पदार्थ भी, अपने प्रकाशक दीपकको भी नहीं जानते और अपनेको भी नहीं जानते । मैत्रेयने कहा--ठीक है, वह रज्ज्वादिक अधिष्ठान तथा दीपकादिक जड पदार्थ हैं परन्तु मैं चैतन्य हूँ इसी कारणसे दृष्टांत विषे रज्जु आदिकोंके और मुझ चैतन्यके विवर्त; स्वप्नके पदार्थ अपने अधिष्ठान स्वप्नद्रष्टाको ठीक ठीक नहीं जानते कि हमारा कल्पक स्वामी कौन है ? परन्तु स्वप्न पदार्थोंके अधिष्ठान चैतन्य स्वप्नद्रष्टा करही कल्पित स्वप्न पदार्थोंकी सिद्धि होती है, अन्य कर नहीं । जो मैं स्वप्नद्रष्टा स्वप्नपदार्थोंको न प्रकाशूँ तो स्वप्न पदार्थोंको ज्ञानही नहीं हुआ चाहिये. क्योंकि, अविद्यामें वा अन्तःकरणमें चैतन्यके आभाससे भी स्वप्न कल्पित पदार्थोंका प्रकाश नहीं होता. क्योंकि अविद्या बुद्धिकी न्याई आभास भी जड कल्पित होनेसे कल्पितका प्रकाशक नहीं होता

और अन्य कोई स्वप्नका प्रकाशक है नहीं; इससे शेष शुद्ध चैतन्य स्वप्न द्रष्टाकर ही स्वप्नके अहंकारादिक पदार्थ सिद्ध होते हैं। तैसेही-सुषुप्ति समाधि आदिक अवस्थामें भी अज्ञान और समाधि सुख शुद्ध चैतन्य कर ही सिद्ध होता है। यद्यपि जाग्रत्की मुवाफिक सुषुप्ति समाधि अवस्थामें कहना सुनना चिंतन करना आपको द्रष्टा साक्षी प्रकाशक निर्विकार निर्विकल्प सत् चित् आनन्दस्वरूप ज्ञानी अज्ञानी इत्यादिक विशेषणों संयुक्त मानना और दृश्यको असत्, जड दुःखरूप, कल्पित मानना नहीं है. क्योंकि, कहने चिंतन करनेके साधन वाङ्मनादिकोंकी अपने उपादान कारण अज्ञानमें लीनता है, तथापि सुषुप्तिमें अज्ञानके अनुभव और आवृत सुखका तथा समाधिमें निवारण सुखके अनुभवका बाध नहीं होता वरन् अनुभवपूर्व कही स्मृति होती है। जो कल्पित पदार्थोंका ज्ञाता प्रकाश चैतन्य नहीं मानोगे तो स्वप्न पदार्थोंके न्यून अधिकताके वृत्तातका ज्ञान, सुषुप्तिके अज्ञान का ज्ञान समाधिके सुखका ज्ञान आदि सर्वके अनुभव सिद्धकथाका विरोध होवेगा, ताते शुद्ध निर्विकार चैतन्य करके ही कल्पित अहंकारादिकोंके भावाभावकी सिद्धि होती है अन्य कर नहीं पराशरने कहा--हे मैत्रेय! अवाङ्मनसगोचर जो तुम्हारा हमारा तथा सर्व कल्पित जगत्का स्वरूप है, सो उसका उपाधि विना प्रकाश्य प्रकाशक भाव नहीं बन सकता. क्योंकि, सुषुप्तिमें यद्यपि अंतःकरण जाग्रत्की न्याई नहीं भी है तथापि अज्ञानमें संस्कार रूप करके स्थित है और तिस कालमें अज्ञान ही उपाधि है। तैसेही--विद्वान् पुरुषको समाधि अवस्थामें भी अंतःकरण यद्यपि जाग्रत्की न्याई स्पष्ट नहीं भी है तथा स्वरूप अज्ञात अवस्थाकी न्याई अज्ञान भी नहीं है तथापि प्रारब्ध क्षय

पर्य्यंत ज्ञानाग्नि कर बाधरूप दग्ध अज्ञान तिस समाधि कालमें भी है, सोई तिस कालमें उपाधि है, तिसीका लेसा विद्या भी बोलते हैं। जैसे -अश्वत्थामाके बाण करके दग्ध अर्जुनका रथ कृष्णरूप प्रतिबंधकसे, पूर्वके समानही सर्वको प्रतीति होता रहा, तैसे ही ज्ञानाग्निकर दग्ध कार्य कारण संघात भी प्रारब्धरूपी कृष्ण प्रतिबंधकके विद्यमान होनेसेही प्रतीत होता है यही कार्य्य कारण संघातकी प्रतीति ही उपाधि है। हे मैत्रेय! प्रारब्धरूपी उपाधिके क्षय हुए--तात्पर्य यह है कि, उपाधि निर्मुक्त विदेह कैवल्यमें पूर्वोक्त व्यवहार नहीं। हे मैत्रेय ! तिस अवस्थाका कोई दृष्टांत है नहीं क्योंकि, समाधि सुषुप्तिमें भी उपाधि पूर्व कथन करि आये हैं, तातें--हे मैत्रेय! तू श्रवण करता हुआ स्पर्श करता हुआ देखता हुआ रस लेता हुआ सूंघता हुआ वास्तवतें आपको निर्विकार निर्विकल्प जान ! हे मैत्रेय ! कल्पित उपाधिको अंगीकार करके उपाधि संयुक्त विशेष अग्नि ही काष्ठादिकोंका दाहक उष्ण प्रकाशादि व्यवहार करता है. उपाधिरहित समान अग्नि दाह उष्ण प्रकाशादि व्यवहार नहीं करता है, इस लिये कल्पित अहंकारादिकोंके भावाभावको अनुभव करना भी उपाधिसेही है उपाधि विना नहीं है। जैसे--उपाधि सहित और उपाधिरहित अग्निमें भेद नहीं व्यवहारों में भेद है। जैसे--वायु चलने ठहरनेमें आप एक-सरीखी है परन्तु चलनेमें भासती है और अचलनेमें नहीं भासती। जैसे--आकाश घटादिक उपाधिसहितमें भी और घटादिक उपाधिरहितमें भी आपको एक रस जानता है; तैसे हे मैत्रेय! " तू अपने निजात्मा स्वरूपको माया अहंकारादिक कल्पित उपाधि सहितमें भी और कल्पित-माया अंतःकरणादिक उपाधि रहितमें भी निर्विकल्प निर्विकार जान " (यही संतजनोंका निश्चय है)

मैत्रेयने कहा--कथा ध्रुवकी कहो कि संत और ध्रुवकी आपसमें क्या चर्चा हुई। पराशरने कहा--कथा--ध्रुवकी यही है जो जान "आप सहित सर्व हरि हैं" हे मैत्रेय! चाहसे अचाह हो ग्रहण त्यागका त्याग कर देह अभिमानरूपी वस्त्रते नग्न हो "मैं निर्विकल्प निर्विकार चैतन्यमात्र हूँ, मुझ चैतन्यको बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते किंचित्मात्रभी कर्तव्य नहीं" क्योंकि बंध मोक्षादि व्यवहार भ्रममात्र हैं इस निश्चयरूप कफणीको पहन और सूक्ष्म अहंकारको जला। मैत्रेयने कहा--मैं ही नहीं तो, अहंकारको कौन जलावे। पराशरने कहा--"यही अहंकारका जलाना है कि मैं नहीं" जब मैं नहीं तो अहंकार कहाँ है, शेष जो पद है उसमें मन वाणीकी गम नहीं। हे मैत्रेय! जैसे आकाश सर्व प्रकारके सर्व पदार्थोंते अतीत है; तैसे तूभी अतीत हो जो कहता है कि मैं शिवको जानता हूँ वही गृहस्थ है क्योंकि, शिवमें जाननेका मार्ग नहीं शिवको ज्ञानके विषे जाननाही गृहस्थपना है और ऐसा जाननेवाला ही गृहस्थ है। क्योंकि उसने निज स्वरूप शिवको ज्ञानका विषय दृश्य मिथ्या जाना है। हे मैत्रेय! जहाँ ग्रहण त्यागकी इच्छा नहीं तहाँ आपसे आप है नग्न वही है जो शरीर होते इस लोक परलोककी चाहनाते रहित है। हे मैत्रेय! इतने कहनेका प्रयोजन मेरा यही है जो, तू अपने स्वरूपको जाने और मनुष्य देहको दुर्लभ जानके भजन गोविंदका करे। जो तू पूछे कि, भजन गोविंदका क्या है? तो आप सहित सर्व गोविंद हैं "गोविंदते व्यतिरेक कछु नहीं" यही भजन है। जब सर्व गोविंद हैं तो खाना पीना, देना, लेना, सोना, जागना, बैठना, चलना, ध्यान करना, न करना इत्यादिक सर्व भजन ही हैं। हे मैत्रेय! जो तुझको नग्न होनेकी

इच्छा है तो सूक्ष्म अहंकारका त्यागकर और जान कि; न मैं हूँ न मेरा कोई है, क्योंकि जन्म मरण सूक्ष्म अहंकारसे ही है। जो पूछे सूक्ष्म अहंकार क्या है तो अस्ति भाति प्रिय रूप जो अपना वास्तव स्वरूप है तिससे दृश्यको भिन्न जानना ही सूक्ष्म अहंकार है और इसका त्याग है सोई त्याग है। हे मैत्रेय ! चाहिये कि, भ्रम और प्रीति (शरीरकी) त्याग कर और गोविंदसे मिल रह। जैसे--घटाकाशको, भ्रमसिद्धपरिच्छिन्न घटाकाशपनेको त्यागे तो महाकाशको मिलता है अर्थात् अभेद होनेपर भी पुनः अभेदरूप होता है।

मैत्रेयने कहा--कथा ध्रुवकी कहो। पराशरने कहा--तुझे ध्रुवकी कथासे क्या प्रयोजन है; आप तो शरीरके भ्रममें बँधा चाहता है कि; ध्रुव जैसा होऊँ पर इससे शांति न होवेगी। जब देह अभिमान रूप भ्रमका त्याग करे तब तू ही ध्रुव होवे ताते, दृश्य अहंकारते अतीत हो जिससे निर्वाणपदको पावे। मैत्रेयने कहा--जब सर्व मैं ही हूँ तब निर्वाणपदकी प्राप्ति तथा अनिर्वाणरूप बधभ्रम भी मैं ही हूँ त्यागूं क्या और ग्रहण क्या करूं ? वा बाणरूप संघातते रहित; मैं आपही निर्वाण हूँ। निर्वाणपद पाऊँ कैसे ? पर भ्रमके त्यागका उपाय कहो। पराशरने कहा--जैसे अँधेरा दूर करनेका उपाय दीपका चसाना है, तैसे--दृश्य अहंकारते अतीत होनाही भ्रमके त्यागका उपाय है, मैत्रेयने कहा--क्यों ढील करते हो; जो कछु कहो सो करता हूँ। पराशरने कहा--मेरे हाथमें दंडकमंडलु नहीं, न मैं संन्यासी हूँ, न मैं बैरागी हूँ, न मैं लौकिक अतीत हूँ, तुझको अतीत कैसे करूँ ? मैत्रेयने कहा--मैं क्या करूँ ? और कहां जाऊँ ? पराशरने कहा--कछु कर नहीं, अलौकिक अतीत हो। हे मैत्रेय ! दाढी

शीश तेरा मुण्डित करता हूँ तो रोम फेर उपज आवेंगे क्योंकि, नख केश सदा स्वाभाविक आपसे आप बढते रहते हैं और मैं मन्त्र नहीं पढा जो तुझको सिखाऊँ, मैत्रेयने कहा=मैं रोता हूँ, पराशरने कहा-द्रष्टाका दुःख रूप दृश्यको अपना रूप जाननाही रोना है, द्रष्टाको दृश्यसे मिलान जाननाही हँसना है । पूर्णको अपूर्ण, असंगको संगी, सत् चित् सुख रूपको असत् जड दुःख रूप जानना ही रोना है, ताते तू इस रोनेसे अतीत हो । मैत्रेयने कहा=बडा आश्चर्य है जो अतीत होता हूँ तो करते नहीं और कहते हो, अतीत हो । क्या करूँ ? मैंने समझाया था कि गृहकी सब सामग्री मैंने त्यागी है, ईश्वर कृपा करेगा तो मैं परम शांत होऊँगा । मुझको इन अटलादिक पदवियोंकी भी चाहना नहीं जगत् सुखोंसे अचाह हूँ, केवल यही चाहना है कि, स्वरूपको पाऊँ । पराशरने कहा=विलाप मत कर ध्रुवकी न्याई निश्चय कर मूलको खोज, जो स्वराज स्थित होवे, पर स्वरूपका पावना निर्लज्जोंका काम है क्योंकि, कार्य कारण संघात रूपी वस्त्रते रहित होनाही नग्न होना है और यह निर्लज्जोंका काम है मैं पंडित नहीं हूँ जो तुझको अनेक प्रकारका सिद्धांत तथा कथा सुनाऊँ पर सिद्धांत यहां यही है कि="सर्व तूही है कोई और नहीं ।"

मैत्रेयने कहा--मुझको ब्रह्मचारी करो । पराशरने कहा-जो ब्रह्मको अपना रूप जानता है सोई ब्रह्मचारी है, जैसे घटाकाश, महाकाशको अपना स्वरूप जाने अन्य नहीं । जो सर्व ब्रह्मही है तो ब्रह्म विषेचारी पना क्या ? मैत्रेयने कहा--कुछ उपदेश करो । पराशरने कहा मैं श्रोताको नहीं देखता । आपही आप हूँ किसको उपदेश करूँ ? मैत्रेयने कहा--मुझको तुमसे भय हुआ है अब प्रश्न करूंगा तो

दीनतापूर्वक करूँगा । पराशरने कहा-हां ऐसी शक्ति रखता हूँ कि सर्वको भस्मीभूत कर डालूं परन्तु कपटियोंकी याईं भय मत कर; ऐसा भय कर जिससे जीव, ईश्वर ब्रह्म माया जगत् इत्यादि भेदका त्याग होवे और द्वैत भय रहित अभयरूप स्थितिको पावे । मैत्रेयने कहा--यह काम मुझसे नहीं हो सकता । पराशरने कहा तुझसे नहीं होता तो तुझ चैतन्यसे व्यतिरिक्त कौन है जिससे होवेगा । मैत्रेयने कहा--जीव, ईश्वर दोनों शास्त्र प्रमाण सिद्धकर हैं कैसे त्यागूं । पराशरने कहा--जीव, ईश्वर सहित सर्व जगत् तेरी अविद्यासे प्रतीत होते तो नहीं । जीव, ईश्वर कहां हैं ? यदि जीव ईश्वरकी एकता भी श्रुतिसिद्ध है अप्रमाण नहीं, परन्तु चैतन्यविषे तो जीव ईश्वर भाव है ही नहीं तो सत्य जाने तू ही चैतन्य, अविद्या कर जीव संज्ञाको प्राप्त हुआ है और मायाकर ईश्वर संज्ञाको प्राप्त होता है । जैसे--एकही आकाश घट उपाधिकर घटाकाश संज्ञाको पाता है, मठ उपाधिका मठाकाश संज्ञाको पाता है, वास्तवसे नहीं । हे मैत्रेय ! जब तू अपने चैतन्य स्वरूपको सम्यक् जानेगा तो जीव ईशादि संज्ञा कहीं खोजे भी न मिलेगी । मैत्रेयने कहा--जब जीव ईश अपनी अविद्यासे उपजे हैं तो, मेरा क्या घाटा है ? जैसे--स्वप्नमें जीव ईश्वरके निद्रा दोषकर प्रतीत होनेसे, स्वप्नद्रष्टाका एक रोम भी छेदन नहीं होता । पराशरने कहा--ठीक ऐसा ही है परन्तु स्वप्न जाग्रत् कालमें भी यद्यपि वास्तव स्वप्न पदार्थ स्वप्नद्रष्टाको स्पर्श नहीं करते तथापि निजस्वरूपके अज्ञानसे ही भ्रमकर आप निर्विकार, निर्विकल्प होते हुए भी, सविकार सविकल्प मानता है, महान् भी आपको तुच्छ मानता है और भ्रमके निवृत्त हुए ज्योंका त्यों आपको मानता है, हर्ष शोक भी नहीं करता । हे मैत्रेय !

और कुछ कर्तव्य मत कर, भ्रमकी निवृत्ति वास्ते, ज्ञान रूपी दीपकको जगा । मैत्रेयने कहा-आपके कहनेसे जानता हूँ, कि भ्रमको त्यागूँ और अभ्रमको ग्रहण करके कुछ बनूँ परन्तु यथार्थमें तो स्वयंप्रकाश अद्वितीय हूँ, मुझमें ग्रहण त्यागका मार्ग नहीं ।

मैत्रेयने कहा-प्रथम मैंने आपसे प्रश्न किया था कि, मोक्षका उपाय कहो, तो आपने कहा था कि, तू आपही आप स्वयंप्रकाश स्वरूप है, तेरेको बंध मोक्ष रूप अंधकारकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते किंचित् मात्रभी कर्तव्य नहीं, अब कहते हो कुछकर जो कुछ होवे ? पराशरने कहा-यही कर कि, मैं हूँ न जगत, न जीव, न ब्रह्म, एक अद्वितीय नारायण है । मैत्रेयने कहा--जब मैं परिच्छिन्न अहंकार रूप जीव नहीं तो नारायणसे क्या प्रयोजन है परन्तु मैं तो जीवत्वके अहंकारमें बँधा हूँ कैसे कहूँ " जीव ब्रह्म है " । पराशरने कहा--जीव ब्रह्मका रूप क्या है ? मैत्रेयने कहा-- मैंने जीव ब्रह्मका रूप नहीं देखा । पराशरने कहा--जब रूप नहीं देखा तो नाम कैसे धरा ? मैत्रेयने कहा--सुनकर कहता हूँ । पराशरने कहा--जिससे तूने सुना है तिसीसे जीव ब्रह्मका रूप पूछ । मैत्रेयने कहा--उसनेभी सुनकर कहा है । पराशरने कहा-सब सुनकर कहते हैं पर मूल नहीं खोजते । हे मूर्ख ! जैसे--सुनकर ही जीव ब्रह्मका निश्चय किया है, वैसेही--मुझसे भी सुन करके जीव, ब्रह्मरूप है ऐसा निश्चय कर और जो तुझको इच्छा देखनेकी हो तो अतीत हो ।

मैत्रेयने कहा--मुझे वैराग्य हुआ है, चाहता हूँ कि गृहस्थसे उदासीन होऊँ । पराशरने कहा--जो भूत; मृग वनचर आदि अनेक जीव वनोंमें फिरते हैं, तूभी तिनकी पंक्तिमें प्रवेश कर । हे मैत्रेय ! लोगोंने जो पुत्र, स्त्री, धन,

गृहादिकको गृहस्थ समझा है सो झूठ है क्योंकि; गृह शरीरको कहते हैं, जो शरीरके अहंकारमें बंधे हैं सोई गृहस्थ हैं और जो इस अहंकारसे मुक्त हैं सोई वैरागी हैं। हे मैत्रेय ! एक आश्रमको त्यागना दूसरे आश्रमको ग्रहण करना, तैसेही एक नाम त्यागके दूसरा नाम रखना, तथा--सफेदरंगके वस्त्रोंको छोडके दूसरे रंगके वस्त्र पहरना, यज्ञोपवीत तोडके, कंठी आदिक अनेक पदार्थ बांधना, शास्त्रप्रतिपाद्य संबंधियोंसे प्रीति त्यागके अशास्त्रोक्त संबंधी बनाकर प्रीति करना, सर्वको अपना आत्मा जानकर प्रीति न करना, किन्तु रागपूर्वक प्रीति करना, ये व्यवहार विद्वानोंको हँसने योग्य है। हे मैत्रेय ! अतीत वही है जो "अपने सहित सर्वको आत्मारूप जानता है" जो शरीरके अहंकारमें बंधा है और चाहसे अचाह नहीं हुआ सो मेरे वचनोंको सुनकर प्रसन्न नहीं होता और जो नाम रूप बंधनते छूटा है सो आपही आप सुखरूप है। जब भेद नाम रूपका मिटता है तब जीवना मरना भ्रम हो जाता है। क्योंकि, नाम रूप स्वप्रकाश नहीं, परप्रकाश हैं, तुझसेही प्रकाश राखते हैं, ताते इस नामरूपात्मक देहादिकोंके अहंकारको त्याग, यही अहंकार चौरासीमें डुलाता है। हे मैत्रेय ! आदि, मध्य, अन्त अपने सहित सर्वको नारायण जान। जब अस्ति, भाति, प्रियरूप अधिष्ठान सर्व नारायण है तब कल्पितरूप अहंकार जुदा कहां रहेगा किन्तु अहंकार भी नारायण है, यही अहंकारका त्याग है। जैसे--नाम रूप कल्पित भूषण सुवर्णरूप हैं वा सुवर्णमें भूषण हैं ही नहीं; केवल सुवर्ण ही अपनी महिमामें स्थित है, यहीं जानना भूषणोंका त्याग है। हे मैत्रेय ! जैसे घट पटादिक पदार्थ मृत्तिका रूप जानना वा मृत्तिकाविषे तिन घट पटादिकोंका

अत्यंताभाव जानना; यही घट पटादिकोंका त्याग है। जैसे--स्वप्नद्रष्टामें कल्पित स्वप्नपदार्थ स्वप्न द्रष्टारूप हैं वा स्वप्नद्रष्टामें स्वप्नपदार्थ हैं ही नहीं। क्योंकि अधिष्ठानमें कल्पित पदार्थ प्रतीत मात्र ही हैं, स्वरूपसे पृथक् सत्तावाले नहीं. क्योंकि, जागनेसे स्वप्नपदार्थोंकी प्रतीतिका अत्यंताभाव होता है यदि पदार्थ होते तो जागेपर दूर न होते।

हे मैत्रेय! कल्पित पदार्थोंके त्यागमें शारीरिक वा मानसिक कर्तव्य नहीं चाहिये, किंतु निजात्म अधिष्ठानके जानने मात्रसे ही कल्पितकी निवृत्ति होती है! इसीसे बन्ध मोक्षकी निवृत्ति, प्राप्ति वास्ते शारीरिक कर्तव्य कुछ नहीं, केवल बोधरूप आत्माका जानना ही कर्तव्य है। हे मैत्रेय! "कल्पित पदार्थ मुझको प्रतीत ही न होवे; जब कल्पित पदार्थोंका नाश होवेगा तबही ज्ञानी होऊँगा" ऐसे नहीं जानना, किंतु कल्पित पदार्थोंकी प्रतीति होते भी तिनको अधिष्ठानरूप जानना, वा तिनका मिथ्यात्व (अभाव) जानना, यही कल्पित पदार्थोंका नाश त्याग है, यही ज्ञानीपना है, हे मैत्रेय! कोई ऐसा मानते हैं, "जो खाता, पीता, देता, लेता है सर्व व्यवहार करता है, भले बुरेको भला बुरा जानता है स्त्रीको स्त्री जानता है, पुरुषको पुरुष जानता है सो ज्ञानी नहीं अथवा जिसको शीत उष्ण होते हैं, जिसको षड्रस प्रतीत होते हैं, जिसको खान पानादिकोंकी इच्छा होती है सो ज्ञानी नहीं। जिनको ज्ञान हुआ है वे जंगलोंमें ही रहते हैं, उनको किसीसे बोलनेका क्या प्रयोजन है, सुगंधि दुर्गंधि उनको आती ही नहीं। तात्पर्य यह कि मन चक्षु आदि इंद्रियोंका दर्शनादि व्यवहार तिनको होता ही नहीं, इत्यादि अनेक विकल्प तर्क उठाते हैं। ऐसे अनुमान करने अथवा

कहनेवाले शास्त्रके सिद्धांतको नहीं जानते, वरन् ज्ञानको तिनोंने बीमारी समझा है, अर्थात् जैसे--बीमार पुरुष चेष्टारहित जडसा होजाता है। तैसेही ज्ञानरूपी बीमारी करके विवेकी जड हो जाता है। अज्ञानियोंका ऐसा समझना शास्त्र अनुभव विरुद्ध है, ताते हे मैत्रेय ! सर्व प्रकार करके कायिक, वाचिक, मानसिक सर्व देह चक्षुरादि इंद्रियोंके दर्शनादि व्यवहार ज्ञानी अज्ञानीके समही हैं, केवल दृष्टिमात्रका भेद है, अन्य भेद नहीं । जैसे--धर्मात्मा, अधर्मात्माके देह चक्षु आदि इंद्रियोंके दर्शनादि व्यवहारमें भेद नहीं किंतु दृष्टिका भेद है, जैसे--धर्मात्मा रूपको धर्मपूर्वक चक्षु इंद्रियोंसे देखता है और अधर्मात्मा अधर्मपूर्वक देखता है, रूपका देखना, दोनोंका तुल्य है, केवल दृष्टिका भेद है। जैसे नील पीतादि रूपवान् हीरेके देखनेमें जौहरी अजौहरी समही हैं परंतु अजौहरी जौहरीकी दृष्टिरूप विचारमें भेद है देखनेमें भेद नहीं। जैसे--भ्रमस्थलमें सर्व पुरुषोंके चक्षुका रज्जु आदिक पदार्थोंसे संबंध तुल्यही है परंतु सदोष चक्षुवान्को रज्जुमें सर्प भान होती है और निर्दोष चक्षुवान्को रज्जुही भान होती है। तैसे ही ज्ञानी अज्ञानीकी दृष्टिमें विवेकका भेद है देह चक्षुरादि इंद्रियोंके दर्शनादि व्यवहारका भेद नहीं। अथवा ज्ञानीके शिरमें शृङ्गादिकोंकी विलक्षणता नहीं हो जाती। कोई देह इंद्रियादिकोंके रोग विना दर्शनादि व्यवहारकी बाधा नहीं हो सकती। हे मैत्रेय ! देह इंद्रियोंके दर्शनादि व्यवहारकी बाधा मानोगे तो–पूर्व दत्तात्रेय वामदेवादिक परमहंसोंके वसिष्ठादिक ब्रह्मऋषियोंके जनकादिक राजऋषियोंके देह चक्षुरादि इंद्रियोंका दर्शनादि व्यवहार वर्तमान विद्वान् पुरुषोंके समान ही सुननेमें आता है अन्यथा नहीं वरन् ब्रह्मा विष्णु शिवादिकोंके भी देहचक्षुरादिक इंद्रियोंके दर्शनादिक

व्यवहार अस्मदादिक जीवोंके समानही सुननेमें आते हैं विलक्षण नहीं । काहेते ? आदि ईश्वरकी नियति ऐसे ही हुई कि, देह इन्द्रियोंका दर्शनादि व्यवहार ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत ज्ञानी अज्ञानी सर्व जीवोंका समही होगा इस ईश्वर संकेतको अबतक कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता ।

हे मैत्रेय ! अपने वर्णाश्रमके अनुसार सर्व जीवोंके देह चक्षुरादि इंद्रियोंके धर्मपूर्वक दर्शनादि व्यवहारका किसी शास्त्रमें तथा किसी विद्वान्ने निषेध नहीं किया तथा अनुभव सिद्ध वस्तुका निषेध भी नहीं हो सकता किंतु अधर्मपूर्वक देह चक्षुरादि इंद्रियोंके दर्शनादि व्यवहारका ही निषेध है ताते--धर्मपूर्वक अपने स्वरूप आत्माको सम्यक् जानकर देख, सुन, स्पर्शकर, रस ले, गंध सूंघ, ग्रहण त्याग कर, बोल चाल तात्पर्य यह कि कायिक, वाचिक, मानसिक सर्व व्यवहार कर, आकाशकी न्याईं तुझको बाधा न होगी । हे मैत्रेय ! भ्रमसिद्ध जो बंध मोक्षादिक पदार्थ हैं सो तुझ प्रत्यक् आत्मामें वास्तवते हैं नहीं इसीसे तुझको बंधरूप दुःखकी निवृत्ति वास्ते तथा मोक्षरूप सुखकी प्राप्ति वास्ते किंचिन्मात्र भी कर्तव्य नहीं । जैसे--निद्रादोषकरके प्रतीत हुए जो स्वप्नमें बंध मोक्षादिक अनेक पदार्थ, तिनकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते स्वप्नद्रष्टाको किंचित् मात्र भी कर्तव्य नहीं । क्योंकि, स्वप्नद्रष्टा स्वरूपसे ही बंध मोक्षसे रहित है, परन्तु भ्रमकरके बंध मोक्षवान् आपको मानता है । इसलिये हे मैत्रेय ! तू सम्यक्दर्शी हो, असम्यक्दर्शी मत हो, काहेते ? सम्यक्दर्शी जैसे पदार्थ होता है तैसा ही जानता है और असम्यक्दर्शी औरका और जानता है ।

मैत्रेयने कहा--धर्मपूर्वक, सर्व विषयोंकी प्राप्ति हुए भी पूर्व और अब महात्मा क्यों त्यागते हैं । पराशरने कहा-

हे मैत्रेय ! ज्ञानके विरोधी विषयोंका पूर्व और अब भी महात्मा पुरुष त्याग करते हैं और योग्य भी है परन्तु चक्षुरादि इंद्रियोंका दर्शनादि व्यवहार तो नहीं त्यागा जाता। काहेते ? जहां इन्द्रियादि धर्मी हैं, वहाँ चक्षुरादि इंद्रियोंका दर्शनादि धर्म भी होगा, धर्मी होते धर्मका अभाव नहीं होता। केवल धर्मपूर्वक चक्षुरादि इन्द्रियोंका दर्शनादि व्यवहार ज्ञानका विरोधी भी नहीं अधर्मही विरोधी है (ज्ञानका) धर्मपूर्वक दर्शनादि व्यवहार उलटा ज्ञानका साधक है। जो धर्मपूर्वक चक्षु आदिक इंद्रियोंके दर्शनादि व्यवहार करते अस्मदादिकोंकी दुर्गति होती है तो होने दे। काहेते ? इसकी निवृत्तिका उपाय कोई भी नहीं शरीर नाश विना। जैसे--किसी वैश्यने कहा है-दाल रोटी खानेसे घाटा पडता है तो पडने दे इससे नीचे दरजा न होने दे।

हे मैत्रेय ! गुप्तकी बातें मैं तुझपर प्रगट करता हूँ कि, न तू मैत्रेय, न मैं पराशर न कोई और एक नारायणही है ऐसा जिसको निश्चय है वही अतीत है ताते तू अतीत हो। मैत्रेयने कहा--आप ऐसा कहते हो, जिसमें अतीत और गृहस्थ दोनों नहीं बनते पुनः कहते हो अतीत हो। पराशरने कहा--वही अतीत है जो आप सहित जाने कि सर्व गोविंद है। आप सहित सर्व गोविंद जाननाभी मनका चिंतन है इससे भी तू अतीत नाम निर्विकल्प है। जब तूने ऐसा जाना तब अतीत गृहस्थ कहां हैं ? गोविंदही है। मैत्रेयने कहा--जब मैंही नहीं तो नारायणको कौन जाने कि, सर्व गोविंद निर्विकल्प नारायण है क्योंकि, जानना, ज्ञाता, ज्ञान ज्ञेय--त्रिपुटी विना होता नहीं और स्वरूपमें त्रिपुटी है ही नहीं जानना कैसे होवे। पराशरने कहा- जब सर्व तूही है तो त्रिपुटी भी तूही है, जैसे-स्वप्नमें

ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, त्रिपुटी भानपूर्वक सर्व पदार्थोंकी प्रतीति होती है, परंतु स्वप्नका द्रष्टा सर्व त्रिपुटीरूप; निद्रा दोषकर प्रतीत होता है वास्तवते त्रिपुटीरूप हुआ नहीं अपने महिमामें ही स्थित है । ताते-हे मैत्रेय ! जैसे स्वप्न दृश्य पदार्थोंसे स्वप्नद्रष्टा अतीत नाम भिन्न है तैसे ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयरूप त्रिपुटी तथा इस कार्य कारण संघातते, अतीत अर्थात् भिन्न तू आपको साक्षीद्रष्टा जान; यही अतीत होना है जब तू अतीत न होगा, काल तुझको दुःख देवेगा । मैत्रेयने कहा--कालका भय मुझको नहीं रहा क्योंकि नामरूप मुझ अधिष्ठानमें कल्पित है, तीन कालमें सत्ता नहीं । काल भी नामरूप स्वरूप है कल्पित नामरूप काल, मुझ अधिष्ठानको दुःख नहीं देता, उलटा अधिष्ठान करके ही नामरूप कंपायमान होते हैं अर्थात् तिस नामरूप कालकी मुझ अधिष्ठानसे ही सिद्धि होती है । जैसे--रज्जुमें कल्पित सर्पादिक रज्जुको दुःख देते नहीं, कल्पित सर्पादिकोंके गुण दोष रज्जुको स्पर्श करते नहीं उलटा रज्जु करके ही सर्पादिकोंकी सिद्धि होती है, तैसे कल्पित काल मुझ अधिष्ठान चैतन्यको कैसे दुःख देवेगा किंतु नहीं देवेगा, वा सर्व नामरूप नारायण हैं तो काल भी नामरूप स्वरूप है, जब काल भी नारायण हुआ तो नारायण नारायणको तो दुःख देता नहीं । जैसे--सर्व नामरूप भूषण सुवर्ण स्वरूप है और सुवर्ण सुवर्णको दुख नहीं देता ।

पराशरने कहा--अब तू ध्रुव हुआ कथा ध्रुवकी सुन । मैत्रेयने कहा--मैं अतीत होता हूँ, मुझको अपना भेष कृपा करके दो । पराशरने कहा--अतीतमें भेष अभेष नहीं, मायामें भेष अभेष हैं । हे मैत्रेय ! जो मायारूप भेषते अतीत है, वह अतीत है । मैत्रेयने कहा--कथा कहो

पराशरने कहा--तुझको निश्चय नहीं इससे तुझको भस्म करना योग्य है। मैत्रेयने कहा--मैं तो है ही नहीं ईश्वर ही है ईश्वरको भस्म करो। पराशरने कहा--इस परिच्छिन्न-रूप सूक्ष्म अहंकाररूपी काष्ठको ही भस्म करना था कोई देहादिक संघातके भस्म करनेमें मेरा तात्पर्य नहीं; भला हुआ कि तू भस्मीभूत हुआ. हे मैत्रेय ! आपते काम अचाहि खुदमस्ती कर मस्त स्वाभाविक विचरते हुए संत ध्रुवको मिले, कुछ राजपुत्र ध्रुवको मिलनेकी कामनावास्ते नहीं इसी निष्कामनाके ऊपर एक इतिहास सुन।

जडभरतका उपाख्यान

एक कालमें महात्मा जडभरतने देवराज इंद्रकी शास्त्रोक्त तपश्चर्या किया। तीन मास बीतनेपर इंद्रने दर्शन दिया और कहा--"जो इच्छा हो सो वर माँग। जडभरत सुनकर हँसा और कहा--हे इंद्र ! जो तुम दयालु हुए हो तो कहो मुझ वर लेनेवालेका क्या स्वरूप है ? और तुम वर देनेवालेका क्या स्वरूप है वर कहांसे दोगे ? और किसके बलसे वर दोगे ? तुम्हारी हमारी आकृति तो समान ही हैं तुम उपास्य वर देनेवाले, हम उपासक वर लेनेवाले यह विलक्षणता कैसे है ? इन्द्रने कहा--हे जड-भरत ! मेरे निमित्त तूने कठिन तप किया है; अब तू पूछता है तू कौन है--परन्तु मैंने सुना था कि, जडभरत परम हंस है पर देखा तो परम हंस और भरत छोड़कर जड देखा क्योंकि, जडपदार्थ न आपको जानता है न परको। हे जडभरत ! "मैं वर लेनेवाला कौन हूँ, तू वर देनेवाला कौन है" यह स्फूर्ति अन्तर जिस करके सिद्ध होती है सोई तेरा मेरा स्वरूप हैं तिस स्वरूपको मैं जाननेकी न्याईं जानता हूँ, तू नहीं जानता, इसीसे-तू उपासक वर लेनेवाला है और मैं वर देनेवाला उपास्य समर्थ हूँ।

हे जडभरत ! तेरा पूछना ऐसा है जैसे-घटाकाशसे घटाकाश पूछे, जैसे--समुद्रके तरंगसे तरंग पूछे, जैसे अग्निका चिनगारा अग्निके चिनगारेसे पूछे और जैसे--स्वप्न नर स्वप्न नरसे पूछे सो सब अयोग्य है काहेते ? सर्व प्रकार करके पूछनेवालेका तथा जिससे पूछता है, तिन दोनोंका एकही स्वरूप है उपाधि दृष्टिसे भी और उपहित नाम उपाधिवाले आत्माकी दृष्टिसे भी "तू कौन है मैं कौन हूँ ? ऐसा पूछना वहां होता है, जहाँ विलक्षणता होती है, विलक्षणता विना इस प्रश्नका पूछना मूर्खता है। आपको तूने क्या पंचभूत रूप जाना है वा चैतन्य रूप जाना है, दृश्य वा द्रष्टारूप, सत्य वा असत्यरूप, कार्य वा कारण रूप जाना है, वा कल्पित वा अधिष्ठानरूप जाना है अथवा अन्यको तूने पंचभूतसे विना जाना है वा चैतन्यसे विना जाना है वा दृश्य द्रष्टासे विना वा कल्पित वा अधिष्ठानरूप विना वा कार्य कारणसे विना वा सत्य असत्यसे विना देखा है, जो पूछता है मैं कौन हूँ तथा तू कौन है ? हे बुद्धिखोये ! जान जो मैं ही हूँ, सर्व रीतिसे सर्व सृष्टि मेरा ही स्वरूप है अन्यथा नहीं, पूर्व कहे जलतरंगादिक दृष्टांतकी न्याईं हे जडभरत ! सन्तोंका संग कर जो अपने स्वरूपको जाने। जडभरतने कहा--उपदेश करो। इंद्रने कहा- उपदेश यही है कि, कल्पित नामरूप त्यागके अपने सहित सर्व नारायण जान। जैसे समुद्रके तरंगका। उपदेश यही है कि, नामरूप त्यागके, आप सहित सर्व तरंगोंको जलरूप जाने, जैसे चीनीके बनाये जडभरतको स्वरूपकी प्राप्तिका उपदेश यही है कि, आप सहित सर्व खांडके खिलौनोंको चीनीरूप जानो इतना सुनकर जडभरत तूष्णीं भया।

तिसी कालमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव देवतों सहित वहां आये। ब्रह्माने कहा--हे जडभरत ! कुछ आत्म निरूपण

कर, तूष्णीं मत हो ! जडभरतने कहा--आत्मनिरूपण त्रिपुटी भ्रम विना होता नहीं, मुझ अद्वैत आत्मामें त्रिपुटी भ्रम है नहीं तो कैसे निरूपण करूँ ? ब्रह्माने कहा–तुझ चैतन्य आत्मा अधिष्ठानमें यह कल्पित त्रिपुटी नहीं तो किसमें है ? अधिष्ठान विना कल्पितकी प्रतीति होती नहीं इसलिये इस कल्पित नाम रूप जगत्का तू ही चैतन्य अधिष्ठान है, तुझ चैतन्यते पृथक् इस कल्पितका अधिष्ठान नहीं । जैसे कल्पित मनादि भूषणोंका अधिष्ठान सुवर्ण आत्माही है अन्य नहीं, हे साधु दृष्टि करके देख, तुझ चैतन्य अधिष्ठान विषे, कल्पित नामरूप संसारकी प्रतीति होते हुए भी तुझ चैतन्य अधिष्ठानका विगाड कुछ नहीं. जैसे सदोष नेत्रवाले पुरुषके रज्जुमें सर्पकल्पना करनेसे रज्जु विषसहित नहीं हुई निर्विकार ज्योंकी त्यों है क्योंकि, वास्तवसे रज्जुमें सर्पका अभाव है जैसे--स्वप्न प्रपंचकी प्रतीति होते भी स्वप्नद्रष्टाको बोझ नहीं. है काहेते ? जिस मनसें नामरूप कल्पा है उसी मनको प्रतीति होती है अन्यको नहीं । अधिष्ठानने नामरूप प्रपंच कल्पा नहीं तिस अधिष्ठानको नामरूप प्रपंचकी प्रतीति भी नहीं होती परतु नामरूप पदार्थोंकी कल्पनाका अधिष्ठान स्वप्नद्रष्टा ही होगा अन्य नहीं । ताते हे जडभरत ! आत्मनिरूपण करनेसे तुझ चैतन्य आत्माकी टांगडी नहीं टूटती भय मत कर । हे जडभरत ! जैसे किसीने मानसिक कल्पना करके तेरे शीशपर पर्वत रक्खा परंतु कहो तुझको उस पर्वतका बोझ लगेगा कि नहीं ? लगेगा. जो तू परकी कल्पनाके पर्वतका शीशपर बोझ माने तो तेरी बुद्धि हँसने योग्य है । तैसे ही आत्मनिरूपण करनेवाला और तिस निरूपणमें गुण दोष विचारनेवाला और है, श्रवण करने वाला श्रोतेंद्रिय है देखनेवाला और है इत्यादि संघातमें

सर्व इंद्रियोंके व्यवहारकी भिन्नभिन्न कल्पना होनेसे तुझ असंग निर्विकार निर्विकल्प स्वमहिमामें स्थितको क्या पीडा है ? उलटा आत्मनिरूपण करना तेरे आगे मनादिक नटोंका नाटक है । हे जडभरत ! तू इन मनादिक नटोंके नाटकका तमासा देखनेवाला आपको जान आप नाटकमें नटरूप मत हो नाटकका कर्ता भी आपको मत मान तथा नाटकरूप भी आपको मत मान, हे जडभरत ! यह मनादिक आप अपने व्यवहारमें प्रवृत्त होते हैं और इन व्यवहारोंमें हानि लाभ भी इनहीको होना है तुझ विकार-रहित साक्षी आत्माकी यह मनादिक गरीब कछु हानि नहीं करते, तू नाहक इनसे राग द्वेष मत कर । तू अपने महत्वको देख, इनको संताप मत कर, तेरे लाखों यत्नोंसे भी इनके व्यवहारकी निवृत्ति नहीं होगी । हे जडभरत ! संतापभी देनेवाला मन ही है और लेनेवाला मन ही है "संतापके देनेवालोंका साक्षी भूत जो मैं चैतन्य आत्मा हूँ मेरा क्या अपराध है" ऐसे निश्चय कर ।

जैसे-अंगरेजी सरकारने इस हिंदुस्तानके बन्दोबस्त वास्ते चार हातोंका संकेत कल्पना किया है तिन चार हातोंके अभिमानी मर्यादाके पालक चार लाट मुकर्रर किये हैं प्रजासहित तिन चारों छोटे लाटोंके ऊपर सत्यवादी न्यायकारी निर्लोभी धर्मात्मा धर्मपालक अलौकिक बलवान् एक बड़ा लाट मुकर्रर किया है चार लाटोंसहित सर्व प्रजा जिसकी आज्ञामें स्थित है परंतु सर्व प्रजा भिन्न भिन्न आप अपने नीच ऊँच व्यवहारमें निरंतर संस्कारोंके लिये बलात्कारते स्थित है, आप अपने संस्कारके अनु-सार ही तिन सर्व प्रजाकी हानि, लाभ, सुख, दुःख तथा अपने अपने व्यवहारमें स्वाभाविक हुआ करता है । प्रजाके दुःखकी निवृत्ति वा सुखकी प्राप्ति वास्ते कायदा शास्त्र अनुसार

बना दिया है, तिसको धारण करनेवालेको लौकिक व्यवहारमें सुख होता है; न करनेवालेको दुःख होता है परन्तु बलात्कारसे (बड़े लाट) अर्थात् गवर्नमेंट सरकार प्रजाको यह नहीं कहती कि, तुम यह व्यवहार करो वा न करो; इस व्यवहारमें राग द्वेष करो वा न करो, इसमें तुमको हानि लाभ होगा वा न होगा सुख दुःख इस व्यवहारमें तुमको होगा वा न होगा इत्यादि पूर्वोक्त लाट वा सरकार अपने स्वस्थानमें सुखपूर्वक स्थित हैं, यदि बडे लाट (वा सरकार) गरीब प्रजाके साथ लड़ाई भिड़ाई करेंगे तो सर्वके अधिपति पनेका सुख (आरामदारी) महत्त्वपना, जाते हुए की न्याई जाता रहेगा तथा तुच्छपना सिद्ध होगा, प्रजाके भिन्न भिन्न व्यवहारके दूर करनेका तथा एकत्व करनेका यत्न करनेसे भी सर्व प्रजाके भिन्न भिन्न स्वस्व व्यापारमें प्रवृत्ति निवृत्तिकी बाधा न होगी ईश्वरकी नियति आदि ऐसे ही हुई है परन्तु गवर्नमेंटकी हुकूमत तो सब प्रजापर है, हुकूमतको अन्यथा कोई कर सकता नहीं फिर गरीबोंसे राग द्वेष कर निजमहत्त्वतारूप इज्जत क्यों खोवे निष्काण क्यों सतावे तैसे पञ्चभूतोंका कार्य रूप जो यह मनुष्य देह है सो हिंदुस्तानके समान है, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय अवस्था चार हातोंके समान हैं, समष्टि, व्यष्टि, स्थूल, सूक्ष्म, करण महाकरण शरीर अथवा उनकी जाग्रत्, स्वप्न, सुपुप्ति, तुरीय चारों अवस्था चारों हातोंके समान हैं । अथवा सब जग्रत्रूप ओंकारके अकार, उकार, मकार, अर्द्धमात्रारूप चार मात्रा हैं सोई चार रूपहाते हैं । पूर्वोक्त जाग्रतादि अवस्थाके अभिमानी, विश्व, तैजस, प्राज्ञ प्रत्यगात्मा चार छोटे लाट हैं वा जाग्रतादिक अवस्थाके व्यष्टि अभिमानी विश्वादिकोंसे अभिन्न, वैराट हिरण्यगर्भ, ईश्वर और ईश्वर

साक्षी समष्टि अभिमानी चारों छोटे लाटोंके समान हैं। दश इन्द्रियें, पंच प्राण, पंच उपप्राण चतुष्टय अंतःकरण, वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती, परा चारप्रकारकी वाणी, पच्चीस वा एकसौ पच्चीस वा सत्ताईस आदि प्रकृति, सत, रज, तम गुणादि प्रजारूप माया अज्ञान प्रकृति, प्रधान, अविद्या इत्यादि नामवाली माया हिंदुस्तानकी पृथ्वीरूप है। गवर्नमेंट लाट स्थानी केवल चैतन्य मात्र तू है। तुझ निर्विकल्प निर्विकार चैतन्य लाटकी सत्ता स्फूर्तिसे ही मनादिक सर्व प्रजाका व्यवहार सिद्ध होता है यह कायदा है वा ऐसे जान।

जाग्रतादि चार अवस्था चार हाते हैं, तदभिमानी चार चीफ कमिश्नर हैं, शब्दादि विषय चौकीदार हैं २५ प्रकृति प्रजा हैं, इंद्रिय तहसीलदार हैं, तदभिमानी सूर्यादिदेवता डिपुटी कमिश्नर हैं, चतुष्टय अन्तःकरण कमिश्नर हैं, तदभिमानी चन्द्रमादि देवता सेक्रेटरी हैं, प्राण डाक है, शबलब्रह्म मुल्की लाट है, वेद कायदा है और शुद्धब्रह्म मलकाविक्टोरिया है, सो तू है, सर्व चक्षु मनादिक प्रजाका तथा तिनके तिनके रूप दर्शनादिक, संकल्प विकल्पादिक, समाधि विक्षेपादिक सर्व धर्मोंका स्वमहिमामें स्थित तुझ शुद्ध चैतन्य मलकाको स्पर्श भी नहीं होता। हे जडभरत ! तू चैतन्य मलका; नाहक मन चक्षुआदिक प्रजाके साथ क्यों रागद्वेष करता है। मन विक्षेपवान् न होवे, एकाग्र होवे, यह बुद्धि भला निश्चय करे बुरा निश्चय न करे चित्त परमेश्वरका ही चितवन करे अन्य न करे, मिथ्याहंकार न होवे, सत् अहंकार होवे, चक्षु अच्छे रूपको देखें, बुरे रूपको न देखें इत्यादि अन्य इंद्रियादि प्रजाके धर्मनको भी जानलेना। तू निश्चय सत-न्याय पूर्वक सोच देख, भ्रमविना तुझ चैतन्यका तो बुरा

भला शुभ अशुभ संकल्पविकल्पादि स्वभाव वह हुआ, प्रजाकाही हुआ । यदि बुद्धि आदिक भले पदार्थोंका निश्चय करे वा समाधि करे बुरे पदार्थका निश्चयादिक तथा विक्षेपादिक न करे तो बुरे पदार्थोंका निश्चय वा विक्षेपादिक बुद्धि विना कौन करे सो कह । तुझ आत्माका संकल्पादिक धर्म नहीं तथा अन्य इंद्रियादिकोंका भी धर्म नहीं तो मनादि बिना विक्षेपादि निश्चय व्यवहार कैसे होगा किंतु नहीं होगा । तैसे--चक्षु आदिक भलेही रूपादिकोंको देखें तो बुरे रूपादिकोंको कौन देखे चक्षुआदिकोंको बिना सो कह काहेते ? दर्शनादि व्यवहार चक्षु बिना अन्यका है नहीं । यद्यपि हे जडभरत ! तुझ चैतन्य निर्विकार साक्षी, आत्माने ही कल्पित मनादिक प्रजाका हर्षशोकादिक भिन्न भिन्न यथायोग्य स्वभाव रचा है तथापि मनादिक प्रजाके वर्तमान होते तिनके धर्मोंका अभाव वा अन्यथा तुझ (रचक) से भी नहीं होगा । जैसे--स्वप्नके मन चक्षु आदिक इंद्रिय भी तथा तिन मन चक्षु आदिक इंद्रियोंके धर्मरूपादिक विषय भी स्वप्न द्रष्टानेही यथायोग्य भिन्न भिन्न कल्पना किये हैं परंतु स्वप्न पदार्थ रचक, स्वप्न द्रष्टासे भी स्वप्न पदार्थोंका वा तिनके स्वभावका स्वप्न कालमें अन्यथा वा अभाव कदाचित् भी नहीं हो सकता यदि अन्यथावत् अन्यथा करेगा तो एक अपने संकेतका आपही भंग दोष, दूसरा सर्व पदार्थोंके व्यवस्थाका भंग दोष, तीसरा अपनी प्रतिज्ञाका भंग दोष अर्थात् सत्यवादितादिक भंग दोष, तथा अपनेमें भ्रम विप्रलिप्सादि दोषकी भी प्राप्ति होगी, यहभी नहीं है कि, मनादिक दृश्य स्वप्न पदार्थोंके पूर्व स्वभाव वर्तनेसे स्वप्न द्रष्टाकी हानि है और मनादिकोंके अन्यथा स्वभाव करनेसे स्वप्न द्रष्टाको लाभ है, तातें स्वप्न

द्रष्टाको उनके अन्यथा स्वभाव करनेमें अर्थात् विषयोंमें लंपटमन इन्द्रियोंके स्वभावोंको उलटायके सज्जनोंवत् अति मनकी वृत्तिको अंतर्मुख स्वरूपाकार करनेमें यत्न करना क्योंकि स्वप्नद्रष्टाकी सर्व प्रकार करके मनादिक दृश्य स्वप्न पदार्थ किंचिन्मात्रभी हानि लाभ नहीं कर सकते। तैसेही स्वप्नद्रष्टाकी न्याईं तुझ चैतन्यसाक्षी आत्माकी यह मनादिकजाग्रतादिकमें वर्तनेवालेपदार्थ किसी प्रकार करके किंचित् मात्र भी हानि लाभ नहीं कर सकते। जैसे अनेक प्रकारके अन्धकार आदिक पदार्थ होने तथा मिटानेसे आकाशकी हानि लाभ नहीं कर सकते इसी प्रकार हे जडभरत! बुद्धि आदिकोंके आत्मनिरूपण करनेसे तुझ चैतन्य आकाशका क्या बिगडता है ? अर्थात् कुछ नहीं बिगडता, जो बिगडता माने तो यही भ्रम है। इससे निःसंग होकर आत्मनिरूपण कर।

जडभरतने कहा-हे ब्रह्मा ! तू कौन है ? जगत्की उत्पत्ति कैसे करता है ? ब्रह्माने कहा साक्षात् मायाके कार्य्यभूत पंचभूतोंका कार्य्यरूप यह संघात मैं नहीं किन्तु जिससे इस संघातकी कथा संघातके व्यवहारकी सत्ता स्फूर्ति होती है सो चैतन्य आत्मा मैं हूँ, अन्य नहीं। हे जडभरत! जैसे तू स्वप्नमें स्वप्न पदार्थोंमें मट्टी, गारा, पत्थर आदि कहींसे लेकर तथा अस्थि, मांस रुधिर, मेदा, मज्जा, वीर्यादि सप्तधातु कहींसे लेकर तथा कहींसे पृथिवी आदि पंच भूतोंको लेकर वा स्त्री पुरुषके संयोगकर नहीं रचता। सूक्ष्म स्वप्न नाडीमें स्वप्न पदार्थोंके योग्य अन्यदेश काल वस्तुकारण भी नहीं हो सकते, तात्पर्य यह है कि और किसी रीतिसे भी तू स्वप्नमें स्वप्न पदार्थोंको नहीं रच सकता, निद्रा, दोष संयुक्त केवल फुरनेसे ही रचता है। तैसेही मैं चैतन्य मनादि-

कोंका साक्षी आत्मा कोई मट्टी, गारा, पत्थरादिक कहींसे अन्य सामग्री लेके इस जगत्को नहीं रचता हूँ; किन्तु केवल मायारूप स्फुरनेसे ही इस नामरूप जगत्को मैं रचता हूँ, फुरनेसे इसकी उत्पत्ति होनेके कारण यह जगत् मिथ्या है; यद्यपि वर्तमान कालमें स्त्री पुरुषके संयोगसे पुत्रकी उत्पत्ति, बीजसे वृक्षकी उत्पत्ति इत्यादि यथायोग्य कारणोंते कार्यकी उत्पत्ति प्रतीत होती है केवल फुरने करके इस नामरूप जगत्की उत्पत्ति प्रतीत होती नहीं; तथापि निद्राके प्राप्त होते ही स्वंप्नमें झटसे ही एक क्षणमें पुत्र पौत्र सहित आपको देखता है तथा बाग; बगीचे पर्वत, नदियां, देश, काल देखता है सो तीस वा चालीस वर्षमें होनेवाले पुत्र पौत्र एक क्षणमें किस स्त्रीते उत्पन्न न होते हैं तथा किस बीजसे वृक्ष पर्व-तादि उत्पन्न होते हैं तथा किस स्त्री पुरुषके संयोगसे पुत्र पौत्र उत्पन्न होते हैं सो कह, किन्तु निद्रारूप अविद्या स्त्रीबीजादि करके ही पूर्वोक्त पदार्थ उत्पन्न होते हैं, अन्य किसी कारणसे नहीं उत्पन्न होते। पश्चात् जागनेपर निद्रा-रूप अविद्यामें तिन पदार्थोंकी लीनता होती है, ताते निद्रारूप अविद्या द्वारा स्वप्नद्रष्टा चैतन्यही दृढ फुरणे करके कार्य कारणरूप प्रतीत होता है, वास्तवते स्वप्न प्रपंच आदिमें भी नहीं तथा जागनेपर अंतमें भी नहीं रहता। मध्यमें अद्वियासे अनेक प्रकारकी प्रतीति होते हुए भी आदि अन्तकी न्याईं मध्यमें भी अत्यंत अभावही स्वप्न प्रपंचका जानना, तैसेही जाग्रत् प्रपंचभी जानना बल्कि स्वप्नप्रपंचतेभी जाग्रत प्रपञ्च अति तुच्छ है, काहेते ? स्वप्न प्रपञ्चके यत्किंचित् निद्रारूप अविद्या सहित देश-कालादिक कारण पाये जाते भी हैं परन्तु देशकालादिक भेदरहित केवल सच्चिदानंद निजात्माके अज्ञानसे इस

जाग्रत् जगत्की प्रतीति होती है रज्जुके अज्ञानसे सर्प प्रतीतिवत्, ताते अति तुच्छ है। सिद्धांत यह है कि अस्ति भाति प्रियरूप आत्माते भिन्न जो नाम रूप जगत्की प्रतीति है सोई स्वप्न है, सोई मिथ्या दृष्टि है; सोई माया है, जैसे--मधुरता, द्रवता, शीतलतारूप जलसे भिन्न जो फेन, बुदबुदा, तरंगादिक नाम रूपकी प्रतीति है सो यथार्थ दृष्टि नहीं किंतु मिथ्यादृष्टि है, जब मधुरता द्रवता, शीतलता रूप जलकी दृष्टि होती है तब तरंगादिक नामरूपकी अत्यन्ताभाव प्रतीति होती है, शेष केवल जल ही प्रतीत होता, है, सोई यथार्थ दृष्टि है। तैसेही जब अस्ति, भाति, प्रियरूप निजात्माकी दृष्टि होती है तब पृथ्वी आदिक कल्पित नामरूप जगत्का अत्यन्तभाव प्रतीत होता है, शेष अस्ति भाति प्रियनिजात्माही भासता है सोई यथार्थ दृष्टि है। जाग्रत् स्वप्नका तथा व्यावहारिकप्रातिभासिक पदार्थोंका भेद करना तथा कथन करना यहाँ सिद्धांत नहीं किंतु यह कथन चिन्तन पूर्वोक्त सिद्धांतका उपयोगी है। हे साधो ! जैसे स्वप्नमें ही रज्जु आदिकों विषे सर्पादिक प्रातिभासिक प्रतीत होते हैं तथा घटादि व्यवहार प्रतीत होते हैं इसी प्रकार स्वप्नमेंही जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति मरण समाधि विक्षेपादिक बुद्धिकी अवस्थाभी प्रतीत होती है, तथा बंध मोक्ष शास्त्र गुरु समुद्र नदियां पर्वत हस्ती घोडा घटपटादि देश कालादि कार्य कारण भाव तथा अनेक प्रकारके पदार्थ अनादि जाग्रतवत् प्रतीत होते हैं परंतु स्वप्नमें स्वप्नांतरके पदार्थोंको तथा रज्जु आदिकोंमें कल्पित सर्पादिकोंको मिथ्या नाम प्रातिभासिक जानता है अर्थात् प्रतीत होते हैं और घटपटादिक व्यावहारिक नाम सतरूप करके व्यवहारके सत् प्रतीत होते हैं तथा देश कालादिक सर्व

पदार्थोंका कारणरूप करके प्रतीत होते हैं और सर्वपदार्थ कार्यरूप करके प्रतीत होते हैं गुरु, शास्त्र, बंधकी निवृत्ति, मोक्षकी प्राप्ति करनेवाले दीखते हैं तथा आपको अकृतार्थ जानता है, कोई पदार्थ अनादि कोई सादि प्रतीत होते हैं तथा राजा, रंक, ज्ञानी, अज्ञानी, जीव ईश्वर जाग्रत्वत् प्रतीत होते हैं। परंतु अविद्याके परिणाम चैतन्यके विवर्त निद्रा दोषसे एक क्षणमात्रमें सर्वकी प्रतिभा प्रतीत होनेसे तिन स्वप्न पदार्थोंमें कार्य कारण भाव तथा प्रातिभासिक व्यावहारिक नाम सत् असत् विभाग (भेद) नहीं परंतु किसी पदार्थमें सत्पना, किसीमें असत्पना, किसीमें कारणपना, किसीमें कार्यपना, किसीमें अनादिपना, किसीमें सादिपना इत्यादि प्रतीत होते हैं, सो यह सर्व अविद्याकी महिमा है, पदार्थोंमें भेद नहीं तैसेही दार्ष्टांत जाग्रतमें भी जोड लेना। हे साधो ! यहां जाग्रत् स्वप्नका भेद नहीं तात्पर्य यह कि, असम्यक् दर्शनका नाम स्वप्न है, सम्यक् दर्शनका नाम जाग्रत् है। हे साधो ! स्वप्नकी अपेक्षासे यह जाग्रत् है इस जाग्रत्की अपेक्षासे वह स्वप्न है, तुमही कहो जाग्रत् कौन हुआ और स्वप्न कौन हुआ तात्पर्य यह कि, न कोई जाग्रत है, न कोई स्वप्न है, किन्तु आप अपने वर्तमानमें दोनों जाग्रत् हैं पर कालमें दोनों स्वप्न हैं, यदि जाग्रतादिकोंका स्वरूप कहैं भी तो बाहिर फुरनेका नाम जाग्रत् है और अंतर फुरनेका नाम स्वप्न है तथा दोनोंसे रहित निज कारणमें लीन वृत्तिका नाम सुषुप्ति और तीनों वृत्तिके साक्षीका नाम तुरीय है। ताते हे बुद्धिमान् जडभरत ! व्यष्टि जीव वा समष्टि ईश्वरके फुरनेमात्र करके ही इस नामरूप जगत्की उत्पत्ति है, कोई मट्टी गारेसे ईश्वर वा जीवने बनाया नहीं, इसीसे

मिथ्या है। जैसे कामधेनु तथा कल्पतरु आदिकोंके नीचे खान, पान, पुत्र, स्त्री आदिक सर्व प्रकारके पदार्थोंकी पुरुषको संकल्पमात्रसे ही प्राप्ति होती है सो तू विचार देख कि, अपरोक्ष कामधेनु और कल्पतरुके पास, खान पानादिकोंके योग्य प्रत्यक्ष पदार्थ धरे भी नहीं हैं तथा न कहींसे ले आते हैं अपने शरीरसे भी निकालकर नहीं देते। तात्पर्य यह कि, तिन सब पदार्थोंका और कोई कारण मालूम नहीं देता। ताते यह सिद्ध हुआ कि, सत् संकल्प चैतन्य पुरुष ईश्वर आदिने यही संकल्प किया है कि, पुरुष कर्मवशसे कामधेनु वा कल्पतरुनीके स्थित होकर जिन पदार्थोंका संकल्प करे सोई पदार्थ तिस पुरुषको अपरोक्ष प्राप्त होवें, यह फुरणा ही कारण है। तपस्वी पुरुषोंके वर शापकी सिद्ध पुरुषोंके संकल्प सिद्ध पदार्थोंकी और मायावी पुरुषोंकी भी यही रीति जान लेनी। ताते हे साधो ! यह नाम रूपात्मक जगत् फुरणेमात्रसे ही प्रतीत होता है, अन्य इसका स्वरूप नहीं। सारांश यह कि, तू चैतन्य, सूर्य वा लालही अपनी महिमामें स्थित है फुरणारूप जगत् तुझते भिन्न नहीं। जैसे सूर्यकी किरणें सूर्यते भिन्न नहीं लालकी दमक लालते भिन्न नहीं। जो ईश्वरादि सत् सामग्रीसे संसार सत् मानोगे तो "सत्की प्राप्तिकी इच्छामात्रसे संसारको त्यागे" यह वेदका कहना निष्फल होगा। दूसरा--सतकी प्राप्तिवास्ते यत्न निष्फल होगा। काहेते ? सत संसार सदा जीवोंको अपरोक्ष (यत्न विना) प्राप्त है, तिसकी प्राप्ति वास्ते यत्न निष्फल है और सतकी निवृत्ति भी नहीं होती।

ब्रह्माने कहा- हे जडभरत ! तेरा स्वरूप क्या है ? जडभरतने कहा -ब्रह्मा विष्णु, शिवादिक नामरूप जिस-

कर सिद्ध होते हैं सोई मेरा स्वरूप है। विष्णुने कहा--मैं सर्व नामरूप जगत्में व्यापक हूँ, जैसे--सर्व नामरूप भूषणोंमें सुवर्ण व्यापक होता है। जडभरतने कहा--मुझ चैतन्यके प्रकाशसे ही तुम ब्रह्मा विष्णु शिवादिक सर्व नामरूप प्रकाश राखते हो, तुम केवल वृथा ही अभिमान करते हो कि हम इस जगत्की उत्पत्ति, पालना, संहार करते हैं, जैसे रज्जु अधिष्ठानके ज्ञान अज्ञानसे ही सर्प, दण्ड मालादिक पदार्थोंकी उत्पत्ति, पालन, संहार होते हैं सो ज्ञान अज्ञान, तम प्रकाश मुझ चैतन्य सूर्यमें नहीं है इसलिये भ्रम है। तैसे तुम सहित भ्रमरूप इस संसारकी मुझ चैतन्य अधिष्ठानके ज्ञान, अज्ञानते ही प्रवृत्ति निवृत्ति होती है ताते तुमको भ्रम हुआ है, कि, "हम शरीर करके जगत्की उत्पत्ति आदि करते हैं।" शिवने कहा--हे जडभरत! तुझको जडभरत क्यों कहते हैं? जडभरतने कहा--जडवस्तु फुर्णे रहित होती है इस लिये फुर्णेते रहित होनेसे मुझ चैतन्यको जड कहते हैं सर्व नामरूप जगत्को, अपने अस्ति, भाति, प्रिय, सच्चिदानन्द रूप करके भर रहा हूँ इससे मुझ चैतन्यको भरत कहते हैं। जैसे अपनी मधुरता, शीतलता द्रवतारूपसे जल सर्व नामरूप फेन बुदबुदे तरंगादिकोंमें भर रहा है।

जडभरतने कहा--हे ब्रह्मा शिवादिको! तुम्हारा क्या स्वरूप है? शिवने कहा-यह जो गङ्गाधर, अर्धाङ्गी गिरिजा सहित तथा सर्प रुण्डमाला सहित, त्रिनेत्र, नीलकंठ, भूत पिशाच सेना सहित सगुण उपासक भक्तजनोंको अतिप्रिय, शान्ति और मंगलकी देनेवाली कोटि कामदेवसे भी अतिसुन्दर, दूधके फेन तुल्य गौर, यह मेरी मूर्ति, जगत् सहित नामरूप मायामात्र है वा पंचभूतरूप है; मुझ कल्याण स्वरूप चैतन्य व्यापकका

यह नामरूप मूर्त्ति स्वरूप संघात वास्तव स्वरूप नहीं। किन्तु, जैसे मैं चैतन्य, इस असत्, जडदुःखरूप (मूर्ति) संघात विषे, सच्चिदानन्द स्वरूपसे, संघातके सर्व व्यवहारका साक्षी, द्रष्टा प्रकाशक, असंग आत्मा, प्रेरक, निर्विकार, निर्विकल्पस्वरूपसे स्थित हूँ। तैसेही--सर्व नामरूप संघातोंमें पूर्वोक्त मैं चैतन्यसाक्षी आत्मा एक रूप करके स्थित हूँ वा सर्व नामरूप कल्पित जगत् ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यन्त विषे मैं अधिष्ठानही स्वमहिमामें स्थित हूँ, द्वैत नहीं। तात्पर्य यह कि, निर्विकल्प, निर्विकार, साक्षी, असंग, सच्चिदानन्दादिक, अधिष्ठानके विशेषण तथा कल्पित, नामरूपके विशेषण दृश्य मिथ्यात्वादिक तथा सत्यत्वादिक मुमुक्षुके बोधवास्ते वाचारम्भणमात्र प्रतीत होते हैं वास्तवसे मुझ, अस्ति, भाति, प्रिय रूप आत्मामें नहीं। जैसे--सुवर्ण और भूषणोंका भिन्न भिन्न स्वरूप कहना, पुनः सुवर्ण भूषणोंकी एकरूपता कहनी सो केवल बालकोंके (स्वमहिमा स्थित सुवर्णके) बोधवास्ते वाचारम्भण मात्र है वास्तवसे नहीं। ऐसी अमृतरूपी, पक्षपातसे रहित, यथार्थ महादेवकी गम्भीर वाणीको सुनकर, सर्व अपने स्वरूपमें स्थित हुए ब्रह्मा विष्णु आदिक भी श्लाघा करने लगे।

पुनः विष्णु यही कहने लगे--हे साधो ! शंख, चक्र, गदा, पद्म, लक्ष्मी सहित, सर्व भूषणोंसे भूषित, मोर मुकुटवाली, चतुर्भुज, श्यामसुन्दर, मूर्ति मेरा स्वरूप नहीं। किंतु--मैं साक्षी चैतन्यव्यापक सर्वात्मा हूँ। तैसेही ब्रह्मानेभी कहा कि, दृश्यमान मूर्ति मैं नहीं, किन्तु इस संघातका मैं साक्षी चैतन्य आत्मा हूँ। इसी प्रकार तिस सभामें यही निश्चय हुआ कि; देहादिक संघात हमारा स्वरूप नहीं किन्तु यह देहादि संघात माया का कार्य

होनेसे मिथ्या है तथा दृश्य है और हम इस संघातके साक्षी द्रष्टा चैतन्य आत्मा सत्त हैं । हे मैत्रेय ! तू भी यही निश्चय कर कि, मैं यह पंचभौतिक देहादि संघात नहीं । किन्तु देहादिकोंका साक्षी, चैतन्य, निर्विकार, निर्विकल्परूप, स्वतःसिद्ध अकृत्रिमदेव, ज्ञानस्वरूप हूँ । हे मैत्रेय ! वह संत जो ध्रुवके पास गये थे सो अपना स्वरूपही जानकर गये थे । मैत्रेयने कहा--स्वरूप तो एक है, एक विषे आना जाना कैसे होता है ? पराशरने कहा--आना जाना भी स्वरूपविषे होता ही है । इसीपर एक कथा सुन ।

पराशर तथा वामदेवका संवाद

एक समय वामदेव स्वाभाविक वनविषे एक हाथमें दंड और एक हाथमें कमंडलु लिये विचरता था । मैं देखकर हँसा और पूछा हे रूप । मेरे तुझे किसीसे राग द्वेष तो है नहीं; दंड क्यों हाथमें लिया है ? वामदेवने कहा--सच्चिदानंदस्वरूप आत्माते पृथक् जाननेवाली विपरीत बुद्धिरूपी राक्षसीके दूर करनेवास्ते दंड लिया है, वा अधर्मविषे प्रवृत्त जो अशुद्ध मन है, तिसको अन्तर शुद्धमनरूप दंडकर वेदरीति अनुसार, अधर्मसे हटाकर धर्ममें जोडता हूँ, जिससे मनका उपशम हो वे अन्तर उपरोक्त दंड हैं-बाहिरदंड तो तिस अंतर दंडका लखायक है तथा तेरे नाशवास्ते है क्योंकि; हे सर्वशिव ! राग द्वेष तथा दंडता शिवमें तू कलपता है, तेरी विपरीत बुद्धि होनेसे तुझकूं दण्डदेना योग्य है । जैसे--धर्मात्माको कोई विपरीतबुद्धिवाला कलंक लगावे तिसको देना योग्य है तैसे मन, वाणी अगोचर बुद्धि आदिकोंके साक्षी, द्रष्टा आत्मामें तू द्वैत कलपता हैं इससे तुझको दंड देना योग्य है । मैंने कहा- कर्तव्य विना यह आत्मा शिव कैसे होता है ?

वामदेवने कहा--हे पराशर ! शिवनाम कल्याणका है नामरूप अकल्याणका साक्षी, यह आत्मा स्वतः-सिद्ध शिवरूप है, कर्तव्यसे शिवरूप नहीं होता । जैसे घटादिकोंके व्यवहाररूपी अकल्याणसे रहित, घटाकाश स्वतःसिद्ध महाकाशस्वरूप है । जो कुछ कर्तव्य-करके प्राप्त होते हैं सो अशिव होते हैं, उनका कालांतर करके नाश होता है सत्त नहीं होते जैसे-रसायनद्वारा लोहा सुवर्ण होता है परन्तु कालांतर करके पुनः लोहेका लोहा हो जाता है । मैंने कहा--कमंडलु क्यों लिया है ? वाम-देवने कहा- भ्रांतिसिद्ध आत्मामें बंधकी निवृत्ति और मोक्षकी प्राप्तिवास्ते जो कर्तव्य, तिसको तथा गोविंद व्यतिरेक जो मनपर निश्चय है तिसको धोता हूँ अथवा कर नाम हस्तोंका है, जैसे हस्तोंका मंडल महान् मंड-लकी अपेक्षासे तुच्छ है तथा अपरोक्ष है, तैसे--संसार-रूप मंडलका अपने स्वरूपकी अपेक्षा, अपरोक्ष अत्यंता-भाव है तात्पर्य यह--मैं चैतन्य आत्मा निष्कर्तव्य हूँ यही कमंडलुका अर्थ है । मैंने कहा--जब सर्व शिव है तो शिवको धोता है क्यों ? वामदेवने कहा--जब सर्वशिव है तो धोवना अधोवना भी शिव है जैसे--हस्तीके पगमें सर्व पग समाते हैं तैसे शिव पदमें सर्व अर्थ समाते हैं । मैंने कहा--हे वामदेव ! तुम कहाँसे आये हो ? और कहां जाओगे ? वामदेवने कहा--न किसी दिशासे आया हूँ, न कहीं जाऊंगा क्योंकि, आकाशके समान पूर्ण हूँ, पूर्णमें आना जाना नहीं, अपूर्णमें ही आना जाना होता है. मैंने कहा--प्रत्यक्ष आना जाना देख पडता है; कैसे कहते हो "मुझमें आना जाना नहीं" । वामदेवने कहा--आना जाना, तपस्या करनी तथा खान पानादिक सर्व आत्मा ही है, द्वैत नहीं । जैसे पंचभूतोंके कार्यरूप इस देहावषे

आना जाना, सोना,जागना, खाना, पीना लेना, देना; सारांश यह कि सुख दुःखरूप भोगका भोगना प्रत्यक्ष देख पडता भी है. परन्तु विचार कर देखे जब सर्व दृश्य पदार्थ पंचभूतरूप उससे हैं तो आना जानादिक (दृश्य) से भिन्न कैसे होता है ? अर्थात् आना जानादिकभी पंचभूतरूप ही है। इससे आना जाना भी स्वरूपही है, जैसे-स्वप्न नरोंका आना जाना स्वप्नद्रष्टासे भिन्न मिथ्या प्रतीतिमात्र है, यथार्थमें तो स्वप्ननरों सहित तिनकी सर्वचेष्टास्वप्नद्रष्टारूप है । जैसे--तरंगादिकोंकी सहित तरंगादिकोंकी सर्व चेष्टा जलरूप है। हे मैत्रेय ! अब ध्रुवका वृत्तांत सुन । तिन संतोंमें एक मैं था एक दत्तात्रेय एक वामदेव तथा और भी अनेक संत थे। जब ध्रुवने संतोंको आकर दंडवत किया तब मैंने कहा--हे ध्रुव ! तूने जो जाना है कि ये संत हैं सो हम संत नहीं, जो हम संत होते तो तेरे समान अटलपदवी मांगते. हे ध्रुव ! जो देहादिक प्रपंच चलरूप है सो निश्चयकर अचल नहीं होता और जो अचलरूप आत्मा है सो चलरूप नहीं होता। इससे तू सोच देख दोनों रीतिसे अटल पदवी मांगना निष्प्रयोजन है, प्रत्येक निजस्वरूप आत्मा चलरूप देहादिक जगत्में स्थित भी सदा अचल रूप है और यह नाम रूप अटल पदवी सहित प्रपंच सदा चलरूप है यह अबाध्य अर्थ है । ध्रुवने कहा--तुम महान् सन्त हो। अवधूतने कहा--हमारे स्वरूपमें महानता अमहानता तथा संत असंतपना है नहीं । ध्रुवने कहा--तू कौन है ? अवधूतने कहा--जो तू है। ध्रुवने कहा मैं कौन हूँ ? अवधूतने कहा--जो मैं हूँ। ध्रुवने कहा--रूप तेरा क्या है ? अवधूतने कहा--जो रूप तेरा है। ध्रुव यह वचन सुनकर आश्चर्यवान् होकर तूष्णीं हुआ । अवधूतने कहा -तूष्णीं मत हो,

तूष्णीं अतूष्णीं होना मन और वाक्का धर्म है। ध्रुवने कहा--क्या करूँ वचन चलता नहीं। अवधूतने कहा- इसी कारणसे तूने अटल पदवी चाही थी कि, म बहुत काल-तक अटल रहूँगा हे ध्रुव! तू आप अटल अरु अटल पदवी चाही, क्या तुझको लज्जा न आई? हे मूर्ख! कभी तूने सुना है कि, आत्माका नाश होता है। अर्थात् आत्माका कभी भी नाश नहीं होता। जैसे घटाकाश घटादिकोंके नाश अचल विषे आपको अचल होनेकी इच्छा करे सो भ्रम है अथवा घटाकाश घटादिकोंके अचल होनेकी इच्छा करे सो भी भ्रम है। जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्न पदार्थों विषे आप अचल होनेकी इच्छा करे सो भी भ्रम है। जैसे-वृक्ष अपने होनेवाले फलफूल पत्तोंके अचल होनेकी इच्छा करे सो असम्भव है। यह देह अटल होनेकी नहीं कल्पप-र्यन्त यदि देह रहे भी अंतमें नाश है। हे ध्रुव! सामान्य पुरुष भी मलिनादि स्थानको शीघ्र ही त्यागना चाहते हैं क्योंकि, बीमारीका मलीन स्थान कारण है परन्तु इसके उलटा मल मूत्र रूप जो यह देह नरकरूप अति मलीन स्थान है तिसविषे तूने बहुत काल रहनेके वास्ते तप किया है। हे ध्रुव! महात्मा इस दुःखरूप देहके त्याग अनंतर किसी भी देहके धारणकी इच्छा नहीं करते परंतु तूने की है; इससे तू धन्य है; तेरी बुद्धि हँसने योग्य है। अब तुझको अनात्म देहमें आत्मबुद्धि और अशुचि देहमें शुचिबुद्धि और दुःखमें सुखबुद्धि, चल देहविषे अचलबुद्धि इत्यादि विपर्यय बुद्धिको तथा मैं सर्वसे बडा हूँ इस अहं-कारकी बीमारी होगी, तिसी बीमारीसे अनन्त कल्प-पर्यन्त (तू) दुःखको पावेगा। हे ध्रुव! मैं नहीं चाहता कि यह देह मेरा सदा रहे वा न रहे क्योंकि; मैं अविनाशी चैतन्य पुरुषहूँ मुझमें कर्तव्य नहीं तथा मेरा नाश नहीं,

मैं देहके रहने न रहनेमें एकरस हूँ । जैसे घटाकाश घटके रहने न रहनेमें एकरस है । हे ध्रुव ! अपनेसे कल्पित दृश्यपदार्थोंसे अधिष्ठान स्वतः सिद्ध बडा होता है, जैसे -स्वप्नद्रष्टा स्वप्नपदार्थोंसे, यत्न विना स्वतः सिद्ध बडा सत और अचल है, तिसको अचल बडाई वास्ते तप करना भ्रम है, तू सच्चिदानंद द्रष्टा चैतन्य, सत्य, अचल पुरुष इस नाम रूप कल्पित असत् जड दुःखरूप दृश्यप्रपंचसे स्वतः सिद्ध बडा तथा सच्चिदानन्द है, कर्तव्यसे नहीं हे ध्रुव ! जब ईश्वर तुझपर दयालु हुआ तो तूने क्या मांगा, विचार न किया कि, यह अटल पदवी तो ऐसी है जैसे किसी देशमें बडा ऊँचा निर्जन पर्वत होवे, तिसके शिखरपर एक मंदिर बना होवे तिस मंदिरमें पुरुष बैठा रहे--तैसे यह अटलपदवी है, इसमें क्या विशेषता है ? हे ध्रुव ! तू सच्चिदानंद स्वरूप आत्मा, देश, काल, वस्तु परिच्छेद रहित पूर्ण है, क्या तू अटल पदवी विषे नहीं था ? जो अटल पदवीकी चाहना करी । जैसे आकाश किसी ऊंचे पर्वत स्थित मंदिरमें बैठनेकी इच्छा करे सो भ्रम है, क्योंकि आकाश सब नीची ऊंची ठौरमें व्यापक (स्वभावसे ही है, यत्न करके नहीं । हे ध्रुव ! जैसे इस लोकमें अज्ञानी सर्व जीवोंको दुःख देनेवाले श्रोत्रादि इंद्रिय, मन और शब्दादिक पंच विषय शत्रु हैं तथा षट् उर्मी हैं, षट्भाव विकार हैं, अध्यात्मादि ताप हैं, कालके भयादि हैं । इन विषय इंद्रियके संयोग वियोगसे सुखःदुख होता है । अनिष्ट विषय इंद्रियके संयोगसे दुःख होता है. इष्ट विषय इंद्रियके संयोगसे सुख होता है । जैसे-न्यूनाधिकादि भावसंयुक्त पंच भूतक सृष्टि है, तैसेही सो अटल पदवी विषे भी शरीरके होते यह शत्रु तेरे संग ही रहेंगे अन्यथा नहीं होंगे, इससे अटलपदवा-

विषे क्या विशेषता हुई सो कहो ! नामरूप प्रपंच यहाँ भी है और तेरे अटल पदवीमें भी है तो विशेषता क्या हुई ? जो वैकुंठादिलोक अटल पदवीमें पूर्वोक्त नामरूप जगत् नहीं होता तो अटलपदवीकी इच्छा करनी भी ठीक थी परन्तु नामरूपवास्ते व्यर्थ अटल पदवीकी इच्छा तैंने की। हे ध्रुव ! सर्व दुःखोंसे रहित तू चैतन्य आत्मा ही अटल पदवी है; तुझ चैतन्यसे भिन्न अटल पदवी कोई नहीं; सर्व चल पदवी है। जैसे स्वप्नमें चल अचल पदवी प्रतीत होती है। तात्पर्य यह कि, किसी पदार्थकी बहुत काल स्थिति मालूम होती है, किसी पदार्थकी अल्पकाल स्थिति मालूम होती है परन्तु सर्व स्वप्नके पदार्थ क्षणमात्रमें होनेवाले होनेसे तथा समान कल्पित होनेसे तुच्छ ही हैं। एक स्वप्नद्रष्टा ही केवल अटल पदवी रूप है, अन्य नहीं। तैसे चलरूप घटपटादिकोंकी अपेक्षा कर, विष्णु करके दिया स्थान अटल पदवी है, तुझ अनादि अनन्त चिद्घनकी अपेक्षासे नहीं तथा मायाकी अपेक्षासे भी नहीं क्योंकि तेरी अटल पदवी मायाका कार्य है। ध्रुवने कहा अब स्वरूपको कैसे पाऊँ ? दत्तात्रेयने कहा–जिस मार्गमें तूने अटल पदवी पाई है उसी मार्गमें अपने स्वरूपको ढूंढ। ध्रुवने कहा–मार्ग बताओ। वामदेवने कहा–मार्ग स्वरूपके पावनेका यही है कि आप सहित सर्व गोविंद जान। ध्रुवने कहा–मुझको वैराग उपदेश करो। हे मैत्रेय ! मैंने कहा यही वैराग है कि जान मैं संघातरूप परिच्छिन्न ध्रुव नहीं तब तू नहीं तो परम वैरागका वैराग है। हे ध्रुव ! परिच्छिन्न अहंकारके अभाव हुए जो शेष पद रहता है, तिसमें मन वाणीकी गम नहीं जो मैं कहूँ। ध्रुवने कहा–मैं नहीं हूँ तो कौन है ? मैंने कहा–मैं हूँ। ध्रुवने कहा–जो तू है तो

मैं कैसे नहीं हूँ मैंने कहा-परमात्मा एक है दो नहीं, इससे मैं अहंत्वसे रहित अद्वितीय हूँ। ध्रुवने कहा--जो तू अद्वितीय है तो मैं भी अद्वितीय हूँ । मैंने कहा--हे ध्रुव! जब तू अद्वितीय है तो अब कहो अटलपदवी कैसे है? ध्रुवने कहा-कहने मात्र है। मैंने कहा-तब अटलपदवीकी क्यों तैंने चाहना की? ध्रुवने कहा--जो हुआ सो हुआ, मुझको मुक्तिकी इच्छा है उपदेश करो । मैंने कहा-उपदेश यही है कि, आप सहित जान, सर्व हरि हैं, परंतु हे ध्रुव! वासनाका त्याग कर । ध्रुवने कहा - वासना कैसे त्यागूँ पिशाचके समान मनको लगी है। मैंने कहा-ऐसा वैराग कर कि, मैं नहीं हूँ । जब तूही नहीं तो वासना कहां है? वा जान "सर्व मैं ही हूँ" जब सर्व तूही है वासना कहां है जो त्याग वा अंतःकरण सहित अंतःकरणके धर्मरूप वासनाका भी, मैं द्रष्टा प्रकाशक आत्मा हूँ ऐसे जान। हे ध्रुव! जब तंत्रीका बजानेवाला होता है तब तंत्रीमें शब्द होता है, जब तंत्रीका बजाने वाला नहीं होता तब तंत्रीमें शब्द नहीं होता । तैसे जब तू मायाके गुणोंके साथ मिलके कुछ बनता है, तब वासना भी होती है, जब तेरी बनावट छूटी तब वासना कहां है, जैसे-जो माल लादेगा सोई जगात भरेगा, जो नहीं माल लादेगा सो जगात भी नहीं भरेगा। मालपर जगात है बिना माल नहीं। हे ध्रुव! सच्चिदानंद शब्दोंका पर्याय जो अस्ति भातिप्रियरूप निजात्मतत्त्व है, उससे भिन्न जो कुछ प्रतीत होता है सो मायाका स्वरूप है तत्व नहीं। जैसे मधुरता, द्रवता, शीतलतारूप जलसे भिन्न जो कुछ तरंगादिकोंकी प्रतीति है सो मिथ्या है, जलका स्वरूप नहीं । अन्तर बाहर जो नामरूप प्रपंच है सो तुझ चैतन्यदेवसे ही प्रकाश रखता है।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! ध्रुवने देहादिकोंविषे अहं मम अभिमानको त्यागके पुनः तिस त्यागका भी त्याग किया, परंतु तूने कभी भी अहंकारका त्याग न किया । मैत्रेयने कहा--जो मुझको अहंकार होवे तो मैं त्यागूँ, अहंकार पंचभूतोंका है, मैं कैसे त्यागूँ ? पंचभूत अहंकार त्यागो, न त्यागो, मुझे उससे क्या ? और मुझको दूसरेकी वस्तुके त्यागनेका अधिकार भी नहीं क्योंकि, सब जीव आप अपनी वस्तुके त्याग ग्रहणमें मालिक हैं । दूसरेकी वस्तुके त्यागादि करनेमें दूसरा मालिक नहीं होता पराशरने कहा--अहंकारको न त्यागेगा तो काल तुझको दुःख देवेगा । मैत्रेयने कहा--अहंकार जिसको हो उसको काल दुःख देवे वा न देवे । दूसरेकी पंचायतसे मुझ चैतन्यको क्या मतलब है ? सूर्यमें अंधेरा हो और सूर्यको अन्धेरा दुःख देता हो तब सूर्य अँधेराको त्याग करनेका वा नाश करनेका उद्यम करे परन्तु सूर्यमें अँधेरा है ही नहीं तो अँधेरेके दूर करनेका उद्यम सूर्यको निष्फल है, नाहक उलूकोंके साथ सूर्य पंचायत क्यों करे तुम मुझमें अँधेरा नाहक कल्पना क्यों करते हो जो तिन उलूकोंसे सूर्य लड़ाई भिडाई करेगा तो विद्वानों करके सूर्य हांसीका आस्पद होगा । तैसेही मुझ निर्विकल्प चैतन्य साक्षी आत्मामें अहंकार है ही नहीं, अतएव अहंकारके त्यागनेका आरंभ मुझ चैतन्यको निष्फल है, हांसीका आस्पद है । पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! अहंकारका क्या रूप है ? मैत्रेयने कहा--मुझ चैतन्यको क्या मालूम है, अहंकारवालोंसे अहंकारके रूपको खबर मालूम होगी उससे पूछो राजासे तेल मूलीका हाल पूछना नादानी है । पराशरने कहा--तू कौन है ? मैत्रेयने कहा--बडा आश्चर्य है जो आप पूछता है तू

कौन है । जैसे-घटाकाश घटाकाशसे पूछे. तू कौन है सोई न्याय तुमको प्राप्त हुआ; यद्यपि घट अनेक हैं परन्तु तिन घटोंमें रहनेवाला आकाश एकही है, विचार दृष्टिसे घटभी अनेक नहीं मृत्तिकारूप करके एकही है उपाधिसे अनेक हैं । पराशरने कहा अहंकारमें तू बँधा है, कहता है मैं चैतन्य हूँ तुझको लज्जा नहीं आती । मैत्रेयने कहा-लज्जा उसको है जो है बंधनमें और जानता है मैं मुक्त हूँ । जो मुक्तको मुक्त जानता है और बंधको बंध जानता है उसको लज्जा नहीं, उलटा मुझ चैतन्य अधिष्ठानविषे कल्पित अहंकारादिकों करके अनहुई बन्ध तुम आरोपण करते हो, यह तुमको अति लज्जाका काम है । जैसे कल्पित सर्प दंडमाला आदिक अपने अधिष्ठान रज्जुको नहीं बांध सकते तथा परस्पर एक दूसरेको भी नहीं बाँध सकते । परन्तु सर्पादिकों करके रज्जुमें बंधका आरोप करना अतिहाँसी है । जैसे स्वप्नके अहंकारादिक स्वप्नद्रष्टाको नहीं बाँधते तो आत्माको अहंकारादिक कैसे दखल करेंगे किन्तु नहीं करेंगे यद्यपि जैसे व्यावहारिके आकाशको महान् बलवान् वायु अग्निजलादिक भी शोषण दाह गलाना आदिक नहीं कर सकते तथा देवता दैत्य राक्षसादिक महान् बलवान् भी इस सूक्ष्म आकाशको रज्जुसे वा किसी अन्य साधनसे पूर्व तथा अब वर्तमान कालमें नहीं बांध सके; तो तुच्छ जीव आकाशको बांधेंगे इसमें क्या कहना है ? जो भूताकाशके बांधनेका उद्यम करेगा तो निष्फल होगा क्योंकि आकाश स्वरूपसे निर्बंध है तैसेही -यह भूताकाश भी जिस मुझ चैतन्यके पास सुमेरुपर्वतके समान अतिस्थूल है, तब ऐसे अति महान् सूक्ष्म मुझ चैतन्य साक्षी आत्माको, तुच्छ पंचभूतोंके कार्य्य अहंकारादिक वा पंचविषय वा पंचभूत; कैसे बांध

सकेंगे, किन्तु नहीं बाँध सकेंगे जैसे देवता, दैत्य, राक्षस, मनुष्यादिक जीवोंकाही आपसमें बांधना और न बांधना होता है आकाशका नहीं तैसेही अहंकारादिकोंका ही आपसमें बंधमोक्ष होता है, आकाशके समान अति सूक्ष्म शुद्ध चैतन्य साक्षी आत्माका बंध मोक्ष नहीं होता किंतु, मैं चैतन्य नित्य मुक्त हूँ। परंतु कथा ध्रुवकी कहो? पराशरने कहा--कथा ध्रुवकी यही है कि, जान आप सहित सर्व हरि है।

वामदेवने कहा--हे ध्रुव! तेरा स्वरूप क्या है? ध्रुवने कहा जो जो मन वाणीके कथन चिंतनमें आता है सो सो मेरा रूप नहीं, सो रूप जगत्का है- इससे जब मनका सात्त्विकी वा राजसी वा तामसी कोई फुरना नहीं फुरता, पुनः जिस कालमें मनका कोई राजसी वा तामसी वा सात्त्विकी फुरना फुरता है, पुनः फुरकर नष्ट हो जाता है, पुनः उदय होता है पुनः उदय होकर नष्ट हो जाता है, मनरूप फुरनेकी तीनों अवस्थाका जो निर्विकार निर्विकल्प साक्षी चैतन्य आत्मा है, सो मेरा रूप है और यह नामरूप जगत् स्वप्न जगत्के समान मिथ्या है। वामदेवने कहा--जब सर्व गोविंद है तब बीचमें कुछ मिथ्या, कुछ सत्य यह भेद क्यों कल्पना करता है? ध्रुवने कहा जब सर्व गोविंद है तो भेद कल्पना भी गोविंद है इससे भजनसे क्या प्रयोजन है? मैंने कहा--हे ध्रुव! सर्व दृश्य जगत् भजन परमात्मा ईश्वरका करते हैं, उसीको अल्ला खुदा भी बोलते हैं, सो परमात्मा ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है, तथा सर्वव्यापी अतर्यामी है, जो ईश्वर परमात्माको ऐसा नहीं मानोगे तो अंतर्यामी ईश्वर परमात्मा असत् जड दुःख परिच्छिन्नसिद्ध होगा और ऐसा परमात्माका स्वरूप किसी शास्त्रको तथा विद्वानोंको मंजूर नहीं

इस हेतु पूर्वोक्त सच्चिदानन्द अंतर्यामी सर्वव्यापक इस बुद्धि आदिक सर्व नामरूप दृश्यका द्रष्टा साक्षी चैतन्यही है। इस साक्षी चैतन्यसे भिन्न देहसे लेकर माया पर्यंत कार्य कारणरूप दृश्य प्रपंचमें उपरोक्त कोई भी गुण घटा नहीं चाहे इस पिंड ब्रह्मांडमें खोज देखो पूर्वोक्त विशेषणोक्त परमात्माको इस नामरूप दृश्य ब्रह्मांडसे बाहर मानोगे तो परमात्माके विषे सर्वव्यापकता सर्व अन्तर्यामिता सिद्ध न होगी। जो सर्व जड पदार्थोंका नियमन करता है सोई चैतन्य परमात्मा है अन्य नहीं, जब चैतन्य परमात्मा ब्रह्मांडसे बाहर हुआ तो यह सर्व जड पदार्थ चेष्टा कैसे करेंगे ? किंतु नहीं करेंगे। प्रत्यक्ष विरोध होगा। चैतन्य विना जडकी चेष्टा कैसी होगी ? सारग्राहीको आग्रह नहीं होता, जिस वस्तुमें वेदोक्त पूर्वोक्त सच्चिदानंदादिक विशेषण घटेंगे सोई परमात्माका स्वरूप सर्वको मानना योग्य है। आत्मासे वा अन्यसे भाईचारा नहीं, किन्तु सरल बुद्धिसे वस्तु निर्णय करनी चाहिये इससे विवादको छोडके न्यायरीतिसे पूर्वोक्त विशेषण साक्षी चैतन्य आत्मामें ही घटेंगे अन्यमें नहीं। "परमात्मा चैतन्य पुरुषने इस नामरूप जगत्को रचकर आपही तिसमें प्रवेश किया" इस श्रुतिसे जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्नके पदार्थोंको रचकर आपही उनमें प्रवेश करता है, जैसे महाकाशही कुलाल रचित घटमें घटाकाशसंज्ञाको प्राप्त होता है तैसेही जो पृथिवीके अन्तरस्थित हुआ पृथिवीको नियमन करता है, पृथिवी जिसको नहीं जानती और पृथिवीको जो जानता है सो तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृतस्वरूप है। तैसे ही जो मनके अंतर स्थित हुआ मनको नियमन करता है परंतु मन अपने नियमनकर्ताको भी नहीं जानता और जो मनको

जानता है सो अन्तर्यामी तुम्हारा आत्मा अमृतस्वरूप है। यही रीति प्राणादिकोंमें भी जानलेनी। इस प्रकार इक्कीस (२१) बार पुनः पुनः अन्तर्यामी ब्राह्मण वेद भागमें परमात्माको आत्मारूप ही कथन किया है। वैसेही छांदोग्य उपनिषद्के षष्ठ अध्याय विषे पुनःपुनः नवबारी, परमात्मा चैतन्यको आत्मारूपचैतन्य ही कथन किया है वैसे सामवेदकी केन उपनिषदूमें भी बारम्बार इस आत्माकोही ब्रह्मरूपता कथन किया है. कैसे सो सुनो--जैसे हे अधिकारीजनो ! जो मन बुद्धि आदिकों-करके जाननेमें नहीं आता और जो मन बुद्धि आदिकोंको जानता है उसको तुम ब्रह्म जानो। जिसको तुम इदं-रूपता करके उपासना करते हो सो ब्रह्म नहीं, इत्यादि अनेक श्रुति कथन करती हैं, जो झूठ बात होती तो श्रुति बारंबार नहीं कहती। झूठ बातको बारंबार कहना बाव-लोंका काम है, श्रुति तो सत्यवक्ता है, आत्मासे ब्रह्म भिन्न होगा तो ब्रह्म अनात्मा होगा घटवत् और पूर्णवस्तु ब्रह्मसे आत्मा पृथक् होगा तो आत्मा परिछिन्न मिथ्या घटवत् होगा, इससे घटाकाश महाकाशके समान ब्रह्म आत्मा नाम दो हैं वस्तु एकही है तात्पर्य यह कि, सच्चिदानन्द स्वरूप वस्तुसे ही जगत्की उत्पत्ति, पालन, संहार होता है, न अन्यसे। इससे अब यह सिद्ध हुआ कि, सच्चिदानंद वस्तुकोही परमात्मा कहो चाहे परमेश्वर कहो, चाहे ईश्वर कहो, चाहे अल्ला कहो, चाहे खुदा कहो, चाहे आत्मा कहो, चाहे साक्षी चैतन्य कहो, चाहे प्रत्यक् आत्मा कहो, चाहे बुद्धि आदिक सर्व नामरूप दृश्य पदार्थोंका द्रष्टा कहो केवल नामांतरका भेद है वस्तुका भेद नहीं वस्तु एकही है तैसे--देह बुद्धि आदि मायापर्यंत सर्व नामरूप जगत् भी दृश्यत्वरूपता करके

एकही रूप है। हे ध्रुव ! जब तू बुद्धि आदिक नामरूपका आपको द्रष्टा साक्षी चैतन्य जानता है तो तुझ सच्चिदानन्द स्वरूपका ही ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यन्त सर्व दृश्य जगत् यजन करता है और तेरे ही निमित्त तपस्या करते हैं तेरीही सर्व प्रार्थना करते हैं, सर्व दृश्य जड तुझ चैतन्यके ही गुलाम हैं, तू नहीं; तू चैतन्य अपनी दृश्य गुलामका भजन क्यों करता है ? जो पुरुष अपने गुलामके आगे प्रार्थना करता है उसको लज्जाका काम है। नहीं तो हे ध्रुव ! तू आपको बुद्धि आदिकोंका द्रष्टा सत् चैतन्य आनंद स्वरूप मत जान, जो तेरा आपको सच्चिदानंद माननेसे बिगाड होता है तो आपको असत् जड दुःखरूप दृश्य जान तो ठीक है तब ही तुझ, असत् जड दुःखरूप दृश्यकी प्रार्थना तथा भजनादि व्यवहार सत् चित् आनंद परमेश्वरके आगे बन सकता है, अन्यथा नहीं। परन्तु तू असत् जड दुःखरूप दृश्य मनादिकोंका द्रष्टा कैसे असत्य जड दुःखरूप दृश्य होगा, किन्तु नहीं होगा। आगे जो तेरी इच्छा होय सो कर। हे ध्रुव ! जो तू आपको सच्चिदानंदरूप नहीं मानेगा तो उससे भिन्न असत् जड दुःख रूप आपको माननाही तुझको पडेगा। ध्रुवने कहा-परमेश्वरमें महानता और अपनेमें अल्पताकी भ्रांति जीवोंको तथा मुझको होती है, मैंने कहा हे ध्रुव ! महानता अल्पताकी पूर्वोक्तप्रकरणमे सिद्धि ही नहीं होती। एक असत् जड दुःखरूप दृश्य पदार्थ है और एक सत् चित् आनंदरूप द्रष्टा पदार्थ है, दोही पदार्थकी सिद्धि होती है, तीसरा पदार्थ नहीं। ये दोनों परस्पर विलक्षण हैं, एक नहीं होते। सच्चिदानंद द्रष्टा परमेश्वर परमात्मा है और असत् जड दुःख-रूप दृश्य जगत् है। दोनोंको तू विचार कर जो बुद्धिमें तुले

सोई आपको मान, परन्तु "जिस दृश्यको तू जानता है सो दृश्य तू नहीं द्रष्टा है" जीव ईश्वरसे यहां क्या मतलब है ? हे ध्रुव ! दाहकता, उष्णता, प्रकाशकता यह अग्निहीका स्वरूप है, तिस अग्निते भिन्न पृथिवी, जल, वायु, आकाशादिक पदार्थोंका तथा तिनके कार्योंका नहीं जहां दाहकता, उष्णता, प्रकाशकता बुद्धिमान् देखते हैं तहांकी अग्निको जानते हैं यह नहीं कि, किंचित् चिनगारेमें जो दाहकता उष्णता प्रकाशकता है सो अग्नि नहीं किन्तु सूर्य वडवानल तथा महान् काष्ठ आरूढ लौकिक अग्निमेंही दाहकता, उष्णता, प्रकाशकता रूप अग्नि है। ऐसा नहीं, सारग्राही, सरल बुद्धिमान्, विद्वान्, लोग ऐसा जानते हैं कि, जो दाहकता, उष्णता, प्रकाशकतारूप अग्नि किंचित् चिनगारेमें है सोई दाहकता, उष्णता, प्रकाशकता रूप अग्नि सूर्यमें है, सोई दाहकता, उष्णता, प्रकाशकतारूप अग्नि महान् काष्ठ आरूढ लौकिक अग्निमें है। हे साधो ! महानता, अल्पतादिपना उपाधिमें है। दाहकता, उष्णता, प्रकाशकतारूप अग्निमें नहीं किञ्चित् चिनगारे आरूढ अग्नि किञ्चित् दाहकता, उष्णता, प्रकाशकता करती है और वही चिनगारे आरूढ अग्नि सूर्यरूप होकर सारे ब्रह्माण्डको दाह उष्ण प्रकाश करती है। अग्नि जहां है तहाँ दीपक सूर्यादिकोंमें एक रूपही है। तैसेही--हे साधो ! जैसे इस देहविषे बुद्धि आदिकोंका साक्षी, द्रष्टा, चैतन्य, बन्ध मोक्षरहित निर्विकल्प, निर्विकार, स्वाभाविक अपनी महिमामें भी स्थित है तैसेही ब्रह्मा विष्णु शिव सूर्यादिकोंकी देहोंमें, चीटीकी देहोंमें, राक्षसादिकोंकी देहोंमें, पक्षी आदिकोंकी देहोंमें भी यह साक्षी चैतन्य आत्माही निर्विकार निर्विकल्परूप करके स्थित है। जैसे--एकही दाहकता, उष्णता, प्रकाशकता रूप

अग्नि बत्ती आरूढ होकर एक मंदिरको तथा मंदिर भीतर धरे पदार्थोंको प्रकाशती है, सूर्य आरूढ होकर वही अग्नि सारे ब्रह्मांडको तथा ब्रह्माण्ड अन्तर्वर्ती पदार्थोंको प्रकाशती है। हे ध्रुव! जिस मनादि दृश्यको तू जानता है उनका साक्षी है, सो दृश्य तुम कैसे हो सकता है? घटद्रष्टाके समान' इससे हे ध्रुव! पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश इनपंचभूतोंकी दृष्टिसे भी तेरी ऊँची अटल पदवीकी अधिकता नहीं क्योंकि ऊँचानीचारूप सर्व पंचभूतही है। ऊँचे सुमेरु आदिक ब्रह्मलोक स्थानमें पंचभूत कुछ अधिक नहीं, नीचे पातालादिकोंमें व मध्य मनुष्य लोकमें न्यून नहीं, इससे तेरी अटल पदवीका तुझको यत्न निष्फल है! तैसे ही मायाकी दृष्टिसे भी तेरी अटल पदवी निष्फल है क्योंकि, नीच ऊंच स्थान अटल पदवी सहित सर्व नामरूप प्रपंच मायाका कार्य होनेसे मिथ्या है। क्या मायाका कार्य अटलपदवी नहीं किन्तु मायाका कार्यही है। हे ध्रुव! अब पूर्वोक्त विचार रीति अनुसार यही निश्चयकर कि, मैं ही सर्व चैतन्य आत्मा हूँ अटलपदवी कहां है। हे ध्रुव! सन्त अटलपदवीसे मुक्त हैं और अपने स्वरूपमें मग्न हैं।

हे ध्रुव! एक समय किसी निमित्तको पाके मुझको शिवने कहा-- हे पराशर! तुझको राज्य त्रिलोकीका देता हूँ। मैंने कहा--राज्यसे क्या होगा? शिवने कहा--जो चाहेगा सो मिलेगा. चाहना तेरी न रहेगी। मैंने कहा--जब मैं ईश्वर होऊँगा तब तुम तीनों देवताओंको मत्सर होगा कि पराशर संसारका ईश्वर हो बैठा है। इससे मुझको राज्य लेनेसे क्या प्रयोजन है क्योंकि अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति वास्ते इच्छा होती है, इससे हे शिव! मैं चैतन्य आत्मा इस नामरूप अनंतकोटि ब्रह्मांडरूप प्रपं-

चका स्वतः सिद्ध ही स्वामी हूँ, कोई कृत्रिम नहीं हूँ क्योंकि मुझ चैतन्य आत्माहीसे इस बुद्धि आदिक जड दृश्य प्रपंचकी चेष्टा होती है अन्यथा नहीं । जैसे-पुतलियां सर्व प्रकार करके चैतन्य पुरुषके ही अधीन होती हैं. उन जड पुतलियोंका चैतन्य पुरुषही राजा है, वैसे, ही मैं अनंतकोटिब्रह्मांडरूप पुतलियोंका एक ही चैतन्य राजा हूँ, दूसरे चैतन्यका अभाव होनेसे, तुम्हारी त्रिलोकी मेरे राज्यके अंतर्भूत होनेसे, स्वराज हूँ। ध्रुवने कहा--हे पराशर ! तुम मुझसेअटलपदवीलो। मैंने कहा मुझको क्या प्रयोजन है, जो मैं एक जगहमें बद्ध होऊँ; संत स्वतंत्र विचरते हैं, पराधीन हैं नहीं । हे ध्रुव ! लौकिक पुरुष भी बलवान्के दिये सांकेतिक स्थानमें अति दुःख पाते हैं, मुझ स्वेच्छाचारीको बंधनरूप अटलपदवी तेरी कैसे दुःख रूप न होगी किन्तु, अवश्य होगी । पुनः दत्तात्रेयको कहा- तुम अटलपदवी लो। अवधूतने कहा--यह अविद्या तुझहीको है, मुझको अटल पदवीकी इच्छा नहीं । पुनः वामदेवको कहा--तुम अटल पदवी लो। वामदेवने कहा यह नीच बुद्धि तुझहीको है, जब एक आत्माही है तो चल अचल कहां हैं ? तब ध्रुव वनविषे बालकके समान पुकारने लगा। कोई अटलपदवी ले। तब पशु, पक्षी, वृक्षादिकोंने जवाब दिया कि, अंतर बाहर एक हम चैतन्य आत्माही हैं, चल अचल कहां है, जो हम स्थिरको लेवें, चलको त्यागें। ध्रुव मृतकके समान विशुद्ध होकर पृथ्वीपर गिरपड़ा। मैंने कहा--हे ध्रुव ! बालकके समान विलाप क्यों करता है, तू आकाशकी न्याईं व्यापक चैतन्य स्वरूप है, तुझमें ग्रहण त्याग है नहीं तू एकरस निर्विकार निर्विकल्प स्वमहिमामें समस्थित है । हे ध्रुव ! अटलपदवीके लेने देनेवाले मनादिक हैं, तिनहीको सुख दुःख होवेगा, तुझको नहीं, तू निर्विकार चैतन्य दूसरे

मनादिकोंके व्यवहारमें किन्तु क्यों करता है ? जैसे मनुष्योंके घट पटादिक पदार्थोंमें लेन देनरूपी व्यवहारमें असंग आकाश किन्तु न कहीं करता, करे तो हँसने योग्य है। हे ध्रुव ! इस असत्संसारमें आत्मविचारशील पुरुष शरीरकी प्रारब्ध करके जो कुछ प्राप्त होवे, सो ग्रहण त्याग बुद्धि रहित भोगते हैं, कुछ खेद नहीं मानते, क्योंकि, भोक्ता, भोग, भोग्य; द्रष्टा, दर्शन, दृश्य इत्यादिक त्रिपुटी अनात्म धर्म हैं असंग निर्विकार साक्षी चैतन्य आत्माका धर्म नहीं। हे ध्रुव ! स्वप्न पदार्थोंका क्या हर्ष शोक करना है, उठो, अपने स्वरूपकी गम्भीरताको स्मरण करो, मृगतृष्णाके तरंगोंको मत पकडो, इस शरीरको कहीं न कहीं रहनाही है, जिमि गुजरी तिमि गुजरी योंभी वाह वाह त्यों भी वाह वाह ! भावे जहाँ रह, तुझको अपने स्वरूपकी ही गुलजार है, कोई अनात्म पदार्थोंकी तुमको गुलजार नहीं, संसार बगीचेमें सुखपूर्वक विचर, कर्तृव्य भोक्तृत्व अभिमानरूपी फूल मत तोड । पुष्प तोडके सुगंध लेनेमें मजा नहीं किंतु अहंकार रहित दर्शन दीदारसे ही मजा है; नहीं तो कर्तृत्व भोक्तृत्वरूपी पुष्पोंके तोडनेसे, बगीचेवाला अहंकाररूपी मालिक तुझको दुःख देवेगा। यह कायदेकी बात ठीकही है, बेठीक नहीं । क्योंकि कर्तृत्व भोक्तृत्व अभिमान करनेसे दुःख होताही है। यह संसाररूप बगीचा तुझ चैतन्यका धर्म नहीं । यह मनका धर्म है, तात्पर्य्य यह कि, सर्वनामरूप प्रपंच अन्वयव्यतिरेक करके मनामात्र है, जो तू अपने रस्तेसे चलेगा. तात्पर्य यह कि, जैसा तेरा निर्विकार निर्विकल्प सर्व दृश्यके धर्मोंसे रहित स्वरूप है तैसे ही सांगोपांग दृढ निश्चय कर, तो जीवन्मुक्त होकर विचरेगा जो विपरीत चलेगा, नाम

दृश्यका धर्म अपना मानेगा तो दुःख पावेगा। हे ध्रुव ! अब हम वांछित स्थानको जाते हैं ! तुम भी वांछित स्थानको जावो।

हे मैत्रेय ! अमृतसमान उपदेश ध्रुव सुनकर अपने स्वरूप अमृतभावको प्राप्त हो स्थिर अस्थिर पदार्थोंमें समताको प्राप्त भया। हे मैत्रेय ! जो संतोंका वचन बुद्धिके श्रवणोंसे सुनता है सो तत्काल ही स्वस्वरूपकी प्राप्तिरूप अमृतभावको प्राप्त होता है।

इति पक्षपातरहिते अनुभवप्रकाशे पराशर मैत्रेयसंवादे द्वितीयस्सर्गः ।।२।।

तृतीय सर्ग ३.

मैत्रेयने कहा- हे गुरो ! इस संसाररूप बंधन ग्रहसे कैसे मुक्त होवें सो उपाय कहो । पराशरने कहा-हे मैत्रेय ! सर्व शास्त्र विद्वानोंके अनुभवसे अपरोक्ष बंधनकी निवृत्ति सुखकी प्राप्तिवास्ते स्वरूपका सम्यक् ज्ञान ही साधन है; अन्य नहीं। ज्ञानका साधन लोकएषणा, पुत्रएषणा, धन एषणा तथा उन तीन एषणाओंके अंतर्भूत जो लोक वासना, शास्त्रवासना, देहवासनादिकोंका त्यागरूप वैराग्य, विवेक शम, दमादिक हैं। जैसे-यद्यपि अन्धकारके दूर करनेका निर्भयताकी प्राप्तिका तथा अंधकारमें धरे पदार्थोंके दर्शनादिक व्यवहारका साधन दीपकका चसाना ही है, अन्य नहीं। तथापि दीपकके सम्यक् चसानेवास्ते अनेक सामग्री चाहिये। मैत्रेयने कहा-तिन एषणादिकोंका त्याग कैसे होव और वैराग्यादिकोंकी कैसे होवे ? पराशरने कहा-हे मैत्रेय ! तिन एषणादि पदार्थ संघातका धर्म है. तिनके साक्षी तुझ आत्माका नहीं,

यह जाननाही एषणादिकोंके त्यागका उपाय है वा विचार पूर्वक सम्यक् अपरोक्ष देहादिकोंमें परिच्छिन्न अहंकारका त्यागनाही परम उपाय है वा समानते यह उपाय है। जिस कालमें सम्यक् दोषदर्शनपूर्वक जगत्के पदार्थोंकी सर्व एषणा अंतर बाहरते सम्यक् त्यागता है तिसी क्षणमें शम, दमादिक सर्व ज्ञानके साधनोंकी सम्यक् प्राप्ति होती है, एषणाके त्यागसे भिन्न शमादिकोंकी प्राप्तिका साधन जुदा नहीं। तात्पर्य्य यह है कि, आसुरी संपदाके त्यागसेही वैराग्यादि दैवीसंपदा प्राप्त होती है, वैराग्यादिरूप दैवीकी प्राप्ति वास्ते भिन्न साधन नहीं । जैसे रोगके जानेसेही आरोग्यता होती है, आरोग्यताकी प्राप्ति करने वास्ते भिन्न साधन नहीं। जैसे रात्रिके जानेसे ही स्वाभाविक दिन प्राप्त होता है । मैत्रेयने कहा-पदार्थोंमें दोषदर्शन कैसे करना ? पराशरने कहा-स्त्री आदिक सर्व पदार्थोंमें दोष शास्त्रोंमें विस्तृत लिखे हैं यहां कुछ कहनेका प्रयोजन नहीं परन्तु संक्षेपसे कहते हैं। हे मैत्रेय ! सच्चिदानंद निजस्वरूपसे पृथक् सर्व नामरूप दृश्य पदार्थोंमें असत् जड दुःखरूपता सांगोपांग भलीप्रकार जैसे है तैसे ही जाननी, इसका नाम ही दोषदर्शन है। हे शिष्य ! देहादिक सर्व अनात्म पदार्थोंमें आत्मबुद्धि देहादिक सर्व अशुचि पदार्थोंमें शुचिबुद्धि, देहादिक सर्व अनित्य पदार्थोंमें नित्य बुद्धि तथा देहादिक सर्व दुःखरूप पदार्थोंमें सुखबुद्धि है सो भलीप्रकार इस चार प्रकारकी अविद्याको त्याग कर पूर्वोक्त चार प्रकारकी अविद्यासे भिन्न, आत्मा नित्य शुचि सुखरूप वस्तु है, सोई तुम्हारा स्वरूप है तिसीको तू अहं रूपकरके जान । देहादि संघातमें अहं मत मान, यही वैराग्य है। जैसे कीडी फिरतीको मिश्रीका डला मिल जावे तो कटुपदार्थ तिससे यत्न विनाही

आपही छूट जाता है तैसे सुखरूप आत्माको जब तूने अपना आप जाना तो दुःखस्वरूप प्रपंच बलात्कारसे छूट जावेगा. क्योंकि, सुखमेंही सबकी प्रवृत्ति होती है दुःखमें नहीं और सुखरूप आत्माही है, अन्य नहीं, यही सर्वशास्त्रोंका सिद्धांत है । हे मैत्रेय ! शास्त्र पढता है और अपने स्वरूपको नहीं जानता तो पढना निष्फल है और जाने पीछे भी पढना निष्फल है जैसे कोई पुरुष पराल (फूस) से धान नहीं निकासता पुनः २ पराल कूटता है तो मिथ्या परिश्रम है और धान निकासके पुनः परालको कूटता है तो भी निष्फल है, विना निजतत्त्व जाने भयरूपसे निष्फल है । हे मैत्रेय ! तेरी भी मुक्ति होनी कठिन है, क्योंकि तेरी बुद्धि पुराणशास्त्रोंमें लग रही है, आपको तू पंडित परमहंस सर्वते बडा मानता है और अन्यको तू मूर्ख जानता है, क्योंकि; गुरु और सत् शास्त्रमें तेरी भक्ति नहीं तुझको स्वरूप प्राप्त होना कठिन है ! मैत्रेयने कहा--अब मैं गुरुशास्त्रमें श्रद्धा करूँगा इंद्रियोंको वैराग्यसे अष्टांगयोगसे वा सांख्ययोगसे रोकूंगा परंतु तत्त्व उपदेश करो । पराशरने कहा-हे मैत्रेय ! इंद्रियोंको केवल हठसे रोकनेसे मुक्ति नहीं होती किंतु, शास्त्ररीति अनुसार, सर्व इंद्रियोंसे धर्मपूर्वक यथायोग्य व्यवहारकर और अपनेको असंग, निर्विकार, निर्विकल्प आत्मा जान, देह इंद्रियोंके व्यवहारमें कर्तृत्व-भोक्तृत्व बुद्धि, मत कर। ये सब अनात्म धर्म हैं, तू आत्मा चैतन्य अपन धर्ममें स्थित रह । हे मैत्रेय ! जब यह देहादिक अनात्मा अपने धर्मको नहीं त्यागते तो तू आत्मा अपने असंगादि धर्मोंको क्यों त्यागता है, ये देहादिक अनात्मा तेरा स्वरूप नहीं, यह पञ्चभूतोंका स्वरूप है, वा मायाका है । हे मैत्रेय ! मल मूत्र रूप देह

अभिमानी पुरुष, मेहतरोंके बडे भाई हैं, क्योंकि मेहतर चार घंटे मलका काम करता है फिर नहीं करता । यह देह--अभिमानी पुरुष तो आठप्रहर चौंसठ घडी, मल मूत्ररूप देहविषेही अहंबुद्धिपूर्वक विराजमान रहता है, मलके कीडेके समान ग्लानि नहीं करता । इससे देह अभिमानी मेहतरसेभी अति नीच है। कारण कि, मेहतर आपको मलते जुदा जानता है और यह देहाभिमानी आपको मलरूपही जानता है इससे स्पर्श करनेके भी योग्य नहीं जो इस देह अभिमानमें बद्ध है, सोई पाखानेरूप देह नरकमें बद्ध है जो इससे मुक्त है सोई मुक्त है। हे मैत्रेय! इस भोगमय संसाररूप एकवृक्षके तीन फल हैं--मधुर, खाटा, कटु । सांसारिक पदार्थ भोगकालमें मीठे हैं, वियोगकालमें खट्टे हैं और शरीरके नाशकालमें यह पदार्थ कटु होते हैं । जैसे--मेवा आदि पदार्थ मधुर होते हैं, जलमें कुछ दिन रहनेसे खट्टे हो जाते हैं। पुनः वह खटाई पडी रहनेसे कटु हो जाते हैं। इससे हे मैत्रेय! अभिमानको त्याग और पवित्र हो, नहीं तो मेहतरकी तुल्यताको प्राप्त होवेगा। जब तू देहादिकोंका अभिमान त्यागेगा तब देहादिकोंके धर्म हर्षशोकादिक भी तुझको न होवेंगे, आप सहित सर्व जगत्को हरिरूप जाने, यही "परमभजन है, वा मैं असङ्ग, निर्विकार, निर्विकल्प सच्चिदानन्द साक्षी आत्मा हूँ यह असत जड दुःखरूप संघात देह मैं नहीं, मैं देहादिक दृश्यका द्रष्टा आत्मा हूँ" इस परमभजनसे द्वैतसे पवित्र होवेगा। इसीपर एक कथा तुझको कहता हूँ सो तू श्रवण कर।

वेश्या की कथा

एक समय सब सन्त एक पर्वतपर बैठे थे और ब्रह्मविचारमें मग्न हो हँसते थे कि, विचार विना जो यह

अनहुआ संसार प्रतीतहो रहा है वास्तवते नहीं, यह माया की अद्भुत लीला है। इसी अवस्थामें किसी सन्तकी संगति करके हुआ है आत्मज्ञान जिसको तथा निवृत्त होगई है देह अध्यासपूर्वक जगत्की ऐसी एक वृद्ध वेश्या आई। कैसी वह वेश्या है, सम्यक् अपरोक्ष वैराग्यपूर्वक, ज्ञान अग्नि करके सम्यक् दग्ध हो गया है सूक्ष्म स्थूल अहंकार जिसका तथा जाना है अपरोक्ष आत्मा स्वरूप जिसने किसी निमित्तसे कुसंग करके वेश्या होगई थी, पुनः किसी पुण्यप्रतापसे सत्सङ्ग करके महान् भाव (स्वरूप) को प्राप्त हुई है क्योंकि, कर्मोंकी गति अद्भुत है। ऐसी ब्रह्मवित् वेश्या हम हँसते हुओंको देखकर कहने लगी-हे संतो! तुमने शरीर (दृष्टिकर) मुझको जाना है सो तो सम्यक् विचाररूप अग्नि मेरी दृष्टिसे भस्म हो गया है। जैसे अश्वत्थामाके बाणकर कृष्णकी दृष्टिसे रथ भस्म हो गया था परन्तु अर्जुन तथा लोगोंकी दृष्टिमें वैसाही प्रतीत होता था। जैसे - भीतपर रंगकी स्त्री पुरुषादिकोंकी पुतलियाँ प्रतीतिमात्र हैं, रंगसे पृथक् स्त्री पुरुषादिक कुछ वस्तु नहीं परन्तु बालकोंकी दृष्टिमें भिन्न भिन्न स्त्री पुरुषादिकोंकी आकार हैं रंग और भीतके ज्ञाता पुरुषको नहीं। हे साधो! जैसे किसीके स्वप्नमें वा जाग्रत्में एकही गऊको स्वप्ननर वा जाग्रत् नर देखकर स्वप्ननरोंकी वा जाग्रत् नरोंकी भिन्न भिन्न दृष्टि होती है। चमारकी दृष्टि चमड़ेपर जाती है कसाईकी दृष्टि मांसपर जाती है, गूजरादिकोंकी दूधकी तरफ दृष्टि जाती है. कि, इतना दूध इस गऊमें है; त्रिवर्णके पुरुष गऊको पूज्य जानते हैं और आत्मदर्शी गऊको आत्मा जानते हैं परन्तु पास जाग्रत पुरुषको वा सम्यक् अपरोक्ष आत्मबोधरूप जाग्रत पुरु-

षको पूर्वोक्त स्वप्नादि व्यवहारका अत्यंता भाव है तैसे ही हे संतो ! इस स्वप्नवत् मेरे शरीरको कोई वेश्या जानता है कोई माता जानता है, कोई भगिनी, कोई बेटी, कोई भूआ, कोई मौसी, और कोई पत्नी जानते हैं। कोई विद्वान् पुरुष इस मेरे रुधिर अस्थि मांस मलमूत्र शरीरको मायाके कार्य पंचभूतरूप मानते हैं और ब्रह्म-वेत्ता मुझको आत्मरूप जानते हैं। परन्तु मुझ अस्ति भाति प्रियरूप आत्माकी दृष्टिसे इस शरीर सहित सर्व नामरूप जगत्का अत्यंताभाव है। केवल जीवोंके फुर्णे मात्रमें ही मेरा शरीर है स्वदृष्टिसे नहीं। जैसे-स्वप्न नरों-कोही निद्रा कर स्वप्न प्रपंच प्रतीत होता है, परन्तु स्वप्न द्रष्टाकी दृष्टिसे स्वप्न दृश्यका अत्यंता भाव है वा पास जाग्रत् पुरुषको अत्यंता भाव है। इससे मैं गऊ तुमको संत जानकर आई हूँ, तुम शरीरदृष्टि मत करो। शरीर सबके पांचभौतिक मल मूत्रके एकही सरीखे हैं। संतोंकी पवित्र दृष्टि होती है और असंतोंकी अपवित्र दृष्टि होती है। हे संतो ! वेश्या संज्ञा शरीरकी है, मैं तो अवाङ्मन-सगोचर, सर्वाधिष्ठान, जगद्विध्वंसक, प्रकाशक, अवेद्यत्व, सदा अपरोक्ष साक्षी, सच्चिद्घन, विशुद्धानंद हूँ। नहीं जानती थी कि, मांस चमडेकी संत दृष्टि करेंगे क्योंकि संत वही हैं जो आपसहित इस सर्व नामरूप प्रपंचको हरिरूप जाने। हे संतो ! मैं मूर्खतासे पूर्व हाड मांस चमडा मलमूत्र इस शरीरको तथा शुद्ध निर्विकार निर्वि-कल्प असंग आत्माको एकरूप जानती थी. उसीके अप-राधसे संसारमें सत्यत्व बुद्धिपूर्वक, महान् भोगोंकी वासना करके दुःखी हुई तथा परपुरुषके संयोगकर सुखी और वियोग कर दुःखी होती रही तथा आपको वेश्या जानती रही परन्तु अब मैं तुम संतोंकी कृपासे कल्पित

बंधमोक्षादि सर्व संसारके धर्मोंसे रहित सच्चिदानंदरूप आत्मा अपनेको जानती हूँ । पूर्व अज्ञात अवस्थाको स्मरण कर हँसती हूँ क्योंकि मैं क्या जानती थी कि, मैं देश काल वस्तु परिच्छेदसे रहित सर्वकाल एक रस हूँ ।

संत दत्तात्रेयने कहा--वेश्या ! तू कहांसे आई है कहां जावेगी और कहां रहती है ? वेश्याने कहा--अपन आपसे आई हूँ, अपने आपमें जाऊँगी, अपने आपमें स्थित हूँ । जैसे तरंग जलसे आया है जलमें ही जावेगा और जलमें ही स्थित है । वामदेवने कहा--हे वेश्या ! मन तेरा महान् चंचल है मनको जब अफुर करे तब स्वरूपको पावे, विना समाधि स्वरूपका पाना कठिन है । वेश्याने कहा--जिसको समाधि (चित्तकी एकाग्रता) करनेसे सुख हो चित्तके फुरने दुःख हो सो समाधि करे वा न करे मुझ चैतन्य असंग आकाशको तो वायुरूप मनके फुरणे अफुरणेमें हर्ष, शोक है नहीं । हे वामदेव ! वायुके फुरणे अफुरणेमें वायुको सुख दुःख हो वा न हो परन्तु सर्वथा असंग आकाशको हर्ष शोक नहीं जो आकाश वायुके फुरणे अफुरणेमें हर्ष शोक मानेगा तो आकाश विद्वानों करके हँसने योग्य होगा. क्योंकि, आकाश आप चल अचलते रहित पूर्ण भी हुआ चल अचल वायुके धर्मोंको अपना धर्म मानता है सो भ्रम है, भ्रमी पुरुष सुखी नहीं होता । तैसे मुझ निर्विकार निर्विकल्प पूर्ण चैतन्य आत्माको मनके धर्मसमाधि असमाधि करनेसे सुख दुःख नहीं । मनके धर्म मनकोही सुख दुःख देवेंगे मुझ निष्कर्तव्य निरपराधको नहीं । या अनीति नहीं हो सकती कि मूली, जहर, शराब, अमृत आदि पदार्थ भोजन और करै उसका गुणदोषादि औरको

होवे। हे वामदेव ! विद्वान् पुरुषको विपरीत बुद्धि है नहीं, विना विपरीत बुद्धि विपरीत व्यवहार होता नहीं उलटा परधर्म दुःखका देनेवाला होता है स्वधर्महीं सुख देता है यह सर्व शास्त्रोंका सिद्धांत है इससे मैं अपने नित्यचित् सुख स्वरूपमेंही स्थित हूँ परधर्म मनके फुरणे अफुरणेसे मुझको क्या प्रयोजन है । जैसे-सर्व लोकोंके प्रकाशक सूर्य वा दीपकको लोकोंके व्यवहार होने न होनेसे क्या प्रयोजन है ।

मैंने कहा--हे वेश्या ! तेरा गुरु कौन है ? वेश्याने कहा--गो नाम इन्द्रियोंका है वा गो नाम अन्धकाररूप अज्ञानका है, रुनाम प्रकाशका है, तात्पर्य यह कि, अज्ञानको तथा अज्ञानके कार्य इन्द्रियादिक सर्वको जो प्रकाशे तिसका नाम गुरु है; सो ऐसा पदार्थ चैतन्य स्वरूप आत्मा मैं ही सर्वका गुरु हूँ; मुझ चैतन्य द्रष्टाका दृश्य गुरु नहीं बन सकता । जैसे स्वप्नदृश्यका प्रपंचका स्वप्नद्रष्टाही गुरु है । जैसे सर्प दंड मालादिक पदार्थोंका रज्जु ही गुरु है। हे पराशर ! मैं इस दृश्यका द्रष्टा गुरु हूँ; ऐसा भी मैंने मुमुक्षुके समझानेवास्ते कहा है, नहीं तो मैं अद्वितीय हूँ मुझ अवाङ्मनसगोचरमें गुरु शिष्य कल्पना नहीं, जो गुरु शिष्य कल्पना माने भी तो मैं चैतन्य आत्मा ही सर्व नाम रूप दृश्यका गुरु हूँ, मुझ चैतन्यका अन्य गुरु कोई नहीं । स्वप्रकाश होनेपर भी अन्य माने तो अनवस्थादिक दोषकी प्राप्ति होती है । हे पराशर ! भजन गोविंदका निरूपण कर । मैंने कहा--भजन यही है, न तू वेश्या, न मैं पराशर, एक गोविंदही है जैसे--न घटाकाश, न मठाकाश, एक महाकाश है । मैंने कहा--हे वेश्या ! तू कौन है ? कहांसे आई ? कहां जावेगी ? वेश्याने कहा--जो तू है सोई मैं हूँ, जहांसे तू आया है

तथा जहां जावेगा, मैं भी वहांहीसे आई हूँ, वहां ही जाऊँगी। जहां तू रहता है वहां ही मैं रहती हूँ। जहांसे तू जन्मा है वहांहीसे मैं भी जन्मी हूँ, जो तुम्हारा हाल है सोई मेरा हाल है, विलक्षण नहीं इससे तेरा प्रश्न हासीका आस्पद है। परन्तु भजन गोविंदका कर। मैंने कहा--हे वेश्या ! तूने आपही पूर्व कहा है "मैं सर्व दृश्यका गुरु रूप हूँ" तब मुझको भजनसे क्या काम है? वेश्याने कहा-मैं कोई कर्तव्य जानकर भजन पूछती नहीं हूँ, परन्तु सन्त जहां इकट्ठे होते हैं तहां स्वाभाविकही वचन विलास होता है, यदि मेरा निश्चय पूछे तो मुझको शपथ है; जो अपनेको गुरु और अपने पृथक् दृश्यको शिष्य जानती हूँ। मैं अद्वितीय नारायण हूँ मुझमें द्वैतका मार्ग नहीं। मैंने कहा--हे वेश्या ! तूने गुरु शिष्यकी कल्पना क्यों की? जब तू अद्वैत है। वेश्याने कहा गुरु शिष्यकी कल्पना भी कल्पनामात्र है, कहा तो क्या घाटा है, न कहा तो क्या बाधा है। हे पराशर ! मिथ्या अहंकारको छोड जो मुझको स्वरूपकी प्राप्ति होवे। मैंने कहा- तूने कहनेमात्रको क्यों प्रमाण किया? वेश्याने कहा जैसे तूने कहनेमात्रको प्रमाण किया था परंतु क्या चिंता है, मृगतृष्णाका जल है नहीं परन्तु कहनेमें आता है अवधूतने कहा--तेरे कहनेसे भ्रम सिद्ध हुआ। वेश्याने कहा--अस्ति भाति प्रियरूप भगवानसे जो भिन्न प्रतीति है, सो भ्रम है। वास्तवमें विचारती हूँ तो भ्रम भी कहां है, भगवानही है। अवधूतने कहा तेरे कहनेसे जाना जाता है, जैसे भ्रम है तैसे ही भगवान् है; इसी कारणसे तू वेश्या हुई है कि, भगवान् और भ्रमको सम कहती है। वेश्याने कहा भगवान् और भ्रम दोनों

शब्दमात्र हैं, मैं अवाङ्मनस गोचर इन शब्दोंसे तथा शब्दोंके अर्थसे अतीत हूँ। परन्तु हे अवधूत ! मेरे वचनों-लक्षणोंका तू द्रष्टा कैसे हुआ है, जैसे स्वप्नका पुरुष स्वप्न द्रष्टाके वा जाग्रत् पुरुषके वचनों लक्षणोंका द्रष्टा नहीं हो सकता वा सोया पुरुष जाग्रत् पुरुषके हालका महरम नहीं हो सकता। तैसा मुझ जाग्रत्का तू सोया कैसे द्रष्टा हुआ है; तुझको लज्जा नहीं आती ? अवधूतने कहा लज्जादिक सर्व पदार्थोंको बोयकर अवधूत हुआ हूँ लज्जा किससे करूं मैं अद्वितीय हूँ, । वेश्याने कहा--बडा आश्चर्य है जो आकाश अपनेमें नीलिमा मानके नीलिमाके धोनेका उद्यम करता है तो हांसीका आस्पद होता है । हे अव-धूत ! सर्व पद अहंकारमें है जब अहंकारको तूने धोया नाम त्यागा है तो सर्व त्यागी है, नहीं तो कुछ धोया नहीं । जब तू कहै मैंने अहंकारको त्यागा है तो सर्व कर्मोंका धोना कथन चिंतन कौन करेगा ? क्योंकि, अहंकारसे ही कथन चिन्तन होता है अन्यथा नहीं । अवधूतने कहा क्या करूं ? वेश्याने कहा कर्तव्यसे कुछ न कर, सम्यक् अपने स्वरूपको जान जो कर्तव्य प्राप्त होता है सो मिथ्या है संत निष्कर्तव्य पदमें स्थित हैं, वास्तवते कर्तव्य अकर्तव्यके अभिमानसे भी रहित हैं, क्योंकि कर्तव्य कुछ नहीं बोद्धव्य ही है इससे नामरूप दृश्यसे दृष्टि उठाकर अदृश्यमें दृष्टि लगा, पीछे दृश्यमान अदृश्य मानका भेद नहीं रहेगा, जैसे--खांडके खिलौनेके नामरूप त्यागेविना बालकको सम्यक् चीनी बोध नहीं होता । सांगोपांग चीनी जाने पीछे खिलौनेके नामरूप त्यागनेका कुछ प्रयोजन भी नहीं, सर्व चीनीरूपही है, खिलौने कहने मात्र हैं। अवधूतने कहा--हे वेश्या ! तू पर-महंस दीखती है। वेश्याने कहा--परमहंस अपरमहंस मेरे

स्वरूपमें दोनों नहीं, जैसे-- स्वप्नके परमहंस अपरमहंस स्वप्नद्रष्टाके स्वरूपमें दोनों नहीं।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय! वेश्याके वचन सुनकर अवधूतकी सुधि गई। पुनः जडभरत बोला हे वेश्या! तूने कहा है कि, आत्मामें त्रिपुटी है नहीं तो किसमें है, जिसमें त्रिपुटीको मानकर आत्मा जुदा माने सो कहो, ऐसा चैतन्य आत्मासे भिन्न त्रिपुटीका आधार है नहीं इससे त्रिपुटी आत्मारूपही है परन्तु आपही अपनेको देखता है, आपही अपनेको सुनता है, आपही अपनेको स्पर्श करता है; इसी प्रकार सब इंद्रियोंमें जान लेना; तात्पर्य यहकि, त्रिपुटी रूपभी आपही है तिसका द्रष्टा अधिष्ठान तथा आधार भी आपही है। जैसे--स्वप्नमें स्वप्नद्रष्टाही द्रष्टा दर्शनदृश्यरूप त्रिपुटी भी आपही होता है; तथा त्रिपुटीका द्रष्टा अधिष्ठान तथा आधारभी आप है और कोई जाग्रत्के पदार्थ स्वप्नमें हैं नहीं, जिससे त्रिपुटी होवे। ताते--हे वेश्या! जब सर्वरूप आत्माही है तब देखना भी आत्माही है। वेश्याने कहा हे जड भरत! तेरी बुद्धि हँसने योग्य है जो एक आत्मामें सर्व कल्पना करता है तथा भिन्न अभिन्न जानता है। कभी तैंने अपने शरीरको अपनेसे भिन्न अभिन्न जाना है। जैसे-घट पटादिक भिन्न भिन्न प्रतीत होते हैं तथा बडे छोटे, शुद्ध अशुद्ध, परे उरे देश, काल, वस्तु, भेदवाले प्रतीत होते भी पंचभूतरूप हैं इससे एकरूपही हैं, क्योंकि अकार्य हँसता है रुदन कर। तब वामदेव और जड भरत दोनों रुदन करने लगे।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय! तब मैंने कहा हे मित्रो! रुदन क्यों करते हो, तुम्हारे स्वरूपमें रोना हँसना समानही है, हँसनेको त्यागना, रोनेको ग्रहण करना अयोग्य है।

वेश्याने कहा--हे संतो ! स्वप्ननरोंका रोना हँसनादि व्यवहारस्वप्नद्रष्टाको सम हैं। हे पराशर ! जो रागद्वेष पूर्वक हँसना रोना है तो मूर्खता है, यदि समताको लिये हँसना रोना है तो ठीक है। जैसे--नाटकमें नट स्वांगके अनुसार कभी रोता है, कभी हँसता है, परन्तु नटको नाटकमें हँसना रोना विलासमात्र प्रसन्नताका कारण है। तथा नट और नाटकके द्रष्टारूपके विद्वान् पुरुषोंको भी नटका नाटकमें हँसना रोना विलासमात्र है। स्वयम् नट भी हँसना रोना आदि व्यवहार करते भी नटत्वनिश्चयसे चलायमान नहीं होता, बालकोंको नटका हँसना, रोना, हर्ष शोकका कारण है। हे पराशर ! समदृष्टिके लिये विद्वान् पुरुषोंकी जो जो रागद्वेषसे रहित चेष्टा है, सोई मुमुक्षुओंको उपदेश है क्योंकि मुमुक्षु ऐसे विचारते हैं कि, इन विद्वान् पुरुषोंने ऐसा कोई समतारूप अमृतपान किया है ? जिससे सब न्यून, अधिक, लौकिक, पारलौकिक, कायिक, वाचिक, मानसिक, शुभाशुभ, सुख, दुःख, हँसना, रोनादि अवस्थामें हमेशा शांतरूप समही रहते हैं, विभ्रमगतिको कदाचित् प्राप्त नहीं होते। जिस समतारूप अमृतके प्रतापसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदिकोंके सहित उनके ऐश्वर्यकी इच्छा नहीं करते तो अन्य ऐश्वर्यका क्या कहना है, अनिच्छा भी नहीं करते ग्रहण त्याग बुद्धिसे रहित हैं, स्वतन्त्र हैं, जन्ममरणरूपी भयसे भी रहित हैं। सदा जगत्के भोग पदार्थोंसे रहित हैं तो भी प्रसन्न वदन रहते हैं शरदऋतुकी पूर्णमासीके चन्द्रमावत् इससे सर्वसे विलक्षण कोई अद्भुत पदार्थ इन विद्वानोंको मिला है इससे हम लोगोंको भी इस अमृतके पान करने वास्ते इन विद्वानोंके सकाशसे यत्न करने योग्य है नहीं तो हमारा जीवन व्यर्थ है। इस प्रकार सम्यक् सन्तोष

विचार, निष्कामतादि आचरण विद्वानोंके देखकर मुमुक्षुजनोंको भी परमपद पानेकी इच्छा होती है । इससे हँसना रोना अनात्मधर्म ब्रह्मरूप विद्वान् पुरुषोंको समही है जैसे--आकाश जीवोंके हँसने रोनेमें समही है, हर्ष शोकरूपी न्यून अधिक नहीं होता । हे मैत्रेय ! जडभरतादिक लज्जायमान होकर तूष्णीम् हो गये क्योंकि, वेश्या अवाङ्मनसगोचर पदको कहती थी। इस पदमें वाणीका प्रवेश नहीं इससे तूष्णीम् होना ही भला था। पुनः मैंने-कहा--हे वेश्या ! संसार कैसे इस जीवका छूटे ? वेश्याने कहा--मैं शास्त्र वेद पढी नहीं परंतु, तुम संतोंमें सुना है, जब परिच्छिन्न अहंकार आपा छूटा तब नामरूप संसार कहां है ? जैसे सुषुप्ति मूर्च्छामें अहंकार नहीं तो जगत् भी नहीं। पुनः मैंने कहा-हे वेश्या ! अहंरूप चित्त कैसे हो ? वेश्याने कहा--हे पराशर ! तू कौन है ? चित्तको वश करनेवाला, चित्तादि जड दृश्य हैं वा द्रष्टा हैं ? जो तू चित्तादि दृश्यका द्रष्टा है तो तुझको चित्तके वश करनेका क्या प्रयोजन है, क्योंकि चित्तादिको दृश्यकाद्रष्टातुझको चित्तादि दृश्य लाठी नहीं मारता है, तथा जादू मंत्र नहीं करते हैं, तेरा रस्ता नहीं रोकते हैं, तुझको जहर नहीं देते हैं, तुझको आवरण नहीं करते हैं, तथा अपना दृश्य स्वरूप और बंध मोक्षादि धर्म तुझको नहीं देते। अथवा तुझ द्रष्टाके चित्तादि दृश्य नजदीकभी नहीं वरन् तुझ द्रष्टाको चित्तादि दृश्य अपना हितकारी जानते हैं, अहितकारी जानते नहीं क्योंकि, द्रष्टा चैतन्य करके ही जड दृश्यकी सिद्धि होती है, अन्यथा नहीं । यही द्रष्टाको दृश्य उपहित करता है। तुझ द्रष्टाको चित्तादि दृश्य कोई उपालंभ भी नहीं देते कि, तुम हमको ठीक नहीं प्रकाश करते, जैसे--सूर्य दीपकादि प्रकाशकोंको घट पटादि

प्रकाश्य उपालंभ नहीं देते । तात्पर्य यह कि, सर्व प्रकार आकाशके समान अपना बिगाड नहीं होता और किसी प्रकार भी चित्तादि दृश्य पदार्थ तुझको पीडा नहीं देते । विना प्रयोजन दूसरेका हर्जा करना नालायकोंका काम है । नाहक अपराध विना दूसरेसे शत्रुपना करना पाप होता है । जैसे--विना अपराध धीवर, मछलियों और पक्षियोंको जालमें फँसाता है । धीवरकी समता मत कर, तेरेमें चित्तादि दृश्य हैं ही नहीं, वश किसको करता है । जैसे--शुद्धस्फटिक मणि अपनेमें कल्पित लालीके दूर करनेका उपाय नहीं करती, करे तो भ्रम है अथवा जो तू आपको चित्तादि दृश्य जानता है तो चित्तादि दृश्य तू ही ठहरा वश किसको करता है, जो वश करता है तो अपने धर्मोंका वा अपनेको वश कर वा न कर, द्रष्टाको क्या हानि लाभ है ? कुछ नहीं ! तुझ चैतन्य द्रष्टाके आगेही चित्तादि जड दृश्य वशवर्ती को पुनः वशवर्ती करना लज्जाका काम है; पीसेका पुन पीसना हाँसी है, जैसे स्वप्नद्रष्टा चैतन्यके अधीन ही स्वप्न पदार्थोंकी प्रतीति है स्वतः नहीं । चित्तादि दृश्य अपने धर्मोंको वा अपने आपको रोकेगा तो तेरा मरण निःसन्देह होगा; जैसे--मल मूत्र त्यागरूपी देहका धर्म-देह त्यागेगा तो अवश्यमेव मृत्यु होगी, आकाशकी कुछ हानि लाभ नहीं होगी, जैसे निज शरीरको शरीर वश करे चेतन विना सो न्याय तुझको होगा, इससे जो तू अधिष्ठान कल्पित चित्तको वश किया चाहता है तो अपने स्वरूपको सम्यक् जान् । अधिष्ठानके ज्ञानते कल्पितकी निवृत्ति बलात्कारसे होती है, कल्पितकी निवृत्ति वास्ते जुदा साधन नहीं चाहिये । जब तूने सर्व ओरसे पूर्णरूप अपना आत्मा जाना तब आपही मन भटक भटकके

शांत हो जावेगा। जैसे समुद्र मध्य विषे जहाजसे काग उडे सो काग चारों ओर समुद्रको देखता है और इधर उधर अपने बलसे भटकता है, जब अन्य आधार नहीं देखता तब थककर जहाँसे उडा था उसी जहाजपर पुनः बैठता है। ऐसीही हरिपूर्ण दृष्टि विना मनके वश करनेका और उपाय कोई नहीं। जैसे तरंगादिकोंका निजस्वरूप जलके जाननेसेही तरंगादिकोंकी वशीकारिता होती है। जैसे--जडपदार्थ निजात्मामें कल्पित रज्जुरूपके सम्यक् अपरोक्ष बोधसे ही मनरूप सर्प वश होता नाम निवृत्त होता है। जैसे स्वप्नद्रष्टाका सम्यक् जागरणही, स्वप्न सृष्टि सहित स्वप्न मनका वशीकरण होता है।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय! वेश्याने सत्य ही कहा है, जैसे अंगारेमें जिस अग्निके वियोगसे, अनिर्वचनीय अन्य कारणके विना कलुषता प्राप्त होती है सो कोयलेकी कलुषता किसी भी उपाय करके दूर नहीं होती जिस अग्निके वियोगसे कोयलेमें कलुषता हुई है तिसी अग्निमें कोयलेका प्रवेश होनेसे कोयलेकी कलुषता दूर होती है, पुनः यह मालूम नहीं होता कि, कोयलेकी कलुषता कहां गई और कोयला कौन है। तात्पर्य यह कि, अपना नाम रूप मिटायके एक अग्निरूप होता है, तैसे ही सच्चिदानंदरूप अग्निके वियोगसे मनरूप कोयलेमें कर्तृत्व भोक्तृत्व रूप कलुषता उत्पन्न हुई है सो कर्तृत्व भोक्तृत्व रूप कलुषता, यज्ञ, दान, तप, होम, व्रत, तीर्थ, जप, ध्यान, वेदाध्ययन, शम, दम वैराग्यादि किसी भी साधनसे दूर नहीं होती किन्तु, जिस सच्चिदानन्दके अज्ञानसे मन वा मन उपाधिक चैतन्यमें कलुतारूप आवरण हुआ है तिसीके ज्ञानसे मनरूप कलुषता दूर होवेगी अन्य उपायसे नहीं। तात्पर्य-यह कि आप सहित सर्व मनादिकोंको

हरिरूप जाननेसे मनादिक अपना नाम रूप त्यगके हरि-रूप होवेगा। पुनः यह नहीं जाना जावेगा कि मनादिक अपने धर्मोंसहित कहां गये। हे मैत्रेय ! जब नामरूप मन सहित संसारको मिथ्या जाना और अपने स्वरूपको त्रिकालाबाध्य स्वरूप सत् जाना तब मन कहां जावेगा, उलटा मिथ्या दुःख रूपते सुख स्वरूप आत्मामें ही बलात्कारसे लय होगा। हे मैत्रेय ! मृत्तिका बुद्धिही घटादिनामरूपके अभावका कारण है, कोई पत्थर करके घटादिकोंको चूरण नहीं करता जो मृत्तिका रूप होवे, बने बनाये काम देते, नामरूप प्रतीत होते भी घटादि मृत्तिकारूप हैं, यही दिव्यदृष्टि है क्योंकि, कारण दृष्टिही दिव्यदृष्टि है, अन्य नहीं।

हे मैत्रेय ! पुनः वेश्या बोली--हे संतो ! जिस समय संसारकी सर्व चाहनाको छोडकर एक भगवत् की चाहना हुई उसी समय वेश्यादि संज्ञा दूर हुई. क्योंकि, गोविन्द व्यतिरेक जो कुछ दृष्टि आता है सो मलिनता है जो मूढ हैं सोई इस दृश्यमानमें प्रीति करता है, विचारवान् नहीं करता है। हे पराशर ! तू इस दृश्यमानमें दृष्टि क्यों करता है कि, मैं परमहंस हूँ, ऋषि हूँ मैं ब्राह्मण, मैं पंडित, मैं कुलिन, मैं ज्ञानी इत्यादि हूँ और यह वेश्या है, नीच है, दुराचारिणी है इत्यादि. परंतु यह जान दृश्यमान यह शरीर अति मलिन है कृमि है, भस्म होनी है; गोविंद व्यतिरेक जो प्रतीति है सोई मलिनता है, मैंने कहा--हे वेश्या ! तूने ही पूर्व कहा है कि मैं सर्वरूप अद्वितीय आत्मा हूँ तो मलिनता कृमि और भस्म भी तूही है। वेश्याने कहा--सब कहने मात्र नहीं तो मैं चैतन्य सर्व पदोंसे अतीत हूँ। मैंने कहा--जो तेरेविषे सर्व पद नहीं तो तुझसे भिन्न कौन है, जिसमें सर्वपद होवे।

वेश्याने कहा--तुझको सर्व असर्व पद कैसे दृष्टि आया है मैंने कहा, जैसे तुझको मलिनता कृमि भस्म दृष्टि आया। पुनः वेश्याने कहा--हे पराशर ! तू परमहंस है। मैंने कहा-ऐसे मत कहो यह कल्पना मेरे विषे नहीं, यह कल्पना तेरे विषे है, जिससे आपको तूने वेश्या जाना है और मुझको परमहंस जाना है । हे वेश्या ! जो तू मन वाणी करके कथन चिंतन करेगी, सो अहंकारका रूप है, व मायाका रूप है । दृश्यका तहांतकही रूप है जहांतक मन वाणीकी विषमता है; आत्मा मन वाणीसे अगोचर हूँ । जैसे तूने सुनकर वेश्यापन दृढ किया, स्वप्नमें भी तू और नहीं जानती तैसे तू जब अपने स्वरूपको दृढ जानेगी तो मुक्तिकी इच्छा न करती हुई भी मुक्तिको पावेगी । जैसे--घटाकाश सम्यक् अपने स्वरूपको जानता है तो घटके फूटने न फूटनेमें निःसंदेह महाकाश स्वरूप है । यह नहीं कि, घटाकाश घटमें पदार्थ होनेसे निर्विकार नहीं, सत् नहीं और विकारी है, किन्तु सदा निर्विकार है । इससे हे वेश्या ! इस सूक्ष्म स्थूल अहंकारको निरहंकाररूपी हिमालयमें और निरहंकाररूपी भस्मको लगा कि; पुनः पापसे निर्मल होयके शोभायमान होवे। वेश्याने कहा-- हिमालय में अनेक जीव मरते हैं परंतु पापसे नहीं छूटते, इससे हिमालयमें जलनेका कुछ प्रयोजन नहीं, जलना मेरे तेरा वचनोंसे होगा क्योंकि, वेश्या नाममनरूपी नगरसे निकासो। वास्तवते मैं चैतन्य आत्मा स्वाभाविक शोभायमान हूँ, यत्नते नहीं । मैंने कहा--मैं ऐसा अतीत हकीम नहीं हूँ जो इस वेश्या नामको निवृत्त करूँ और सच्चिदानंद नाम राखूं। जैसे कोई गृहस्थ अतीतके पास

अतीत होनेको आता है तो वह अतीत पूर्व गृहस्थके नामको निकासकर, दूसरा नाम घुसेडता है, एक नाम रूप भ्रमको निकासा, दूसरा नामरूप भ्रममें उलटा दृढकर डाला, इसमें विशेषता क्या हुई, इससे सच्चित् आनन्दादिक सर्व नाम रूपकल्पित भ्रम है, सत्य नहीं। सच्चित् आनन्दादिक सर्व नाम रूप सिद्ध होते हैं. सो अवाङ्मनसगोचर तेरा स्वरूप है हे वेश्या ! तू अहंपना त्याग पुनः तिस त्यागका भी त्याग कर जिससे स्वरूप अपना पावे।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! वह वेश्या, यत्किंचित् काल संतोंकी संगति करके मूल अपनेको पा लिया, परंतु तुझको अबतक कुछ प्रवेश न हुआ; मेरा उपदेश तुझको अकार्यही हुआ। मैत्रेयने कहा--तुम मेरे गुरुहो, अहंकार मेरा निवृत्त करो। पराशरने कहा--अहंकार तेरा है, मैं कैसे निवृत्त करूँ हे मैत्रेय। बांदर चनोंकी मुट्ठी अपनी मूँदता है, तो फँसता है जो अपनी मुट्ठी खोले तो छूट-जावे, मुट्ठीका खोलना न खोलना बन्दरके अख्त्यार है, दूसरेके नहीं। हे मैत्रेय ! मैं तेरा अहंकार निवृत्त करूँ। कि, अपना। तेरा अहंकार मुझको दुःख नहीं देता जिसको अहंकार दुःख देवेगा सो आप ही त्यागेगा। जैसे--कोई चार आने देकर मजदूरके शिरपर बोझा उठवाकर चले, जब मजदूरको बोझ सहन नहीं किया जाता तो लाचार होकर नीचे पटक देता है, चाहे कोई हजार मोहर देवे क्योंकि अपने शरीरसे सहन किया जाता नहीं--लाचारी है। तैसे जब अहंकार तुझको दुःख देवेगा तो तू आप ही बलात्कारसे त्यागेगा। मैत्रेयने कहा--जो मुमुक्षुओंके अहंकारादिक विचार निवृत्त नहीं करते तो आपको तुमने आचार्य कैसे माना है। परा-

शरने कहा--सत्त्व रज तम आदि गुणोंके प्रकाशक आत्मामें आचार विचार नहीं किंतु संघातके धर्म हैं । परन्तु मेरी कृपाकी आशा राख, वचन आगे मत कर और नित्य अनित्य मत पूछ, जो कहूँ सो सत्यकर मान। मैत्रेयने कहा--जबलग संदेह मेरा निवृत्त नहीं होता तथा दिलमें नहीं जँचता तबलग मैं चुप होनेका नहीं । वेदमें लिखा भी है कि, जब लग शिष्यका संशय न मिटे तब तक शिष्य चुप न होवे और गुरु भी क्रोधरहित उपदेश करै । यह वचन मैत्रेयका सुनकर पराशरने मैत्रेयका केश हाथमें पकडकर भली प्रकार शासना की। मैत्रेयने कहा--हे पराशरजी ! बडा आश्चर्य है कि, दैत्यादिक क्रूर (हिंसक) जीव भी अपनी देहका आप भक्षण नहीं करते तुम अपने आपको कैसे शासन देते हो। मैं तो मैत्रेय नाम मात्र भी नहीं आपको मत मारो । पराशरने कहा -क्या मुझको तैंने तुच्छ समझा है ? अभी तुझको भस्म करता हूँ । मैत्रेयने कहा--भस्मको भस्म क्या करोगे, मैं तो हूँ ही नहीं, किसको भस्म करते हो, परन्तु मैं यह नहीं जानता था कि, तुम मानको चाहते हो। अब नम्रता सहित प्रश्न कहूँगा, मेरी रक्षा करो । पराशरने कहा--इसीसे तुझको उपदेश नहीं करता कि, तुझको निश्चय नहीं, जिसको आत्मामें निश्चय है, देहनाश होय तो भी निश्चयका त्याग नहीं करता, वह दैत्यपुत्र तुझ ब्राह्मणसे शत अंश भला था कि, पिताने उसको अनेक बार शासना की पर निश्चयसे चलायमान नहीं हुआ । मैत्रेयने कहा--हे गुरो ! कथा उसकी मुझसे प्रगट करो कि. कैसे हुआ है ।

अथ प्रह्लादाख्यान

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! पूर्व दितिके उदरविषे दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। एकका नाम हिरण्याक्ष था, जिसको

विष्णु भगवान्‌ने वाराहका रूप धारण कर मारा । तिसके पीछे हिरण्यकशिपु त्रिलोकीका राज्य करने लगा, सर्व इंद्रादिक देवता तिसकी आज्ञामें थे, यज्ञका भाग देवता लेते थे सो वही लेने लगा, इंद्रादि देवता तिसके भयसे स्वर्गको त्यागकर पृथ्वीपर रहते थे । हिरण्यकशिपुके गृहविषे एक प्रह्लाद नाम पुत्र उत्पन्न हुआ । जब प्रह्लाद पढनेके योग्य हुआ तब पढाने वास्ते गुरुके निकट पिताने भेजा । पुनः कुछ दिन पीछे हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको गुरु सहित बुलाके पूछा कि, हे पुत्र ! जो गुरुसे पढा है सो सुनावो । प्रह्लादने कहा हे पिताजी ! यह जो स्थूल सूक्ष्म दृश्यमान जगत् है सो स्वप्नके समान असत् भ्रम जाना है और एक अद्वितीय विष्णु (व्यापक आत्मा) को ही मैंने सत् जाना है। सर्व विष्णुही है, यह वचन सुनकर हिरण्यकशिपु क्रोधवान् हुआ, नेत्र लाल हो गये । शुक्रको कहा--हे ब्राह्मण ! इसको क्या पढाया है ? विष्णु जो हमारी जानका घातक है, यह तिसका भजन करता है और मैं जो त्रिलोकीका राजा हूँ सो मुझको बिसारता है । शुक्रने कहा--हे दैत्येंद्र ! क्रोध मत करो, बालक अवस्था है, इस निश्चयसे इसको फेरूंगा, अब तुझहीको याद करेगा । पुनः हिरण्यकशिपुने कहा--हे पुत्र ! जो गुरु पढावे सोई पढो, नहीं तो तेरे प्राण जायँगे । प्रह्लादने कहा--हे पिताजी ! किसीकी शक्ति नहीं है कि, मुझको मारे, आकाशके समान जगत् विषे जो व्यापक विष्णु आत्मा है तिसको कौन मारे और कौन दुःख देवें । हिरण्यकशिपुने कहा--नीच बालक ! कहो--वह कौनसा विष्णु है जिसका बारम्बार नाम लेता है, मुझको छोडके । प्रह्लादने कहा--हे पिताजी ! विष्णु व्यापक सारे जगत् विषे मनका साक्षी है और इंद्रियोंसे अगोचर है, तुझ

विचार नेत्र रहितको कैसे दीखे ? योगीश्वर विष्णु आत्माको परमपद कहते हैं । हे पिताजी ! तू, मैं और यह जगत् है ही नहीं मूल और सार भगवान् विष्णु आत्माही है । हिरण्यकशिपुने कहा--हे मूर्ख ! तेरे मनको पापोंने घेरा है जो उलटा मानता है, नहीं तो संत कहते हैं कि--ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों प्रणवसे उपजे हैं इसीसे जड हैं दृश्य और तू चैतन्य आत्मा है । भगवान् मायाको कहते हैं, आपको त्यागके मायामें लीन क्यों होता है । इतना कहकर हिरण्यकशिपुने दैत्योंसे कहा कि, इस पापीको दृष्टिसे दूर करो और गुरुके गृहमें लेजावो ।

कुछ दिन पीछे फिर गुरुसहित प्रह्लादको बुलाया और पूछा, क्या पढा है ? प्रह्लादने कहा--पढना न पढना, सुनना, देखना, लेना, देना, खाना, पीना, सोना, जागना, सूंघना, स्पर्श करना, सर्व विष्णु ही है। प्रह्लादका वचन सुनकर अति क्रोधवान् हुआ, राक्षसोंको आज्ञा दी कि, इस बालकका घात करो, इसको कालने घेरा है, हमारे कुलमें यह अग्नि है । राक्षसोंने अनेक प्रकारकी शासना और भय दिया परन्तु प्रह्लादका रोम भी न बिगडा ।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! प्रह्लादके समान तुझको जब शासना होवे तब कहेगा मैं ब्रह्म नहीं हूँ, किंतु जीव हूँ परन्तु दैत्यपुत्र अपने निश्चयसे न फिरा । मैत्रेयने कहा-उसको क्या लाभ हुआ कि इतनी शासना सही; क्योंकि नामरूप भ्रम मात्र है, वस्तु सत् है, क्यों न उसको दंड हो, अपने स्वरूपको त्यागके दूसरेको अपने स्वरूप ऊपर स्थित करना भूलका काम है; पर उसकी कथा कहो ।

हे मैत्रेय ! पुनः हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको बुलाकर कहा--हे पुत्र ! नीच बुद्धिको त्याग, वैरीके पंथ मत जा, अभी तेरा कुछ भी नहीं बिगडा । तुझको निर्भय करूंगा ।

प्रह्लादने कहा--मैं तो मूलभी नहीं, जो है सो सर्व भय अभयादि, विष्णु आत्माही है । तब क्रोधवान् होकर आज्ञा दी कि, इसको सर्पादिकोंसे मरवाओ । जब सर्पादि ले आये तिसकालमें प्रह्लाद सर्पादिकों सहित सर्व जगत्‌को विष्णु आत्मारूप ध्यान करने लगा । जैसे मेरे शरीरमें अविनाशी मन आदिकोंका प्रकाश विष्णु है तैसे सर्पादिकोंमें है तथा ब्रह्मासे लेकर चींटीके शरीरमें वही विष्णु आत्मा है। विष्णु पृथक् सर्पादिकसे कहां है, सर्व विष्णु आत्माही है । सर्पादिकोंसे भी प्रह्लादको खेद कुछ न हुआ । पुनः अग्निमें डाला, पहाड़से गिराया, सिंह व्याघ्रोंके आगे डाला, हिमालयके महान् भयंकर स्थानोंमें डाला इत्यादि अनेक मृत्युके कारणोंके सम्मुख किया, परन्तु प्रह्लादको कुछ खेद न हुआ क्योंकि, आप सहित सर्वविष्णुही जानता था, खेद दूसरेसे होता है । पुनः हिरण्यकशिपुने जुदा होकर गुरुको कहा कि, इसको साम, दाम, दंड, भेद, राजनीतिसे शिक्षा करो । शुक्रने ऐसाही किया, परन्तु प्रह्लादका निश्चय न डुला बरन् और दृढ हुआ ।

एक समय अध्ययनशालासे शुक्र किसी कार्यको बाहर गया तब पीछे अवकाश पाके; बालकोंको अध्ययनशालामें प्रह्लाद कहने लगा हे राक्षस पुत्रो ! सर्वरूप व्यापक विष्णु आत्माही है, तुम हम हैं ही नहीं, तिसी विष्णुकाही भजन करो । जो पूछो भजन क्या है ? तो आपसहित सर्वजगत्‌को विष्णुआत्मा जाननाही परमभजन है । बालकोंने कहा--हे प्रह्लाद ! यह समय खेलनेका है, भजनका नहीं । प्रह्लादने कहा हे दैत्यपुत्रो ! मनुष्य जन्म दुर्लभ है, बारंबार नहीं प्राप्त होता । शब्द स्पर्श, रूप, रस, गंध विषय और विषयोंके ग्रहण करनेवाले श्रोत्रादिक इंद्रिय सर्व योनि-

योंमें प्राप्त हैं । विषय इंद्रिय संबंध जन्य ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत सबही वैषयिक सुख हैं, सो सर्वयोनियोंमें प्राप्त हैं, किसी योनियोमेंही अप्राप्त नहीं, इससे इनके वास्ते यत्न करना निष्फल है । हे दैत्यपुत्रो ! शतवर्ष पुरुषकी आयु होती है, तिसमें आधी आयु तो सोनेमें जाती है, अर्थात् ५० वर्ष तो रात्रिमें कट जाती है, शेष ५० वर्षमें बारह वर्ष खेलनेमें जाती है, बारह वा षोडश वर्ष वृद्ध अवस्थामें जाती है; शेष पच्चीस वर्षमें ही पारलौकिक सुखका साधन विद्योपार्जन देशोन्नतिका प्रयत्न तथा देशाटन भोग विलासभी इसीमें ही हो सकते हैं, भजन भी इसी पच्चीस वर्षमें ही हो सकता है, आध्यात्मिक रोगोंका भी इसीमें जोर होता है । परन्तु क्षणभंगुर शरीर है, बिजलीके चमत्कारवत् क्षणमें नष्ट हो जाता है कभी शरीर जन्मता है, कभी मरता है, कभी बालक, कभी यौवन, कभी वृद्ध अवस्था आती है। कभी जाग्रत्, कभी स्वप्न, कभी सुषुप्ति, कभी मूर्च्छा, कभी समाधि, कभी हँसना, कभी रोना, कभी हर्ष कभी शोक, कभी सुख, कभी दुःख है, कभी क्षुधा, कभी तृषा, कभी हानि, कभी लाभादिक दुःखमय अवस्था होती हैं। इसी प्रकारसे हजारों सुखकी अवस्था हैं तथा हजारों दुःखकी अवस्था हैं परन्तु चैतन्य शरीररूप इस संघातकीही अवस्था हैं, आत्मा विष्णुकी नहीं पुनः बाल अवस्था अत्यन्त जडरूप है; इसमें कुछ शुभाशुभका ज्ञान नहीं, इस अवस्थाके अनेक दुःख शास्त्रों में वर्णन किये हैं तैसे

१ आजकल तो ६० या सत्तर वर्षतकका भी जीना दुर्लभ है, कोई जन्म लेते ही, कोई तीसरे वर्षमें, कोई १०-१५-२०-२५-३०-४०-वर्षमें ही मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं ।

यौवन अवस्थामें अनेक काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकारादिक विकार दुःखदायक शास्त्रोंमें कथन किये हैं, तैसे वृद्ध अवस्थामें अङ्ग क्षीणतादि दोष निरूपण किये हैं। हे दैत्यपुत्रो ! जो भजन, दान तपादिक नहीं करता, तिसको अवसर चूके, मृत्युके अंतकालमें पश्चात्तापही होता है। माताके गर्भमें जठराग्नि आदि निमित्तोंसे महान् दुःखोंको पाता है, शिर नीचे पांव ऊपर गर्भमें होते हैं, मल मूत्रके कुण्डमें पड़ा रहता है इत्यादि अनंत दुःखोंको पाता है। पुनः बहुत दुःखी होनेपर गर्भ दुःखके छूटने वास्ते, भ्रमसे अपने चैतन्य स्वरूपते भिन्न परमेश्वरकी कल्पना करके प्रार्थना करता है--कि हे सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा ! पूर्व अनेक मल मूत्र रूप देहोंमें देहाभिमानही मैं करता रहा हूँ, तिसी देह अभिमानकाही फल पुनः पुनः यह मुझको गर्भवास है । जो मैं मलमूत्ररूप देहका अभिमान नहीं करता तो दुःखरूप गर्भवासको नहीं प्राप्त होता, इसीसे सर्व दुःखोंका कारण देहाभिमान ही है, अन्य नहीं । देह अभिमानी मेहतरका भी बाप है। इससे हे बालको ! तुमने कदाचित् भी देह अभिमान नहीं करना किन्तु, आपसहित सर्वनाम रूप जगत्को विष्णु रूप आत्मा जानो। जो जन्म मरण बन्धनसे छूटो देह अभिमान त्यागे बिना अन्य तपादि साधनोंसे बंधनरूप संसार बंधसे नहीं छूटोगे, जो इस दुर्लभ मनुष्य शरीरमें, शिश्नोदरपरायण होकर अपने मूलस्वरूप आत्माको न जानोगे तो अनंत कूकर शूकरकी दुःखमय योनियोंको प्राप्त होगे, मनुष्य जन्म पाना तुम्हारा निष्फल हो जावेगा,

१ यहां विस्तार भयसे लिखा नहीं योगवासिष्ठ, आत्मपुराण आदि मोक्षोपयोगी शास्त्रोंके देखनेसे भली प्रकार प्रगट होगा ।

जैसे--चिन्तामणि अकस्मात् किसी पुण्य प्रतापसे किसी पुरुषको हाथ आई तिसको मूर्खता करके अपने प्रयोजनको न साधके निष्फल खो देना अत्यंत नालायकीका काम है, इससे मनुष्य देहको पायकर विचार करना कर्त्तव्य है । मैं कौन हूँ ? यह देहादिक प्रपंच क्या है ? कहांसे आया हूँ ? कहां जाऊँगा ? इस प्रकार जब अपने आपको नहीं चीन्हा तो मनुष्य देहके पावनेसे क्या लाभ हुआ ? हे बालको ! अत्यंत मलमूत्ररूप अपवित्र इस शरीरका अहंकार त्यागकर एक आत्मा विष्णुको ही पवित्र जानो, अन्तर बाहर आत्मा ही है, इस आत्माका न माता न पिता है, न भ्राता है, न पुत्र है, न इस आत्माका वर्ण है, न आश्रम है,न बालकादिक अवस्था हैं ये सब शरीरके धर्म हैं, आत्माके नहीं । आत्मा नित्य निर्लेप प्रकाश है । उपाधिसे सर्व रूप विष्णु आत्माही है. जैसे--निद्रारूप अविद्या उपाधिते विना स्वप्नद्रष्टा निर्विकार शुद्ध है, उपाधिने सर्व स्वप्न प्रपंचरूप भी स्वप्नद्रष्टाही है । शरीरादिकोंके अभिमान प्रबंधसे प्रत्यक्ष नहीं भासता जैसे--शुद्ध स्फटिकमें कोई रीतिका भी रंग नहीं परन्तु, लाल पुष्पादिकोंके संयोगसे लाल रंगवाली प्रतीति होती है वास्तवते शुद्ध है । तैसे-आत्मामें यह दृश्यमान नामरूप प्रपंच वास्तवते है नहीं, बुद्धि आदिक उपाधिके सम्बन्धसे आत्मामें प्रतीत होता है । जो इस नामरूप भ्रम प्रपञ्चमें सत्यत्व प्रतीति करता है सो जन्म मरणके बंधनमें पडता है। इससे हे बालको ! तुमको योग्य है, कि अबही नारायणपरायण होवो और आशासे मनको निराश करो, अस्ति भाति प्रियरूप नारायण आत्मासे जो व्यतिरेक है सो मृगतृष्णाके जलवत् जानो,

आत्माको सर्व अवस्थासे न्यारा साक्षीरूप जानो। जब इस निश्चय को दृढ़तासे धारण करोगे तब अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव तीन ताप रूप संसारबंधनसे छूटोगे। क्योंकि, यह सर्व उपाधि शरीर की है, जब शरीर अभिमानसे छूटा तब सर्व उपाधियोंसे मुक्त होता है द्वैतका विचार मनसे त्यागो, जो कुछ देखो, सुनो, सूंघो, स्पर्श करो, रस लो, तथा लेना देना, ग्रहण, त्यागादिक व्यवहार करो, सो सर्व विष्णु आत्मा ही जानो, दूसरा कोई नहीं। जैसे--सर्व स्वप्नका व्यवहार स्वप्नद्रष्टा आत्मारूप है जिसने बुद्धि आदिकोंका साक्षीस्वरूप अपने आत्माको ब्रह्मरूपको सम्यक् जाना है (जैसे घटाकाश अपनेको महाकाशरूप जाने) सो इस भ्रमरूप संसारमें आवागमनको नहीं प्राप्त होगा।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! तिसी समय शुक्रने आकर देखा तो सर्व बालक अध्ययनशालामें यह भजन कर रहे हैं कि यह सर्व नाम रूप विष्णु आत्माही है, हम भी सर्वव्यापी विष्णु आत्मा हैं, हम विष्णुरूप आत्मासे अहं त्वं रूप जगत् भिन्न नहीं, विष्णुरूप हमारे आत्माका यह सर्व नाम रूप प्रपंच प्रकाश है (लालकी दमकावत्)। हे मैत्रेय ! शुक्राचार्य यह अवस्था बालकोंकी देखकर हिरण्यकशिपुको प्रह्लादका अध्ययनशालामें जो वृत्तांत था सो सब कह सुनाया वरन् हिरण्यकशिपुको स्वयं न दिखला दिया, (अपनी निर्दोषताके वास्ते) पाठशालामें प्रह्लादकी अवस्थाको देख अत्यन्त क्रोधको प्राप्त हो हिरण्यकशिपुने रसोइयोंको हुकुम दिया कि, इस बालकको भोजनमें जहर देकर नाश करो। हुकुमअनुसार रसोइयोंने ऐसे ही किया और प्रह्लादको भोजन पानेवास्ते बुलाकर भोजन दिया। प्रह्लाद यही भजन करता था कि भोजन

भी विष्णु आत्मा है भोजन बनानेवाला भी सर्वव्यापी विष्णु है, भोजन करनेवाला भी विष्णु आत्माही है, विष भी विष्णु है, अमृत भी विष्णु है, मैं भी विष्णु हूँ तथा हिरण्यकशिपु भी विष्णु है। तात्पर्य यह है कि, सर्व नामरूपात्मक प्रपञ्च विष्णु आत्मा ही है अन्य द्वैत नहीं!

हे मैत्रेय! उलटा विष प्रह्लादको अमृतरूप विष्णु होगया, कुछ विषने अपना असर नहीं किया क्योंकि सब जगत् मनोमात्र है। जैसे दृढमनमें भावना करता है तैसे ही भावनाके अनुसार प्रत्यक्ष भासता है और कोई बाहर प्रपंच है नहीं, मनमें स्वप्नवत्ही प्रपञ्च है। हे मैत्रेय! भृंगी कीडा अन्य विजातीय कीडेको भी निरन्तर दृढभावनाके वशसे अपना रूप कर लेता है; यह तो नाम रूप प्रपञ्च आगे ही (स्वरूपसेही) अस्ति भाति प्रियरूप व्यापक विष्णुरूप आत्माही है, केवल मनने भ्रम करके विपर्यय कल्पना की थी। जिस मनने निजस्वरूपसे विपरीत भावना की थी वही मन जब सर्वनाम रूपको सांगोपांग निजस्वरूप विष्णु आत्माही भावना करेगा तो सर्वनामरूप प्रपञ्च विष्णु आत्माकाही स्वरूप क्यों न भासेगा? अवश्य भासेगा। हे मैत्रेय! उपासनारूप भक्ति भी इसीका नाम है कि, "आपसहित सर्व नाम रूप प्रपञ्चको उपास्यरूप जानना" तभी ही शांति होती है, राग द्वेष मिट जाते हैं, दुःखोंकी निवृत्ति और परम आनंदकी प्राप्ति होती है। हे मैत्रेय! प्रह्लादको विषसे दुःख न हुआ क्योंकि, विष तथा अपने सहित सर्वको प्रह्लाद विष्णुरूप ही जानता था, विष्णु अपने आपको तो दुःख नहीं दे सकता; जैसे अपने शरीरको आप कोई भी परिहार नहीं करता। इससे हे मैत्रेय! तू भी विचार कर दृढ निश्चयधर कि सर्व नामरूप प्रपंच अस्ति भाति प्रिय-

रूप मैं आत्मा ही हूँ वा सर्वनाम रूप दृश्यप्रपंचसे, असंग, निर्विकार, निर्विकल्प; सच्चिदानन्द, साक्षी आत्मा, स्व महिमामें स्थित हूँ, असत् जड दुःखरूप यह देहादिक प्रपंच मैं नहीं । धन्य है उस दैत्य पुत्रको जो ऐसी अवस्थामें भी अपने निश्चयसे चलायमान नहीं हुआ, मन वाणी शरीरसे अपने स्वरूपमें ही स्थित रहा । तुझको विष देवे तो तत्काल कहे, मैं ब्रह्म नहीं जीव हूँ । मैत्रेयने कहा--हे गुरो ! भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालोंमें सर्व नामरूप जगत् मैं ही हूँ, तो जीव भी मैं ही हूँ प्रह्लाद कहां है ? आपकी बुद्धिमें भेद पडा है कि, आप प्रह्लादको मुझसे भिन्न समझते हैं । पराशरने कहा--हे पाखंडी ! तेरा प्रह्लादके समान मन शुद्ध नहीं, तुझ पापीका दर्शन करना योग्य नहीं, पाप है । मैत्रेयने कहा सच है इससे परे पाखंड क्या है कि, मैं चैतन्य मायाकरके सर्व नामरूप प्रपंचको उत्पन्न, पालन, संहार करता हुआ भी स्वरूप से कुछभी उत्पन्नादि करता नहीं, सर्वका भोक्ताभी अभोक्ता हूँ, निज स्वरूपसे मन वाणीका अविषय भी मायाकर मन वाणीका विषय भी मैं ही हूँ, शरीरदृष्टिसे चलता भी, स्वरूप दृष्टिसे अचल हूँ, कर्ता भी अकर्ता हूँ । सर्व मन वाणी शरीरादिक दृश्यकी चेष्टा करता भी अक्रिय असंग साक्षी हूँ । जैसे--स्वप्नद्रष्टा स्वप्न दृश्यकी चेष्टा करता हुआ भी अक्रिय असंग है । एक पाखण्ड मेरा और है " हूँ मैं आप और अपनेसे भिन्न तत् पद त्वं" पद और ब्रह्मपदको कल्पता हूँ तथा असत् जड दुःखरूप दृश्यको अपनी सत्तास्फूर्ति करके उलटा सच्चिदानन्द रूप कर दिखलाता हूँ । जैसे लोहेको पारस सुवर्ण कर दिखलाता है । जैसे--इन्द्रजाली सर्व मायिक पदार्थोंको सत्य कर दिखाता है । मैं चैतन्य आत्मा देश

काल वस्तु भेदसे रहित भी, देश काल वस्तु भेदवान्, (स्वमाया कर) भी मैं ही हूँ यही मुझ चैतन्यका महान् पाखंड है । मैं चैतन्य अवाङ्मनसगोचर स्वयंप्रकाश होनेसे; मन इंद्रियों करके दर्शनके अयोग्य हूँ तथा सर्व दर्शन भी मेरा ही है। जो पुरुष मुझ चैतन्य आत्माको सम्यक् ब्रह्मरूप नहीं जानता तिसको भ्रममात्र चौरासी लक्ष योनियोंमें जन्ममरण रूप पाप होता है। इससे हे पराशरजी ! मुझको जो आपने पाखंडी दर्शनके अयोग्य और पापी कहा है सो पूर्वोक्त रीतिसे ठीकही कहा है ।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय । कथा सुन, हिरण्यकशिपुने शुक्रको बुलाकर कहा कि, इस बालकको किसी भी उपायसे नाश करो, ढील मत करो ! तब शुक्रने प्रह्लादसे कहा--कि, हे पुत्र ! पिता तेरा त्रिलोकीका राजा प्रगट है, औरसे तुझको क्या काम है, पिताकी शरण ले और शत्रुकी मित्रता त्याग, नहीं तो तेरा नाश होयगा, परमगुरु पिता है तिसीकी आज्ञा भंग मत कर ।

हे मैत्रेय ! तूभी मुझसे भयमान हो क्योंकि, शुक्र एक शक्ति रखता था मैं सहस्रशक्ति रखता हूँ, शुक्रने मेरेसे सन्था ली थी। मैत्रेयने कहा--मुझ चैतन्य आत्माके भयसे सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु यम, समुद्र, नदियां, ब्रह्मा, विष्णु शिवादिक सर्व दृश्य भयमान होती है, मुझको किसकी शक्ति है जो भय देवे । मुझ चैतन्य विना सर्व नाम रूप दृश्य सिद्धि ही नहीं देवेगी तो भय कैसे देवेगी, जैसे--चित्रकी मूर्ति चितेरेको कैसे भय देवैगी तथा अनेक प्रकारकी पुतलियां तंत्रीको कैसे भय देवेंगी, किंतु नहीं देवेंगी, वा अस्ति भाति प्रियरूप मैं सर्व नाम रूप दृश्यका द्रष्टा आत्मा हूँ, अपने आत्माको दृश्य भय कैसे देवेगी। हे पराशर ! जो यह भी आपने ही शुक्रको उपदेश दिया

होगा जो कि, वह प्रह्लादसे कहता था। पराशरने कहा-हे मैत्रेय ! मैं शुक्रको निर्वाणपदका उपदेश करता था। परंतु कामनाके वशसे उसके हृदयमें निर्वाण उपदेश प्रवेश नहीं हुआ, उलटा यह कहता था कि मुझको वह विद्या सिखाओ जिससे किसी मुयेको जिलाऊं, किसीको कालवश करूँ, और मेरी संसारमें प्रतिष्ठा होवे । इस प्रकारकी शुक्रने विद्या पढी है, सो मुझको दोष नहीं, उसकी कामनाका दोष है । हे मैत्रेय!मुझ गुरुसे भय राख । मैत्रेयने कहा--मुझ विषे मरना जीवना दोनों नहीं, भय क्यों राखूं परन्तु कथा प्रह्लादकी कहो ।

हे मैत्रेय ! प्रह्लादने कहा--हे गुरु । जाति हमारी सृष्टिसे नीचे है और तुम ऊँच पद कहते हो इसवास्ते तुम्हारा उपदेश मेरे मनमें नहीं बैठता जो जो दृश्यमान है उत्पत्तिमान् है, विकारवान् है तथा कार्य रूप है, सो नश्यमान् है, घटवत् और आत्मा विष्णु इन पदोंसे रहित है इसीसे सत है। हे महामुने ! जो गुरु उपदेश करके सत् आत्माकी प्राप्ति करनेवाला है सोई परमगुरु है, सोई पिता, माता, भ्राता, सुहृद् है । जो पिता पक्षपातरहित होकर सत् वस्तुका उपदेश करता है तो वही परमगुरु है, जो ऐसा नहीं करता सो पिता परमगुरु नहीं, किन्तु शास्त्ररीतिके अनुसार पितामात्र है । तिसका भी वाणी शरीर करके सब किसीको यथायोग्य पूजन करना धर्म है परन्तु लौकिक पिता अतिकृपा करेगा तो शरीर इंद्रियोंकी पालना करेगा, परम पुरुषार्थ मोक्ष नहीं दे सकता, इससे तुम्हारी बुद्धिमें भेद पडा है कि, अज्ञानी पिताको परमगुरु समान कहते हो। कहो पिता मृत्युते छुडा सकता है ? कदापि नहीं और परमविद्वान् गुरुरूप पिता मृत्युते निःसंशय छुडा सकता है । हे शुक्र ! पिताका

निरन्तर ध्यान करना ऐसा कहीं वेदमें लिखा नहीं किन्तु, सच्चिदानन्द स्वरूप हरिकाही ध्यान करना वेदमें लिखा है तथा योग्यही है। जो परमार्थको जानता है सोई सत् उपदेश करता है, असत् नहीं। शुक्रने कहा--गोविन्दके भजनसे क्या चाहता है जो तेरी इच्छा हो सो तेरा पिता भी दे सकता है। प्रह्लादने कहा--तुमको मेरे अन्तः करणकी सुधि नहीं, ध्यान भजनका यही प्रयोजन है कि मूल अपना पाऊँ; जब मूल पाया तब बन्धनसे छूटा। समपद भजनते पाता है और "आप सहित सर्व नारायण है" यही भजन है। शुक्रने कहा--कि, त्वंपदका तथा तत् पदका लक्ष जो सच्चिदानन्द मन बुद्धि आदि सर्व इस दृश्य संघातका साक्षीद्रष्टा, निजात्म स्वरूपका पिताने तुझको पूर्व उपदेश किया है सो क्यों नहीं मानता। प्रह्लादने कहा--पिता देहको ही आत्मारूप करके उपदेश करता है। तात्पर्य यह है कि अन्नमय कोशकोही श्रुतिके तात्पर्यको न जानके आत्मा कहता है, श्रुतिने तो अरुन्धतीके दृष्टांन्त कर अन्नमयसे आगे, प्राणमय मनोमय विज्ञानमय आनन्दमय कोशोंको आत्मरूप कथन किया है, इससे अन्नमयादिक पंचकोश रूप आत्मा है यह श्रुतिका तात्पर्य नहीं, यदि श्रुतिका यह तात्पर्य होवे तो यह यत्न विना सर्वको प्राप्त है, तब तो परम पुरुषार्थका यत्न निष्फल होगा इससे सत्वादि गुणोंका कार्यरूप जो जाग्रतादि अवस्था सहित स्थूलादि तीन शरीररूपी पंचकोश हैं सो संपूर्ण कारण कार्य रूप प्रपंच मन वाणीके गोचर हैं, इसीसे मिथ्या है। ताते हे अधिकारी जनो! "तुम्हारे आत्मा अवाङ्मनस गोचर" सर्वाधिष्ठान, जगदांध्यविध्वंसक, प्रकाशक, अवेद्यत्व, सदा अपरोक्ष, साक्षी, सच्चिद्घन, विशुद्धानन्दको अपना स्वरूप जानो,

मन वाणीके गोचरको अपना स्वरूप मत जानो; यह श्रुतिका रहस्य है ।

पुनः शुक्रने कहा -हे प्रह्लाद ! अभी मान, नहीं तत्कालही तुझको जलाऊँगा ! प्रह्लादने कहा--न कोई किसीको जिवाता है, न कोई मारता है रक्षाकर्ता सर्वका एक विष्णु आत्मा ही है । जैसे स्वप्न द्रष्टाही सर्व स्वप्नपदार्थोंकी रक्षा नाश कर्ता है । अन्य जाग्रत् पुरुष भी नहीं करते तथा स्वप्न पदार्थ भी आपसमें रक्षक नाशक नहीं होते । शुक्रने क्रुद्ध होकर मुखसे अग्नि निकासी और प्रह्लाद भयमान् होकर विष्णुकी शरण हो प्रार्थना करने लगा--हे अनंत विष्णु ! इस ब्राह्मसे मेरी रक्षा करो। पुनः कहा मैंने उलटाही समझा है, जब सर्व नामरूप जगत् एक विष्णु आत्माही है तो शुक्र अग्नि और प्रह्लाद कहां है, जिससे भय करूं । तब उलटा शुक्रको ही अग्नि जलाने लगी । शुक्र भयमान् होकर वनमें ही प्रह्लादकी शरण हुआ--हे यजमान प्रह्लाद ! मैं तेरा पुरोहित हूँ, यह अपराध हमारा क्षमा कर, मैं तेरी शरण हूँ ।

हे मैत्रेय ! शुक्र पहिले क्रोधवान् था जब प्राणोंकी अंत नौबत पहुँची, तब प्रह्लादकी स्तुति करने लगा, परन्तु प्रह्लाद दोनों अवस्थामें समही रहा; विषमगतिको न प्राप्त हुआ । हे मैत्रेय ! तू भी सम आत्मपदमें स्थित हो, जिससे सर्व अवस्थामें सम होवे । मैत्रेयने कहा--मैं मूलको कैसे पहुँचूं । पराशरने कहा--तू आप मूल रूप है, मूलको कैसे पहुँचे, पहुँचना क्रिया कर होता है तू अक्रिय है । मूलसे तुझे क्या प्रयोजन है ? जो नारायण व्यक्तिरेक जानकर कर्म करता है सो बंधनका कारण है । निष्कर्तव्यमें कर्तव्य भ्रांति जबतक न त्यागेगा तबतक मूलका पाना कठिन है । मैत्रेयने कहा--भक्तिका स्वरूप

कहो। पराशरने कहा--मैं पंडित नही हूँ जो तुझको कथा सुनाऊं। मैत्रेयने कहा--पंडित नहीं तो मूर्ख होगा? पराशरने कहा--दोनोंमेंसे एक भी नहीं हूँ। मैत्रेयने कहा-दोनों नहीं तो कौन है? पराशरने कहा--मैं वही हूँ कि जिससे पंडित अपंडितादिक शब्द और शब्दोंके अर्थ सिद्ध होते हैं। मुझको सिद्ध करनेवाला कोई नहीं, मैं स्वतः सिद्ध हूँ मैत्रेयने कहा--मैं तुम्हारा आदि अंत कुछ नहीं जानता हूँ। पराशरने कहा--मुझ अनंत चैतन्य आत्माका चारों वेद तथा ब्रह्मा विष्णु शिवादिक भी आदि अंत नहीं जानते, तेरी क्या शक्ति है जो जाने? क्योंकि, सबसे आदि मैं चैतन्य हूँ, मुझ चैतन्यसे ही वेदादिक उत्पन्न हुए हैं क्या जाने। पुत्र पिताके हालका महरम नहीं हो सकता।

मैत्रेयने कहा-मुझको संन्यासी करो? पराशरने कहा--हे मैत्रेय! अब तो तेरेको ज्ञानका प्रतिबन्धक देह अभिमान राईके तुल्य किंचित्मात्र है, जब तू संन्यासी होवेगा तब तुझको सुमेरुसेभी अधिक देह अभिमान बढेगा, जिससे ज्ञान होना तुझको दुर्लभ होजावेगा। सन्त जो निरपेक्ष हैं, वैरागपूर्वक आत्मदर्शी हैं अदंडी संन्यासी हैं, मनका जिस दंडसे निग्रह होता है, तिस दंडसंयुक्त हैं तथा सर्व दैवी गुणोंकर संपन्न हैं, तिनको गृहस्थ आश्रममें किसी पुण्यप्रतापते धर्मपूर्वक सम्यक् आत्मज्ञान हुआ है जिन ऐसे सज्जन पुरुषोंके गुह्य उत्तम गुणोंको तू न प्राप्त होके भी केवल संन्यास ग्रहणमात्रसे उनका तिरस्कार करेगा तिसके माहात्म्यसे तू परम दुःखको पावेगा। देहाभिमानरूपी बिलारीके निवार वास्ते संन्यास है, उलटा महान् देहाभिमानरूपी सिंहको घुसा

लेना अन्यन्त मूर्खता है । जैसे--कोई मूलकी वृद्धिवास्ते किसी प्रकारका व्यापार करै और उसमें लाभ प्राप्त करनेके वास्ते उलटा मूलभी खोदेवे सो यह अविचारका फल है सम्यक् विचारवान् पक्षपातसे रहित संन्यासी कोईही होता है, केवल दंड अभिमानी होनेसे सुख नहीं ! इससे हे मैत्रेय ! इस देहाभिमानादिकोंके निवारण वास्ते, स्वरूपका सम्यक् ज्ञान दंड धारणकर उलटा अभिमान मतकर, आगे जो इच्छा हो सो कर । मैत्रेयने कहा- मेरेको अतीत करो । पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! अतीत किससे होता है जो स्त्री पुत्रादिक बाहिर कुटुंबसे अतीत होता है तो भी उनसे तू शरीर दृष्टि करके अतीत नाम भिन्न है और जो शरीरके भीतर मन बुद्धि इंद्रियादिक कुटुँब हैं तिनते भी तू चैतन्य साक्षी आत्मा स्वतःही अतीत नाम भिन्न है । तात्पर्य यह कि, तू चैतन्य स्वतःही नामरूप प्रपंचसे अतीत नाम भिन्न है कोई कर्तव्यसे तुझे अतीत नहीं होना है । जैसे आकाश सर्व पदार्थोंमें स्थित भी सबसे निर्लेप है यही आकाशका अतीतपना है । जो अतीतका अर्थ पूर्वोक्त अर्थसे भिन्न करेगा तो आकाशके दृष्टांतसे नहीं बन सकता, क्योंकि पदार्थ आकाशसे जुदे नहीं रह सकते और आकाश भी पदार्थोंसे जुदा नहीं रह सकता । जैसे--तू चैतन्य देव, सर्व आकाशादिक नामरूप दृश्य जड पदार्थोंका सिद्ध करता नियंता भी; दृश्यके अंतर बाहर पूर्ण भी; असंग निर्विकार निर्लेप है इसीसे तू चैतन्यही दृश्यसे परम अतीत है । चैतन्यवत् आकाश अतीत नहीं; जो तू आपको चैतन्य नहीं मानै, बरन् आपको दृश्य माने तो दृश्य दृश्यसे भी अतीत नहीं हो सकता, द्रष्टाही दृश्यत अतीत होता है मैत्रेयने कहा मुझको योग बतावो जो सिद्ध होऊँ, बहुतकाल जीऊँ, मृत्यु नहीं होवे । परा-

शरने कहा--योग वही है जिसमें जीवना मरना दोनों नहीं, नहीं तो अयोग है, हे मैत्रेय ! तूने अतीत होनेकी इच्छा की है, इससे तू धन्य है क्योंकि मनुष्यजन्म दुर्लभ है, जो मनुष्यशरीरमें भजन नहीं करेगा तो पछतावा होगा। मैं यही चाहता हूँ कि, सर्वदेहादिकोंसे अतीत हो अर्थात् आपको भिन्न जान । मैत्रेयने कहा--सर्व कर्मोंका त्याग कर अतीत होता हूँ परन्तु कर्मसे कर्मका त्याग नहीं होता क्योंकि मुझ चैतन्यसे भिन्न कर्ता कर्म क्रियारूप जगत् सर्व कर्मरूपही है । पराशरने कहा--यह जो तूने चिंतन किया कि, मैं सर्व कर्मोंका त्याग करूँ तिस त्यागका भी त्याग कर यही कर्मसे कर्मका नाश है। जैसे लोहेसे लोहा कटता है, जैसे मैलको मैल दूर करता है, तैसेही कर्मसे ही कर्म काटा जाता है, चैतन्यरूप अकर्मसे कर्मरूप प्रपंच कटता नहीं, उलटा अकर्मरूप चैतन्यसे कर्मरूप जगत्की सिद्धि होती है। जो मन वाणीका विषय है सो कर्म है, जो मन वाणीका अविषय है। सो अकर्म है ऐसा अकर्मचैतन्य आत्माही है, अन्य नहीं, ग्रहण त्यागादि सर्व कर्मही हैं; जब सर्व चाहना मिट गई तब शरीर रहा तो क्या नहीं रहा तो क्या ! शरीर तो अकर्म नहीं हो सकता। इससे तू कर्मरूप शरीरसे आपको अकर्मरूप आत्मा जान जो ठीक ठीक अतीत होवे; नहीं तो इन अतीतोंसे किसीका भेष लेके अतीत हो जा । जब अतीत होगा तब अहंकार तुझको जलावेगा, तब सुख कैसे पावेगा ? मैत्रेयने कहा--मैं क्या करूं ? तुम ऐसा कुछ कहते हो, जिसमें मनवाणीकी गम नहीं । पराशरने कहा--कर्तव्यको त्याग, अतीत हो। मैत्रेयने कहा--अतीतका धर्म कहो ? पराशरने कहा--" सूक्ष्म स्थूल अहंकारसे रहित होना ही अतीतका धर्म है" इससे अधिक

मैं पंडित नहीं हूं जो कहूँ, जब पुरुष स्त्री आदिक संबंधियोंको त्यागता है तब सूक्ष्म अहंकारमें बँधा हुआ आपको त्यागी मानता है और गोविंदके ऊपर उपकार अपना मानता है और ऐसा अभिमान करता है कि, जिसको मैं वर देता हूँ उसको सफल होता है, मुझको परमतपस्वी सर्व लोग जानते हैं, मैं यह देह त्यागके उत्तम लोकोंको पाऊँगा, हे मैत्रेय ! ऐसे अतीत होनेकी तेरी इच्छा है तो भली बात है, परंतु मैं जानता हूँ कि, तैंने सारी आयु इसी पंडिताई आदि दुनियांके काममें बिताई है। हे मैत्रेय ! इन सर्व अतीतोंमें कोई भी सम्यक् अतीत है, बहुतेरे तो अनात्माहंकारमें बँधे हैं और बँध मोक्षसे रहित निर्विकार आत्मासे दूर पड़े हैं। इससे सर्व देह इंद्रियादि संघातकी चेष्टा होते हुए भी आपको निर्विकार निर्विकल्प आत्मा अतीत जान पुनः उस अहंकार के त्यागका अभिमान भी त्याग कर, जो सम्यक् अतीत होवे। मैत्रेयने कहा--संसारसे कैसे छूटूँ ? पराशरने कहा--गोविंद गोविंद कहो संसार कहाँ है, संसारका तूने नाम सुन रक्खा है, संसारका स्वरूप विचारा नहीं, विचारे बिनाही तुझको संसार भासता है, जैसे विचारे विना घट भासता है, नहीं तो मृत्तिका है। तैसे ही अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा ही है, घट पटादि संसार कहाँ है। मैत्रेयने कहा--कर्तव्य क्या है ? पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! घटके कर्तव्यसे घट मृत्तिकारूप नहीं, किंतु स्वतः ही मृत्तिकारूप है, परन्तु न विचारनेसे घट भासता है, विचारनेसे मृत्तिका भासती है, तैसे स्वरूपकी प्राप्तिमें और भ्रमकी निवृत्तिमें विचार ही कर्तव्य है, अन्य यज्ञादि साधन नहीं। मैत्रेयने कहा जब सर्व गोविंद मैं कहूँ, तब तुम क्या प्रसन्न होगे ? पराशरने कहा--कहनेसे कुछ सिद्ध

नहीं होता जब तक स्वरूप निश्चय न करे । जैसे भूख विना खाये रोटीके कहनेसे दूर नहीं होती, हे मैत्रेय! अपने सच्चिदानंदस्वरूप आत्मासे पृथक् भगवान् परमेश्वर नारायण गोविंद अल्ला खुदाशिव विष्णु ब्रह्म ईश्वरादि असत् जड दुःखरूप भ्रममात्र हैं, इससे अपने सच्चिदानन्द स्वरूपको अहंरूप करके जान और भगवान् रसनासे मत कह संत भी वही हैं जो "सर्व नाम रूप दृश्यसे श्रेष्ठ निजरूप आत्माको जानते हैं" नहीं तो असंत हैं ।

हे मैत्रेय! अब प्रह्लाद चरित्र सुन--"शुक्राचार्य्य अपना जीव छुडाके निकस गया है"। यह प्रसंग सुनकर हिरण्यकशिपुने पुत्रको बुलाकर कहा--तेरे पास क्या शक्ति है? जिसके बल किसी उपायसे भी तू मरता नहीं । यह मंत्र कहांसे सीखा है ? प्रह्लादने पिताके चरण चूमकर कहा--कि हे पिता! मैं मंत्र यंत्रादि कुछ जानता नहीं परन्तु "आपसहित सर्व विष्णुको सम जानता हूँ यही मंत्र है" हिरण्यकशिपुने कहा--अपने आत्माको त्यागकर दूसरेको शिरपर रखता है, सो बुद्धिकी मन्दता है, इसीसे आप सहित सर्व आपको जान, जो तीन तापते छूटे । प्रह्लादने कहा--सर्व संसारका सार विष्णु आत्मा है जिसने सारको ग्रहण किया है तिसको असार झूठ संसार क्या दुःख दे सकता है । यह वचन सुनकर राजाने अति क्रोध किया । वहां एक पर्वत सौ योजन[1] पृथिवीसे ऊंचा था हुकुम दिया कि, उस पर्वतसे इसको गिरा दो । आज्ञा पाकर राक्षसोंने

---

१ यहा योजन नाम चार हाथका है, धर्म पुस्तकोंमें भिन्न भिन्न स्थान पर प्रसंगानुसार भिन्न २ माप लिखा है, जैसे कहीं तो चार कोशका योजन लिखा है । कहीं चार चार हाथका । कहीं चार गज । कहीं अंगुलका । यहां पर आशय १०० योजनसे ४०० हाथ का है ।

ऐसाही किया। प्रह्लाद जानता था सर्व व्यापक विष्णु आत्माही है, इस विचारसे उसको कुछ भ्रम न हुआ। पुनः उससे भी ऊँचे पर्वतसे गिराया पर केशवने हाथोंपर लेलिया। यह दृढ उपासनाका फल है। विष्णुने प्रह्लादको कहा--जो तेरी इच्छा होय सो मांग प्रह्लादने कहा-मैं वह सेवक नहीं जो अपने स्वामीसे कुछ मांगू जो पिताका नाश माँगूं तो मुझको लज्जा है क्योंकि स्थावर जङ्गम तू ही है, हिरण्यकशिपु कहां है। वहां हिरण्यकशिपु होकर कहता है विष्णु मत कहो; यहां कहता है सर्व विष्णु ही है, इससे यही मांगता हूँ कि तेरे बिना और कुछ न जानूं जो तू कहे "मेरा तेरे ऊपर उपकार है कि, तेरी मैंने अनेक उपद्रवोंसे रक्षा की है" सो नहीं क्योंकि, जब सर्व उपकार उपकार्य्य तू ही है तो उपकार तेरा किसपर है। विष्णुने देखा कि, प्रह्लाद अचाह है आज्ञा की "नेत्र मूँद"। प्रह्लादने नेत्र मूँदकर खोलनेपर देखा तो अपनेको पिताके पास खडा पाया। हिरण्यकशिपु देखकर आश्चर्यवान् हुआ और क्रोधित होकर सामर राक्षससे कहा कि, यह बालक किसी उपायसे मरता नहीं, भजन मायाका करता है, तुझको चाहिये कि; इसको मन्त्रोंसे वा अन्य किसी उपायसे नाश कर। तब सामर दैत्यने सहस्रों उपाय किये कि, बालकको मारूं, पर न मार सका. क्योंकि प्रह्लादको दृढ निश्चय था कि, मन्त्र और मंत्र पठन कर्ता और मंत्रसे मारने योग्य सर्व विष्णु आत्माही है।

विष्णु विष्णुको तो नहीं मारता। ऐसा दृढ निश्चय देखकर विष्णुने सुदर्शनचक्र अभिमानी देवताको आज्ञा की कि, प्रह्लादकी सर्व प्रकार रक्षा कर और सामरका शीश काट। सुदर्शनचक्रने ऐसा ही किया। राजाको यह चरित्र देखकर विस्मय हुआ, चित्रकी मूर्तिके समान

शून्यसा होगया, हुकुम किया मेरे निकटसे इसको दूर करो. सारांश यह कि, ऐसेही अनेक मारनेके उपाय किये पर प्रह्लादका रोममात्र भी न उखड़ा। पुनः राजाने प्रह्लादके केश पकड़कर बहुत शासना की पर प्रह्लाद अपनी प्रतीतिसे न चलायमान हुआ राजाके हाथमें एक गदा थी, सो प्रह्लादको मारी, वह गदा सहस्रखंड होगई; गुरु (शुक्र) ने कहा-हे राजन्! इतनी शासना तूने की पर कुछ इसको विघ्न न हुआ जैसेका तैसे ही रहा इसने आप सहित कोई पूर्ण वस्तु जानी है, सोई इसकी रक्षा करता है इससे इसकी शासनाका त्याग कर। राजाने कहा-जबलग शत्रुके निश्चयका त्याग न करै तबतक इसके नाशके उद्यमका त्याग न करूँगा क्योंकि त्रिलोकीका स्वामी मैं हूँ, मुझ आत्मा विना इसने किसको देखा है, जो विष्णु कहता है, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा स्थूल, सूक्ष्म, कारण समष्टि, व्यष्टि सहित सर्व जगत् मुझ आत्माते हुआ है मुझ आत्मासे भिन्न कौन अनात्म घटवत् विष्णु है जिसका यह नाम लेता है, अपरोक्ष अपने आत्माको त्यागकर परोक्षको जानता है इससे हे प्रह्लाद! मायारूप परोक्ष विष्णुका त्यागकर अपने आत्माको जान और गुणका उपदेश जो तुझको मिला है सो कह। प्रह्लादने कहा--जितना गुरुने उपदेश किया है-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सर्व रूप अरूपते परे उरे जनार्दन विष्णु है। यह परमार्थ मैंने जाना है कि, सर्व वही है तो चार पदार्थोंसे क्या प्रयोजन है। हे पिताजी! आपभी निश्चय यही करो कि, न मैं हूँ न तू है, न यह जगत् है एकविष्णु अद्वितीय आत्मा ही है। विष्णु भिन्न अविद्या है, तिसको त्यागकर आप सहित सर्व विष्णु है, इस विद्यामें लीन हो, पञ्चभूतके शरीरको मिथ्या जान। राजाने कहा-हे

मूर्ख ! जब सर्व आत्मा है तो विद्या अविद्या शरीर; अशरीर, त्याग, ग्रहण, परमार्थ, अपरमार्थ, विष्णु, अविष्णु प्रह्लाद, हिरण्यकशिपु कहां हैं ? इससे राज्य त्रिलोकीका ले, आप भिन्न निश्चयका त्यागकर, आपको जान। प्रह्लादने कहा--राज्य लोभसे उस निश्चयको त्यागूँ तो लज्जाका काम है, क्यों राज्य सहित सर्व संसार अनित्य है और मैंने नित्यको जाना है। हे पिता ! स्थावर जङ्गम सर्व विष्णु आत्मा है सम निर्वाण चैतन्य अनंत है; यह सर्व तिसीसे हुआ है, तिसीमें लीन होता है और मध्यमें भी वही रूप जलतरङ्गवत् है, जिसने ऐसा जाना है सो भगवद्रूप है।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! तूने मुझसे कभी भी न कहा- कि आप सहित सर्व भगवान् है। मैत्रेयने कहा--प्रह्लाद रसनासे कहता था इसीसे सुख नहीं, पाता था क्योंकि, पिताको भिन्न जानना और कहना और "सर्वभगवान् है" यह संतोंका मार्ग नहीं है, हे गुरो ! जो कहूँ मैं ही सर्व रूप हूँ तो क्या कहनेसे आगे न था जो अब कहूँ। जैसे जल जानेकि सर्व तरङ्गादिक मैं ही हूँ, वा तरङ्गादिक जाने मैं जल हूँ, सो कहनामात्र है क्योंकि, तरङ्ग हैं नहीं जल ही है। तैसे--यह नामरूप, अस्ति, भाति, प्रियरूप आत्माही है। उससे भिन्न अत्यन्ताभाव है, यह बात स्वतः सिद्ध है, कहनेसे नहीं। पराशरने कहा--हे मैत्रेय। तू परम हंस दृष्टि आता है। मैत्रेयने कहा--दृष्ट अदृष्टसे अगोचर मुझ चैतन्य अरूपका कोई द्रष्टा नहीं, तुमको मैं कैसे परमहंस दृष्टि आया, पर कथा कहो। पराशरने कहा, प्रह्लादने कहा--हे पिता ! जो कुछ दृश्यमान है सो एक अनन्तविष्णु जान, इस निश्चयसे वहीरूप होगा। राजा यह वचन सुनकर चौकीसे उठा, चाहा प्रह्लादको अब ही

नाश करूँ जैसे रुद्रको महाप्रलयविषे संसारके नाशकी इच्छा होती है। राक्षसोंसे कहा-प्रह्लादके हाथ, पांव बांधके समुद्रमें डालो; यह अभागा मायामें लीन है, मैंने इसके नाशमें बहुत ढील की थी कि, इस चाहको त्यागे परन्तु इसको मृत्युने घेरा है। राक्षसोंने वैसे ही किया। पराशरने कहा हे मैत्रेय! तुझको यह अवस्था प्राप्त होवे तो क्या कहे और क्या करे? मैत्रेयने कहा--गोविन्दके भजनमें दुःख होय तो मैं उसका नाम भी रसनापर न लाऊँ पराशरने कहा--हे मूर्ख चाहे मैं मित्रको पाऊँ और आप भी बीच रक्खे और दुःखसे भय माने तो मित्र मिलना कठिन है। जो आपको नाशकर्त्ता है वही निश्चय मित्रको पाता है। विष्णु प्रह्लादकी परीक्षा करते थे कि, चल है वा अचल है।

एक कथा

हे मैत्रेय! इसीपर एक इतिहास सुन। एक ऋषिकी स्त्रीसे मेरी प्रीति थी। मैत्रेयने कहा--पूर्व तुमने आपही कहा है कि जो पराई स्त्रीसे प्रीति करता है सो नरकको जाता है, अब कहते हो ऋषिकी स्त्रीसे मेरी प्रीति थी, तुम्हारे कथनके पूर्व उत्तरका विरोध हुआ। पराशरने कहा--सच है, हे मैत्रेय! ब्रह्माका वृत्तिरूप स्वस्त्रीसे भिन्न दृष्टि परस्त्रीके समान है वा स्वस्वरूप दृष्टिसे भिन्न दृष्टि परस्त्री स्वरूप है परन्तु उस ब्रह्माकार वृत्तिसे नवीन ज्ञानी अत्यन्त प्रीति रखता है, तिस वृत्तिके निरोध करनेवाले काम क्रोधादिक अनेक पदार्थ हैं, तिनको तथा त्रिपुटीरूप सर्व जगत्को अन्तःकरणकी ज्ञानमात्र वृत्तिरूपही नवीन ज्ञानी जानता है, क्योंकि जबलग पदार्थोंका वृत्तिरूप ज्ञान है 'तबलग ही पदार्थ है, अन्य कालमें

नहीं, इससे ब्रह्माकार वृत्तिसे ही नवीन ज्ञानी सुख मानके प्रीति करता है । मुझ अवाङ्मनसगोचर, सर्वाधिष्ठान, जगत्विध्वंसक, दृश्य प्रकाशक, अवेद्यत्व, सदा अपरोक्ष, साक्षी सच्चिद्घन, विशुद्धानन्दको ब्रह्माकारवृत्ति, अब्रह्माकारवृत्ति तुल्य है इससे पर अपर मेरी दृष्टिमें नहीं क्योंकि शरीर अभिमान मुझको नहीं आपसे आपहूँ, जो जीव है उनको कालसे, ईश्वरसे, धर्मराजसे तथा शास्त्रसे भय होता है । मन चन्द्रमा, बुद्धि ब्रह्मा, चित्त विष्णु, अहंकार रुद्र, तात्पर्य यह है कि चक्षु मन आदिक अध्यात्म इंद्रिय और मन चक्षु आदिक इंद्रियोंके सूर्य्य चंद्रमादिक देवता, मन चक्षु आदिक इंद्रियोंके अधिभूत रूप संकल्पादिक विषय, इन त्रिपुटियोंको मैंने उत्पन्न किया है, मुझ चैतन्यको किसीने उत्पन्न नहीं किया । इससे मुझको किसीका कंप नहीं, क्योंकि मुझ चैतन्यसे कोई विशेष नहीं ।

हे मैत्रेय ! उस स्त्रीके दर्शनवास्ते सदा जाता था; एक दिन उसके देखनेकी अर्द्धरात्रिमें मुझको इच्छा हुई । स्वस्थानसे चला, रात्रि अंधेरी थी और वर्षा बरसती थी, पर प्रेमका मित्र मेरे साथ अगवानी हुआ मार्गके मध्य सर्प मेरे पगको लिपटा, मैंने जाना कि मुझे मित्रने घेरा है, उस सर्पको मैंने कंठसे लगाया और जाना कि; प्रीतम है । मैंने उससे कहा ऐसी निशिकारीविषे तेरे निमित्त चला हूँ मुझको अपने गृहमें लेचल । पर हे मैत्रेय ! गृह प्रीतमका गंगाके परले तीर पर था, गंगा चातुर्मासमें समुद्रकी भांति तरङ्ग मारती थी । प्रीतमकी प्रीतिविषे गंगा गोपदके भाँति प्रतीत हुई । तिस सर्पकी नौका करके पार गया । जब तीरपर पहुँचा तो देखा, ऋषीश्वर मुनीश्वर बैठे तपस्या करते हैं । तिनोंने पूछा तू कौन है ? मैंने

कहा अमुक ऋषिकी स्त्री हूँ। तीनोंने कहा अर्द्धरात्रिमें तू कहां गई थी और कैसे यहां आई। मैंने कहा--ऋषिकी स्त्रीके पास गई थी और उसीके पाससे उठकर आई हूँ। उन्होंने आपसमें कहा--यह स्त्री नहीं, कोई जादूगर है। पुनः उन्होंने कहा--अब तेरी इच्छा कहाँ जानेकी है। मैंने कहा--ऋषिकी स्त्रीके पास जाती हूँ सब विक्षेपमें आये, मुझको लातों मुष्टियोंसे भली प्रकार मारा पर मुझको वह शासन पुष्प समान थी क्योंकि, तिस समयमें पराशर न था, जब उन्होंने भलीप्रकार शोध किया तो जाना कि, वसिष्ठका पौत्र पराशर है। कहने लगे ऐसे पिताका पुत्र होके ऐसा कैसे हुआ। मैंने कहा--न कोई मेरा पिता और न मैं किसीका पुत्र हूँ, मैं स्वयंरूप हूँ। जो हूँ तो मैं चैतन्य सर्व दृश्यका पिता नाम कारण अधिष्ठान स्वप्न द्रष्टावत् हूँ, वस्तुसे कारण कार्यसे रहित हूँ, कार्य कारणभाव भी मैं ही हूँ, चैतन्य दृश्यते अतीत हूँ। उन्होंने जाना पराशर नहीं कोई चरित्र है। पुनः तिन्होंने और शासना की, शरीरमें जखम हुए पर मैंने कुछ न जाना ! तिस समय प्रीतम भी आन पहुँचा और मैंने जब उसको देखा, पूर्व शासनकी अग्निते शांत हुआ तथा वियोगकी अग्निसे भी शांत हुआ। स्त्रीने कहा-तेरी क्या अवस्था है ? मैंने कहा मूल ते ही मैं कुछ नहीं; जो है सो तू ही है। शरीरका त्याग करूँगा पर तेरी प्रीतिका त्याग न करूँगा। उसने कहा--जब शरीर न होगा तो मुझको क्या करेगा ? मैंने कहा- तेरे मनविषे निवास करूँगा। उसने कहा-अब भी तू मेरे मनविषे साक्षीरूपकर बस रहा है, फिर क्या वसेगा।

हे मैत्रेय ! उसकी मेरी मूर्ति दो थीं पर मन एक ही था, पर तैंने ऐसी कभी प्रीतिरूप निश्चय न किया। मैत्रेय

ने कहा--प्रीति, अप्रीति करना मुझ चैतन्यका धर्म नहीं, मैं सम हूँ, यह धर्म मनका है, जहां द्वेष है तहां प्रीति भी होगी, मैं चैतन्य एक रस हूँ पर कथा प्रह्लादकी कहो।

पराशरने कहा--जब--प्रह्लादको बांधकर समुद्रमें डाला तो समुद्र कंपायमान हुआ, प्रह्लादको हरिभक्त जानके किंचित् भी दुःख न होने दिया, प्रह्लाद कमल पत्रवत् रहा। रासक्षोंने यह अवस्था देखकर राजासे जाकर सारा हाल कहा। राजाने कहा--उसपर शिलाका प्रहार करो, जिससे डूब जाय। तिन मूर्खोंने वैसे ही किया। तिस समय प्रह्लाद गोविंदकी स्तुति करता था कि, हे व्यापक ! चैतन्य आत्मा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्ररूप होकर जगत् की उत्पत्ति, पालन, संहार तू ही करता है, सर्व रूप भी तू ही है, सर्व ते अतीत भी तू ही है, जिनने तुझको ज्ञाननेत्रसे नहीं देखा, सो पूजा अवतारोंकी करते हैं इसीसे परमार्थको नहीं पहुँचते। सारांश यह है कि, विष्णु होकर विष्णु की पूजा करके आप सहित सर्व विष्णु सम्यक् जाने क्योंकि, जो सर्व विष्णु है तो मैं भी विष्णु ही हूँ; गुप्त प्रगट सर्व मैं ही हूँ, आत्मा, परमात्मा मुझही को कहते हैं। मैं ही चैतन्य विष्णु आत्मा, पूर्ण सर्वमें सम हूँ। हे मैत्रेय ! इस प्रकार प्रह्लाद विष्णुकी स्तुतिसे विष्णुसे मिल गया। मैत्रेयने कहा--जिसने विष्णुकी स्तुति की सो विष्णुसे मिला जिसने नहीं की सो नहीं मिला, तो मिलना न मिलना खुशामदरूप स्तुतिके अधीन है, स्वतः नहीं, ताते मैं इस मिलनेकी इच्छा नहीं रखता। क्योंकि, जब स्तुति नहीं करूंगा तो विष्णु चैतन्यते बिछोहा होगा, पुनः स्तुति करूंगा पुनः मिलूँगा इस पञ्चायतसे मुझको क्या लाभ है ? जो जुदा मिलापवाले पदार्थ हैं सो सर्व अनित्य हैं। जैसे घटाकाश सदैव महाकाशरूप है, तैसे मैं

प्रत्यक् चैतन्य आत्मा सदैव ब्रह्मरूप हूँ कभी भी जुदा मिला नहीं । पराशरने कहा--हे मूर्ख ! मिलना यही है कि गोविंदको अपना आत्मा जान । मैत्रेयने कहा--जाना तो मिला, नहीं तो भिन्न हुआ । जब कहते हो कि, सर्व आत्मा निर्विकल्प है तो जानना और न जानना क्या ? पराशरने कहा--मैं नहीं जानता कि, कौन हूँ, पर ज्ञान शक्ति ईश्वरकी है, अज्ञान शक्ति जीवकी है । दोनों कथनमात्र हैं. कहां ज्ञान और कहां अज्ञान है ? जो है सो निजरूप है । जब तत्त्व प्रतीत हुआ तब ज्ञान अज्ञान दोनों नाश हुए ! जैसे--प्रज्वलित अग्नि गीले सूखे काष्ठ दोनोंको जलावती है, इससे प्रह्लाद जीव ईश्वर जगत् से उल्लंघनकर मूल अपनेको पहुंचा था, जहां देखता था विष्णुरूप अपने आत्माको ही देखता था, हे मैत्रेय ! कह तू स्तुति गोविंदकी कैसे करता है ? मैत्रेयने कहा--स्तुति तब होती है जब निंदा हो, मैं चैतन्य द्वैत नहीं देखता, स्तुति निन्दा क्या कहूं; जब प्रह्लादकी न्याई मुझको भी दुःख होगा तब स्तुति करूँगा । पराशरने कहा--तेरी क्या शक्ति है कि दुःखविषे एक सरीखा रहे, तू तो आपदाकालमें क्लेशका ही भजन करेगा । अब मैं तेरा नाश करता हूँ संसारमें ऐसा कोई दृष्टि नहीं आता जो तुझको मुझसे छुडावे । हिरण्यकशिपु भगवान्की निन्दा करता और प्रह्लाद स्तुति करता था; तब भगवान्ने हिरण्यकशिपुको मारा प्रह्लादको छुडाया, मैं निंदा स्तुति किसीकी नहीं करता कि, तुझको छुडावेगा; और मुझको मारेगा; ताते तुमको अबही भस्म करता हूँ । मैत्रेयने कहा--मैं मैत्रेय कहां हूँ, आपही है, आपको आप भस्म कर और खा । पराशरने कहा-मैं राक्षस नहीं जो तुझको खाऊँ परंतु अस्ति भाति प्रियरूप निजात्माके पृथक् नामरूप असत् जड दुःख दृश्यको

मैंने खाया है। जो तू भी सच्चिदानन्द आत्माते भिन्न भ्रम मात्र दृश्य बनेगा तो तुझको मैं विवेकरूप राक्षस खाऊँगा पर गोविंदको चिंतन कर।

हे मैत्रेय ! जब प्रह्लादने ऐसी स्तुति की, तब विष्णु गरुडपर आरूढ आये। प्रह्लाद दोनों हाथ जोडकर नमस्कार कर स्तुति करने लगा--हे पूर्णआत्मा ! तुम्हारा दर्शन मुझको अमृत समान है, जितना नेत्रोंसे देखता हूँ तितना ही अघाता नहीं। विष्णुने कहा--जो तेरी इच्छा हो सो वर मांग। प्रह्लादने कहा--वर यही दें आप सहित सर्व तुझहीको देखूं जैसे--विषयी विषयोंसे प्रीति करता है, तैसे तुझमें मेरे प्रीति बनी रहै। हे प्रभो ! मेरे पिताने मनमें जो द्वैत दृढ़ किया है तिसकी निवृत्ति कर कि, तुझहीको सर्वरूप जाने। विष्णुने कहा--प्रतिबन्ध अज्ञानका जिसके हृदयते उठता है तिसको अपनेविषे शीघ्रही लीन करता हूँ, अब तुझको निर्वाणपद दिया। प्रह्लादने कहा जो मेरेपर कृपा की है तो पिता मेरा मत मारियो, उलटा तेरे साथ प्रेम करे; अपने सहित सर्व तुझकोही जाने, अन्यको नहीं, ऐसा कीजियो। जो पूछे तू कौन है तो मैं ब्रह्मात्मा स्वरूप हूँ। विष्णुने कहा--अन्तर बाहरते एकमन होकर कह। प्रह्लादने कहा--तुम्हारे हमारे और सर्व जगतविषे अन्तर बाहर विभागरहित एक आत्मा पूर्ण है। विष्णुने कहा--तुझको जो यह दृढ निश्चय हुआ है तो पिताने जो तुझको इतना दुःख दिया है, तिसका उपाय क्यों नहीं कर सकता ? प्रह्लादने कहा-सत्त्व, रज, तमरूप मायाको आश्रय करके जगत्की उत्पत्ति पालन संहार धर्म है, मैं चैतन्यमात्र निर्गुण अवाच्य पद हूँ। विष्णुने कहा--जब मेरे पास आता है तो कहता है मैं ब्रह्मात्मा रूप हूँ जब पिताके निकट जाता है और तुझको

दुःख देता है तब कहता है सर्व विष्णु है यह क्या बात है? प्रह्लादने कहा-सहन दुःखकी तुझकोही है। इसलिये योग्य है कि, कष्टके समय तुझको चिंतन करूँ। विष्णुने कहा-तू मेरा भक्त भला है जो शासनाके समय मुझको आगे रखता है। हे प्रह्लाद! पिता तेराभी तुझको आत्म उपदेश करता है तू क्यों नहीं मानता। प्रह्लादने कहा-शास्त्रोंकी मर्यादा रखने वास्ते, उपासनाकी बड़ाई तथा दृढ भक्तिके निश्चयकी रीति दिखलाने वास्ते, भक्तजनोंका तुझमें निश्चय और प्रेमकी रीति तथा भक्तजनोंपर तेरी सहायता, निःसन्देहता इत्यादिकी रीति दिखलाने वास्ते पूर्वोक्त बात है। विष्णुने कहा-कुछ मांग। प्रह्लादने कहा-देना धर्म ईश्वरका है, लेना धर्मजीवका है, मैं चैतन्य इन दोनों पदोंसे मुक्त हूँ। इससे तुझसे क्या मागूँ और तू क्या देवेगा? विष्णुने देखा कि, अचाह है निःसंशय स्वरूपको प्राप्त हुआ है। कहा-हे प्रह्लाद! अग्नि जल भूमि आदिक देवताओंको मैंने आज्ञा की है कि, "तुम प्रह्लादकी रक्षा करो"। प्रह्लादने कहा-मुझ चैतन्यकी रक्षा कौन करे? उलटा मैं चैतन्यही सर्व कल्पित पदार्थोंकी, सत्ता स्फूर्ति देकर रक्षा (स्फुरण) करता हूँ। विष्णुने कहा--अन्तर्धान होता हूँ, अपने वांछित स्थानको जाता हूँ। प्रह्लादने कहा-इसी कारण भजन अवतारोंका नहीं करता हूँ कि कभी दृष्ट कभी अदृष्ट होते हैं, अबसे आगे आत्मासे भिन्न जो सदा अपरोक्ष है, निश्चय न करूँगा, पर आये हो तो कुछ तो आत्मनिरूपण करो। विष्णुने कहा-तुझको आत्म धर्मसे क्या प्रयोजन है। प्रह्लादने कहा-आत्मा मैं हूँ मुझको प्रयोजन नहीं तो किसको है? विष्णु अपने स्थानको गये और प्रह्लाद जलसे निकसकर पिताके पास आया।

तब राजा आश्चर्यवान् हुआ कि, यह जलसेभी जीवता निकसा और क्रोधकर दोनों हाथ बांधकर मुखपर ऐसी चपेट लगाई कि प्रह्लाद बेसुध होगया, कहा हे अभागे! तू आप आत्मस्वरूप है, विष्णुको अपने ऊपर रखता है। विष्णु आदि जगत्मात्र तुझसे प्रगट हुए हैं जैसे--स्वप्नके ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि जगत् स्वप्नद्रष्टासे प्रगट होते हैं। अपने अमायिक स्वरूपको त्यागकर माया विषे क्यों लीन होता है। तुझको विपर्यय जाननेविषे लज्जा नहीं आती। प्रह्लादने कहा--हे पिता! अचिंत्य आत्मा विष्णुको कहते हैं, न औरको। राजाने कहा-जलविषे तू विष्णुको कहता था कि मैं ही सच्चिदानन्द आत्मा हूँ, अब विष्णु कहता है, आपसे भिन्न द्वैतको स्थापना करना क्या योग्य है? हे पुत्र! जो सर्व विष्णु होता तो सर्व चतुर्भुज मूर्ति जन्मसे एक समान दीखते, जो कहै कि, सर्व पंच-तत्त्वरूप जगत् है तो भी ठीक है क्योंकि; विचारनेसे तो सर्व पदार्थ मायाके कार्य पंचभूतरूप हैं, यह दृश्य मायाका है, हे पुत्र! तुम अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे पृथक् विष्णु सहित सर्व नामरूप जगत् है ही नहीं तथा नामरूप जगत् तू ही आत्मा है, इनसे रहित भी तू ही आत्मा है। हे पुत्र! मनवाणीके बीचसे तू चैतन्य आत्मा अगोचर है, ऐसा होकर भी अपने को मायारूप मानता है सो लज्जाका कारण है। प्रह्लादने कहा--हे पिता! जब मैं विष्णुसे संवाद करता था तब कहां था? हिरण्य-कशिपुने कहा तू विष्णु और संवाद तीनों मैं चैतन्य आत्मा ही था क्योंकि मैं पूर्ण हूँ। हे प्रह्लाद! आत्मा बिना ध्यान मत कर, न सुन, न कह, जो तू ही आत्मा है तो विष्णुको क्यों आरोपता है, प्रह्लादने कहा--ऐसे न करें तो भगवान् और संतको कौन जाने। प्रयोजन मेरे कहनेका

यही है कि, इस पदका नाश न हो। हे पिता ! तू मैं जगत् सर्व परमात्मा है। हिरण्यकशिपुने कहा--हे पुत्र ! आत्मा परमात्मा तूने सुनकर; मनमें कल्पित सिद्ध किया है, जब तू मेटेगा तब मिट जावेंगे जो तू प्रथम नहीं होवे तो आत्मा परमात्माको कैसे जाने इसलिये जो कुछ भावाभाव है सो तू ही है, तेरे अस्तित्वसे ही जीव ईशादिक पदार्थ सिद्ध होते हैं। प्रह्लादने कहा हे पिता ! जो सर्व आत्मा ही है तो विष्णु भी अपना आत्मा है तो तू क्यों नहीं कहता मैं विष्णु हूँ। राजाने कहा--मुझ सच्चिदानन्द रूप आत्मा द्रष्टासे भिन्न सर्व विष्णु चतुर्भुज मूर्ति अमूर्ति आदि दृश्य वर्ग हैं, मैं द्रष्टा होकर दृश्यरूप कैसे होऊँ ? कभी भी द्रष्टा दृश्यरूप नहीं होता।

पुनः हिरण्यकशिपुने क्रोधकर कहा--तेरा नाश करता हूँ, कहो तेरा नारायण कहां है ? प्रह्लादने कहा अबतक तूने नहीं जाना। तुम्हारी इतनी शासना करनेपर भी जिसने मेरी रक्षा की है सो नारायण है सो प्रगट है, जहां प्रतीति करे वहां ही प्रगट है। हिरण्यकशिपुने प्रह्लादके दोनों हाथ बांधके थंभसे लटकाया और खड्ग नग्न करके कहा--अब तेरी रक्षा करनेवाला नारायण कहां है ! बता। प्रह्लादने कहा-तुझमें, मुझमें, खड्गमें थंभमें सबमें वही है। हिरण्यकशिपुने कहा-यदि प्रगट है तो क्यों नहीं निकलता ? यदि नहीं निकलता तो भ्रमरूप है। प्रह्लादने कहा--जो सर्व वही है तो तू, मैं थंभ सर्वमें भी वही है, जैसे ही यह वचन प्रह्लादने कहा तैसे ही थंभसे गम्भीर शब्द हुआ। हिरण्यकशिपुने भी शब्द सुनकर शब्द किया और प्रह्लादसे कहा-"आज तेरा परमेश्वर प्रगट हुआ है, देखूँ क्या होता है !" शरीरविनाशी है, मुझ आकाशके सदृश चैतन्य आत्माका नाश कोई नहीं कर सकता

क्योंकि, नाश, अनाश, ब्रह्मा विष्णु, शिवादि सर्व जगत अपना स्वरूप होनेसे अपने आत्मस्वरूपको कोई भी नाश नहीं कर सकता यह आत्मा विचार कर महातेजस्वी निर्भय हो गया। प्रह्लादने कहा-अभी कुछ बिगडा नहीं कहो सर्व विष्णु है। राजाने कहा-कामना मेरी पूर्ण हुई कि मेरा शत्रु सन्मुख आया है, अब पीठ देना काम शूरोंका नहीं। प्रातः कालमें पूर्व दिशासे जैसे सूर्य उदय होता है तैसे नरसिंह भगवान् खंभेसे प्रगट हुए और परस्पर दोनोंने बहुत कालतक महान् युद्ध किया, दोनोंमें कोई नहीं हारता था; परन्तु हिरण्यकशिपुके शरीरकाभोग देनेवाले प्रारब्ध कर्म हो चुके थे इससे अन्तमें विष्णुकी प्रबलता हुई। सूर्यके अंतर बाहर, संध्या समय, पौरके बीच, अपने पटोंपर उसका शरीर रखकर अपने नखोंसे उसका उदर विदीर्ण किया। देवतोंने पुष्पोंकी वर्षा और स्तुति की और प्रह्लादको प्रेरा कि भगवान् का क्रोध शान्त कराओ। प्रह्लादने कहा--हे बाजीगर! यह कौतुक तूने क्या किया है। नरसिंह भगवान् प्रह्लादको दोनों भुजोंमें लेकर रुधिरसे भरे हुए मुखसेही प्रह्लादका माथा चूमा और आज्ञा की कि, राज्य कर। प्रह्लादने कहा--इस राज्यमें मेरी चाहना नहीं, मैं कैसे राज्य करूँ? विष्णुने कहा--तथास्तु ऐसा कहके विष्णु अन्तर्धान हो गये!

पराशरने कहा–हे मैत्रेय! मैंने तुझको इतना आत्म निरूपण सुनाया है तुझको क्या लाभ हुआ है, तूने एक कानसे सुना दूसरे कानसे निकाल डाला, कहना मेरा अकार्य हुआ। मैत्रेयने कहा–इस कथा श्रवणसे जाना कि, परमात्मा विना और कुछ नहीं! पराशरने कहा–भयमान् हो, माया विष्णुकी बली है। मैत्रेयने कहा–जब सर्व गोविंद है तो माया तथा विष्णु तथा तू, मैं, बल छल

जगत् सब गोविंद है । पराशरने कहा-मायाकी तथा कुसंगकी आश्चर्यरूपता सुन ।

जब प्रह्लाद पिताके स्थानमें राज्यपर बैठा, तब शुक्राचार्यने कहा–हे प्रह्लाद ! सच कहो पिताके नाशवास्ते विष्णुको तूने कहा था ? वा विष्णुने आप ही मारा है। प्रह्लादने कहा, मैंने नहीं कहा उसने जो कुछ किया है सो आपही किया है, पिताके नाशकी मुझको इच्छा नहीं थी। शुक्राचार्यने कहा--तेरा जीना मृत्युसे भी बुरा है, जब तक पिताका बदला वैरीसे न ले लेवे, जो कुछ खावे पीवे तुझको अभक्ष्य है। प्रह्लादने कहा--किसकी शक्ति है कि गोविंदसे समता करै ? शुक्राचार्यने कहा, गोविंद कहां है ? तेरे निश्चयविषे प्रकाश किया है, नहीं तो गोविंद चतुर्भुज विष्णु आत्मासे क्या न्यारा है ? यदि न्यारा होगा तो अनात्मा होगा । धर्मशास्त्रमें लिखा है, पिताका बदला पुत्र लिये विना जो कुछ करता है सो अयोग्य है। प्रह्लादने कहा--प्रथम तुम कहते थे, गोविंदका भजन करो अब कहते हो गोविंदको मारो, जब हिरण्यकशिपुको उसके मारने की शक्ति नहीं हुई तो मैं कैसे मारूंगा ? शुक्राचार्यने कहा; वह अहंकार करता था, तू आत्मशक्ति रखता है। हे मैत्रेय ! प्रह्लादको पिताने कितनी शासना की परन्तु निश्चयसे न चलायमान हुआ और किंचिन्मात्र संग शुक्रका हुआ तो प्रह्लाद कहने लगा हे गुरो ! आज्ञा करो तो शक्ति रखता हूँ। पुनः राक्षसोंको आज्ञा की कि, विष्णुके मारने वास्ते शस्त्र अस्त्र लेकर मैदानमें डेरा करो। पांच योजन नगरसे बाहर उतरा विष्णु अन्तर्यामीने विचारा कि प्रह्लाद सद्‌बुद्धिको त्यागकर कुबुद्धि हुआ है परन्तु क्या करे कुसंग ऐसा ही है किन्तु भक्तकी कुमति दूर करनी चाहिये, नहीं तो बिरद लज्जायमान होगा ऐसा

विचार कर विष्णु वृद्ध ब्राह्मण कृशरूप होकर लकड़ी हाथमें लेकर कांपते कांपते आये। लोगोंसे पूछा यह धूम धाम किसकी है? लोगोंने कहा--प्रह्लादको विष्णुके साथ युद्ध करने की इच्छा है। आगे मत जावे क्योंकि, ब्राह्मण आगे मिले तो अशुभ है। ब्राह्मणने कहा प्रह्लाद ब्राह्मणोंपर दयालु है। लोगोंने कहा पहले था अब नहीं। ब्राह्मणने कहा--मुझको क्या भय है? बूढ़ा हूँ, शरीर आज या कल नाश होना ही है।तब उन्होंने कुछ नहीं कहा और प्रह्लादके निकट ब्राह्मण गया। प्रह्लादने कहा- तू कौन है? किस कामके लिये आया है? ब्राह्मणने कहा-तेरी शरण आया हूँ, ईश्वरके अन्यायसे अति दुःखी हूँ कि सर्व कुल मेरा उसने नाश किया है मैंने सुना है कि तूने भी ईश्वरके नाशकी इच्छा की है; तू धन्य है। यह बुद्धि तूने भी गुरुसे पाई है। परन्तु कह उसका ठिकाना कौनसा विचारा है कि, मैं भी तुम्हारे संग जाकर पिता माताका बदला लूँ। प्रह्लादने कहा--ठिकाना उसका मैं नहीं जानता। तब ब्राह्मण सुनकर हँसा और कहा--जैसा मैं मूर्ख था वैसा ही तुझको भी देखा परंतु मैं तेरे बलकी प्रथम परीक्षा करता हूँ, यह लकडी मैं पृथ्वीपर डालता हूँ, इसको उठाकर मेरे हाथमें दे तो मैं जानूंगा कि यह भी काम तुझसे होगा। प्रह्लादने कहा--अच्छी बात है। ब्राह्मणने लकड़ी पृथ्वीपर डालदी। प्रह्लादने अपना सारा बल लगाया परन्तु उठा न सका। तब जाना कि, यह विष्णु है। ब्राह्मणके चरणोंपर शिर रक्खा और विनती की कि, मैं तुम्हारी शरण हूँ, मेरा अपराध क्षमा करो। विष्णुने कहा--उलटा तू मुझपर क्षमा कर, मेरे मारने की तूने इच्छा की है। प्रह्लादने कहा--यह अपराध मेरा नहीं किन्तु, यह उपदेश शुक्रका है। विष्णुने कहा--इसीसे गुरु देखकर करना

चाहिये "गुरु कीजिये जानि. पानी पीजै छानि"। गुरु वही है जो ज्ञान विज्ञानसे पूर्ण हो प्रह्लादने कहा--ऐसा गुरु कहाँ पावें ? विष्णुने कहा--एक संत आपसे आप तेरे निकट आवेगा परन्तु चाहना उसके चरणोंके धूरकी मनमें रखना !

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! ऐसे बुद्धिमान् प्रह्लादको मायाने भ्रमाया था, तू क्यों न भ्रमेगा। मैत्रेयने कहा--हे गुरो ! भ्रमणा न भ्रमणा दोनों माया है, मैं मायारूप भ्रमण अभ्रमणरूप मायाका साक्षी हूँ। मायाका कार्य भ्रमण अभ्रमण मनका धर्म है, मुझ चैतन्यका नहीं; मैं एकरस हूँ। भ्रम अभ्रमकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते मुझ चैतन्यको यत्न नहीं, निष्कर्तव्य हूँ। पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! निष्कर्तव्य और सकर्तव्य कथन चिंतन भी मनका मनन है, वास्तवमें तू अवाच्य पद है। मैत्रेयने कहा--प्रह्लादने भजनविषे क्या भेद किया था कि, उसको माया लगी। पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! प्रह्लाद अपनेको बडा मानता था, यही, माया है, जहां मैं तू न रहा वहां माया कहां है ?

मैत्रेयने कहा--प्रह्लादको कौन संत मिले ? पराशरने कहा--दत्त भगवान् आये और नगरके समीप एक स्वच्छ स्थानमें सो रहे। राक्षसोंने तिनको देखकर कहा--तू कौन है ? दत्तने कहा--मैं राक्षस हूँ। तिनमेंसे एक राक्षस प्रह्लादके निकट आया और कहा-एक परमहंस आया है, तिसके वर्णाश्रमको हम नहीं जानते, तुमको दर्शन करना योग्य है। प्रह्लाद सुनकर दत्तके निकट आया और दंडवत किया, मनमें शंका उपजी कि, वर्णाश्रम इसका नहीं जानता, पूजा कैसे करूं ? तब पूछा-हे सन्त ! रूप तुम्हारा क्या है ? तुम कौन हो ! कहांसे आये हो ! कहां जाओगे ?

सन्तने उत्तर न दिया, बहुरि प्रश्न किया तो भी उत्तर न दिया। पुनः तीसरी बेर बोला कि मैंने सुना था कि, प्रहूलाद परमहंस है, पर देखा तो अभी मायामें ही पडा है क्योंकि वर्णाश्रमका विचार करें तो स्थूल शरीरसे भी नहीं निकस सकते, शरीरसे अतीत आत्मामें कहांसे आवेंगे । जो वर्णाश्रमकी कल्पना मानें भी तो स्थूल शरीरके ही वर्णाश्रम हैं, शरीर ही माया है, ताते शरीर अभिमानी तू मायामें ही पडा है। प्रहूलादने कहा--मैं मायासे अतीत हूँ । संतने कहा--'मैं मायाते अतीत हूँ'' यह भी जानना मायारूप है। पुनः सन्तने कहा यह भी माया है; जो पूछता है तू कौन है ? कहांसे आया है ? कहां जावेगा ? जब सर्व गोविंद है तो गोविंद कहांसे आवे और कहां जावे आकाशकी न्याई व्यापक है; आना जाना परिच्छिन्नमें होता है। हे प्रहूलाद ! देह अभिमान राक्षस स्वभावको त्याग और "देहादि संघातते भिन्न साक्षी आत्मा मैं हूँ''इस दैवी बुद्धिको धारण कर;जो देह भावको प्राप्त होवे प्रहूलादने कहा--अब मैं क्या करूँ ? संतने कहा--वही कर जिससे करना कुछ न पडे । प्रहूलादने कहा--वह क्या वस्तु है ? संतने कहा--सो तू ही देहसे भिन्न चैतन्य अक्रिय आत्मा है, तुझमें कर्तव्य नहीं । जैसे घटसे भिन्न आकाश अक्रिय है, हे प्रहूलाद ! जब सर्व गोविंद है तू, मैं नहीं तब आना जाना कहां है ? परन्तु पर अपरका वृथा अहंकार तूने किया है, सोई संखल अपने पगको पाया है, यह अहंकारही बीच आवागमनका है, जिसने इस संखल (जंजीर) को ज्ञान खड्गसे काटा सो संसारसे पार हुआ है, हे प्रहूलाह ! नाम जो तून पूछा है सो नामरूप तो भ्रम अहंकार है सर्व मन बुद्धि आदिकोंका ज्ञाता प्रकाशक एक ही मैं चैतन्य साक्षी आत्मा हूँ, मेरा ज्ञाता और कोई नहीं

जो मेरे आने जानेको जाने, इससे मैं स्वयं प्रकाश हूँ। तूने जो आपको शरीर माना है सो शरीर जब गिरेगा तब इसकी अवस्था तीन[1] प्रकार होवेगी। जले तो भस्म खाय तो विष्ठा, पडा रहै गडै तो कृमि। ऐसी मलिन वस्तुको आप मानके अहंकार मानता है कि मैं राजा हूँ। जैसे भंगी पाखानों का आपको राजा माने सो यही माया है। कहाँ यह अत्यंत मल मूत्र नरक रूप दृश्य रूप देह, कहाँ तू शुद्ध चैतन्य द्रष्टासाक्षी आत्मा ? तुझको लज्जा नहीं आती कि, मल मूत्रको अपना स्वरूप मानता है। हे मूर्ख ! भंगी भी विष्ठाको अपना रूप नहीं मानते, तू तो पंडित है। देहाभिमान ही सर्व दुःखोंका मूल है, जब अहंकार न रहा तब सर्व दुःख भी नष्ट हो जाते हैं। हे प्रह्लाद ! बाहरसे कहै मैं शरीर नहीं भीतरसे शरीर भी मान रखे तो भला नहीं, न वह ज्ञानी है न वह योगी है केवल दुःखका भागी है इससे निश्चय जान; "शरीर कालका ग्रास है मैं इस कालका भी कालरूप हूँ" इसके सुख दुःखसे क्यों चिंतातुर होता है और क्यों मोह करता है ? हे प्रह्लाद ! तू पंचभूतोंसे तथा शब्द, स्पर्श, रूप रस, गंध पंचविषय रूप तन्मात्रा, दश इंद्रिय, चतुष्टय अन्तःकरण, पंचप्राण तथा सात्त्विक, राजस तामस तीन गुण इन सबोंका कारण माया है। सारांश यह कि, कार्य कारणरूप प्रपंचसे तू परे है, शारीरिक, वाचिक, मानसिक, कर्मोंते तू चैतन्य मुक्त है और तेरा स्वरूप सच्चिदानंद रूप है, बुद्धि आदिक असत् जड तेरा स्वरूप नहीं। प्रह्लादने कहा--तुम्हारे वास्ते शय्याले आऊँ तो शयन करोगे।

१ यह तन जारे भसम होय जाई, गाड़े कृमि कीट खाई।
शूकर श्वान काककी भोजन, तनकी इहै बढाई ॥

अवधूतने कहा--जो स्वाभाविक प्रारब्ध करके प्राप्त होवे तो हर्ष नहीं और कांटोंपर शयन होय तो शोक नहीं। हे प्रह्लाद ! छत्तीस प्रकारके भोजन मिलें तो खाता हूँ, नहीं तो सूखे पत्तोंसे निर्वाह करता हूँ और संतुष्ट हूँ हर्ष शोक नहीं प्रह्लादने कहा -राज्य करो। अवधूतने कहा--राजा, प्रजा, देश मेरी दृष्टिमें है नहीं। किन्तु अपने सहित यह सर्व वासुदेव जानता हूँ, इसीते स्वराज हूँ, यह सर्व कल्पित नामरूप मेरी प्रजा है, जैसे स्वप्नमें सर्वनामरूपस्व-प्नद्रष्टाकी प्रजा है, स्वप्नद्रष्टा स्वराज है।

हे प्रह्लाद ! यह कार्य कारण रूप जगत् मुझ चैतन्यकी प्रजा है, सत, रज, तमरूप मायायुक्त मुझ सच्चिदानन्दसे त्रिगुणात्मक शब्द गुण सहित आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश संयुक्त मुझ चैतन्यसे वायु, वायुविशिष्ट मुझ चैतन्यसे अग्नि, अग्निविशिष्ट मुझ चैतन्यसे जल, जल-विशिष्ट मुझ चैतन्यसे पृथिवी, पृथिवी विशिष्ट मुझ चैतन्यसे औषधि, औषधिविशिष्ट मुझ चैतन्यसे अन्न, अन्नविशिष्ट मुझ चैतन्यसे वीर्य, वीर्य विशिष्ट मुझ चैतन्यसे शरीर हुआ; सो शरीर समष्टि व्यष्टि भेदसे दो प्रकारका है। पुनः आकाशादिक पंचभूतोंके एक एक आकाशादिकोंके सात्त्विक अंशसे श्रोत्रादिक पंचज्ञानेंद्रिय उत्पन्न हुई, पुनः पंचभूतोंके सात्त्विकसाक्षी अंशसे चतुष्टय अंतःकरण हुआ पंचभूतोंके साक्षी राजसी अंशसे वागादिक पंचकर्मेंद्रिय उत्पन्न हुई। पंचभूतोंके साक्षी राजसी अंशसे प्राण अपानादि पंचप्राण उत्पन्न हुए। पंचभूतोंके तामसी अंशसे काम क्रोधादिक पचीस प्रकृति उत्पन्न हुई। हे प्रह्लाद ! यह सब मेरी प्रजा है, मैं चैतन्य राजा एकही अपनी सत्तास्फूर्ति देकर पूर्वोक्त सर्व नामरूप प्रजाकी पालना करता हूँ, मुझे कोई भी पूर्वोक्त प्रजा पालना

नहीं कर सकती इसीसे स्वराज हूँ । तो भी स्वराज मेरी मुवाफिक हुआ चाहता है तो देह अभिमानका त्याग कर आपको सच्चिदानन्द जान । आपको त्यागके भजन किसका करता है तुझको लज्जा नहीं आती, खुद बादशाह होकर भ्रमसे आपको भंगी मानता है तुझ चैतन्यविषे द्वैतका मार्ग ही नहीं । चाहे मैं भी बना रहूँ और रस भजनका पाऊँ, सो कठिन है । सच्चिदानन्दस्वरूप तू गोविंद है, गोविंदके मिलनेकी चाहना करता है, यही तेरेमें बन्धन है । अपने आत्मस्वरूपमें मिलना बिछुड़ना नहीं तो कैसे मिलेगा ? किन्तु नहीं मिलेगा । जैसे "लड़का बगलमें ढंढोरा शहरमें" सो यह भ्रमका काम है । हे प्रह्लाद ! तू वर्ण आश्रमकी तलाशमें फिरता है, तुझको वर्णाश्रम ही मिलेगा, निज स्वरूपको कैसे जानेगा क्योंकि, गोविंदमें वर्णाश्रम है नहीं, हे प्रह्लाद ! तेरी न्याई जो वर्णाश्रम रखता हो तिसको तू सन्त जानकर मिल, मैं वर्णाश्रम नहीं रखता हूँ । हे प्रह्लाद ! तूने जो मेरे चरणोंपर शीश रक्खा है सो शीश भी मांस चर्म है और मेरे चरण भी मांस चर्म हैं, तेरे नमस्कारसे मुझको क्या लाभ है, क्षुधा तृषादिक, हर्ष शोकादिक, शीतोष्णादिक कोई भी क्लेश दूर नहीं करता, न कोई सुख करता है, ताते मुझको तेरी नमस्कारकी इच्छा नहीं. परंतु, तू निजस्वरूपको जान जो कर्तव्यते छूटे । हे प्रह्लाद ! जो श्रोतादिक पंचज्ञानेंद्रियोंकर शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध जाने जाते हैं जो मन करके चिन्तनमें आते हैं, वाणीकर जो कथनमें आते हैं, जो प्रत्यक्षादि षट् प्रमाणोंकर सिद्ध होता है तुम्हारा स्वरूप नहीं किंतु जिसकर यह सर्वसिद्ध होते हैं सो तुम्हारा स्वरूप है

वेदोंके पढनेसे भी स्वरूपकी प्राप्ति होनी दुर्लभ है, बुद्धिकी चतुराईसे भी दुर्लभ है, बहुत श्रवणसे भी दुर्लभ है, कृच्छ्र चांद्रायणादि व्रतों करके भी तीर्थाटनसे भी जपादिक उपासनासे भी अग्निहोत्रादिकर्मोंसे भी स्वरूपकी-प्राप्ति दुर्लभ है; परंतु आत्मस्वरूपके जाननेकी इच्छा पूर्वक श्रद्धासहित, सत्संगतसे ही स्वरूपकी प्राप्ति होती है। जब तुझको स्वरूप दर्शन होगा तब अन्तरबाहरपना त्यागके आपही होवेगा, हे प्रह्लाद ! यह तूने अकार्थ माना है कि, मैंने बहुतकाल गोविन्दका भजन किया है पर शांति न आई तेरे मनविषे कपट है, गोविन्दको कैसे पावे ! जिह्वासे नारायण २ कहना मनमें कामना संसारके सुखोंकी रखनी यही कपट है, सर्व नारायण और आपा बीच' राखना, इस कपटको त्याग जो आपसे आप होवे। संसार मार्गमें भी जो किसीसे प्रीति करता है तो जबलग भेद नहीं किया तबलग ही प्रीति रहती है, जब आपसमें भेद पडा, प्रीति नहीं--कपट है इस हेतु अन्तर बाहर सर्वका अन्तर्यामी प्रकाशक एक ही सच्चिदानंद स्वरूप आत्मासे ही प्रीति कर । आपा भ्रमके आरोपणसे भगवान् कैसे प्रसन्न होगा अर्थात् नहीं होगा । यदि पूछे आपा क्या है ? " तो मैं प्रह्लाद जीव दास हूँ. नारायण हमारा स्वामी ईश्वर है" यही आपा है। परन्तु विचार कर देख दास स्वामी कहां हैं एकरस चिद्घन देवही है, निमकके डलेवत्। प्रह्लादने कहा है। रूप सत्ताको कौन सिद्धकर्ता है ? संतने कहा--'नहींको तैंने सिद्ध किया है, है को कोई नहीं सिद्ध करता, है 'ही सबको सिद्ध करता है". इसीसे है स्वयंप्रकाश है। प्रह्लादने कहा--यह पद कैसे जाननेमें आवे ? संतने कहा--है शब्द और है नहीं--ये शब्द और इन शब्दोंके अर्थ जिस अवाङ्-

मनसगोचर पदकर सिद्ध होते हैं सो तू है, तुझ अवाङ्मनसगोचर करके ही सर्व नामरूप प्रपंचकी सिद्धि होती है, तू स्वयं प्रकाश है तुझको जाननेवाला कोई नहीं। जैसे-सूर्यकर ही अन्धकार प्रकाश दोनों सिद्ध होते हैं।

हे प्रह्लाद ! योग दोस्तीका नाम है । एक चींटीका मार्ग है दूसरा विहंगम मार्ग है । हठयोग चींटी मार्ग है, विचारयोग विहंगम मार्ग है सो। विचारयोग पूर्व तुझको कहा है, हठयोग हठियोंसे सीख ले जैसे नटसे नट शरीरकी कसरत सीखे, इस पर एक कथा सुन।

अध्यात्मक योगीश्वरोंकी कथा

एक समय मैं हिमालय[1] पर्वतपर स्वाभाविक विचरता था और चिंतन करता था कि, सर्व शिव है, शिवसे भिन्न कोई वस्तु है नहीं. जब पर्वतके शिखर (शरीर) पर पहुँचा तब देखा अनेक योगीश्वर बैठे योगाभ्यास करते हैं जो तू पूछै योगीश्वर कौन थे ? सो सुन पंच महाभूत, पचीस प्रकृति, तीन गुण, पंच ज्ञानेंद्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय, पंच प्राण, चतुष्टयअन्तः करण । सारांश यह कि मन बुद्धि चित्त अहंकार और समष्टि स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर तथा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि विषय तथा चक्षु आदि इन्द्रियोंके सूर्यादि देवता तथा पूर्वोक्त इन सर्वका उपादान कारण माया अविद्यारूप अज्ञान इत्यादि मनुष्य आकृतिको धारके योगाभ्यास करते थे। तिन योगेश्वरोंके मध्यमें पंच ज्ञानेन्द्रिय और मन बुद्धि चित्त अहंकार किसी रीतिसे यह नव योगीश्वर ज्ञानवान् भी थे । यद्यपि मुख्य ज्ञानरूप आत्मा ही है तथापि ज्ञानरूप आत्माकी प्रधान उपाधि होनेसे उन्हें ज्ञानी कहते हैं वा ज्ञानके साधन होनेसे ज्ञानी कहते हैं

१ मनुष्यशरीररूप हिमाचल पर्वत ।

सत्त्वगुणके कार्य्य होनेसे ज्ञानी कहते हैं अन्य प्रकार नहीं दूसरे सर्व अज्ञानी थे; तात्पर्य्य यह कि, कर्मेन्द्रियादि ज्ञानके असाधन सर्वको प्रसिद्ध ही हैं इससे अज्ञानी कहलाते हैं। मैंने पूछा--हे योगेश्वरो! किस पदमें योग करते हो? उन्होंने कहा--अकारविषे। मैंने कहा--अकारका क्या स्वरूप है? उन्होंने कहा--ईश्वर अकार स्वर है जैसे--सर्व क, ख, ग, घ, ङ, आदिक वर्णोंविषे व्यापक है और सब वर्णोंके उच्चारणका निर्वाहक है। अकार ही सत रूप है। क्योंकि सर्व वर्णोंका अकारमें अभाव है, तथा परस्परमें भी अभाव है, परन्तु अकारकी सर्वमें अनुस्यूतता है। हे दत्त! तैसे ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध गुणोंसे रहित हैं सर्व गुणरूप भी वही हैं। तैसे ही समष्टि व्यष्टि स्थूल, प्रपंच तथा समष्टि व्यष्टि सूक्ष्म प्रपंच तथा समष्टि व्यष्टि कारण प्रपंच जिसकर सिद्धि होता है पूर्वोक्त सर्व प्रपंचविषे व्यापक है, पूर्वोक्त सर्व दृश्यका स्वरूप भूत हुआ अपनी सत्तास्फूर्ति करके सर्वका निर्वाहक है। सर्व दृश्य रूप भी वही है; तथा सर्व दृश्यते अम्बरके समान असंग भी वही है। सर्व दृश्यका द्रष्टा साक्षी भी वही है; तुरीया वा तुरीयातीत संज्ञाका भी वाच्य वही है। अकार उपलक्षित सत्, चित्, आनंद नामों करके भी वही कथन किया जाता है, तिस पदविषे हम योग करते हैं। मैं सुनकर हँसा और कहा--हे मित्रो! पूर्वोक्त सो पद तुम्हारा स्वरूप है, योग किससे करते हो? सब दृश्य तुम्हारा ध्यान करता है, तुमको योगनाम संबंध किसी दृश्य पदार्थसे क्रिया करके करना नहीं पड़ता, तुम अधिष्ठानते विना कल्पित प्रतीतिका अभाव होनेसे स्वतः ही तुम अधिष्ठानका कल्पित दृश्यके साथ योग है, कर्त्तव्यसे नहीं। जैसे--स्वतः ही चीनीका खिलौनोंके साथ योग नाम संबन्ध है

तथा जैसे--आकाशका स्वतः ही सर्व पदार्थोंके साथ योग है, करना नहीं पडता । जो अवाङ्मनसगोचर पद अपरोक्ष, हाजिर हजूर, बल्कि सर्वका सिद्ध करता है सोई तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत् का स्वरूप है अन्य मन आदिक दृश्य नहीं ।

हे प्रह्लाद ! पूर्वोक्त अनेक योगियोंके मध्यविषे पंच ज्ञानेंद्रिय चतुष्टय अंतःकरण यह नव योगी ज्ञानी थे, अन्य अज्ञानी प्रसिद्ध ही हैं, तिन ज्ञानी योगेश्वरोंके मध्य मैंने पूछा कि, हे श्रोतेंद्रिययोगेश्वर ! महान् शब्द, मध्यम शब्द और निकृष्टशब्द वा ध्वनिरूप शब्द, वा वर्णात्मक रूप शब्दोंका ही तुम ध्यान कर सकते हो । शब्द रहित जो आत्मा हरि है, तिसका तुम हजार यत्नसे भी ध्यान नहीं कर सकते यदि परमेश्वर आत्मा तुम्हारे ध्यानमें आवेगा तब हरि आत्मा शब्द रूप होनेसे अनित्य हो जावेगा, इससे हे श्रोतेंद्रिययोगेश्वरो ! तुम्हारा नारायण आत्माका ध्यान करना निष्फल है वा दंभ है किन्तु शब्द का ध्यान करना सफल है । तैसे ही हे प्रह्लाद ! मैंने त्वचा इन्द्रिय-योगेश्वरसे पूछा कि, तुम किसका ध्यान करते हो ? शीतोष्ण कोमल और कठिनादि स्पर्शवान् पदार्थोंका ही ध्यान तुम कर सकते हो, स्पर्श रहित पूर्वोक्त पदका योग नाम संबंध तुम कदाचित् भी नहीं कर सकते, इससे तुम्हारा कहना मात्र ही है कि हम स्पर्शवर्जित पदविषे योग करते हैं वस्तुतः स्पर्शका ही तुम योग करते हो अन्य नहीं । हे प्रह्लाद ! पुनःमैंने चक्षु इंद्रिय योगेश्वरसे पूछा कि, हे देव ! तुम सद्वक्ता हो, यथार्थ कहो तुम किसका ध्यान करते हो । उसने कहा--हरि आदि स्थूल मूर्तिका तथा पृथ्वी जल अग्नि तीनों भूतोंका तथा तिनके कार्य आदिके षट् प्रकारके रूपका ध्यान, इन्हींको मैं जान भी

सकता हूँ इनसे अधिक अंतरीय अरूप पदविषे मुझसे योग नहीं हो सकता । मैंने कहा--जब तुम षट् प्रकारके रूप रहित वस्तुविषे योग नहीं कर सकते तो नाम रूप रहित अंतर पदविषे हम योग करते हैं, यह तुम्हारा कहना निष्फल है, यथार्थ तो यह है कि, तुम बहिर ही षट् प्रकारके रूपका योग कर सकते हो । हे प्रह्लाद ! पुनः मैंने रसना योगेश्वरसे पूछा कि, हे रसज्ञ विद्वान् पक्षपातसे रहित ! तुम षट् प्रकारके रसविषे ही योग कर सकते हो, षट् रसरहित आत्मपदविषे तुम योग नाम संबंध नहीं कर सकते ? इससे षट् रसके सिद्धकर्ता आत्मपदविषे तुम्हारे ध्यानका यत्न अफल है । फिर हे प्रह्लाद ! मैंने घ्राणयोगेश्वरसे पूछा कि, हे घ्राणयोगेश्वर सुगन्धि दुर्गन्धि पदार्थसे पृथक् वस्तुको तुझको योग नाम सम्बन्ध कदाचित् भी नहीं हो सकता, इसलिये तुम्हारा भी कहना वृथा है कि हम व्यापक गन्धरहित अखण्ड रूपविषे योग करते हैं । तात्पर्य यह कि, तुम श्रोत्रादिक पांचों योगेश्वर तो बहिर शब्दादिक पांच गुणोंविषे ही योग नाम ध्यान कर सकते हो शब्दादिक पांच गुणोंते वर्जित जो अन्तर प्रत्यक् आत्मा विष्णु है, तिसविषे योग नाम संबंध तुम नहीं कर सकते, सारांश यह कि शब्दादिक गुणोंविषे श्रोत्रादिक तुम पांचों योगेश्वरोंका स्वतः ही देश काल वस्तुके अनुसार योग नाम ध्यान संबध होता रहता है । इस हेतु शब्दादिक गुणोंविषे भी योग नाम ध्यान करना तुम्हारा निष्फल है, तब शब्दादिक गुणों रहित अवाङ्मनसगोचर आत्मपदविषे योग करना कहनमात्र मिथ्या तुम्हारा भ्रम है और योगाकथन अफल है, दोनों प्रकारसे तुम्हारा यत्न निष्फल है, किस वास्ते अपनी (भ्रमसे) आरामदारी भी खोते हो । हे प्रह्लाद ! पुनः मैंने मन,

बुद्धि, चित्त, अहंकार चारों योगेश्वरोंसे पूछा कि, हे मन बुद्धि, चित्त, अहंकार योगेश्वरो ! जाति गुण क्रियादिसंबंधवान् पदार्थोंका ही तुम चारों योग नाम संकल्प, विकल्प, निश्चय, चिंतन, अहंपना कर सकते हो जाति गुण क्रियादि संबंध रहित आत्मवस्तुमें कैसे योग तुम कर सकते हो ? किन्तु नहीं कर सकते हो । लाखों यत्नसे भी तुम योग नाम संबन्ध आत्मासे अणु मात्र भी नहीं कर सकते, इस हेतु तुम हम सच्चिदानंद स्वरूप आत्माविषे योग करते हैं सो यह तुम्हारा कहना व्यर्थ है तात्पर्य यह है कि, तुम सर्व ज्ञानी अज्ञानी योगीश्वर एक आत्माकरके ही प्रकाशमान हुए हो तुम्हारे करके वह जो आत्मा प्रकाशमान नहीं सोई तुम्हारा स्वरूप है, योग किससे करते हो ! उन्होंने कहा-तुम्हारे कहेसे हमने जाना है कि अकार, उकार, मकार वाचक और स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर वाच्य, इस सर्व वाच्यवाचक संसारके हमहीं निराकार स्वप्रकाश अक्रिय एक अविनाशी सर्वके सिद्ध करनेवाले हैं, हमारेमें आना जाना योग करना नहीं बन सकता ।

हे प्रह्लाद ! वे योगेश्वर किंचिन्मात्र उपदेशसे ही स्वस्वरूपको जान गये, इससे हे प्रह्लाद ! सुखपूर्वक अपने स्वरूपका विचार ही विहंगम मार्ग है प्रह्लादने कहा--एकको ऊंचा और एकको नीचा कहना तुमको योग्यता नहीं । अवधूतने कहा--जब सर्व तूही है, ऊँच नीच कहां है ? ऊँच नीच भी तूही है परंतु मैं तुझको ऐसा कहता हूँ जिसमें ऊँच नीच, विहंगम चींटी मार्ग दोनों नहीं । प्रह्लादने कहा--तुम्हारे आत्म उपदेशसे मैं कृतकृत्य हुआ हूँ । मुझ चैतन्य स्वरूपमें न आना न जाना है न लेना है, न देना है, न कहना है, न सुनना, न जीवना है,

न मरना है, न ग्रहण है, न त्याग है, न विहंगम है, न चींटी मार्ग है, न बंध है, न मोक्ष है, न कोई शत्रु है न मित्र है, न सुख है, न दुःख है, न प्रह्लाद है, न अवधूत है, न देवता है, न राक्षस है, न स्थूल सूक्ष्म कारण है, न राग है, न द्वेष है, न पर है, न अपर है, न जीव है, न ईश्वर है; केवल मन वाणीसे रहित एक अद्वितीय आत्मा है। उपरोक्त चिन्तनसे भी गूँगा मूकसा हुआ हूँ और सर्वरूप भी मैं ही हूँ मेरी मुझको नमस्कार है। आपही वचन करता हूँ, आपही सुनता हूँ, क्या कहूँ द्वैत है ही नहीं। आज ही सत्संग सफल हुआ है, उपमा तुम्हारी कौनसी रसनाते करूँ, तुमविषे मन वाणीका मार्ग नहीं; परन्तु उपमा तुम्हारी यही है कि सर्व असर्व रूप तुम ही हो, सर्व नाम रूप तुम्हारे विषे ही कल्पित हैं, परंतु कुछ हुआ नहीं, हे सन्तो ! मैंने तुमको अपना अहंकार दिया और आप स्वयं-प्रकाश हुआ हूँ। अवधूतने कहा--झूठ मत कह जब सर्व तू ही है तो देना लेना कहाँ है।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! इस प्रकार कहकर दत्तात्रेयने कहा--अब हम जाते हैं। प्रह्लादने कहा--तुम्हारे बिना मेरा जीवन न होगा विषपान करना कबूल करता हूँ, पर संग संतोंका त्यागना कबूल नहीं करता क्योंकि, अनेक कोटि जन्मोंकी भटकना सत्सङ्गसे दूर होती है पारसके सङ्गसे लोहा सुवर्ण होता है, पारस नहीं होता. परंतु संतके सङ्गकर संत ही होता है, इस हेतु संत मेरे प्राण हैं प्राणभी कहां है ! संत आपही हैं। तुम यहां ही रहो, जावो नहीं। संत दत्तात्रेयने कहा मैं पूर्ण हूँ, मुझ चैतन्य में आना जाना नहीं। पुनः दत्तात्रेय प्रह्लादको दृढ बोध-वास्ते उपदेश करने लगे- हे प्रह्लाद ! परमार्थरूप शिव आप है और शिवको बाहर देखा चाहता है कैसे पावे ?

प्रह्लादने कहा--मैं आपको नहीं जानता कि, मैं कौन हूँ, क्योंकि, आप अहंकार नहीं सर्व आप ही हुआ हूँ। अवधूतने कहा--रसनासे कहता है और मनमें द्वैत रखता है। प्रह्लादने कहा--द्वैत अद्वैत मुझ चैतन्यमें नहीं तुम्हारे मनमें है, गुप्त प्रगट सर्व जब मैं ही हूँ तो रसना वाणी मन कहां हैं? अवधूतने कहा-मेरा प्रयोजन यही है कि आपविना न देखे कि, न सुने, न गुने न सूंघे न स्पर्श करे क्योंकि तुझ विना और कोई नहीं! दृश्यमानको झूठ जानकर त्याग कर अर्थात् मिथ्या जान और आपको ही सत जान; तेरा कल्याण होगा। आप शरीरका त्याग कर, आपको सच्चिदानन्दरूप जान। यही शिवकी पूजा है कि, आप सहित सर्व नामरूपको शिव जान, वा इस प्रकार जान कि समष्टि, व्यष्टि नामरूप प्रपंचमंदिरविषे प्रत्यक् आत्मास्वतः मैंही ज्योतिर्लिंग स्थित हूँ सर्वनाम प्रपञ्च मुझ सच्चिदानन्द शिवके पुजारी हैं। जैसे सुवर्णके तथा मधुरता द्रवता शीतलतारूपजलके, भूषण तरंग पुजारी हैं इत्यादि दृष्टांत अनेक हैं। इससे मैंही चैतन्यसर्व-दृश्यका पूज्य हूँ, मैं सूक्ष्मसे सूक्ष्म हूँ और स्थूलसे भी स्थूल हूँ यह नामरूप प्रपञ्च मुझ सच्चिदानन्द सूर्यकी किरण हैं। मुझ चैतन्यके ही नारायण गोविन्द अच्युत, हरि, परमेश्वरादि नाम वेदने कल्पे हैं परन्तु मैं नामरूपसे वर्जित हूँ। मैं ही चैतन्य सर्व नामरूप प्रपंचके कर्मोंके फलका प्रदाता हूँ, वास्तवसे सर्व मैं ही अस्ति भाति प्रियरूप सर्वात्मा हूँ और सर्वसे अतीत भी मैं ही हूँ इस निश्चयरूप पुष्पोंकर आत्मदेवकी पूजा कर। जो कछु प्रारब्ध कर, शास्त्र अनुसार, यत्न रहित प्राप्त होवे तिसको कर्तृत्व भोक्तृत्व अभिमान रहित निःसंशय भोग लगा और सम्यक् अपने स्वरूपको जान, यही

आत्मदेवके आगे पुष्प हैं। अंडज, जरायुज, स्वेदज उद्भिज्ज इन चार प्रकारकी खानिमें जितनेक चौरासी लक्ष देह हैं, सोई मन्दिर हैं, तिनमें मैं एक ही सच्चिदानन्द विष्णु शिवरूप आत्मा विराजमान हूँ जैसे--सर्व उपाधिमें एक ही आकाश विराजमान है । हे प्रह्लाद ! ऐसा जान कि पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्म इंद्रिय, पंच प्राण, चतुष्टय अंतः--करण मुझ सच्चिदानन्द शिवके पुजारी हैं, पूर्वोक्त पुजारी शब्दादिक निज निज विषयरूपी पुष्पोंको ग्रहण कर मुझे चैतन्य देवकी निरन्तर पूजा करते रहते हैं, मुझ चैतन्यकी सत्ता स्फूर्तिरूप प्रसन्नता कर ही, इन पुजारियोंका उपजीवन अर्थात् शब्दादिकोंके ग्रहण करनेकी सामर्थ्य होती है. अन्यथा नहीं है, यह निश्चय ही आत्मदेवकी पूजा है । मुझ सच्चिदानन्द स्वरूपकी ही चारों वेद भाटोंकी न्याईं स्तुति करते हैं, मुझ चैतन्य देवका ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक सब ध्यान करते हैं और मैं ही ब्रह्मा, विष्णु (शिवादिक हूँ) मरना, जीना सोना, खाना, पीना, लेना; देना, हर्ष, शोक, मान, अपमान, सुख, दुःखादिक सारांश यह कि, कायिक वाचिक, मानसिक, कर्म सर्व मुझ चैतन्य देवकी पूजा है । सर्व नामरूप दृश्यका मैं चैतन्य ही मालिक हूँ और दृश्यरूप भी मैं ही हूँ या कार्य कारणरूप ब्रह्मांड जलधरीमें मैं चैतन्य ही शिवलिंग स्थित हूँ; सूर्य चंद्रमा मुझ चैतन्यदेवके मंदिरमें दीपक जल रहे हैं । तारामंडल आकाशरूप थालमें, मुझे चैतन्यदेवके आगे छोटे आरतीके दीपक हैं । अठारह भार वनस्पति मुझ चैतन्यके कण्ठमें पुष्पोंकी माला हैं । पृथिवी मुझ चैतन्य देवताका सिंहासन है, दशों दशा मुझ चैतन्यदेवकी पूजा हैं सुमेरु आदिक पर्वत मुझ चैतन्यके भूषण हैं, काल मुझ चैतन्यके भूषण हैं, काल मुझ चैतन्यके खेलनेका गेंद है, सातों

समुद्र मुझ चैतन्यके आगे जलके पात्र हैं। यावत्मात्र शब्द हैं सो मुझ चैतन्यदेवकी नौबत बाज रही है, वायु मुझ चैतन्य देवका पंखा खैंच रही है। माया मेरी शक्ति है, पार्वती लक्ष्मी सरस्वती आदि देवियां इसी शक्तिके अवतार हैं। विषय इंद्रिय सम्बन्धजन्य सुख दुःखका अनुभव मुझ चैतन्यदेवके आगे भोग है। जीव ईश मुझ चैतन्यदेवके मुख्य पुजारी हैं। जगत्की उत्पत्ति पालन संहार मुझ चैतन्य देवकी क्रीडा हैं। सत्त्व रजः तम मुझ चैतन्य देवके पहरेदार हैं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति मुझ चैतन्य देवके खेलनेके स्थान हैं। तात्पर्य यह कि, पूजक, पूज्य पूजा त्रिपुटी रूप सामग्रीसे सर्व जगत् मुझ चैतन्य देवकी पूजा करता है, वास्तवसे त्रिपुटीरूप भी मैं ही हूँ अत्रिपुटीरूप भी मैं ही हूँ। हे प्रह्लाद ! जैसे स्वप्नमें पूज्य पूजक, पुजा, सर्व त्रिपुटीरूप प्रपंच एक स्वप्नद्रष्टाकी ही पूजा करते हैं, क्योंकि स्वप्नमें अन्यदेवका अभाव है वास्तवमें स्वप्नद्रष्टा ही सर्व स्वप्न प्रपंच रूप होनेसे पूज्य पूजक पूजा भाव भी तिससे भिन्न नहीं। तैसे ही इस मायामात्र दृश्य जाग्रत् प्रपंचमें भी एक सच्चिदानंद स्वरूप द्रष्टा देव मैं ही हूँ, जहां पूजा होती है तहां चैतन्य देवकी ही पूजा होती है अन्यकी नहीं। वास्तवसे जब सर्व सच्चिदानंद तू ही है तब पूज्य पूजक भाव कहां है ? जैसे पंचभूतका कार्य रूप कोई तृणादि एक वस्तु जानें कि सर्व भूत भौतिक दृश्य प्रपंच मैं ही हूँ इस प्रकार यथार्थ चिंतनमें शास्त्र गुरु संस्कारसहित बुद्धिमान् कोई भी विवाद नहीं करता, अन्य करते हैं, क्योंकि सर्व पंचभूतरूप ही है। तैसे--जिसने सम्यक् अपनेको अस्ति भाति प्रियरूप जाना है तो वह यह चिन्तन करे कि; "सर्व अस्ति भाति प्रियरूप सर्वात्मा मैं ही हूँ" तो

ठीक ही है क्योंकि अस्ति भाति प्रियसे पृथक् कोई भी दृश्यमान वस्तु है नहीं । इससे तू आपको सर्वात्मारूप जान। ध्यान किसका करता है । ध्याता ध्यान ध्येयरूप भी तू ही है तथा तिसते रहित भी तू ही है तो पुनः ध्यान किसका करता है ? हे प्रह्लाद ! विश्वके देखनेकी इच्छा मत कर अपने स्वरूपको जान, जब तू अपने स्वरूपको जानेगा तब सर्व दर्शन तेराही होगा । जैसे--घटको सर्व घटोंके दर्शनवास्ते बाहर नहीं जाना होता किन्तु, घट अपनेको मृत्तिका स्वरूप जाने तब सर्व घटोंका यत्नविना ही तिसको दर्शन होता है वा स्वप्न द्रष्टाको सर्व स्वप्न पदार्थोंको देखने नहीं जाना किन्तु अपना स्वरूप सम्यक् जाननेसे ही सर्व स्वप्न पदार्थ जाने जाते हैं क्योंकि, स्वप्न द्रष्टामें ही कल्पित है रज्जु सर्पवत् । हे प्रह्लाद ! तू न है, न मैं हूँ, सर्व मैं ही हूँ आपा अहंकारको त्याग जो आप होवे । प्रह्लादने कहा--आपेका त्याग करूँ तो आप क्योंकर होऊँ ? दत्तने कहा--आपा परिच्छिन्न अहंकार गया, तब शेष रहा सो अवाङ्मनसगोचर है ताते सर्व साधनों कर्त्तव्योंका फल यही है कि आप सहित जाने सर्व सच्चिदानंद स्वरूप हरि है । जिसको तू खोजता है, सो तू ही है, मैं ऐसा अतीत नहीं हूँ जो तुम्हारे राज्य संपदाकी इच्छा राखूँ, मेरा प्रयोजन यही है कि, तू आप बिना कुछ न देखे न सुने क्योंकि तुझ सच्चिदानन्दस्वरूप बिना और कुछ है नहीं । दृश्यमानको असार झूठ जान, प्रत्यक्ष जो अदृश्यमान है (ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्य्यन्त) सर्वविषे एकरस शिव पूर्ण मान ।

अथ शिवकुबेर संवादाख्यान

हे प्रह्लाद ! इसी प्रसंगपर एक कथा सुन । एक समय शिव कैलासमें स्वामिकार्तिक, गणेश और अनेक गणों-

सहित बैठे थे, शिवकी जटासे जो गङ्गा चलती थी सो शिव शिव करती चली जाती थी, तहां सर्व पक्षी भी शिव शिव ही बोलते थे। तिसी समयमें कुबेरने आकर महादेवसे विधिपूर्वक दण्डवत् करके प्रश्न किया। हे महादेव ! यह दृश्यमान मूर्ति, अमूर्ति, सर्व असत्, जड़, दुःखरूप प्रपंच ही ज्ञानेन्द्रियों करके देखने, सुनने, सूँघने रस लेनेमें आता है तथा कर्मेंद्रियों करके भी शब्द उच्चारण, ग्रहण, त्याग गमनागमन, मल मूत्र त्यागरूप, प्रपंच ही ग्रहण होता है, प्रत्यक्षादि प्रमाणों करके भी नाम रूप दृश्य प्रपञ्चकी ही सिद्धि होती है, मन बुद्धि चित्त अहंकार करके भी माया और मायाके कार्यभूत भौतिक पदार्थोंका ही मनन, चिन्तन, निश्चय, अहंपना होता है। इन सर्वसे रहित वस्तुको मैं कैसे जानूँ ? क्योंकर प्राप्त हो सोऊ कहिये। शिवने कहा--हे कुबेर ! यह प्रमाता, प्रमाण, प्रमेयरूप त्रिपुटी, तुझ निर्विकार निर्विकल्प, सत, चित, आनन्दरूप करके ही सिद्ध होते हैं; कोई त्रिपुटी करके तू चैतन्य सिद्ध नहीं होता। त्रिपुटीसे भी त्रिपुटी सिद्ध नहीं होती. क्योंकि, तू ही चैतन्य स्वयं प्रकाश रूप है। यद्यपि चक्षु सूर्य आदिक प्रमाण प्रकाशक और घट पटादिक प्रकाश्य आपसमें प्रतीत होते हैं तथापि सर्व नाम रूप त्रिपुटीको कल्पित दृश्य होनेसे त्रिपुटीमें प्रकाश्य प्रकाशक भाव नहीं बन सकता। जैसे--स्वप्नेकी कल्पित त्रिपुटी स्वयं प्रकाश, स्वप्नद्रष्टा करके ही सिद्ध है, मिथ्या स्वप्न पदार्थों कर स्वप्नद्रष्टा सिद्ध नहीं होता तथा आपसमें भी स्वप्न पदार्थ प्रकाश्य प्रकाशक भाव नहीं बन सकते। तैसे--तुझ चैतन्य विना जाग्रत्के पदार्थ आपसमें कल्पित कल्पितको सिद्ध नहीं कर सकते जैसे रज्जुमें कल्पित सर्प दंडको दंड सर्पको और सर्प दंड मालाको,

माला सर्प दंडादिकोंको सिद्ध नहीं कर सकते । हे कुबेर पूर्वोक्त सर्व नाम रूप दृश्य पदार्थोंको तू चैतन्य जानता है, तुझ चैतन्यको कौन जाने, तू स्वयं प्रकाश, सर्व नाम-रूप दृश्यका, अस्ति भाति प्रियरूप प्रकाशक आत्मा है; तुझ सर्वात्माको अपनी प्राप्तिकी इच्छा लज्जाका काम है । जैसे फेन तरंगको बुदबुदादिक सर्वनाम रूपकी मधुरता, द्रवता, शीतलता रूप जल ही आत्मा है, तिन तरंगादिक मध्ये किसी तरंगको अपने स्वरूप जलकी प्राप्तिकी चिन्ता करनी मूर्खता है । कुबेरने कहा--बंध मुक्त क्या है ? शिवने कहा--दोनों अहंकार तेरा है; नहीं तो बंध मुक्त दोनों रूप नहीं रखते कि तुमको बताऊँ । कुबेरने कहा योग उपदेश करो ? शिवने कहा--योग यही है कि, जान आप सहित सर्व शिव है । हे कुबेर ! बुद्धिमानको एक शैन ही बहुत है, निर्बुद्धिको परमार्थ पाना कठिन है कुबेरने कहा--धारणा कहो । शिवने कहा--धारणा नाम निश्चयका है, निश्चयधर्म बुद्धिका है, बुद्धिका मुझ चैतन्य आत्मामें अत्यंताभाव है, कहे कौन ? परन्तु "आपको तू अवाङ्मनसगोचर सम्यक् जान" यही धारणा है । कुबेरने कहा--हे शिव ! हर्ष शोकसे कैसे छूटूँ ? शिवने कहा--हर्ष शोकके द्रष्टा, तुझ साक्षीको हर्ष शोक कहां है ? हर्ष शोक मनके धर्म हैं, आपको मनरूप मत मान कुबेरने कहा--मनका रोकना कहो । शिवने कहा--तुझ चैतन्य रूप आकाशका वायुरूप मन क्या बिगाड करता है किन्तु कुछ नहीं करता । मन पंचभूतोंका साक्षी सात्त्विक अंशका कार्य है, तू पंचभूतोंसे रहित है । मन कर कुछ बिगाड होता है सो पंचभूतोंका बिगाड हो वा न हो, तुझको मनके रोकनेका क्या मतलब है । दूसरेकी शुभ अशुभ क्रिया देखके अपनेमें आरोप कर संतापित

होना यही अज्ञान है । वा जब सर्व सच्चिदानंद स्वरूप शिव है तब मन और कुबेर कहां है ? शिव ही है । कुबेरने कहा--जब मैं नहीं तब तुम कहां हो ? अहंपूर्वक ही त्वं होता है, जब अहं नहीं तब त्वं कहां है ? स्वर्ग, नरक बंध, मोक्ष, हर्ष, शोकादि कहां हैं ? कहीं नहीं, जो है तो सच्चिदानंदरूप सर्व शिव है । महादेवने कहा--हे कुबेर ! तू कौन है ? कुबेरने कहा--मैं सच्चिदानंदरूप शिव हूँ क्योंकि अग्निकी संगतिसे लकडीका रूप नहीं रहता किन्तु, अग्नि ही होती है । तैसे तू अग्नि मैं लकडी, जब मैंने आपा तुझको दिया, तू हुआ । शिवने कहा--जब तक लकडी है तब तक अग्नि है तैसे ही जब तू है तब मैं हूँ, जब तू नहीं तब मैं कहां हूँ ? हे कुबेर ! जहां अहंकार (मैं) नहीं तहां तू कौन है सो कह । कुबेर ! तूष्णीं हुआ क्योंकि, आगे वचनकी ठौर न थी पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! जब इस प्रकार दत्तने प्रह्लादको शिव कुबेरकी कथाके मिससे उपदेश किया तब प्रह्लादने कहा--हे दत्त ! मैंने जाना था कि, तेरी संगतिसे कछु पाया है सो अब यह भ्रम मेरा मिट गया है क्योंकि, आदि अन्त मध्य सर्व गुप्त प्रगट मैं ही हूँ, मेरी मुझको बन्दना है, दत्तने कहा--अब मैं जाता हूँ । प्रह्लादने कहा--जहां जावे वहां सर्व मैं ही हूँ । दत्तने कहा--अब मैं नहीं जाता क्योंकि, तुझको परमहंस देखता हूँ । प्रह्लादने कहा--जो काग नहीं तो हंस कहां है ? हे मैत्रेय ! प्रह्लाद यह वचन कह कर स्वरूपमें लीन हुआ और दत्त जैसे आया था तैसे ही चला गया ।

इति श्रीपक्षपातरहिते अनुभवप्रकाशे तृतीयस्सर्गः ।।३।।

चतुर्थ सर्ग ४.

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! तू भी ऐसे मत जान कि, संग संतोंका मुझको हमेशा बना रहेगा, जो काल संतोंके संगमें व्यतीत होता है सोई दुर्लभ जान। मैत्रेयने कहा--तुम्हारे उपदेशसे मोमके समान गल गया हूँ जानता था कि, मैं ब्राह्मण हूँ, अब कितना ही ढूँढता हूँ पर ब्राह्मणत्व नहीं पाता और यह भी नहीं जानता कि, मैं कौन हूँ ? इससे इस शरीरको जलाय कर नाश करता हूँ, सर्व कर्तव्योंसे छूटूँगा और स्वस्वरूपको प्राप्त होऊँगा । पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! शरीरके होते ही तू चैतन्य शरीरके कर्तव्यों अकर्तव्योंसे रहित स्वतः ही है। जैसे आकाश घटके होते ही घटकी क्रियासे स्वतः ही रहित है--ताते शरीरके होते ही आत्मानात्मके विचाररूपी अग्निकर सहित शरीरके कर्त्तव्योंको जला । जो कर्तव्योंसे छूटे अन्यथा नहीं ।

अथ ज्ञानकी साधनव्याख्या

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! सर्व जीवोंके अंतःकरणमें मल विक्षेप आवरण तीन दोष रहते हैं । मल नाम पापका है, विक्षेप नाम चित्तकी चंचलताका है. आवरण नाम अपने स्वरूपको न जाननेका है इन तीन दोषोंके दूर करने वास्ते तीन ही उपाय हिन्दू, मुसल्मान, अंग्रेज, पारसी आदिकोंके सर्व शास्त्रों विषे लिखे हैं । मल दोषके दूर करने वास्ते सर्व शास्त्रोंमें, सत् संभाषण आदि वाक्यादि इन्द्रियोंका कर्त्तव्य रूप कर्मकाण्ड लिखा है। मनकी चञ्चलताके दूर करने वास्ते अनेक प्रकारकी सगुण वा निर्गुण सच्चिदानन्दरूप परमेश्वरकी प्राप्ति वास्ते सर्व शास्त्रोंमें उपासना लिखी है वा चित्तका किसी सूक्ष्म वा

स्थूल वा त्रिपुटीमें वा हृदयविषे. ज्योति इत्यादि वस्तुमें बाहर वा अंतर, जोडनारूपी ध्यान लिखा है अज्ञान आवरणकी निवृत्ति वास्ते सर्व शास्त्रों विषे ज्ञानकांड भी लिखा है। जिस अंतःकरणमें पूर्व जन्मके प्रयत्नसे वा इस जन्मके प्रयत्नसे पूर्वोक्त दोष नहीं तिसपर शास्त्रका उपदेश भी नहीं, जिसमें मल विक्षेप दो दोष नहीं केवल अपने स्वरूपका न जाननारूपी आवरण ही दोष है, तिसको केवल ज्ञानकांडका ही अधिकार है। यज्ञ, दान, तीर्थ, व्रत, जप, तप होम, तडाग अदि बनाने तथा संध्या तर्पणादिक यावत् मात्र शारीरिक शुभ क्रिया है सो सर्व कर्मकांडकोटिमें हैं। ध्यान योगादि यावत् मात्र मानसी क्रिया हैं सो उपासनाकांडकोटिमें हैं। केवल आत्माको ब्रह्मरूप कथन करनेवाले शास्त्र ज्ञानकांड हैं।

हे मैत्रेय ! अनेक प्रकारके शास्त्रोंमें वाक्य लिखे हैं, किसी जगहमें ज्ञानकांड पहिले लिखा है कर्म उपासना पीछे लिखी है किसी जगहमें उपासना पहिले लिखी है कर्म ज्ञान पीछे लिखे हैं, किसी जगहमें कर्म पहिले लिखे हैं उपासना ज्ञान पीछे लिखे हैं। तात्पर्य यह कि, किसी जगहमें पहले कर्म पुनः उपासना पुनः ज्ञान क्रमसे लिखे हैं, किसी जगहमें अक्रम भी लिखे हैं। पुनः कर्मकांड शास्त्रमें अशुभ कर्मोंकी निवृत्ति करने वास्ते भयानक वाक्य भी लिखे हैं और शुभकर्मकी प्रवृत्तिनिमित्त रोचक वाक्य भी लिखे हैं। यथार्थ भी लिखे हैं तैसे--उपासनाकाण्ड शास्त्रमें भी अपनी रुचि अनुसार अशास्त्रीय अनात्म उपासनाके निषेध अर्थ भयानक वाक्य भी लिखे हैं शास्त्रोक्त उपासनाकी प्रवृत्तिके अर्थ श्लाघनीय रोचक वाक्य भी लिखे हैं और यथार्थ भी लिखे हैं, ज्ञानकांड

शास्त्रमें भी ज्ञानके माहात्म्यसे शास्त्र निषिद्धि प्रवृत्तिके निषेधक, भयानक वाक्य भी लिखे हैं और ज्ञानविषे प्रवृत्ति निमित्त, जीवता ही मुक्त होता है इत्यादि रोचक वाक्य भी लिखे हैं तथा निर्विकार निर्विकल्प स्वतः ही यह आत्मा ब्रह्मस्वरूप है इत्यादि यथार्थ वाक्य भी लिखे हैं। सारांश यह कि सर्व शास्त्रोंका तात्पर्य्य, परंपरा वा साक्षात् करके असत् जड दुःख रूप प्रपञ्च भ्रमकी निवृत्तिद्वारा स्वभावसे ही निर्विकार निर्विकल्प कल्पित बंध मोक्षरहित मैं सच्चि-दानंद स्वरूप हूँ; इस निश्चयके बोधन करनेमें है।

हे मैत्रेय! ऐसा न होय, पूर्वोक्त शास्त्रोंके वाक्योंकी व्यवस्था न जानके, शास्त्र श्रवण करके गुरुदत्त निज निश्चयका त्याग करे। वही धीर बुद्धिमान् बली है जो शरीर पात होय तो होय परंतु निश्चयका त्याग न करै क्योंकि, अनित्य शरीरको तो गिरना ही है। हे मैत्रेय! आप सहित सर्वको सच्चिदानंद जानना यही मुक्ति है और आपको सच्चिदानंद जानना अपनेते मन आदि नामरूप जगत् भिन्न जानकर तिनमें अहंकार करना यही बन्ध है, निर्भय होना तिसको कठिन है हे मैत्रेय! यह जगत् स्वप्नके समान मिथ्या है और तू सत् स्वरूप है। जिसने आपको शरीर माना है तिसको नरकते निकसना कठिन है क्योंकि, रुधिर, मांस, अस्थि, मज्जा, मलमूत्र-रूप इस शरीरके अभिमानको ही नरक कहते हैं। सर्व मलिन वस्तुका यह शरीर मंदिर नरक है, जिस कायासे हेत वही नरक है। हे मैत्रेय! तू अपनी चाहनासे मलिन देह अभिमान रूपी महान् अन्धकूपमें पडा है, किसकी शक्ति है जो तेरी रक्षा करे। इस लिये इस असार शरीरकी प्रीतिका त्याग कर, शरीर अभिमान ही आवा-गमनका बीज है। अपने स्वरूपको सांगोपांग जान जो

बन्ध मोक्षके भ्रमसे छूटे; नहीं तो दुःख होगा। हे मैत्रेय! इस मलिन शरीरसे वैराग्य करना तुझको योग्य है। मैत्रेयने कहा-वैराग्य राग दोनों कहो! पराशरने कहा-- वैराग्य यही है जो अपने सच्चित् आनन्द स्वरूपसे पृथक् जगत् का अत्यंताभाव जानना और राग यही है कि, आपसहित सर्व नामरूपको सत् चित् आनंद स्वरूप जानना वा असत् जड दुःखमय नाम रूप जगत् की भावना त्यागके निज आत्मामें भावना करना यही राग है। मैत्रेयने कहा-हे पराशरजी! पूर्वोक्त वैराग्य और रागादिकोंका जानना न जानना मनका धर्म है, मुझ निर्विकल्प, निर्विकार चैतन्यका नहीं क्योंकि, जब गाढ निद्रानाम सुषुप्ति अवस्था होती है वा समाधि मूर्च्छा होती है तब मन अपने अज्ञान उपादान कारणमें लीन होता है तिस कालमें न राग विरागकी कल्पना है न ज्ञानी, न अज्ञानी, न बंध, न मोक्ष, न हर्ष शोक, न ग्रहण त्याग, न सुख दुःख, न पुण्य पाप, न जीव ईश्वर, न जड चैतन्य न सत् असत्, न सूक्ष्म स्थूल, न माता पितादिक किसी की कल्पना नहीं होती, न अपने शरीरकी, न वर्णाश्रमकी, न दैवी आसुरी गुणोंकी, न धर्म अधर्मकी, न ऊँच नीचकी न निर्विकल्प सविकल्पकी, न स्त्री पुरुषकी, न शत्रुमित्रकी, न जाति पांतिकी, न लेने देनेकी, न जप तपकी न संसार असंसारकी, न साक्षी असाक्षीकी, न द्रष्टा दृश्यकी, न फुरने अफुरनेकी; न माया रहित अरहितकी, न आत्मा अनात्माकी, न शुचि अशुचिकी, न हिन्दु मुसल्मानकी, न भ्रम अभ्रमकी। तात्पर्य्य यह कि, सर्व नामरूप त्रिपुटी संसारकी कल्पनाही नहीं होती, मैं चैतन्य तो तिसकालमें भी हूँ जो मेरा पूर्वोक्त संसार धर्म होता तो सुषुप्तिकालमें भी मेरे साथ होता, इससे

अन्वय व्यतिरेक करके जहां मन तहां ही पूर्वोक्त संसार धर्म है, जहां चित्त नहीं तहां पूर्वोक्त संसार धर्म भी नहीं। हे गुरो ! यह नहीं कि, जो मैं चैतन्य सुषुप्ति अवस्थामें तो निर्विकल्प निर्विकार बंध मोक्षादि अनात्म धर्म रहित हूँ और अब जाग्रत् स्वप्न अवस्थामें सविकल्प सविकार बंध मोक्षादि सहित हुआ हूँ, ऐसा नहीं किन्तु जो मैं चैतन्य सुषुप्ति अवस्थामें निर्विकल्प निर्विकार, बन्ध मोक्षादिरहित था अब वर्तमान जाग्रत् अवस्थामें वा स्वप्नमें भी सोई निर्विकार निर्विकल्प बंध मोक्षादिरहित चैतन्य मात्र हूँ; इससे मायारूप मनके धर्म हैं; माया रूप चित्त-रहित मेरे धर्म नहीं। जैसे राजाके निवासके चार स्थान होते हैं-एक बार कचहरीका स्थान होता है, एक मध्यमें अपने माता, पिता, भ्रातादिक नजदीकी संबंधियों सहित खान पानादिक सहित बैठनेका स्थान होता है और तीसरा एक ही अपनी स्त्रीके साथ हास्य विलास करनेका अंतः पुर एकांत स्थान होता है। तथा पूर्वोक्त स्थानोंसे रहित सात्त्विक एक भजनका स्थान होता है तिसमें अन्य कोई पुरुष भी नहीं होता, एक राजा ही होता है। तैसे ही--कचहरी स्थानापन्न जाग्रत् है क्योंकि, तहां इंद्रिय मन आदि स्वस्वकार्यमें सम्यक् हाजिर हैं, शब्दादि प्रजा सहित तिन सबके मध्यमें, सर्व ऊपर आज्ञा कर्ता आत्मा राजावत् है। मध्य स्थान स्वप्न है और अंतः पुरस्थानापन्न सुषुप्ति है क्योंकि, तहां अविद्यारूप स्त्री ही अपने कार्य्य रहित, निज पति आत्माके पास होती है। तैसे ही भजन स्थानापन्न तुरीय अवस्था है क्योंकि, तुरीयमें माया तथा मायाके कार्य्य, प्रपंचसे रहित, अपने स्वरूपका विद्वान्को निश्चय होता है। तीसरे एकांत स्थानमें वा भजनके स्थानमें जो राजा है और

जो तिस राजाका निश्चय है कि, मैं क्षत्रिय राजा हूँ, यह स्त्री भी नहीं किन्तु मैं राजा हूँ । जब वही राजा कदाचित् मध्यस्थानमें वा बाहर कचहरीके स्थानमें आता है तब ही वही राजा होता है वही तिसका निश्चय होता है, अन्यथा नहीं होता; यह नहीं कि सात्त्विक भजन स्थानमें और हो गया है, मध्यमें और हो गया है, अंतःपुरमें और था, कचहरीमें और हो गया है, किन्तु एक रस राजा ही है, स्थानका भेद है, पुरुष राजाका भेद नहीं । तैसे ही--यह नहीं कि तुरीया अवस्थामें तथा सुषुप्ति अवस्थामें आत्मा निर्विकार निर्विकल्प सर्व संसार धर्मोंसे रहित है और स्वप्न जाग्रत्में आत्मारूप राजा विकारी है तथा सविकल्प है। राजाके समान आत्मा सर्व अवस्थामें स्वभावसे ही निर्विकार, निर्विकल्प, एक रस, एक ही है, विकारी सविकल्प नहीं होता, मन आदिकोंके समान- क्योंकि मन आदिक स्वभावसे ही विकारी हैं, इस लिये यत्न विना मुमुक्षुओंको अपने स्वरूपको सर्व अवस्थामें निर्विकल्प निर्विकार जानना मैं चैतन्य निर्विकल्प निर्विकार संसार धर्मोंसे रहित सभी अवस्थामें एक रस हूँ, वैराग्यादिक मनकी कल्पना है, मेरी नहीं । हे मैत्रेय ! सर्व नाम रूप संसार तुझे सच्चिदानंद स्वरूप कर पूर्ण है, तू चैतन्य देव सदा संसारसे मुक्त है सर्व की चेष्टा तुझे चैतन्यकर ही है, परन्तु तू सदा निर्लेप है । आपसहित सर्व सच्चिदानंद स्वरूप हूँ, इस दृढ़बुद्धिके निश्चयका नाम ही भक्ति है तथा ज्ञान है, तिससे पृथक् निश्चयका नाम अभक्ति अज्ञान है ।

अथ राजा भरतका आख्यान

हे मैत्रेय ! इसीपर एक कथा सुन--पूर्वजन्ममें एक वनविषे भरत राजा चित्तकी एकाग्रतारूप तप करता था और

आत्म अनुसंधानमें मग्न था परन्तु अपने स्वरूपका अपरोक्ष बोध तिसको नहीं हुआ-था इसीसे तीन जन्म पाये । एक दिन तिसी वनविषे सिंह आया और सिंहके भयते मृग भागे, भागी हुई एक गर्भिणी हरिणीके उदरसे (भयके कारण) बच्चा भरतके आश्रमके निकट गिर पडा, कैसा बच्चा है जो माता पितासे रहित है और कोई तिसका रक्षक भी नहीं, अतीव सुन्दर है, अति कृपालु जो राजा भरत है तिसके बच्चेकी यह अवस्था देखकर करुणा करके अपनी गोदमें उठा लिया तिस बच्चेके साथ ऐसा स्नेह किया कि, अपना जो ध्यान था वह भी भूल गया, तिस हरिणीके बच्चेका ही लालन पालन करने लगा । इसी हालतमें कुछ दिन बीते, बच्चा बड़ा हुआ । एक दिन भरत फल फूलके वास्ते वनको गया पीछे बच्चा दूसरे मृगोंके साथ पशुस्वभावसे चला गया । भरतने आकर देखा तो बच्चा नहीं मिला, तिसके निमित्त विलाप करने लगा, तिसके विना बहुत व्याकुल हुआ । तात्पर्य यह कि तिसकी कोमलताको याद करते हुए तिसका गुण गाता हुआ, तिसके पालन पोषणकी चिंता करता हुआ जो राजा तिसके अन्तःकरणकी वृत्ति मृगके आकार ही हो गई । हे मैत्रेय ! प्रीतिका यही लक्षण है कि, तद्रूप होना । राजा भरतने इसी वासना विषे शरीरका त्याग किया; पुनः हरिणका जन्म पाया । परन्तु बीज आत्मज्ञानका उसके मनसे नहीं गया था इसलिये ज्ञानपूर्वक ही दूसरा जन्म पाया । पुनः ज्ञानपूर्वक तीसरा जन्म ब्राह्मणके गृहमें लिया, माता पिताने भी जन्मनक्षत्र अनुसार भरत ही नाम रक्खा । हे मैत्रेय ! पूर्व अभ्यासके बलसे तथा ज्ञानके प्रतिबन्धकके अभावसे अपने सच्चिदानन्द स्वरूपको संशय विपर्ययसे रहित, गुरु उपदेश विना

ही जानने लगा कि, मैं निर्विकल्प निर्विकार स्वतः ही बन्ध मोक्षादि संसारधर्म तथा संसारसे रहित सच्चिदानन्द-स्वरूप हूँ।

ज्ञानप्रतिबन्धकका वर्णन

मैत्रेयने कहा--हे गुरो ! ज्ञानका प्रतिबन्धक क्या ? कहिये। पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! ज्ञानके प्रतिबन्धक तीन प्रकारके भूत भविष्य वर्तमान होते हैं। वर्तमान कालमें जो सुख दुःखरूप भोग भोगे अर्थात् अनुभव किया है तथा तिन भोगोंके साधनोंका जो अनुभव किया है श्रवण मनन निदिध्यासन कालमें तिन्हीं स्त्री आदिक पदार्थोंका स्मरण होना, अर्थकी तर्फ चित्त न लगना इसका नाम भूत प्रतिबन्धक है। तिस भूत प्रतिबन्धकसे ज्ञान नहीं होता क्योंकि मन एक है। जब मन भूत अनुभव करे पदार्थोंका स्मरण करेगा तब गुरूदिष्ट महावाक्योंका अर्थ निर्विकार, निर्विकल्प निजस्वरूप आत्माका कैसे अनुभव होगा किन्तु नहीं होगा। मैत्रेयने कहा--भूत प्रतिबन्धके दूर करनेका उपाय कहो ? पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! विचार द्वारा भूत प्रतिबन्धक पदार्थोंके साथ अपना अभेद चिन्तन करना कि सो पदार्थ मैं ही हूँ वा पूर्व अनुभूत पदार्थोंमें सम्यक् दोष दृष्टि करनी, अब भावी प्रतिबन्ध सुन।

कर्मके तीन प्रकार

हे मैत्रेय ! देह अभिमान संयुक्त करे कर्मोंके फलकी महान् विचित्रता है। सो कर्म तीन तरहके हैं। १-अनेक पूर्व मनुष्य शरीरमें अहंकार सहित किये जो शुभाशुभ कर्म सो संस्काररूपसे सूक्ष्म शरीरमें स्थित रहते हैं तथा जिन कर्मोंको अनेक ऊँच नीच जन्मोंमें सुख दुख रूप फल आगे देना है तिन कर्मोंका नाम संचित कर्म है। सो कैसे

कर्म हैं, उनमेंसे अनेक कर्मोंका फल सुख दुःख भोग सकता है और एक कर्मका फल एक शरीर पाकर भी सुख दुःख अनेक शरीर पायकर भी भोग सकता है। कर्मोंकी विचित्र शक्ति है। २--तिन संचित कर्मोंके मध्यमें जो इस वर्तमान शरीरके एक वा अनेक आरंभक कर्म हैं तिन कर्मोंका नाम प्रारब्धकर्म है। ३--वर्तमान शरीरमें ज्ञानी वा अज्ञानीसे जो कर्म होते हैं सो क्रियमाण कर्म कहाते हैं, ज्ञानके देनेवाले कर्म भी प्रारब्ध कोटिमें ही हैं जिसके वर्तमान शरीरके उत्तर, अनेक शरीर पानेके व एक शरीरके पानेके प्रारब्ध कर्म हैं। वर्त्तमान शरीरमें ज्ञानके साधन हजार, श्रवण मनन निदिध्यासन करो वा सत्संग करो, तिसको ज्ञान नहीं होता। क्योंकि, जिसको वर्त्तमान शरीरमें अपने स्वरूपका सम्यक् अपरोक्षज्ञान हुवा है उसको आगे जन्म नहीं पाना, यह ज्ञानका नियम ठहरा और प्रारब्ध कर्मको तो वर्त्तमान शरीरसे उत्तर अनेक व एक अवश्यमेव ऊंच नीच जन्म देना है। तिन कर्मोंको वर्त्तमान शरीरमें ज्ञान नहीं होने देना, तिनका भी यह नियम ठहरा। तिन प्रारब्ध कर्मोंमें भी ज्ञानपूर्वक प्रारब्ध क्षय हुए अंत जन्ममें गुरु शास्त्र सामग्री संपादन करके व विना सामग्री इस जीवको ज्ञान होना, अवांतर जन्मोंमें न होना यह भी तिन प्रारब्धकर्मोंका ही नियम है, इससे वर्त्तमान भरत शरीर गुरु शास्त्र श्रवण मनन निदिध्यासन ज्ञानके साधन हुए भी प्रारब्धरूपी प्रतिबन्धके वशसे तीसरे जन्ममें प्रारब्ध-रूपी प्रतिबन्धके क्षयसे गुरु शास्त्र सामग्री बिना ही भरतको ज्ञान हुआ था। इससे हे मैत्रेय! प्रबल भावी प्रतिबन्धके दूर करनेको कोई उपाय नहीं, भोगनेसे ही नष्ट होता है। वर्त्तमान शरीरमें ज्ञानके प्रतिबन्धक दोष

चार प्रकारके होते हैं । कुतर्क १, दुराग्रह २, विषयासक्ति ३, मन्दबुद्धिता ४ । ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मश्रोत्रिय गुरुमें श्रद्धा सम्यक् कर तिनके वाक् पुनःपुनः सर्व श्रवण करनेसे पुनः मनन पुनः निदिध्यासन करनेसे वर्त्तमान जन्ममें ही अपने स्वरूपका सम्यक् अपरोक्ष ज्ञान होता है ।

हे मैत्रेय ! सर्व प्रतिबन्धकोंसे रहित विद्वान् भरतने मनमें विचारा कि, वाणीद्वारा ही राग द्वेष होता है, मौन होनेसे किसीसे राग द्वेष नहीं होता तथा सम्बन्धी भी निकम्मा जानकर गृहस्थी जोडते नहीं । मुझको गृहस्थाश्रम ग्रहण करनेकी इच्छा भी नहीं, बन्धन रहित होकर देशाटन करनेकी इच्छा है और प्रारब्धके अधीन भवितव्य भी इस शरीरकी ऐसी ही होनी है, यह ईश्वरकी नीति है, इसीसे जडवत् मौन करना ही ठीक है, गृहस्थीका बन्धन निर्यत्न ही टूटेगा । कोईमें जन्म मरणके तथा राग द्वेषके भयसे मौन ग्रहण नहीं करता क्योंकि सम्यक् आत्मा अपरोक्षवान् हजार तरहके राग द्वेष करनेसे भी जन्मको नहीं पाता, एक रागकी क्या गिनती है । परन्तु विद्वान् सर्वात्मा होनेसे किससे राग द्वेष करे । पूर्व मैं अज्ञानी था इसीसे तीन जन्म पाये, अब मैंने जानने योग्य पदको जाना है, राग द्वेषादिक सर्व इस मनके धर्म हैं मुझ चैतन्यके नहीं । राजा भरत अंतिम जन्ममें जडभरत हुआ ।

हे मैत्रेय ! इस प्रकार वह ब्राह्मण विचार करके जान बूझके जडवत् मूक होगया । उस दिनसे लेकर लोक तथा गृहके सम्बन्धी उनको जडभरत कहने लगे । उपनयन भी गृहस्थका न ग्रहण कराया तथा विशेष प्रीतिको भी (निकम्मा जानकर) त्याग दिया, जड भरतको यह

बात अनुकूल होगयी । स्वतन्त्र वन विषे, नगरों विषे, पर्वतों विषे, कुञ्जों, नदियोंके तटों विषे विचरने लगा। जो कुछ प्रारब्धके अनुसार प्राप्त होवे तिसको भोगे, परन्तु राग द्वेषको न प्राप्त होता क्योंकि, आप सहित सर्वको अपना सच्चिदानन्द स्वरूप जानता था ।

हे मैत्रेय ! कोई राजा तीव्र कामनावाले और अज्ञानी पंडितों द्वारा बोधन किया हुआ, देवीकी भेंट वास्ते कोई निकम्मा मनुष्य वनमें तलाश करता था; तिसको जड-भरत मिल गया । उसने अनुमान करके जाना कि, यह निकम्मा है और देवीके सम्मुख ले जाकर खड्गसे भरतका शिर काटने लगा । जडभरत हँसता था किंचित् मात्रभी भयको न प्राप्त हुआ। अनन्तर मन्दिरमें आकाश वाणी हुई--हे मूर्ख राजा ! यह ब्रह्मनिष्ठ विद्वान् चाहे तो तेरे मेरे सहित सर्व जगत्को भस्म कर सकता है क्योंकि, ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मरूप है, परन्तु यह, समदर्शी स्वरूप है इसीसे एकरस है; तू ज्ञान नेत्रोंसे रहित अंध इसको क्या जाने तू मूर्ख है इससे अपना अपराध क्षमा करावो, नहीं तो मैं तुझको दण्ड दूँगा। यह सुनकर हर्ष शोक रहित एक-रस आकाशवत् तिनकी अवस्था देखकर राजा आश्चर्य-वान् हुआ और जाना कि यह कोई महान् पुरुष है। अपना महा अपराध जानकर शरणागत हुआ और पूछने लगा--हे भगवन् ! तुम कौन हो ? मेरा कसूर माफ करो, तुमने कोई अलौकिक वस्तुको पाया है, जिस शरीर नाश अवस्थामें तुम निर्भय और प्रसन्न हो हे कृपालु समदर्शी महापुरुष, कालके भयसे रहित वस्तुका मुझ दीन नवी-नको भी उपदेश करो। इस प्रकार राजाकी सरल वाणी सुन करुणाके समुद्र जडभरतजी कहने लगे। हे राजन् ! अनन्तर जो बुद्धि आदिकोंका परिणाम करनेवाला है,

जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिको, भूत भविष्य वर्तमान कालको, सत् रज तमको, ज्ञान अज्ञानको, जो सिद्ध प्रकाश करनेवाला साक्षी आत्मा है सोई कालके भयसे रहित सच्चिदानन्द स्वरूप वस्तु है । हे राजन्! यह सर्व बुद्धि आदि दृश्य पदार्थ जाग्रत स्वप्नमें होते हैं, सुषुप्तिमें पुनः मिट जाते हैं, तिस बुद्धि आदिकोंके भावाभावको अनुभव करनेवाला द्रष्टा वस्तु एक रस है, इसीसे इस द्रष्टाको सत् कहते हैं । तैसेही यह सर्व बुद्धिसे आदि लेकर माया पर्यंत सर्व कार्य कारणरूप संघात दृश्य जड रूप है, स्वपरका भी इस दृश्यको ज्ञान नहीं । जिस सत् वस्तु करके इस जड संघातकी चेष्टा होती है तथा सर्व बुद्धि आदिकोंके व्यवहारका ज्ञान होता है. इसीसे नाम सत् वस्तुका चैतन्य रक्खा है मन वाणीके गोचर दुःखरूप दृश्यसे, पूर्वोक्त जो सत् चित् वस्तु भिन्न है तिसी सत् चित् वस्तुका नाम आनन्द धरा है। सर्व नाम रूप दृश्यमे आकाशके समान व्यापक होनेसे, इन बुद्धि आदिकोंके सत् चित् आनन्द द्रष्टाका नाम विष्णु वेदने रखा है । अमङ्गल अकल्याण स्वरूप दृश्यसे सत् चित् आनन्द विष्णु साक्षी द्रष्टाको अतीत होनेसे शिवनाम वेदने कल्पा है। सर्व नामरूप दृश्य जातका सच्चिदानन्द द्रष्टा ही स्वामी प्रेरक है, इस वास्ते इसीका नाम वेदने गणेश रख दिया है ।

हे राजन्! विष्णु सहस्र नाम, शिवसहस्रनाम इत्यादिक नामोंका अर्थ सत् चित् आनन्द द्रष्टा वस्तुविषे ही घट सकता है, तिससे पृथक् असत्, जड, दुःख परिच्छिन्न असंगलरूप दृश्य वस्तु विषे नहीं घट सकता और सच्चिदानन्द व्यापक वस्तुसे ही मन वाणीके गोचर दृश्य वेद सहित जगत्की उत्पत्ति, पालना तथा संहार होता है,

सत् चित् आनन्द व्यापक वस्तु ही मोक्षस्वरूप है। इससे भिन्न मोक्ष अङ्गीकार करनेसे असत् जड दुःखरूप मोक्ष होवेगा। हर्ष शोकादिकोंके द्रष्टा सत् चित् आनन्द वस्तुको दृश्यरूप पृथ्वीके कार्य, शस्त्र भी छेदन नहीं कर सकते, जल नहीं गला सकते, अग्नि नहीं दाह कर सकती तथा वायु शोषण नहीं कर सकता। सारांश यह कि, सर्व दृश्यके भीतर भी दृश्य स्पर्शसे रहित, अहं बन्ध मोक्षादि रहित स्वरूपसे ही जो निर्विकल्प निर्विकार है सोई तेरा स्वरूप है। हे राजन्! जो वस्तु मन आदिकोंके फुरनेका सविकल्प निर्विकल्पका तथा मन आदिकोंके विकार, निर्विकारका ज्ञाता है। तात्पर्य यह कि, ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयादिक सर्व त्रिपुटियोंका जो प्रकाशक, सत् चित् आनन्द व्यापक वस्तु है सोई तुम्हारा स्वरूप है वही मेरा स्वरूप है। ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकोंका भी वही स्वरूप है। चींटीका, चंडालका, स्त्रीका भी वही स्वरूप है, अतएव सर्व जगत्का वही स्वरूप है। हे राजन्! मायारूप पंच भूतोंका विकाररूप यह संघात स्वरूप नहीं, किंतु पूर्वोक्त सत्चित् आनन्द स्वरूप आत्मा है। देह असत् संसारको असार स्वप्नवत् जानकर इस देहमें अहंबुद्धि त्याग; पुनः तिस त्यागका भी त्याग कर, पीछे जो शेष रहेगा सो अवाङ्मनसगोचर पद है सो तूही है। हे राजन्! मैंने आपको सच्चिदानन्दरूप जाना है इससे असत् जड दुःखरूप संसारसे मुझको भय नहीं। कोई मैंने अमल नहीं खाया और न कोई मुझको जादू मन्त्र आता है, न कोई मैं कला विद्या सीखा हूँ, न कोई मुझमें सिद्धाई है और न कोई मैं रसायन जानता हूँ कि, काल ईश्वर शास्त्रके भयसे रहित हूँ किंतु, मैं केवल सच्चिदानन्द स्वभावसे ही कालादिक दृश्यमें असंग निर्विकार निर्विकल्प आपको

जानता हूँ इसीसे निर्भय हूँ । हे राजन् ! ये अनात्मक दृश्यमान देह तो ब्रह्मा विष्णु शिवादिकोंके भी अनित्य कालके ग्रास हैं, इन देहोंकी क्या कहानी है ? तू आत्माही सत् चित् आनंद स्वरूप कालका काल चिरंजीवी है तूही काल सहित सर्व दृश्यकी उत्पत्ति सिद्धि करनेवाला है, तू ही चैतन्य स्वयं प्रकाश स्वतः सिद्ध है, किससे भय करता है । देह विषे अहंकाररूप दीनताको त्याग और "मैं सच्चिदानंद स्वरूप अवाङ्मनसगोचर ही सर्वात्मा हूँ" इस उदार निश्चयको धारण कर । हे राजन् ! जब तू इस पूर्वोक्त उदार निश्चयको नहीं धारण करेगा तो इससे पृथक् किसी असत् जड दुःखरूप वस्तुमेंही निश्चय धारण करना पड़ेगा क्योंकि मनको कोई न कोई निश्चय करना ही है, विना किसीके निश्चय किये ठहरे भी नहीं और विना एक निश्चय किये आराम भी नहीं होता है । हे राजन् ! असत् जड दुःखरूप वस्तुमें अहं निश्चय करनेवाला असत् जड दुःखरूप ही होता है और मैं सच्चिदानंद व्यापक स्वरूप हूँ, इस निश्चयवाला सत् चित् आनंद स्वरूप ही होता है क्योंकि जैसा मनका दृढ निश्चय होता है वैसे ही तिसकी गति होती है, इससे कायिक वाचिक मानसिक इस संघातमें सर्व व्यवहार शुभाशुभ होते न होते आपको सर्व व्यवहारोंका अकर्ता, अभोक्ता, द्रष्टा साक्षी असंग, निर्विकार, निर्विकल्प सच्चिदानंदस्वरूप जान । यह भी निश्चय बुद्धिका है इसको भी अपना दृश्यरूप जानके अवाङ्मनसगोचर हो रहा । साक्ष्य साक्षी भाव भी उपाधि है, फुरे कछु नहीं असत् जड दुःख रूप अपनी दृश्य विषे, अहं निश्चय भूल कर भी मत कर, दुःख होगा, आगे जो तेरी इच्छा है सो कर ।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! इस प्रकार जड भरत कह कर तूष्णीं हुए अपनी इच्छा अनुसार चले गये और राजा अपने स्वरूपमें स्थित जीवन्मुक्त होकर अपने राज्य व्यवहारको, कर्ता भोक्ता बुद्धि रहित करने लगा। पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! तू भी इसी निश्चयको धारण कर और देह अभिमानको त्याग । मैत्रेयने कहा--मुझमें ग्रहण त्याग दोनों ही नहीं। मुझ अस्ति भाति प्रियसे आगे ही नाम रूप पृथक् नहीं है अब धारण किसका करूं और ग्रहण त्याग किसका करूँ ? निश्चय करना बुद्धिका धर्म है सो नामरूपका निश्चय बुद्धि कर सकती है; नामरूपसे रहितका नहीं। जो जो निश्चय करूंगा सो नामरूपका ही करूंगा, अन्तमें नामरूपकी ही प्राप्ति मिलेगी सो अब ही यत्न विना नामरूपकी प्राप्ति है, फल क्या हुआ ? सो कहो, मैं चैतन्य बुद्धिसे परे हूँ कौन निश्चय धारण करे ? असली पूछो तो मैं ही चैतन्य बुद्धि आदिक दृश्य, अवाङ्मनसगोचर होकर भी, बुद्धि आदिक ध्याता, ध्यान, ध्येय सर्व दृश्यको धारण कर रहा हूँ पीसे हुएका पुनः क्या पीसना है ? पर कथा उस संतकी कहो ।

जडभरत और राजा रहूगणका वृत्तान्त

हे मैत्रेय ! कोई एक रजा था सो सुखपालकी सवारी करनेका व्यसनी था, रहूगण तिसका नाम था । एक महान् शीतल चारु सर्व ऋतुके पुष्पोंसे शीतल सुगन्ध वायुसे तथा अनेक पक्षियोंके शब्दोंसे संयुक्त पर्वत था, तिस पर्वतपर राजा गर्मीके दिनोंमें अपने गृहसे पालकी पर सवार होकर हमेशा हवा खाने तथा संतोंसे मिलने वास्ते आया करता था । एक दिन ग्रीष्मऋतुमें पालकीमें सवार होकर तिस पर्वतमें हवा लेने वास्ते चला, मध्यमें सुखपालके उठानेवाले कहारोंको बीमारी होगई। राजाने सब हाल

जानके अहलकारोंको हुक्म दिया कि, जल्दी कहारोंको लाओ, सो प्रमादि अहलकारोंको कहारोंकी तलाश करते हुए दो मनुष्य मोटे ताजे तिसी जंगलमें विचरते हुए मिले। कैसे हैं ये न हिंदू न मुसल्मान जाने जाते हैं, न नग्न हैं न सम्यक् वस्त्र भगवे पहरे हुए हैं, न केवल मुंडित हैं न केवल जटाधारी हैं, न पंडित न मूर्ख जाने जाते हैं, न पूज्य न अपूज्य जाने जाते हैं, न अमीर न फकीर जाने जाते हैं, न शुद्ध न मलिन न संत न असंत, न त्यागी न गृही जाने जाते हैं, अव्यक्त ही तिनका निश्चय है, अव्यक्त ही तिनका चिह्न है, न इच्छावान् न अनिच्छित प्रतीत होते हैं, न संशक्तिमान् न असंशक्तिमान् प्रतीत होते हैं, न सर्वज्ञ न अल्पज्ञ प्रतीत होते हैं, न मौनी न अमौनी प्रतीत होते हैं, न रागवान् न विरागवान् मालूम होते हैं, न श्रेष्ठ आचारवान न अश्रेष्ठाचारवान् जाने जाते हैं, न भयवान् न अभयवान् प्रतीत होते हैं, न क्रोधी न शांतिमान्, न गुरु न शिष्य कर प्रतीत होते हैं। न विवेकी न अविवेकी, न धूर्त न अधूर्त जाने जाते हैं, न धर्मी न अधर्मी, न उदार न कृपण जाने जाते हैं, न कर्मकांडी न अकर्मकांडी, न उपासक न अनुपासक जाने जाते हैं, न कवि न अकवि, न कामी न अकामी, न जीव न ईश्वर जाने जाते हैं। न भक्त न अभक्त, न लोभी न अलोभी, न संमोही न अमोही जाने जाते हैं। न ज्ञानी न अज्ञानी प्रतीत होत हैं, न सम्यक् कर्ता न अकर्ता, न भोक्ता न अभोक्ता प्रतीत होते हैं। न मानी न अमानी प्रतीत होते हैं। तात्पर्य यह कि, बाहिर किसी भी असाधारण लक्षण करके नहीं जाने जाते किन्तु, तिनका स्वसंवेद लक्षण है। जंगली पुरुषोंके समान वामदेव जड भरत दोनों थे। तिन दोनोंको पकडकर राजाकी सुखपालमें

जोड दिये और कहा जल्दी चलो । सो वे कभी जल्दी चलें कभी खडे हो जावें कभी हँसे कभी मौन होवें, कभी पालकी कांधेसे गिर पडे कभी टेढे चलें कभी सूधे ही चले जावें । राजा और अहलकार बहुत तिरस्कारके वाक्य कहने लगे वल्कि मूर्ख जो राजाके खिदमतगार थे सो हाथोंसे तथा लकडियोंसे मारने भी लगे परन्तु वे जैसे थे तैसे ही प्रसन्न मुख रहे, किंचित् भी हर्ष शोक नहीं किया । तब राजा यह अवस्था देखकर तत्काल सुखपालसे उतरा और दर्शन करते ही प्रमादको त्याग कर शुद्ध अंतःकरण हो विनती करने लगा हे स्वामिन् ! आप संतोंको निष्प्रयोजन मैं असंतने दुःख दिया है, क्षमा करो और मुझको सत् उपदेश करो ।

प्रथम जड भरत बोला- हे राजन् ! हमारे काँधेपर सुखपाल देनेसे तूने पाप माना है सो सुखपालका बोझ काँधेपर है, काँधोंका बोझ कमरपर है, कमरका बोझ गोडोंपर है, गोडोंका बोझ चरणोंपर और चरणोंका बोझ पृथिवीपर है, पृथिवीसे क्षमा करावो वा पृथिवीका बोझा जलपर है क्योंकि, कार्य अपने उपादानकारणमें ही रहता है। जैसे--घटादिक पृथिवीमें ही रहते हैं--तैसे जलका बोझ अग्निपर है, अग्निका भार वायुमें है, वायुका भार आकाशमें, आकाश समष्टि सूक्ष्म अहंकार महत्तत्त्वरूप है, महत्तत्त्व माया रूप है और कल्पित मायाका तथा मायाके कार्य बुद्धि आदिकोंका, सर्व नामरूप दृश्यका अधिष्ठान, आधार तू ही सच्चिदानंद साक्षी है, इससे तू चैतन्य ही, अपने ऊपर आप क्षमा कर वा न कर हम क्षमा क्या करें ? अथवा हे राजन् ! सुखपाल भी पृथिवी आदिक पंचभूत है और शरीर भी पृथिवी आदिक पंचभूतरूप है पंचभूत ही पंचभूतोंसे क्षमा करावे वा न करावें, पंचभूत

ही पंचभूतोंपर क्षमा करें वा न करें । तथा पंचभूतरूप देह ही पंचभूतरूप पालकी पर सवार है और पंचभूतरूप ही पालकीके उठानेवाले हमारे शरीर भी पंचभूत रूप हैं, तुझ असंग, निर्विकार, निर्विकल्प, संघात रूप त्रिपुटीके द्रष्टा चैतन्यको, लोगोंके झगडेसे क्या पंचायत है ? हे राजन् ! वृथा अहंकार तूने किया है कि मैं सुखपालपर चढा हूँ, विचार सुखपाल कहां है काष्ठ ही है काष्ठपृथिवीरूप है, पृथ्वी जल रूप है, जल अग्निरूप है, अग्नि वायुरूप है, वायु आकाश रूप है, आकाश अहंकार रूप है, अहंकार महत्त्व रूप है महत्तत्त्व माया रूप है सो माया तुझ चैतन्यमें रज्जुसर्पवत् कल्पित है, तुझ चैतन्यसे पृथक् नहीं तू ही है । कहो ! सुखपाल कहां है ? सुखपालका स्वरूप विचारे विना अभिमान मत कर तुझको लज्जा नहीं आती कि अपने ऊपर आप सवारी करता है ।

जगदुत्पत्ति

हे राजन् ! तुझ चैतन्य प्रकाशसे ही यह देहरूप सुखपाल वा ब्रह्मांडरूप सुखपाल उत्पन्न हुआ है । जैसे स्वप्नद्रष्टासे ही निद्रा दोषकर स्वप्न सृष्टि उत्पन्न होती है । प्रथम तुझ निर्विकार सत् चित् आनंदसे मायारूपी दोष कर शब्दगुणवाला आकाश उत्पन्न हुआ पुनः तुझ चैतन्य आकाशसे स्पर्श गुणवाला वायु हुआ, पुनः तुझ चैतन्य रूप वायुसे रूपगुणवाला अग्नि प्रगट हुआ, पुनः तेजरूप चैतन्यसे रसगुणवाला जल उत्पन्न हुआ । पुनः तुझ चैतन्यसे गन्ध गुणवाली पृथिवी हुई, पृथिवीसे औषधी, औषधीसे अन्न, अन्नसे वीर्य, वीर्यसे शरीररूपी सुखपाल हुआ है । वा स्वप्नके समान क्रम विना ही ''एककालावच्छेदेन'' यह कारण कार्यरूप संघात वा ब्रह्मांडरूप सुखपाल

तुझ चैतन्यसे उत्पन्न हुआ है, क्रमसे भी तुझ चैतन्यसे इसकी उत्पत्ति है और अक्रमसे भी तुझसे ही उत्पत्ति है। हे राजन् ! जैसे--लोकविषे लौकिक पिता अपने पुत्रको उत्पन्न करता है और आपको पुत्रसे जुदा जानता है तथा अपने पुत्रादिके ऊपर चढ़ता हुआ लज्जावान् होता है। तैसे--तू चैतन्य इस देह वा ब्रह्मांडरूप सुखपालका सुखपालरूप पुत्रादिकका, अलौकिक पिता अपने देहादि संघातरूप पुत्रको अपना रूप जानता है और अपने पुत्र ऊपर चढ़ता प्रसन्नता मानता है, तुझको लज्जा नहीं आती इस प्रकरणमें देहादि संघात जो अपनेसे अत्यन्त भिन्न हैं तिनको अपना स्वरूप मानना यही चढ़ना है। इससे इस संघातरूप सुखपालको आपसे भिन्न मान कर अहंकार त्याग। यद्यपि वास्तवसे देहका त्याग तुझको आगे ही सिद्ध है; जैसे--घटाकाशका घटसे संबंध आगे ही नहीं तथापि भ्रमसिद्ध संबंधके त्यागका त्याग है। यह असत्, जड़, दुःखरूप शरीर मेरा है वा शरीर मैं हूँ, यही इस शरीररूप सुखपालमें सवारी है। राजाने कहा--मैं शरीरके अहंकारसे कैसे छूटूँ ? जड़भरत तूष्णीं हुए।

पराशरने कहा-- हे मैत्रेय ! जड़भरतके तूष्णीं होनेपर वामदेवने कहा--हे राजशार्दूल ! जैसे तू इस काष्ठकी सुखपालमें बैठा और सुखपालके सुख दुःख भोगता हुआ भी आपको सुखपालसे जुदा जानता है, पालकी रूप तू आपको कदाचित् भी नहीं जानता इसी प्रकार सुखपालके उठानेवाले कहारोंसे चोपदारोंसे तथा अन्य संबंधियोंसे आपको जुदा जानता है। जो कोई पूछे यह सुखपाल किसकी है, तब तू कहता है "हमारी है" नहीं कहता कि, मैं सुखपालरूप हूँ। तैसे ही-- यह शरीर सुखपाल है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, सत, रज, तम, गुण ये प्राण

आठ देहरूप सुखपालके उठानेवाले कहार हैं। दश इंद्रिय आगे जानेवाले चोपदार हैं और पंचभूतरूप काष्ठों कर रची हुई यह संघात वा ब्रह्मांडरूप सुखपाल है। शब्दादि पंचविषय रूप रस्तोंमें मनादि रूप कहार सुखपालको लिये चलते हैं। मायारूप पृथिवी इंद्रियरूप चोपदार, मनादि कहारोंका संघात वा ब्रह्मांडरूप सुखपालका तथा अन्य सामग्रीका तू आधार है। हे राजन्! पूर्वोक्त कहार चोपदार, सहित असत्, जड़, दुःखरूप यह (देहरूप) सुखपाल तुझ सत् चित् आनंद स्वरूपसे अत्यंत भिन्न है, एक नहीं तू चैतन्य पुरुष इस शरीररूपी सुखपालमें वा ब्रह्मांडरूप सुखपालमें स्थित हुआ भी तथा इस संघातके सुख दुःखको अनुभव करता हुआ भी असंग निर्विकार है। हे राजन्! जब तू इस संघातको सुखपालकी न्याईं आपसे जुदा अपना दृश्य जानके देह अभिमान त्यागेगा और अपनेको प्रत्यक् चैतन्यस्वरूप जानेगा तब हमारे समान जीवन्मुक्त होकर विचरेगा काष्ठकी सुखपाल और पंचभूतोंका विकार यह देहरूप सुखपाल जड़ादि गुणों करके तुल्य ही है। वास्तवसे दोनों तुझ चैतन्यसे भिन्न हैं और तू प्रत्यक् चैतन्य दोनोंसे जुदा है, परंतु काष्ठकी सुखपालसे निश्चयकर आपको जुदा मानता है और देहरूप सुखपालको अपना स्वरूप जानता है, यह बड़ा आश्चर्य है। हे राजन्! या तो दोनों सुखपालोंते आपको जुदा जान या दोनों सुखपालोंको अपना स्वरूप जान। एकको अपना स्वरूप जानना, एकको न जानना यह विचार रहितका काम है विचारेसे दोनों समान ही हैं; यह ऐसे हैं जैसे कोई कहै एक ही मुर्गी आधी मुई है, आधी जीवती है, यह न्याय मूर्खताका तुझको प्राप्त होगा। अथवा हे राजन्! यह कार्यकारण रूप सर्व ब्रह्मांड ही तुझ एक ही सच्चिदानन्द

पुरुषकी सुखपाल है, देह अभिमानी, अज्ञानी जीव सुखपालके उठानेवाले तेरे कहार हैं। काल तेरा चोपदार है चांद सूर्य दोनों मसाल चसा कर आगे चलनेवाले हैं। तारागण तुझ चैतन्यके खेलनेके पुष्प हैं, आकाश तेरा चन्दोवा है। तुझको पंखा करनेवाला है, सात समुद्रसहित मेघमाला तुझ चैतन्य पुरुषको पानी पिलानेवाले हैं। माया तेरी शक्ति है। तीन गुण रूप ब्रह्मा, विष्णु; शिव तुझ चैतन्य पुरुषके कारिंदा हैं। दिन और रात सुखपालके उठानेका लम्बा काष्ठ है, जिसको कहार पकड़ते हैं। अग्नि तेरी चिरागदानी करनेवाला है। यावत् वनस्पति तेरे सैर करनेका बगीचा है, सुमेरु आदिक पर्वत तुझ चैतन्य पुरुषके ब्रह्मांडरूप सुखपालके सिराने है। पंच शब्दादि विषय सुखपालकी कील लग रहे हैं। पृथिवी तेरे सुखपालमें बैठनेकी जगह है। तात्पर्य यह कि, हे राजन् ! जैसे--तू इस जड़ काष्ठमय सुखपालमें स्थित हुआ, सुखपालके सर्व हालका ज्ञाता द्रष्टा सर्व प्रकार करके भिन्न है, काष्ठमय सुखपालके नाशसे तू नाश नहीं होता। तैसे--तू चैतन्य पुरुष एक ही इस देह सहित ब्रह्मांडरूप असत् जड़ दुःखमय सुखपालमें स्थित हुआ अपनी सत्ता स्फूर्ति करके इस कार्य कारण ब्रह्मांडरूपी सुखपालका पालन पोषण तू चैतन्य करता हुआ, इसके सब हालका ज्ञाता, द्रष्टा, सर्व रूप करके जुदा है। राजाने कहा--जो मैं शरीरसे भिन्न हूँ कौन हूँ ? वामदेवने कहा- "मैं कौन हूँ" इस बुद्धिके चिंतनको, वाणीके कथनको अंतर जिसने जाना, वही तू निर्विकल्प निर्विकार है। वही मैं हूँ, ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत सर्वका स्वरूप वही है।

ऋषभ देव व राजा निदाघका संवाद

वामदेवने राजा रहूगणसे कहा--हे राजन् ! इसीपर एक कथा है सो तू सुन--एक समय ऋषभदेव निदाघ राजाके आश्रमपर स्वाभाविक ही विचरता हुआ आया। उसको आया हुआ देखकर निदाघ उठ खड़ा हुआ शास्त्र विधिपूर्वक पूजन किया और विनती की, हे महाराज ! भोजन कीजिये ! ऋषभदेवने कहा--बहुत अच्छा ! तब राजाने अनेक प्रकारके भोजन कराये, जब जीम चुके तब निदाघने कहा--हे स्वामिन् ! अघाये हो? ऋषभदेवने कहा- हे राजन् ! प्राणोंको क्षुधा थी, तिनोंने भोजन पाये हैं इससे प्राणोंसे पूछ जो अघाये हैं तो प्राण अघाये हैं मुझ चैतन्यको (द्रष्टा होनेसे मुझमें) क्षुधा, अघावना दोनों नहीं। निदाघने कहा--तुम कहां रहते हो ? कहां जावोगे ! आये कहांसे हो ? ऋषभदेवने कहा--मैं चैतन्य आकाशकी न्याईं सर्वमें पूर्ण हूँ मुझमें आवना जाना नहीं। देश काल वस्तु भेदसे मुक्त हूँ। निदाघने कहा--नगरमें चलिये और आराम करिये। ऋषभदेवने कहा--इस नामरूप ब्रह्मांडनगरविषे, आगे ही मैं स्थित हो रहा हूँ मुझ चैतन्य विना कोई भी जगह खाली नहीं। जैसे--घटाकाशको कहिये तुम नगर चलो जो लज्जाका काम है। हे राजन् ! मैं चैतन्य आनन्द स्वरूप हूँ और अक्रिय हूँ मुझमें वे आरामदारी दुःख है नहीं कि, नगरमें जाकर आराम पाऊँ, यह सर्व जगत् नेत्रोंके खोलनेसे उत्पन्न होता है, यदि फुरणामात्र जगत् नहीं होता तो सुषुप्तिमें भी प्रतीति होना चाहिये, परन्तु नेत्र मुँदनेसे मिट जाता है तिससे मिथ्या है। और मिथ्याको सिद्ध करनेवाला तू चैतन्य सत्ता है। निदाघने कहा--मेरा हर्ष शोक कैसे दूर होवे ? ऋषभदेवने कहा--हर्ष शोक मनके हैं, हर्ष

शोकके द्रष्टा तुझ चैतन्यके नहीं। निदाघने कहा--जन्म मरण क्यों कर मिटें ? ऋषभ देवने कहा--जन्ममरणादिक षट् विकार इस संघातके हैं, तुझ निर्विकार साक्षी चैतन्यके नहीं, मिटें कैसे ? जैसे घटाकाश कहे जन्म मरणादिक मेरे कैसे छूटें, यह विना विचारेकी बात है विचारेसे षट् विकार घटके हैं निर्विकार घटाकाशके नहीं। निदाघने कहा--बंधकी निवृत्ति मोक्षकी प्राप्ति कैसे होवै ? ऋषभदेवने कहा--हे राजन् ! प्रथम तू बंध मोक्षका स्वरूप कह ! पीछे मैं उपाय कहूँगा ! निदाघने कहा--और तो कोई बंध मोक्षका स्वरूप विचार करनेसे मालूम होता नहीं क्योंकि, दुःखसे सुख भी बंध मोक्षका स्वरूप प्रतीत होता है, केवल दुःख पृथक् बन्धका अर्थ करें तो सुख आजाता है सुखसे पृथक् मोक्षका अर्थ करें तो दुःखकी प्राप्ति होती है, इससे बन्ध मोक्ष सुख दुःख स्वरूप हैं तिससे भिन्न नहीं, ऋषभदेवने कहा सो सुखदुःखरूप बंध मोक्ष तो दूर नहीं, किंतु अपरोक्ष ही है क्योंकि जो देशान्तरमें परोक्ष होवै स्वर्गवत् तो हमको तुमको और सर्व जगत्‌को प्रत्यक्ष दुःख सुखरूप बन्ध मोक्षका अनुभव नहीं होना चाहिये; हम लोगोंको बन्ध मोक्षरूप सुख दुःखका अनुभव प्रत्यक्ष होता है इस हेतु अपरोक्ष है परोक्ष नहीं जब इस वर्तमान शरीरमें ही सुख दुःखरूप बन्ध मोक्षका प्रत्यक्ष अनुभव होता है सारांश यह कि, सुख दुःखरूप बन्ध मोक्षके अनुभव करनेवाले हम प्रत्यक् आत्मा बन्ध मोक्षसे भिन्न हैं, तो मरके वा कब कैसे हमारी मोक्ष होगी ? किंतु सुख दुःखरूप बन्ध मोक्ष कब हमारी होगी यह बात हमको कहानी वा अपने मनमें निश्चय करनी सो भूलका काम है क्योंकि नित्य मुक्त मुझ प्रत्यक् आत्माको न पूर्व बन्ध मोक्ष हुई है, न अब है न आगे होगी।

हे निदाघ ! सुख दुःख रूप बंध मोक्षको अनुभव करनेवाला, नाम सिद्ध करनेवाला तिन सुख दुःखसे न्यारा है यह बात सामान्य पुरुष भी जानते हैं। इससे हे निदाघ ! इस संघातमें दुःख सुखरूप बन्ध मोक्षको अनुभव नाम सिद्ध करनेवाला कौन है? तथा बन्ध मोक्ष किसको है ! यह विचार करना चाहिये। वागादिक पंचकर्मेंद्रिय तथा प्राण ये तो केवल शब्दादिक क्रियाके करनेवाले हैं ज्ञान शक्ति इनमें नहीं केवल क्रियाशक्ति है। क्योंकि, जड आकाशादि पंचभूतोंके, एक एक राजसी अंशसे उत्पन्न हुए हैं। इसीसे पंचकर्मेंद्रिय तथा प्राण, सुख दुःखरूप बंध मोक्षके ज्ञाता भी नहीं, तथा बन्ध मोक्ष इनका धर्म भी नहीं, घटवत्। तैसेही पंचज्ञानेंद्रिय, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, चतुष्टय अंतःकरण जड़ पंचभूतोंके कार्य होनेसे जड़ही हैं। क्योंकि जैसा कारण होता है तैसा ही कार्य भी होता है यह नियम है। ज्ञानेंद्रिय तथा अन्तःकरण कर्मेंद्रियोंके तथा प्राणोंके बड़े भाई हैं, किसी रीतिसे ज्ञानेंद्रियोंमें तथा चतुष्टय अंतःकरणमें ज्ञानशक्ति माने भी तो भी वृत्तिरूप ज्ञानके उत्पत्तिके साधन हैं ज्ञान स्वरूप नहीं, इसीलिये श्रोतादिक ज्ञानेंद्रियोंसे केवल शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धका ही ज्ञान होता है, तिनोंसे भिन्न सुख दुःखरूप बन्ध मोक्षको तो स्वप्नमें भी नहीं जान सकते। क्योंकि जो बन्ध मोक्ष, शब्द स्पर्श रूप, रस गंधरूप होवे तो श्रोत्रादिक ज्ञानेंद्रियोंसे जाने जावें, सो तो बन्ध मोक्ष शब्दादिरूप हैं नहीं। इससे ज्ञानेंद्रियोंका धर्म, बन्ध मोक्ष नहीं तथा बन्ध मोक्ष ज्ञानेंद्रियरूप भी नहीं। यद्यपि सर्व इंद्रियादि नाम रूप दृश्यको बन्ध मोक्ष रूप ही आगे कहना है तथापि इस प्रकरणमें बन्ध मोक्षको दृश्य इंद्रियादिकोंते भिन्न कहनेका तात्पर्य है। तैसे--मन, बुद्धि,

चित्त, अहंकार रूप चतुष्टय अन्तःकरणका धर्म भी दुःख सुखरूप बन्ध मोक्ष नहीं; संकल्प, विकल्प, निश्चय, चिंतन, अहंपणा ही इनका धर्म है, अन्य नहीं। जो बन्ध मोक्ष अन्तःकरणका ही धर्म होवे तो संकल्प, विकल्प, निश्चय, चिंतन, अहंपणा रूप ही दुःख सुखरूप बन्ध मोक्ष होवेंगे। इससे भिन्न बन्ध मोक्षका स्वरूप कथन करना केवल शास्त्र संस्कार रहित अविचारका काम है। इसलिये अन्तः करणका धर्म संकलपादि मात्र ही बन्ध मोक्षका स्वरूप है, कोई पृथक् पदार्थ नहीं यह सिद्ध हुआ क्योंकि, आभास सहित अन्तःकरण वा अविद्याविशिष्ट चेतन और अधिष्ठान कूटस्थ सहित का नाम जीव है। अन्तः करणसे चैतन्यको भिन्न करे वा नहीं करे, परन्तु सर्व प्रकारसे ही चैतन्य, असंग, निर्विकार, सच्चिदानद; जीवका लक्ष्यस्वरूप है। तिसमें बन्ध मोक्षका उपयोग नहीं, उलटा बन्ध मोक्षको सिद्ध करनेवाला वही तेरा स्वरूप है। विचार अन्तःकरणमें आभासके भी सुख दुःख रूप बन्ध मोक्ष धर्म नहीं वास्तवसे तिसको भी कूटस्थ होनेसे प्रतिबिंब जैसे बिंब होता है। केवल आभासके भी सुख दुःखरूप बन्ध मोक्ष धर्म नहीं तथा केवल अविद्याके भी सुख दुःख रूप बंध मोक्ष धर्म नहीं। क्योंकि, यदि अविद्याके धर्म होते तो सुषुप्तिमें अविद्या तो है और दुःख सुखरूप बध मोक्ष नहीं इस अन्वय व्यतिरेकसे अविद्याके भी बन्ध मोक्ष धर्म नहीं इससे आभास सहित अन्तःकरणसे भिन्न जीवका वाच्यस्वरूप नहीं तिस जीवके वाच्यस्वरूपमें ही बंधमोक्षकी कल्पना हो वा न हो, जीवके लक्ष्य स्वरूप चैतन्य तेरे स्वरूपमें नहीं। हे निदाघ। तात्पर्य यह है कि, अंतःकरणके संकल्प मात्र, दुःख सुखरूप बन्ध मोक्ष सहज धर्म हैं, धर्मोंके उपादान-

कारण अंतःकरण धर्मोंके नाश विना संकल्प रूप बन्ध मोक्ष धर्मोंका नाश नहीं होता, इससे बन्ध मोक्ष संकल्प रूप धर्म अंतःकरणरूप है और अंतःकरणके उपादान कारण आकाशादि पञ्चभूत हैं इससे अंतःकरण पञ्चभूत रूप है। पञ्चभूतोंके नाश विना अंतःकरणका अभाव नहीं होता। पञ्चभूतोंका कारण मायारूप अज्ञान है मायाके नाश विना पञ्चभूतोंका नाश नहीं होता, इससे पञ्चभूत मायारूप हैं और मायारूप अज्ञानका सत् चित् आनन्द स्वरूप आत्म ज्ञान विना नाश नहीं होता, सो सच्चित् आनन्द स्वरूप मायासे आदि लेकर देह पर्यंत सर्वको जानने वाला तू ही आत्मा है। सो अपने स्वरूपका न जानना ही मायारूप अज्ञान है, इससे अपने सत् चित् आनन्द निज स्वरूपका ज्ञान ही अपेक्षित सुख दुःख संकल्परूप बंध मोक्षकी निवृत्तिका उपाय है। वा पूर्वोक्त बन्धकी निवृत्तिरूप आत्मा अधिष्ठान ही मोक्षरूप सुखकी प्राप्तिका उपाय है। हे निदाघ! जो पूर्वोक्त अपेक्षित बन्ध मोक्षकी निवृत्तिका वा बंधकी निवृत्ति मोक्ष सुखरूप आत्माकी प्राप्तिरूप निजरूपका सम्यक् अपरोक्ष ज्ञान उपायत्यागके अन्य उपायमें प्रवृत्ति करता है सो दीपकको त्यागकर अँधेरेके दूर करनेका अन्य उपाय निष्प्रयोजन है तथा केवल फूसका कूटना है।

हे निदाघ! जो तू बंध मोक्षको पूर्वोक्त रीतिसे मायारूप नहीं माने तो कहो बन्ध मोक्षका क्या स्वरूप है? द्रष्टा रूप है वा दृश्यरूप है? दोनोंमें बंध मोक्षको एक रूप तो कहना पड़ेगाही क्योंकि द्रष्टा दृश्यसे कोई पृथक् तीसरा पदार्थ तो है नहीं दोही हैं। जब बंध मोक्षको सत् चित् आनंद स्वरूप द्रष्टा मानोगे तो सत् चित् आनंद स्वरूप

ही बंध मोक्ष हुए, पृथक् न हुए सो सच्चिदानंद स्वरूप तू ही है, तुझको बंधकी निवृत्ति मोक्षकी प्राप्ति वास्ते कर्तव्य करना निष्फल है क्योंकि, तुझे चैतन्यते पृथक् बंध मोक्षको अभाव है ! तैसे ही हे राजन् ! जब बंध मोक्षको दृश्यरूप मानोगे तो भी अंतःकरण सहित बन्ध मोक्षके द्रष्टा तुझ सत् चित् आनंद स्वरूपको बन्धकी निवृत्ति मोक्षकी प्राप्ति वास्ते यत्न करना योग्य नहीं। तात्पर्य यह कि, दोनों प्रकारसे तुझको बन्ध मोक्ष वास्ते कर्तव्य नहीं क्योंकि, अपना स्वरूप स्वतः सिद्ध ही बन्ध मोक्षसे रहित निष्कर्तव्य है, तिसमें कर्तव्य बुद्धि ही भ्रांति है सो भ्रांतिरूप ही बंध मोक्षका रूप है निष्कर्तव्यमें कर्तव्य भ्रांतिके दूर करनेमें ही गुरु शास्त्र वैराग्यादि साधनोंकी सफलता है। कोई स्वरूपकी प्राप्तिमें सफलता नहीं क्योंकि अपना स्वरूप आगे ही प्राप्त है गुरु शास्त्रको नवीन प्राप्ति नहीं करानी इससे तू आपको अस्ति भाति प्रिय रूप सर्वात्मा जान जो सर्वरूप होवे।

हे मैत्रेय ! इतना कहकर वामदेवने कहा-हे रहूगण ! इस प्रकार सर्वके सारभूत आत्माका निदाघको उपदेश कर ऋषभदेव चले गये तब निदाघने अस्ति भाति प्रिय सर्वरूप आपको जाननेवत् जाना। तैसे ही हे राजन् ! तू भी आप सहित सर्वको अस्ति भाति प्रियरूप जान वा मायासे लेकर देह पर्यंत सब नाम रूप दृश्यका आपको साक्षी द्रष्टा जान। जिसको यह निश्चय है, प्रगट अनेक प्रकारके नाम रूप संसार तिसको भासता भी है परन्तु एक आत्मा ही जानता है। जैसे-अनेक घटपटादिक अज्ञानीको प्रतीत होते भी विचारवान् एक पृथिवी ही जानता है। जैसे स्वप्न पदार्थ अनेकरूप प्रतीत होते भी स्वप्नद्रष्टाके ज्ञाताको सर्व स्वप्न द्रष्टारूप है। तैसे-नाम

रूप भिन्न भिन्न भासते हैं पर मूल सर्वका आत्मा एक ही है, इस हेतु अज्ञानियोंकी दृष्टि त्याग, विद्वानोंकी दिव्य दृष्टिको ग्रहणकर ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत सर्व प्रकाश अपना ही जान कि, सर्व अस्ति भाति प्रियरूप मैं ही हूँ; मुझसे भिन्न कुछ नहीं ।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! इस प्रकार वामदेवके अमृतरूप वचन सुनकर रहूगण राजा कृतकृत्य होकर वामदेवके समान स्वतंत्र मन वाञ्छित स्थानोंमें विचरने लगा और वामदेव जडभरत भी चले गये । हे मैत्रेय ! पुनः जडभरत विचरता हुआ अपने जन्मस्थानको आया । आये जडभरतको देखकर माता पिताने मोहकर कण्ठ लगाया और भाइयोंने भी प्रीतिकर ऐसा समझा कि जड है तो भी हमारा भाई है जडभरतको मीठा भोजन दिया । पीछे पिता हाथ पकड कर एकांत स्थानमें लेजाकर प्रीति पूर्वक पूछने लगा--हे पुत्र ! वचन क्यों नहीं कहता तुझको किसीका भय है; वा जानके नहीं कहता साँच कह तू मुझको योगी भासता है क्योंकि, जिसको सुख दुःख हर्ष शोक मान अपमान एक समान हैं, वही योगी है। कह इस संसार समुद्रसे पार कैसे होऊँ ? हे मैत्रेय ! जडभरतने विचारा अब वचन करना योग्य है तब पिताका वचन सुनकर हँसा पुनः रुदन करने लगा। यह देख पिताने कहा हे पुत्र तेरा हँसना रोना क्योंकर है जडभरतने कहा हे पिता ! मेरे हँसने रोनेसे तुझको क्या प्रयोजन है ? पर हँसना सुखसे होता है, रोना दुःखसे होता है, सुख दुःख दोनों पुण्यपापरूप कर्मसे होते हैं । पुण्यपाप रूप कर्म इस देहसे होते हैं । देह[1] उपलक्षित सर्व

१ शरीर ही जगत् रूप है क्योंकि, सुख दुःखमय सर्व व्यवहार शरीर सम्बन्धी ही है, स्त्री, पुत्र माता पिता, कुल, कुटुम्ब, परिवार, देश,--

जगत् जान लेना) और देहरूप जगत् अपने सत् चित् आनन्द स्वरूपके अज्ञानसे होता है, सो अज्ञान अपने सच्चिदानन्द स्वरूपके ज्ञानसे दूर होता है, इससे हे पिता ! स्वतः ही वार पारसे रहित अपने स्वरूपको जान। जो हँसना रोना रूप संसार समुद्रसे पार होवे, अन्यथा न होवैगा। जैसे--घटाकाश स्वतः ही घटरूप समुद्रके वार पारसे रहित है घट दृष्टिसे नहीं।

ज्ञानका साधन

हे पिता ! सो आत्मज्ञानके वास्ते दो उपाय हैं--एक हठयोग है, दूसरा आत्मविचार योग है। आत्मविचार विना आसन प्राणायाम धारणा, ध्यान, समाधि आदि मन वाणी कायाके हठसे जो योग करना है सो हठयोग है पर शरीर और शरीरके कर्तव्य सर्व मिथ्या हैं, अनात्मा मिथ्यासे जो उत्पन्न होता है सो सांच नहीं होता मिथ्या ही होता है समाधिसे आदि लेके मल त्याग पर्यंत, सर्व कायिक वाचिक, मानसिक क्रियाओंको अनात्म धर्म जानना और मन वाणीके गोचर सर्व दृश्य वर्गको असत् जड दुःखरूप जानना और सर्व कर्तव्योंसे रहित आपको स्वतःही सच्चिदानंद रूप जानना कोई कर्तव्य कर आपको निष्कर्तव्य नहीं जानना यही आत्मयोग है जैसे स्वतः ही जगत्के सर्व कर्तव्योंसे रहित सूर्यका स्वरूप दाहकता उष्णता प्रकाशता असंगता जानना ! पिताने कहा--हे पुत्र ! मैं पापी कैसे आत्मयोगी

—नगर, ग्राम, लोक, परलोक आदि सर्व देहके सम्बन्धी हैं, यदि देह न हो तो किस प्रकार किसलिये इन सबोंसे प्रीति की जावे अर्थात् उनसे क्यों सम्बन्ध रखा जावे। शरीर द्वारा ही मनुष्य मोक्ष भी प्राप्त करता है, सुख दुःख भोगता है इत्यादि। विचार करनेसे भली प्रकार प्रमाणित हो जावेगा कि, शरीरसे भिन्न जगत् कोई भी पदार्थ नहीं।

होऊँ ? जड भरतने कहा-तू चैतन्य तीनों कालविषे पापरूप मलसे स्वतः ही रहित है पापी क्यों होता है ? तुझ चैतन्यका आदि अंत मध्य कोई नहीं जानता क्योंकि सर्व दृश्यके ज्ञाता तुझ सत् चैतन्य आनंदका और ज्ञाता है नहीं जो तेरा और ज्ञाता माने। सो वह तुझ सत् चित्त आनंदसे भिन्न; असत् जड दुःखरूप होवेगा। जो असत् जड दुःखरूप है सो ज्ञाता हो ही नहीं सकता है इससे हे पिता ! तुझ चैतन्य विषे पाप किसने देखा ? पुण्य पापके जाननेवाले तुझ चैतन्यमें पाप है ही नहीं । दुःखके कारणका नाम पाप है सो सर्व दुःख अहंकारसे होते हैं । इससे पापरूप अहंकारको त्याग; जो निष्पाप होवे। ब्राह्मणने कहा-मैं जीव हूँ। जडभरतने कहा-तूने सत्य कहा कि, सर्व दृश्य को जिलानेवाले तुझ चैतन्यमें मृत्यु नहीं । भला जो तू जीव ही है तो तेरा वर्णाश्रम क्या है ? ब्राह्मणने कहा-जीव विषे वर्णाश्रम नहीं । जडभरतने कहा-हे पिता ! जो जीवमें वर्णाश्रम नहीं तो पाप पुण्य जीव विषे कहाँ हैं ? जब तू आपको वर्णाश्रमी मानता है, तब ही है पाप पुण्य वर्णाश्रम जब मिथ्या है तब धर्म अधर्म कहां है ? जब धर्म अधर्म नहीं तो धर्माधर्मका कार्य शरीर कहां है जब शरीर नहीं तब जीव कहां ? जब जीव नहीं तब ईश कहां है इससे जीव ईशादि सर्व जगत् स्वप्नवत् है, एक तूही चैतन्य स्वप्नद्रष्टावत् सत्य है। ब्राह्मणने कहा-जब सर्व मिथ्या है तो शरीरमें जो शुभाशुभ कर्म होता है, तिसका फल सुख दुःख कौन भोगता है ? शरीर तो यहां ही भस्मीभूत हो जाता है। जडभरतने कहा--हे पिता। जैसे स्वप्नमें शरीरादिक कर्म करते हैं और काल पायकर स्वप्नमें ही शरीरादिक भोग भोगते हैं, जन्मते हैं, मरते हैं अनेक

क्रीडा करते हैं परन्तु स्वप्न द्रष्टा चैतन्य असंग निर्विकार है। हे पिता ! जो तू चैतन्य स्वप्नका द्रष्टा था, सोई तू चैतन्य इस स्वप्नवत् जाग्रत्का द्रष्टा है सोई तू सुषुप्ति मूर्च्छाका द्रष्टा है, द्रष्टाका भेद नहीं इससे तू आत्मा शुभाशुभसे न्यारा है, तुझे क्या भय है सदा प्रसन्न हँसता रह । पिताने कहा-सदा यज्ञादि कर्म करता था, तुम कहते हो कर कुछ नहीं । जडभरतने कहा--यज्ञ नाम विष्णु व्यापक वस्तुका है सो व्यापक चैतन्य तू है, यह जानना ही यज्ञ है, इससे अपने आपको कैसे यज्ञ करता है, तू स्वयं प्रकाश स्वरूप है तू ही सत् चित् आनंद जीवरूप होकर ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत सर्व शरीरोंमें कर्ता है और सर्व शरीरोंमें तू ही सर्वका भोक्ता है। असत् जड दुःखरूप दृश्य कर्ता भोक्ता बन सकते नहीं। हे पिता। जब तू शरीर नहीं तब कर्मोंसे क्या मतलब है। पिताने कहा--कर्मोंका लोप मत कर; मैं प्रेत हो जाऊंगा। जडभरतने कहा- हे पिता ! शरीरसे भिन्न होनेका नाम प्रेत है, सो इस संघातसे जो आपको भिन्न जानता है वही प्रेत है। पिताने कहा--आप भ्रष्ट है मुझको भी भ्रष्ट करता है । जडभरतने कहा--जो नामरूप दृश्यसे आपको न्यारा जानता है वही भ्रष्ट है, इससे मेरे समान तू भी भ्रष्ट हो। हे पिता! मुझको पिता पुत्रकी भावना नहीं; किंतु तू मैं और सर्व जगत्को मैं सत् चित् आनंद अपना स्वरूप जानता हूँ पिताने कहा--जिस उपायसे भय कालका दूर हो ? सो कह, काल महाबली है तिससे मेरी रक्षा कर। जडभरतने कहा--शरीर होते कालका भय दूर हो जावे यही कालसे रक्षा है, जब काल आया उस समय कालसे रक्षाकी चाहना करनी, वा मरे पीछे रक्षाकी चाहना करनी निष्फल है हे पिता ! तू अपने अकाल स्वरूपको जान और काल सहित सर्व

जगत्को भ्रमरूप जान, हे पिता ! अपने स्वरूपके अज्ञानसे इस वर्तमान शरीरसे पूर्व भ्रमरूप तूने ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत अनेक शरीर पाये हैं, पुनः त्याग किये हैं, पुनः धारण करेगा । परन्तु शरीरोंको ही काल नाश करता आया है, तुझ एक रस चैतन्यको कालने अबतक नाश नहीं किया तो अब कैसे नाश करेगा ? जो तू पूर्व था सोई तू अब है, वैसा ही आगे रहेगा बदला नहीं, जैसे तेरे शरीरने अनेक बार नवीन वस्त्र ग्रहण किये हैं और अनेक वार जीर्ण हुए वस्त्रोंको त्याग भी किया है परन्तु शरीर वही है बदला नहीं, जैसे-फल, फूल, पत्र बदलते रहते हैं वृक्ष नहीं बदलता । हे पिता ! जो चैतन्य शरीरसमान नाशवाला होता तो तुझ चैतन्यको भी काल नाश कर देता, कालका किसीसे तुझसे वा आत्मासे, भाईचारा नहीं तैसे ही अनेक जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति होगई पर तिनका अनुभव करनेवाला एक रस वही चैतन्य है बदला नहीं । हे पिता ! देश, काल, वस्तु भेदवाले देहादिक असत् जड दुःखरूप दृश्य पदार्थोंको ही काल नाश करता है, तू सच्चिदानन्द काल सहित दृश्यका द्रष्टा देश, काल, वस्तु भेदसे रहित है तुझको कालका क्या भय है ? उलटा तुझ चैतन्यसे कालादिक भय रखते हैं । मैं, तू यह जगत् तथा काल कुछ नहीं; केवल अहंकार तेरा है । जबलग मायाका कार्य देहादिक किसी भी वस्तुको आपा माननेवाला अहंकार है तबही तक काल है । क्योंकि, कालके समान अहंकार अति दुःखदायक है परिच्छिन्न अहंकार करके ही कालके वशीकार होते हैं स्वतः नहीं । वा अपने अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे जो पूर्वोक्त अपने स्वरूपके अज्ञान करके पृथक् प्रतीति है सोई काल है वा शब्दादि विषयोंमें जो

अति स्नेह है सोई काल है क्योंकि अज्ञान जन्म मरण आदि दुःखोंका कारण है जब आपा माननेवाला अहंकार न रहा तो काल कहां है ? जैसे सुषुप्तिमें अहंकार नहीं तो कालका भय भी नहीं जहां अहंकार है तहां ही काल है। इससे हे पिता! देहादिकों विषे अहंकारको त्याग जो कालके भयसे रहित होवे, अन्य किसी प्रकारसे भी कालकी निवृत्ति नहीं होगी। पिता–हे जड़भरत! कालसे ही सर्व जगत्की उत्पत्ति, पालन संहार होता है, कालकी कैसे अनित्यता है ? जड़भरत--हे पिता! "काल करके ही सर्व जगत्की उत्पत्ति, पालन, संहार होता है" यह अर्थ-संयुक्त शब्द जिसकर सिद्ध हुआ सो तू कालका सिद्ध करनेवाला कालसे न्यारा है बरन् काल तेरा ही आत्मा हृषीकेश है जैसे स्वप्नमें काल करके ही स्वप्न जगत्की उत्पत्तिपालना संहार प्रतीति होती है; परन्तु काल सहित सर्व स्वप्नपदार्थ कल्पित हैं, कल्पितपदार्थोंका कल्पित पदार्थ तो उत्पत्ति पालन संहार नहीं कर सकता, स्वप्नद्रष्टा ही सत् है, हे पिता! अपने आत्माको कोई भी भय वा नाश नहीं कर सकता और होता भी नहीं। जैसे-अग्निकी दाहशक्ति अपनेसे भिन्न काष्ठादि सर्वका दाह कर सकती है, पर अपने आत्मा अग्निको दाह नहीं कर सकती, वा अग्निके अंतर बाहर मध्य स्थित आकाशको भी दाह नहीं कर सकती। तैसे कालके अंतर बाहर मध्य पूर्ण कालका तू आत्मा है। कालके सिद्धकर्ता, तुझ प्रकाशरूप, आत्माको काल कैसे नाश करता है ? किंतु भयमान हुआ नाम भी नाशका नहीं ले सकता। हे पिता! जैसे तूने कालका निश्चय किया है तैसे सर्व इंद्रियोंके प्रकाशक, अपने आत्मा हृषीकेशमें निश्चय कर, जो भ्रम कालका तेरा नाश हो इसीलिये जान मैं हृषी-

केश हूँ। हे पिता! जैसे जिस पुरुषने आकाशादि पंचभूतोंके कार्य, इस शरीरको वा किसी तृणादिक एक पदार्थको विचारकर संशय रहित सम्यक् पंचभूतरूप जाना है सो पुरुष इस एक शरीरमें स्थित हुआ भी ब्रह्मांड और ब्रह्मांड अंतर्वर्ती सर्वभूरादि पदार्थोंका अपरोक्ष हस्तामलकवत् देखता है क्योंकि, ब्रह्मांड और ब्रह्मांड अंतर्वर्ती भूरादि सर्व पदार्थ पञ्चभूतोंके कार्य होनेसे पञ्चभूतरूप ही हैं। इससे उस पुरुषको कोई भी भूत भौतिक अज्ञात पदार्थ नहीं रहता, सर्वका जिसको प्रत्यक्षज्ञान होता है। कारणके ज्ञानसे कार्य अवश्य जाना जाता है। तैसे ही जिसने गुरुशास्त्र द्वारा, अस्ति भाति प्रियरूप सम्यक् अपरोक्ष, अपना आत्मा जाना है सो सर्व नामरूप जगत्को अपरोक्ष अपना आत्मा ही जानता है। कारण कि निज स्वरूप चैतन्य ही इस जगत्का विवर्त उपादान कारण है, इससे अपने सच्चिदानन्द स्वरूपको सम्यक् जान, जो सर्व तूही होवे, जानना ही है शरीरसे करना कुछ नहीं, हे पिता। तूने वृथाही आपको ब्राह्मण माना है, इस अहंकारको त्याग पीछे हृषीकेश आत्मा ही है। पिताने कहा--हे जडभरत! अब तेरी कृपासे मैंने समझा है कि, न मैं हूँ न तू है, न जन्म है, न मरण, न वर्ण, न आश्रम, न लोक न परलोक, न ग्रहण, न त्याग न बन्ध, न मोक्ष, न जीव, न ईश्वर एक हृषीकेश आत्मा ही है।

तिसी समयमें वामदेव आये और कहा, बड़ा आश्चर्य है! आप हृषीकेश आत्मा है और हृषीकेश आत्माके देखनेकी इच्छा करता है। हृषीक नाम इंद्रियोंका है, तिन इन्द्रियोंको जो प्रेरै तथा प्रकाशे तिसका नाम हृषीकेश है। सो सच्चिदानन्द वस्तु आत्माके ही हृषीकेशादि अनेक

नाम हैं । ब्राह्मणने कहा-हे वामदेव ! जब मैं सब समहीं हृषीकेश हूँ तो एकसे मित्रता, एकसे शत्रुता, कभी क्रोध कभी दीनता क्यों होती है ? वामदेवने कहा--जो तू चैतन्य समान होता तो मित्रता, करता, शत्रुता न करता, दीनता, करता, क्रोध न करता परन्तु तू चैतन्य तो शत्रुता मित्रतामें पूर्ण है तथा क्रोध दीनतामें भी पूर्ण है और तुझ चैतन्य कर ही क्रोध मैत्र्यादि सिद्ध होते हैं। ब्राह्मणने कहा--जो ऐसे हैं तो संत क्रोधादिकोंका त्याग क्यों करते हैं ? वामदेवने कहा--संत त्यागका त्याग करते हैं, नहीं तो त्याग ग्रहण करना किसीको योग्य नहीं क्योंकि अनर्थक क्रोधादिक सन्त त्यागते हैं, शरीरका रक्षक क्रोधादिक त्यागते नहीं जो त्यागें तो शरीरका अभाव होगा। इससे परिच्छिन्न ब्राह्मणादि वर्णाश्रमका अहंकार त्यागिके आपको सबमें पूर्ण हृषीकेश जान । ब्राह्मणने कहा--मुझमें जानना न जानना, ग्रहण त्याग; दोनों नहीं, मैं मन वाणीसे अतीत हूँ। वामदेव तूष्णीं हुआ क्योंकि, आगे वाणीका ठौर नहीं ।

जडभरतने कहा-हे पिता ! यही उपाय कालके नाशका है यही योग है; यही भक्ति है, मैं तेरा ऐसा पुत्र नहीं हूँ जो मुये पीछे तेरा पिंड करूँ तुझे जीवते ही मुक्त किया। ब्राह्मणने कहा झूठा मत कह मैं तीनों कालोंमें मुक्त हूँ मुक्तको मुक्ति क्या है ? तू पुत्र किसका है, मैं पिता किसका हूँ, न तू पुत्र न मैं पिता, पुत्र पिताका अहंकार जाग्रत तकही है सो ये सब नाश हुआ। हे जडभरत ! कुटुंब सहित सर्व रस्तेकी सराय हैं, वा नदी नाव और गन्धर्व पुरके समान है । जब सर्व वासुदेव है तब मैं कहां जाऊं ? क्या करूं ? क्या सुनूं ? किसका ग्रहण; किसका त्याग करूं ? कहां जड और चैतन्य, कहां फुरना अफुरना, कहां

विकार सविकारादि ? यह सब मनके मनन फुरने मात्र हैं, मैं निर्विकल्प हृषीकेश हूँ ।

वामदेवने कहा--हे जडभरत ! तूने पिताका नाश ऐसा किया है कि, वह पुनः नाश नहीं होवेगा । जडभरतने कहा--इसके पुण्योंने फल दिये हैं, मैंने कुछ नहीं किया । पुनः वामदेवने कहा--हे ब्राह्मण ! तू कौन है ? ब्राह्मणने कहा--हे हृषीकेश ! हृषीकेशसे क्या पूछता है ? वामदेवने कहा--मैं हृषीकेश नहीं और हृषीकेश हूँ । ब्राह्मणने कहा-- अनन्त नामरूप मुझ हृषीकेश आत्माके हैं हृषीकेश भी मैं ही हूँ । तिसी समय दत्त आये और कहा एक ब्रह्म आत्माको देखना योग्य है न द्वैत । ब्राह्मणने कहा जो सर्वात्मा मैं ही हूँ, तो देखे कौन ? दत्तने कहा मेरा कहना-तूने कैसे सुना । ब्राह्मणने कहा--जिसने कहा तिसीने सुना क्योंकि, वक्ता श्रोता एक ही है. जिह्वासे कहता है, कानोंसे सुनता है, नासिकासे सुगंध लेता है, त्वचासे स्पर्श करता है, परंतु सबका अनुभवकर्ता एक है । जैसे बारादरीके अन्तर एक पुरुष ही बारादरीके द्वारोंको तथा द्वारोंके अग्र पदार्थोंको अनुभव करता है । हे दत्त ! तू परमहंस है मुझपर कृपा कर । दत्तने कहा--कृपा यही है कि, निश्चय कर "मैं ही जीव शिव शरीरसे परे हूँ" । जडभरतने कहा--यह कृपा तूने आपपर की है, कृपा वह है जो और पर कीजै । दत्तने कहा--पर अपर तेरी दृष्टिमें है मुझ अस्ति भाति प्रियरूप आत्माकी दृष्टिमें नहीं । तथापि कार्यकारण रूप असत् जड दुःखरूप पर दृश्य प्रपंच मुझ सच्चिदानन्दकी कृपासे सच्चिदानन्द हो रहा है, यही मेरी पर अपर कृपा है । पुनः दत्तने कहा--हे ब्राह्मण ! तेरे देखनेको आया था, पर देखा तो सर्व तू ही है यही तेरा देखना

था। ब्राह्मणने कहा--न जडभरत, न दत्त,न अहं, न त्वं, न यह जगत्, एक मैं ही चैतन्य हूँ । दत्तने कहा-मैं नहीं तहां तू कौन है ? अहंपूर्वक ही त्वं होता है, इससे जहां अहं नहीं तहां त्वं कदाचित् नहीं । पर गोविंदकी भक्तिसे पर अपरसे छूटता है। हे ब्राह्मण ! कहो भजन कौनसा है? ब्राह्मणने कहा--कथन चिंतन करनेवाले अहंकारादि-कोंसे पूछो मुझ चैतन्यमें अहंकारादिक हैं नहीं, कैसे कहैं ? अहंकाररूप धागे करके ही भिन्न २ इन्द्रियोंका मेलन है अन्यथा नहीं, परन्तु भजन यही है; आप सहित इन सर्व नामरूपको हृषीकेश आत्मा जान" व "आपको मनसहित दृश्यसे अवाङ्मनसगोचर जान" यही भजन है।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! तू कह कि, भक्ति क्या है ? मैत्रेयने कहा--जब मैं भक्ति भगवान्को कल्पनेवाला नहीं तो भक्ति कहां है? भगवान् कहां ? तेरी कल्पना है पर इतिहास कहो। पराशरने कहा--इतिहास यही कि निश्चय कर जो सर्व हृषीकेश आत्मा है। मैत्रेयने कहा जब मैं ही नहीं तो निश्चय कौन करे ? पराशरने कह--हे मैत्रेय ! जहां तू मैं नहीं तहां ही हृषीकेश गोविन्द है--इसीपर एक कथा सुन।

दांभिक वैराग्य और तपका वृत्तान्त

एक समय हम सर्व संत मिलके मार्गमें चले जाते थे कि; एक तपस्वी पंचाग्नि तापता मिला। हम भी देखकर तिसके पास स्वाभाविक ही चले गये। तपस्वीने पूछा--हे संतो ! तुम कौन हो ? कहांसे आये हो ? कहाँ जाओगे ? जड भरतने कहा जैसे तू है तैसे ही बना रह और सदा अग्निमें जल । तुझे हमको वृथा पूछनेसे क्या प्रयोजन है ? पर बिना भक्ति गोविंदके जो कर्म होते हैं

सो वृथा असार हैं इस हेतु भजन गोविन्दका कर जो निर्मल होवे, द्वैतकी मलीनतासे छूटे भजन विना जो श्वास आता है सो अकार्थ है और पवन है ऐसे जान। जिह्वा मांसका टुकडा भजन विना मुखमें राखनी योग्य नहीं, वृथा बकवादके वास्ते जिह्वा नहीं, भजन वाणीसे करता है, मन पाप पुण्यमें फिरता है कैसे भला हो। भजन नाम अपनी कल्याणमें प्रारब्ध थापता है और धन कमानेमें पुरुषार्थ मानता है, यह नहीं जानता कि, शरीर कालके मुखमें पडा है और चाहना जीनेकी करता है, अपनी कल्याण शरीरके गिरे पहले ही हो सकती है काल समीप पहुँचे कछु नहीं होता। हे तपस्वी! चैतन्य रूपी समुद्रमें बुद्बुदे तरंग रूपी हमारा न कहीं आना है न जाना है; अगर आना जाना माने भी तो चैतन्यरूपी जलमें आना जाना कहां है जल ही है। जलके समान सार गोविन्द आत्मा है, आना जाना बुद्बुदे तरंगके समान हैं, तैने व्यर्थ माना है कि, तपस्वी हूँ, इस अहंकारका त्याग कर तपस्वीने कहा जब तुमसे मिलाप हुआ उसी समय अहंकार मिट गया क्योंकि अग्निके संगसे लकडीका अपना रूप नहीं रहता, अग्निरूप ही होता है। जड भरतने कहा--तपस्वी वही है, जिसने सर्व पदोंको जलाया है और निष्कर्मता रूपी भस्म मली है। कह तूने किस वस्तुको भस्म किया है? तपस्वीने कहा--बुद्धि नहीं रही जो कहूँ, पर मैं नहीं जानता हूँ कि क्या त्यागने ग्रहण करने योग्य है, जडभरतने कहा--हे तपस्वी! दुःख देनेवाले पदार्थोंको पुरुष त्यागता है, सुख देनेवाले पदार्थोंको ग्रहण करता है; सो विषय इंद्रियोंके संबंध वियोगमें दुःखसुख माननेवाला मनरूप अहंकारही सर्व अज्ञानी जीवोंको दुःख देता है। सोई दुःख देनेवाला पूर्वोक्त अहं-

कार तूने अबतक त्यागा नहीं। उलटा तूने सर्वसे अधिक अहंकार माना है कि, दुनियां लंडी क्या भजन जाने और क्या तप जाने हम गुरुका दिया भजन करनेवाले महातपस्वी, पंच धूनीके तापनेवाले हैं, हमारे चाचा गुरु चौराली धूनी तापत हैं, बडे पंडित हैं, सिद्ध हैं तथा वैद्यके विद्यामें कुशल रहे। हमारे भतीजा चेला कांटों ऊपर शयन करते हैं तथा चार वक्त चारों धाम करि आये हैं सारा दिन पाठ ही करते रहते हैं। हम तूंबेका, आसनका, मालाका तथा मल मूत्रके त्यागका मंत्र जानते हैं। हमारे गुरु तो राजों करिके पूज्य हो रहे हैं और हम सेर भर गांजा एक प्रहरमें उडा देते हैं तथा हम सिमल धतूरा खा जाते हैं, हमको कुछ दखल नहीं कर सकता यह साधु निगुरा है, पूजा पाठ कुछ नहीं जानता। जो कोई साधु गरीब होवे तिससे पूछना कि; तुम्हारा कौन धाम, कौन द्वारा, कौन संप्रदाय है ? अमुकी पूजाका क्या मंत्र है ? धामपुरियोंको परसा है वा नहीं, परसा है तो छाप दिखला ? तूंबेका मंत्र आता है ? झोलीका मंत्र आता है ? तेरे काका गुरुका क्या नाम है ? यदि वह सांगोपांग सब हाल कह सुनावे तो तब चाहे हीन जाति भी हो परन्तु वह साधु पंक्तिका अधिकारी है, जो बिल्कुल नहीं, कहे वा कोईके बात कहे, कोई न कहे तो वह साधु नहीं, निगुरा है यह पंक्तिका अधिकारी नहीं, इसका दंडा, झोली, तूंबा खोसले, तूंबे झोलीका मंत्रभी नहीं जानता। अथवा दूसरे भेषका कोई विद्वान् भी हो, कदाचित् अन्नके वक्त आजावे; प्रथम तो प्रीति नहीं करे; अन्नमें भी संशय है कदाचित् देवे तो यह साधु पंथाई है, पंक्ति बाहिर इसको अन्न देना और जो कोई गृहस्थ छोडकर अपनी कल्याण-वास्ते शरणागत होवे तिसको बंधका हेतु सर्व अनात्म

धर्मका ही उपदेश करें वा गैयोंकी तथा भंडारकी सेवामें ही लगा देवे । बहुत उत्तम अधिकारी हो तो पूजामें लगा देवे परंपरा गुरु शिष्यादि संप्रदायके सीखना, परम धर्म मानके सिखाव मुखसे भक्ति ही सार है ऐसा कहें और भक्तिका सम्यक् स्वरूप निश्चय करें नहीं । जो प्रातःकाल स्नान करे और अखंड विभूति लगावे चाहे धन ही राखे, पर महान् तपस्वी होता है । निरहंकार होकर सत्संगके प्रतापते स्वरूपको भी कोई ही जानते हैं । इसीसे हे तपस्वी ! इस मिथ्या देह अभिमानको त्याग और आप सहित सर्व गोविन्द जान । पुनः इस जाननेको भी त्याग, पीछे जो शेष रहै सो अवाच्य पद है. सोई तेरा स्वरूप है । यही परमभक्ति है, चाहे ज्ञानियोंसे पूछ देख, चाहै वेदमें ढूँढ देख अथवा निज अनुभवसे विचार देख, आगे जो तेरी इच्छा हो सो कर । यह कहकर जडभरत तूष्णीं हुआ ।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! तब मैंने कहा--हे तपस्वी ये पंच अग्नि तुझ अज्ञानीको दुःखका हेतु है और ज्ञानी को सुखका हेतु भी है क्योंकि, इनका स्वरूप तथा अपना स्वरूप जाननेसे सुख है, न जाननेसे दुःख है । हे तपस्वी । जैसे तू पंच अग्नि कर तथा चौरासी धूनियों कर बाहर तपायमान है तथा "मैं पंच अग्नि व चौरासी अग्निको तापता हूँ" इस अभिमानसे भी तू तपायमान है. तैसे तू अंतर देह अभिमानी अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश इन पांच अग्नियों कर निरंतर जलता रहता है, तुझको शांति कैसे होवेगी ? हे तपस्वी ! देहादिक अनात्मामें आत्मबुद्धि, देहादिक अनित्यमें नित्य-बुद्धि, देहादिक अशुचिमें शुचिबुद्धि, देहादिक दुखोंमें सुखबुद्धि इसीका नाम अविद्या है । सूक्ष्म अहंकारका

वा मरनेका भय अस्मिता है, राग द्वेष प्रसिद्ध ही है परंपरा संप्रदायको वा सुनी बातको सम्यक् विचारे विना ग्रहणकर रखना हठ छोडना नहीं चाहे झूठ भी हो, इसका नाम अभिनिवेश है। तैसे ही मन करके, शरीरके तथा वाणी करके चौरासी प्रकारकी अहिंसा अर्थात् परपीडा नाम दुःखरूप पाप देहाभिमानी पुरुषको निरंतर होता रहता है । तिनका आत्मज्ञान विना बाधा होना बहुत कठिन है यह योगशास्त्रमें लिखा है । इससे तुझ देह अभिमानीको चौरासी प्रकारकी अग्नि अंतर तथा बाहर जलाती है, तुझको शांति कैसे होगी । हे तपस्वी । ज्ञानीको यह तपायमान नहीं करती है क्योंकि देहादिक संघातमें (ज्ञानीको) अहंबुद्धिका अभाव है। वा शरीररूपी पृथ्वीपर श्रोत्रादिक पंचज्ञानेंद्रिय ही पंच अग्नि हैं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधरूपी काष्ठ गोबरीसे जल रही है; देह अभिमानी अहंकाररूपी जीव तू तपस्वी पूर्वोक्त पांच अग्निको तापता है । जैसे--तू बाहर अग्निके जलानेको साधन गोबरी काष्ठ आदि, मिलने न मिलनेसे सुख दुःख मानता है; तैसे--विषय इंद्रियके संयोग वियोगमें सुख दुःख तू मानता है; इससे तू देह अभिमानी अंतर बाहर निरंतर जलता रहता है । सारांश यह कि, मैं सुनता हूँ, मैं स्पर्श करता हूँ मैं देखता हूँ, मैं रस लेता और सूँघता हूँ वा नहीं यही तेरा तापना है । ज्ञानी इन पंचाग्नियोंकर तपायमान नहीं होता, क्योंकि वह निरभिमान है, उलटा तिनको सत्तास्फूर्ति देता हुआ आकाशवत् असंग है, शांतिरूप है । वा पंच कर्मेंद्रिय पंच अग्नि हैं, वाक्उच्चारण, ग्रहण त्याग, गमनागमन, मलमूत्रका त्याग करना यह लकडी गोबरी हैं, शरीररूपी पृथ्वीपर तू देह अभिमानी जीव तपस्वी तिन पांच अग्नियोंको तापता

है, मैं बोलता हूँ, मैं ग्रहण त्याग करता हूँ, मैं गमना गमन करता हूँ, मैं मल मूत्र त्यागता हूँ वा नहीं, यही तेरा तापनानाम जलना है। ज्ञानी नहीं जलता, ज्ञानी उलटा तमासा देखता है वा पंचप्राण पंचाग्नि हैं, पंच-प्राणोंकी वृत्तियां इस गोबरी काष्ठादिसे शरीररूपी पृथिवीमें जलती हैं, तू देह अभिमानी तपस्वी (जीव) तिनको तापता है; मैं क्षुधा तृषावाला हूँ वा नहीं। यही अहंकार तेरा तापना जलना है, ज्ञानीको नहीं। वा काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार ये पंचाग्नि हैं, काम क्रोधादिकोंके कार्य काष्ठ गोबरी हैं; शरीररूपी पृथिवीपर बलती हैं, तू देह अभिमानी (मनरूपीजीव) तपस्वी तिनको तापता है। तात्पर्य यह कि, मैं कामी हूँ, मैं क्रोधी हूँ, मैं लोभी हूँ, मैं मोही हूँ, मैं अहंकारी हूँ वा नहीं यही तेरा तापना नाम जलना है, अध्यास करके दुःख तू पाता है, देहाभि-मान रहित आत्मवेत्ताको दुःख नहीं। तैसे ही--जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति, मरण, समाधि ये पंचाग्नि हैं, शुद्ध सत्त्व, मलिन सत्त्व, शुद्ध रज, मलिन रज और तम यह गोबरी काष्ठ हैं, शरीररूपी पृथिवीपर जलते हैं तू इनका अभि-मानी तपस्वी तापता है। किस प्रकारसे कि, मैं जागता सोता हूँ, जन्मता मरता हूँ, समाधि करता हूँ वा नहीं, यही तेरा तापना नाम जलना है। ज्ञानी इनमें नहीं जलता क्योंकि, ज्ञानी इन सर्व समाधि आधि अवस्थाके होने न होनेको केवल मनका धर्म जानता है और अपने स्वरूपको समाधि आदि होने न होनेमें निर्विकार जानता है। वा मायारूपी पृथिवीपर यह पंचभूतरूपी पंच अग्नि हैं, स्थावर जंगम रूप सर्व शरीर इन पंचाग्नियोंकी गोबरी लकडी हैं, तू ही मायाविशिष्ट ईश्वर समष्टि अभिमानी

हुआ शबलब्रह्म, इन पंचाग्नियोंका तपानेवाला तपस्वी है, मैं उत्पत्ति पालन संहार इस जगत्की करता हूँ यही तापना है। परन्तु हे तपस्वी ! अन्तर बाहर पूर्वोक्त सर्वाग्नियोंके अन्तर बाहर मध्यमें आकाश स्थित होता हुआ भी तिन सर्व अग्नियोंका अवकाश देता हुआ भी तिन पूर्वोक्त अग्नियोंके होने मिटनेमें असंग, निर्विकार, अभिमान रहित, निर्विकल्प स्थित है। हे तपस्वी ! तैसेही जब तू आपको सत् चित् आनन्द आत्मा स्वरूप जानेगा तथा पूर्वोक्त सर्वाग्नियोंको सिद्ध करनेवाला असंग, निर्विकार, निर्विकल्प, आकाशके समान व्यापक जानेगा तब तू इन अग्नियोंके तापने न तापनेमें हर्ष शोक न मानेगा तथा पूर्वोक्त इन अग्नियोंके होने मिटनेमें सम ही रहेगा, इससे देहाभिमानके त्यागका त्याग कर जो निर्भय होवे। ऐसे कहकर हे मैत्रेय ! मैं तूष्णीं भया। वामदेव विलास करने वास्ते बोलने लगा।

अथ नारद तथा सनत्कुमारादिकोंका संवाद

वामदेवने कहा--हे तपस्वी ! एक समय चारों सनकादिक ब्रह्माके पुत्र तथा जय विजय विष्णुके द्वारपाल बैठे थे और आपसमें आत्मविचार कर रहे थे। तिसी समय अवसर पायकर नारद भी आये। सनंदनने कहा--हे नारद ! कहांसे आये हो ? कहां जावोगे ! अबतक कहां रहे ? नारदने कहा--बुद्धि आदिकोंके साक्षी व्यापक आत्मा विष्णुसे आया हूँ, विष्णुविषेही जाऊँगा, विष्णुविषे ही रहता हूँ, आप भी विष्णु हूँ, जैसे जलसे ही बुद्बुदा प्रगट है, जलसे ही आया है, जलमें ही जावेगा, जलमें ही स्थित है, जलमें ही लीन होवेगा और जलरूपी ही है। तात्पर्य यह कि, पूर्वोक्त सर्व बात वाणीका विलासमात्र है नहीं तो जलही जल है। तैसेही--चैतन्यरूपी

समुद्रमें आना जाना तरंगोंके समान जान। सनत्कुमारने कहा--रूप तेरा क्या है ? और नाम तेरा क्या है ? नारदने कहा--जो विष्णुको भ्रम होवे कि, मैं कौन हूँ तो उसका भ्रम कौन निवृत्त करे ? क्योंकि, मायासहित भूत भौतिक सर्व जगत् पुरुषसे प्रगट हुआ है, इससे जड़ है। पुरुषको कौन कहे, तू यह है कि; वह है। असली पूँछे तो सर्व नामरूप मेरे ही हैं। जैसे--स्वप्नमें यद्यपि सर्व नामरूपकी भिन्न भिन्न प्रतीति होती है, तथापि सर्व स्वप्नद्रष्टारूप ही है। जिसकर नेत्र रूपको देखते हैं, जिसकर त्वचा स्पर्श करती है, नासिका जिसकर गन्धको लेती है, रसना जिस चैतन्य कर रसको लेती है, कान सुनते हैं, मन जिसकर मनन करता है। तात्पर्य यह कि जिस चैतन्यसे यह सर्व संघात चेष्टा करता है। सो मैं ही हूँ। जय विजयने कहा--हे नारद ! ऐसे मत कहो, तेरे प्रभुके आगे जाय कहो कि, नारद कहता है मैं विष्णु हूँ। नारदने कहा--तू किसीको कहता है ? तू आप विष्णु चैतन्य है, वक्ता श्रोता सर्व विष्णु आत्मा ही है, तू मैं कहां हैं ? जय विजयने कहा--हे नारद ! जब विष्णुके पास जाता है तो दण्डवत् करता है, अब कहता है, मैं विष्णु हूँ। नारदने कहा--दण्डवत्, अदंडवत् करनेवाला जिसको दण्डवत् किया है सो सर्व विष्णु आत्मा ही है। ऐसे कहकर नारद चले गये। वामदेवने कहा--हे तपस्वी ! तू भी इस अनात्म तपको त्याग कर और सर्व शुभाशुभ संघातकी चेष्टा सर्व शुभाशुभ चेष्टाके करनेवाला यह संघात और जिस प्रयोजन वास्ते चेष्टा करता है यह सर्व त्रिपुटियां, अस्ति भाति प्रियरूप मैं आत्मा ही हूँ वा इनते रहित अवाच्य पद हूँ, इस दृढ निश्चय रूप आत्मतपको कर।"

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! जैसे संत लोग इच्छा पूर्वक

आये थे तैसे चले गये और तपस्वी अपने स्वरूपमें स्थित हुआ है। हे मैत्रेय ! तू भी इस अपवित्र शरीरका तथा शरीरके व्यवहारोंका अभिमान त्याग और पवित्र हो। मैत्रेयने कहा-जिसने अहंकार किया है सोई त्यागेगा, मैं चैतन्यने अहंकार किया नहीं त्यागूँ कैसे ? जैसे घटाकाशने घटका अभिमान किया नहीं त्यागे कैसे ? पर कहो कालसे कैसे मुक्त होवें ?

एक ब्राह्मण पतिपत्नीका संवाद

पराशरने कहा=हे मैत्रेय ! एक कथा सुन। एक ब्राह्मण था, तिसकी स्त्रीने प्रश्न किया कि हे प्रभो ! मुक्त कैसे होऊँ ? क्योंकि शरीर कालके वश है क्या जाने कि, अब ही नाश होय और अपने स्वरूपसे अप्राप्त रह जाऊं। ब्राह्मणने कहा जब काल आवेगा तब आप ही शरीरसे मुक्त करेगा, चिन्तासे क्या प्रयोजन है, मुक्तिवास्ते कर्तव्य करनेसे क्या मतलब है ? क्योंकि, मुक्ति नाम शरीरसे छूटनेका है, सो यह विचारसे आपसे आप होगा। क्योंकि तू चैतन्य आत्मा शरीरसे स्वाभाविक ही मुक्त नाम जुदा है, होना नहीं, घटाकाशकी न्याईं। स्त्रीने कहा-परलोकके रस्तेमें वैतरणी नदी सुनी है सो कैसे तरूंगी ? इस लिये गोदान करना चाहिये। ब्राह्मणने कहा--चिंतामत कर, जो तुझको परलोकमें ले जावेंगे जिस रीतिसे वे वैतरणी नदीसे पार होवेंगे उसी रीतिसे तेरेको भी ले जावेंगे, जो उस नदीमें छोड़ जावेंगे तो धर्मराजके प्रश्न उत्तरसे छूटेगी, पर हे स्त्री ! अनात्मदेहादिकोंविषे, अहंबुद्धिरूपी गौ, पंचभूत रूप ब्राह्मणोंको जब तू ठीक ठीक दान कर देवेगी तब वैतरणी नदी सहित संसार रूपी समुद्रसे सहज ही तर जावेगी। सारांश यह कि; यह देहादिक संघात मैं नहीं, न यह संघात मेरा है किन्तु यह

पंचभूतोंका है मैं इस संघातका साक्षी चैतन्य आत्मा हूँ यही दान देना है, अन्यथा अनेक गौके दान देनेसे भी नहीं तरेगी। वा इस लोक परलोकके सुखोंके भोगनेकी कामना रूप तृष्णाही वैतरणी नदी है, जिसने इसका त्याग किया है तिसको वैतरणीसे क्या काम है? स्त्रीने कहा-परलोकके मार्गमें शूल और तत्तबालू होता है और ऐसा सुना है कि जो पगरखी अश्वादिक दान करता है, तिसको दुःख नहीं होता। ब्राह्मणने कहा--जो दुःख यमकिंकरोंको होगा सो हमको भी होगा। स्त्रीने कहा--किंकरोंके शरीर सूक्ष्म हैं उनको दुःख नहीं होता। ब्राह्मणने कहा--यह स्थूल शरीर तो यहां अग्निमें भस्मीभूत हुआ, हमारा भी सूक्ष्म शरीर है। पर हे स्त्री! जब तू "सर्व नामरूप जगत् विषयमें, शांत परिपूर्ण, आत्मा मैं ही हूँ" इस निश्चयरूप पगरखीको पहिनेगी तो सर्व दुःख रूप कांटे मिट जावेंगे, अन्यथा नहीं। स्त्रीने कहा--जो जलदान यहां करता है उसीको परलोकके मार्गमें जल मिलता है, अन्यको नहीं। ब्राह्मणने कहा--यमकिंकरोंको जब प्यास लगेगी जहांसे वह जलपान करेंगे वहांसे हम भी पान करेंगे। स्त्रीने कहा--वह यमकिंकर हमको जल नहीं पान करने देवेंगे। ब्राह्मणने कहा:-किसी शास्त्रमें नहीं कहा--कि जल यम किंकरका है, उत्पत्ति पालना, संहार जगत् की सच्चिदानंद ईश्वरसे है, यमकिंकरकी क्या शक्ति है? जो जलपान न करने देवे। हे प्रिये! जो जल पान करने नहीं देवेंगे तो भी प्रसन्न रह क्योंकि, पंचभूतोंका शरीर है, जब जल न मिला तो शरीर नाश होवेगा तो भी यमके प्रश्न उत्तरते छूटेंगे। पर हे प्यारी! जब तू यह निश्चय करेगी कि, मैं यह देहादिक संघात नहीं किन्तु, मैं देहादिकोंका तथा देहादिकोंके सर्व व्यव-

हारका जाननेवाला हूँ इस ज्ञान रूप अमृतको पान करेगी तो उलटा यमकिंकर भी तेरा पूजन करेंगे। स्त्रीने कहा--जब हमको धर्मराजके पास ले जावेंगे और पुण्य पापका हिसाब पूछेंगे तो क्या कहूँगी ? ब्राह्मणने कहा--जैसे--जाग्रत् में जो अभ्यास करता है वही विशेषकर स्वप्न आता है। तैसे तूने भी जीवते हुए, इस संघातकी चेष्टारूप पुण्य, पाप अपना धर्म माना है तथा निश्चय मृत्युलोक माना है, यह कर्म मैं करती हूँ इसका फल भोगूँगी इत्यादि जैसा तू निरंतर दृढ संकल्प करेगी तैसे तुझको परलोकमें भासेगा। आप ही कर्म करता है आप ही उसका फल चाहता है; तो उसकी प्राप्ति क्यों न हो ? मैं पापी हूँ मैं पुण्यात्मा हूँ, मैं वर्णी हूँ मैं आश्रमी हूँ यमकिंकर लेखा मागेंगे इत्यादि जैसे तू संकल्पका अभ्यास जीवित अवस्थामें करेगी तैसे ही तुझको भासेगा। जब मूल अपनेको विचारे तो न पुण्य है, न पाप है, न धर्मराय, न किंकर है, न जीव, न ईश्वर है, न परलोक है, यह सर्व भ्रम तेरा है, बरन् जो तूने मनमें विचारा है सोई प्रगटेगा, इस कारण हे स्त्री ! आपको सत् चित् आनंदरूप जान, भूलकर भी सँघातके धर्मोंको अपना धर्म मत मान। क्योंकि, मैं पापी पुण्यवान् जीव हूँ और मैं सच्चिदानंद व्यापक स्वरूप हूँ, यह मनका मानना तुल्य ही है, इससे आपको चिद्रूप मानना ही श्रेष्ठ है अन्य नहीं। हे प्रिये ! अहंकार को त्याग जो कालके भयसे निर्भय होवे। जब कल्पना करनेवाले अहंकार ही नहीं तब तू कहां ? मैं कहां ? काल कहां ? संसार कहां ? यह लोक परलोक कहां ? शेष जो निर्विकल्प है सोई तू है। हे स्त्री ! अब कह तू कौन है ? स्त्रीने कहा यह सर्व नामरूप प्रपंच मनोमात्र है क्योंकि,

सुषुप्तिमें मन नहीं होता तो पुण्य पापरूप जगत् भी नहीं होता, जब मन जाग्रत् स्वप्नमें फुरता है तो अनेक प्रकारका अहं त्वं रूप प्रपंच भासता है, पर मैं दोनों अवस्थामें निर्विकल्प निर्विकार हूँ, यह संसार मेरा धर्म नहीं किंतु मैं असंसारी हूँ। ब्राह्मणने कहा--जब तू ऐसी है, तब भोग मैं कैसे भोगूँगा ? स्त्रीने कहा--सुख दुःखका प्रत्यक्ष अनुभव करनेका नाम भोग है, सो तेरे भोगका साधन जैसे-आगे यह शरीर था सो अब भी है, मैं चैतन्य तो तेरे भोगका साधन न पूर्व थी न अब हूँ, मैं चैतन्य तो तेरा आत्म स्वरूप हूँ। मैं तो भोक्ता, भोग्य भोग इस त्रिपुटीका पूर्व भी नाम अज्ञात अवस्थामें भी प्रकाशका साक्षी आत्मा थी। अब ज्ञात अवस्थामें भी वही मैं चैतन्य त्रिपुटीको जाननेवाली हूँ, तू भी वही है और यह जगत् भी वही है। ब्राह्मणने कहा--मैं अतीत होता हूँ। स्त्रीने कहा--मुझ चैतन्यके आगे तुझ दृश्य जड़के साथ कब मिलाप था, जो अब अतीत होता है ? हे ब्राह्मण ! जो तू दृश्यरूप प्रजा होकर चैतन्य राजा रूप आकाशसे अतीत हुआ चाहे तो सो न होगा क्योंकि, यह दृश्यरूप प्रजा तेरे एक देशमें होनेसे वा सर्व देश, काल वस्तुमें मुझ चैतन्यको पूर्ण होनेसे जैसे पृथिवी, जल, तेज, वायु, चार भूत तथा तिनके कार्य भौतिक पदार्थ आकाशसे अतीत नहीं हो सकते, पर तू चैतन्य इस दृश्यसे आपसे आप अतीत है आकाशकी न्याईं। बहुरि अतीत क्या होता है ? ऐसा अतीत हो जिसमें ग्रहण त्याग दोनों न होवें। ब्राह्मणने कहा--मेरा रूप क्या है ? ब्राह्मणीने कहा--रूप तेरा यही है जो तू ही है। इतना कहकर ब्राह्मणी स्वरूपमें लीन भई।

राजा मान्धाताकी कथा

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! ऐसे ही एक कथा और हुई है सो तू सुन--एक मान्धाता नाम राजा था उसने अर्द्ध-रात्रिमें अपनी सेजपर जागकर रानीसे कहा कुछ भोजन ले आओ रानीने कहा -रात्रि दिन खाने सोवनेमें ही गया, परमार्थ कुछ न हुआ। राजा सुनकर आश्चर्यवान् हुआ और कहा--कौन कर्म है ? जिससे परमार्थ पाऊँ ? रानीने कहा--संग संतोंका कर जो चाहनासे मुक्त होवे और प्रेम कर राजाने कहा--परम संत विष्णु है, सोई परमार्थका उपदेश करेगा। ऐसे विचार कर राजा विष्णुके प्रेममें ऐसे मग्न हुआ कि, जैसे नदी समुद्रमें मग्न हो जाती है। तात्पर्य यह कि, आपा अहंकारका त्याग किया और विष्णुरूप हुआ, ऐसी जिगरकी हाय मारी मानो पुण्य पाप धो डाला और बेसुध होगया। किंचित्काल पीछे होशमें आया और कहा--हे रानी ! इस समय विष्णु आवै तो क्या भेंट राखिये ? रानीने कहा--तन, मन, धन। राजाने कहा--मल, मूत्र रुधिर, मांसरूप शरीर है; रसना भी मांसका टुकड़ा है और मन संकल्प विकल्परूप है, इससे यह उत्तम भेंट नहीं। रानीने कहा--लाल मोती हीरे जवाहिर भेंट करो। राजाने कहा -तेरी मेरी दृष्टिमें माणिक मोती हैं, नहीं तो पत्थरोंके टुकड़े हैं। रानीने कहा--हँसी मत कर, बहुत काल तप करनेसे भी विष्णु नहीं मिलता तत्काल ही विष्णु कैसे मिलेगा।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! विष्णु यद्यपि अपना आत्मा है तथापि भ्रमकर अपने विष्णु आत्माके पानेकी इच्छा करता है, जैसे--स्वप्न नरोंका स्वप्नद्रष्टा विष्णु आत्मा है, परन्तु भ्रमसे स्वप्नद्रष्टाके मिलनेकी इच्छा करता है।

राजाने कहा--संत कहते हैं--जिस समय इसने चाहना त्यागी उसी समय विष्णु मिला। राजाने यह वचन कहा--फिर ऐसा प्रेम उसके मनमें उमडा कि, गुण यादकर रुदन करते २ विशुद्ध हो गया पुनः नेत्र खोलने पर जिधर तिधर विष्णु ही देखने लगा।

हे मैत्रेय! विष्णु राजाकी शय्यापर सोया हुआ न था, पर उसके निश्चय प्रेमसे, उसीके संकल्पने विष्णुरूप होकर दर्शन दिया। राजाने कहा--हे विष्णु! मैंने अविद्या कर माना था कि, मैं राजा हूँ परन्तु मैं पूर्व भी नहीं था, अब भी मैं नहीं हूँ, तू ही आदि अंतमध्य है, मैं कहां था तू ही है विष्णुने कहा--हे राजन्! जो अहंकाररूपी भेंट मेरी तूने चिन्तन करी थी सो ले आ। राजाने कहा-अहंकार कर ही तेरे चरण कमलोंकी मेरे मनमें प्रीति है, इस वास्ते अहंकार ले और आप भी जा क्योंकि, तू तबतक ही था जबतक अहंकार था. जब अहंकार नाश हुआ तू मैं कहां हैं? अवाच्य पद है। राजा यह वचन कहकर अपने स्वरूपमें लीन हुआ और विष्णु भी अन्तर्धान हुए।

पराशरने कहा- हे मैत्रेय! अहंकारको त्याग जो पवित्र होवे। मैत्रेयने कहा अहंकार और अनहंकार, पवित्र, अपवित्र दोनों मुझ चैतन्यमें नहीं, परन्तु कालका भय जिससे छूटे सो कहो? पराशरने कहा-हे मैत्रेय! एक इसीपर कथा सुन।

अथ यमकिंकर और यमका संवाद

एक समय यमकिंकरने धर्मरायसे प्रश्न किया कि, हे धर्मराय! तुम्हारा भय प्राणीको कैसे दूर होवे? धर्मरायने कहा--भय मेरा अविद्यातक है जब अपने स्वरूपको

सम्यक् जाना तब भय मेरा नहीं रहता । देह अभिमानीको ही मेरा भय है, जिसने सम्यक् देह अभिमान त्यागा है " नित चित् सुखरूप आत्मा आपको जाना है " तिसको मेरा भय नहीं । किंकरने कहा--हे यमराज ! तुम्हारी आज्ञासे प्राणीको शरीरसे निकासकर मैं ले आता हूँ परन्तु रूप उसका कुछ दिखाई नहीं देता, लेखा पाप पुण्यका तुम किससे पूछते हो ? और सुख दुःख किसको देते हो ? यमराजने कहा--इन बातोंके पूछनेसे तुझे क्या प्रयोजन है ? यमकिंकरने कहा--बडा आश्चर्य है कि, जिसपर हम लोग आज्ञा चलाते हैं, तिसका स्वरूप जानते ही नहीं । तुम्हारी आज्ञा कर प्राणीको स्वर्ग नरकमें डालता हूँ और उसके रोनेका तथा हाय हायका शब्द सुनता हूँ पर उसके स्वरूपमें भेद कुछ नहीं पडता; सुख दुःखमें एकसा है, इससे जाना जाता है कि देहसे निर्लेप है । जो देहके अहंकारसे रहित है तिसको कालकी फांसीसे क्या दुःख है ? इससे जाना जाता है कि, यह तुम्हारी धूम धाम भ्रममात्र है । धर्मरायने कहा--ईश्वरके कर्तव्योंको कौन जाने ? यमकिंकरने कहा--जो उसके कर्तव्योंको नहीं जानते तो पाप पुण्य क्योंकर विचारते हो ? धर्मरायने कहा--यह बात प्रगट करनेसे सर्व धर्म तथा मेरी आज्ञाका नाश हो जायगा । यमकिंकरने कहा--धिक् है मुझको और मेरे दण्ड तथा फांसीके देनेको कि, जानूँ नहीं यह कौन है और आपको किंकर मानूँ । धर्मरायने कहा--इन बातोंसे क्या निकासेगा, भजन गोविंदका कर, जो संसारके दुःखसे बचे । मलिनता अहंकारता जो तेरे मनरूपी दर्पणको लगी है सो नाश होगी मूल तेरा तब आपसे आप प्रगट होगा । यमकिंकरने कहा--आपको जाना नहीं तो भजनसे क्या

प्रयोजन है ? हे यमराज ! जो मेरे प्रश्नका उत्तर दो तो भला, नहीं तो प्राणोंका त्याग करूंगा। यमराजने कहा--किंकर ! प्रथम सर्व चाहनासे मनको अचाह कर जो अपने मूलको पावे। किंकरने कहा--मैं कौन हूँ ? जो मनको चाहनासे निवृत्त करूं और मनका क्या स्वरूप है जो चाहनासे छूटे ? धर्मराजने कहा--तू नित्यसुख ज्ञानस्वरूप है और मन संकल्प, विकल्प पंचभूतोंका विकाररूप है। किंकरने कहा--जब मैं स्वतः ही यथार्थ अचाहरूप हूँ तो मनकी चाहना अचाहनासे मुझ चैतन्यको क्या हर्ष शोक है ? जो मुझ ज्ञानस्वरूपमें चाहनासे मुझ चैतन्यको क्या हर्ष शोक है ? जो मुझे ज्ञानस्वरूपमें चाहना हो तो त्याग भी बनता है ? इससे दूसरेके घरकी बात मत कहो, मेरे अपने घरकी कहो। मन चाहे अचाह हो वा न हो आप मुये जग प्रलय है जब आप ही नहीं तो जगत् कहां है ? सुषुप्ति मूर्च्छावत्। हे यमराज ! सर्व जीव, ज्ञानी, अज्ञानी आप समान ही शुभाशुभ सर्व चेष्टा करते हैं परन्तु जिसके देह अभिमान है, अपने स्वरूपको नहीं जानता और आपको पुण्यवान् या पापी मानता है वही तेरी यमपुरीमें आता है, दूसरा आत्मज्ञानी आता नहीं इससे देहाभिमान ही दुःख मूल है।

एक राजाकी कथा

(जिसको गीदडसे वैराग्यका उपदेश मिला)

धर्मराजने कहा--हे किंकर ! एक राजा था सो शिकारको वनमें गया, कोई शिकार न मिला, तब गीदड़को बाण मारने लगा। तब गीदडने कहा--मेरेको मत मार, त्रिलोकी न रहेगी। राजाने कहा-- तुझ जैसे मैंने अनेक मारे पर त्रिलोकी नष्ट न हुई। गीदडने कहा--हे राजन् ! जब मैं नहीं तो त्रिलोकी कहां है ? राजाने सांच जाना

कि "आप मुये जग प्रलय है" । गीदड़को न मारा । उसी समय वैराग्य (राजाको) उत्पन्न हुआ, घरमें आकर रानीको एकांतदेशमें बुलाया और वैराग्य वृत्तांत सब कह सुनाया । राजाने कहा--हे रानी ! मैं अतीत होता हूँ । रानीने कहा--बहुत भला है, पर हे राजन् ! अतीत किससे होते हो ? राज्यसे अतीत होते हो तो जब आप नहीं उत्पन्न हुए थे तो भी राज्य था, जब आप यहांसे चले जावोगे वा मर जाओगे तो भी राज्य बना रहेगा और कोई न कोई राज्यका अभिमानी भी बना ही रहेगा । इससे आपका राज्य नहीं, जो आपका राज्य होता तो आपके संग आता और आपके संग जाता, सो तो ऐसे देखनेमें नहीं आता । हे राजन् ! यह राज्य पुण्योंका है आपका नहीं । राजाने कहा--पुण्य मैंने किये हैं इससे राज्य मेरा है । रानीने कहा--हे राजन् ! पुण्योंके कर्ताको जीव, मन, बुद्धि, चित, अहंकार, अविद्या इत्यादि नामोंकर कथन करते हैं यही कर्मोंके कर्ता हैं और यही कर्मोंके फल भोक्ता हैं आप तो जब जीव पुण्य पापरूप कर्म करता हो वा नहीं, तथा जब तिनका फल भोक्ता हो वा नहीं भोक्ता हो, तिन दोनों अवस्थाओंके साक्षी चैतन्य नित्य मुक्त आत्मा हो । इससे आप पुण्योंके कर्ता नहीं और तिन कर्मोंके फल सुख दुःखके भोक्ता भी नहीं, इसीसे आपमें कर्तव्य भी नहीं । राजाने कहा--मनादि जड़ हैं घटवत्, कर्मोंके कर्ता भोक्ता कैसे बन सकते हैं । रानीने कहा--हे राजन् ! मनादि घटके समान अति जड भी नहीं और निर्विकार आत्माकी न्यांई चैतन्य भी नहीं किंतु, मध्यभावी हैं क्योंकि आप नित्य सुखरूप आत्माके आभासके ग्रहण करनेकी मनादिकोंको योग्यता है और घटादिकोंको योग्यता नहीं । इस हेतु हे राजन् ! जो

आपको दुःख देता है तिसीसे अतीत हूजिये। जो राज्यमें दुःख देनेकी शक्ति हो तो राज्यमें स्थित सर्व पुरुषोंको दुःख होना चाहिये, इससे पदार्थोंमें सुख दुःख नहीं, कल्पनाका बनाया सुख दुःख है। हे राजन्! जो आप कहो-इस गृहसे अतीत होता हूँ, सो भी नहीं बन सकता क्योंकि यह हवेली या मंदिर आपके संग आया नहीं और न आपके संग जावेगा भी, जो आपका होता तो आपके संग रहता। हे राजन्! इन हवेलियोंमें अनेक आपके पिता पितामह रह रहकर चले गये और अनेक रहकर चले जावेंगे, आप भी कुछ दिन रहकर चले जाओगे। रस्तेके मुसाफिरखानेके समान हैं, इससे यह हवेलियां मुसाफिरोंकी हैं आपकी नहीं, जो मुसाफिर मुसाफिरखानेमें मूर्खता करके अपना दावा करता है तो दुःख पाता है और अपनी इज्जत खोता है जो अपना ममत्व नहीं बांधता सो सुख पाता है और गुजरान भी अच्छी तरहसे करता है। हे राजन्! पृथिवीके विकाररूप इस गृहके अनेक चींटी मकोडी, मूसा, सर्पादिक जीव तथा आपके संबंधी अभिमानी हैं, केवल आपका गृह नहीं किंतु पूर्वोक्त सबोंका है। जो गृह दुःखदायक हो तो पूर्वोक्त सर्व जीवोंको दुःख होना चाहिये। इससे गृह दुःखदायक नहीं जो आपको दुःख देवे वा आपका होवे तिसका त्याग करो। दूसरा गृह तो जड है जड पदार्थको सुख दुःख देनेकी सामर्थ्य भी नहीं, परन्तु आप सुख दुःख मान लेनेसे होता है, नहीं माने तो नहीं होता। हे राजन्! इस संघातरूप गृहसे अतीत होओ, नाम देह अभिमान त्यागो, अभिमान ही त्यागे पूरा पडेगा अन्य प्रकार नहीं। राजाने कहा--इन संबंधियोंसे अतीत होता हूँ। रानीने कहा--हे राजन्! आप चैतन्य इन संबंधियोंसे स्वतः ही अतीत नाम भिन्न हो, एकरूप नहीं और आप

भी अपनेको स्त्री पुत्रादिक संबंधियोंसे अतीत अर्थात् भिन्न ही मानते हो। कहीं ऐसा न होय कि, इन संबंधियोंको त्यागो और दूसरे किसी भेषके संबंधियोंको ग्रहण करो। यहां तो राजा और गृहस्थी कहाते हो अतीत होनेपर मैं अमुक भेषका अतीत हूँ, अमुक मेरे गुरु, अमुक गुरुभाई, अमुक चेला, अमुक सेवक आदि मिथ्या अभिमानमें बँधोगे। यहाँ वहाँ सब प्रकारसे अभिमान सम ही है, यहाँ तो मुकुट मोतियोंकी माला पहरते हो फिर वहाँ तिलक और तुलसीकी माला व रुद्राक्षकी माला धारण करोगे, इस हेतु जैसे नामरूप तुम्हारा यहाँ है तैसा ही अतीत हुए होगा। जैसे महल यहां है तैसे ही किसी गुरुका मठ वहां भी होगा। इससे कहो हे राजन्! किससे अतीत होते हो। रानीने और कहा--हे राजन्! असली विचार करो तो भ्रम सिद्ध शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, पंच विषय और काम क्रोधादिक पंच कर्मेंद्रिय, पंच ज्ञानेंद्रिय पंचप्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार तथा इनके करणभूत, पंच महाभूत यह आपके संबंधी हैं वा कार्य-कारण नामरूप प्रपंच यह संबंधी हैं यही पिछले जन्मांतरोंमें भी संग थे, जबलग आपको निज स्वरूपका ज्ञान नहीं होगा तब लग आगे भी रहेंगे। यही संबंधी ही आपके भ्रम कर दुःखके देनेवाले हैं, इनसे अतीत होते नहीं और यह पुत्रादिक संबंधी जो आपके सुखके साधन हैं तिनसे अतीत होते हो! इससे आपकी बुद्धि हँसने योग्य है। हे राजन्! तिन (पुत्रादिक संबंधियों) को त्यागते हो। सो आप ही यह काल पायकर त्याग जावेंगे अथवा आप ही संबंधियोंको स्वाभाविक त्यागोगे, परन्तु मनादि संबंधी आपको ज्ञानसे प्रथम कदाचित् भी नहीं त्यागेंगे, जो आप मनादि संबंधियोंसे अतीत नाम

आपको सम्यक् भिन्न मानोगे तब कालकी फाँसीमें न आवोगे। हे राजन् ! अनेक वार आपने स्त्री पुत्रादिक संबंधी त्यागे हैं और ग्रहण किये हैं तथा ज्ञान विना आगे त्यागोगे तथा ग्रहण करोगे परन्तु दुःख दूर न हुए होंगे, इस हेतु अहंकारहीको त्यागो जो सर्व त्यागी होवो, एक वस्तुको त्यागने और एकको ग्रहण करनेसे सर्व त्यागी न होगे परन्तु सर्व त्यागोंका त्याग करनेसे पीछे जो अवाच्य पद शेष रहेगा सोई आपका स्वरूप है। यह नहीं कि, अहंकार किसी दूसरे यत्नसे त्यागा जाता है किन्तु विचारकी महिमासे ही त्यागा जाता है, अन्य साधनसे नहीं । राजाने कहा--हे रानी ! अब मैं सर्व कामनासे निराश हुआ हूँ जो कहे तू सोई करता हूँ। रानीने कहा--प्रथम आप अहंकारको भस्म करो पीछे जो आपकी इच्छा होय सो करना। राजाने कहा--मैं क्या करूँ ? और किसकी शरण जाऊँ ? जो मुझे उपदेश करे । रानीने कहा--मैं उपदेश आपको करती हूँ, पर मुझको आपने निज स्त्री माना है तिस बुद्धिका त्याग करो। राजाने कहा मेरे मनमें ऐसी अग्नि उपजी है कि, स्त्री पुरुषका भाव-भस्म हो गया है; जो सत् को नहीं चाहता सोई मल मूत्ररूप स्त्री आदि शरीरकी इच्छा करता है और मुझको तो इंद्रकी अप्सराकी भी इच्छा नहीं तो तेरी क्या वांछा है। रानीने कहा--अहंकारको त्याग करो देखो आप कौन हो? आपका कौन है ? आप किसके हैं ? यह दृश्यमान जगत् है सो नेत्रके खोलनेसे प्रगट होता है। जब नेत्र मूँदे, न आप न कोई आपका और न आप किसीके, न यह नाम तथा रूप इच्छा अनिच्छादि मनरूप जगत् रहता है। नेत्रके खोलने मूँदनेसे मनका फुरना अफुरना जानलेना, जब आप ही नहीं तब क्या ग्रहण करते हो ?

और किसका त्याग करते हो ? राजा यह वचन सुनकर सर्व कामनासे निष्काम हुआ और अपने अंतःपुरमें गया, तब जैसे आगे हमेशा वस्त्रभूषण पहरकर राजाकी सेवामें स्त्रियाँ आती थीं वैसे ही आईं। राजाने देखकर कहा-- हे स्त्रीजनो ! जब मैं नहीं तब तुमसे क्या प्रयोजन है ! ऐसे कहकर राजा विशुद्ध हो गया। सबने जाना कि राजा बावरासा हो गया है। रानीने कहा--चिंता मत करो। राजाको कुशल है। जब कुछ काल बीता तो राजा जाग्रत हुआ और नेत्रभर ऐसा रोया कि, हो मैं अहंकारको धोय डाला फिर कहने लगा कि हस्ती, अश्व, अनुचर, पुत्र, स्त्री मेरे नहीं यह शरीर भी मेरा नहीं, जब तो शरीरके संबंधी मेरे कहांसे होवेंगे। इससे यह सब मिथ्या भ्रम-मात्र है, परन्तु मैं आपको नहीं जानता कि मैं कौन हूँ ? किस कारण पक्षीके समान इस शरीरमें बँधा हुआ हूँ। यह मनुष्य शरीर चिंतामणि हाथ आया परन्तु व्यर्थ विषय रूप कीचडमें डाल दिया और अपनी प्रथा (निज-हाल) न समझा यह अत्यंत मूर्खता है।

हे रानी ! मेरी वही अवस्था हुई है कि एक अतीत नदीके किनारे बैठा था और नदीमें बुद्बुदे उठते थे, तब अतीतने बुद्बुदेको देखकर कहा--हे बुद्बुदे ! तू मुझसे ऐसा स्नेहकर कि, तेरा मेरा श्वास एक हो जावे। अतीतके कहते कहते ही बुद्बुदा लीन हो गया और अतीत रुदन करने लगा कि; हाय हाय मेरा बुद्बुदा नष्ट हो गया है इसके बिना मैं कैसे जीऊंगा। यह अतीतकी अवस्था देखकर एक विद्वान्ने कहा--हे मूर्ख ! बुद्बुदेको तू क्यों रोता है ? आपको रो कि तू भी उसीके समान एक श्वास मात्रका मिहमान है। रानीने कहा--जब ऐसे जाना है तब क्यों शरीरादिकोंके साथ स्नेह करते हो ?

राजाने कहा--चाहना पिशाचके समान मनको लगी है, इससे कौन है जो मेरी रक्षा करे ? रानीने कहा--चाहना आप करते हो, रक्षा और से चाहते हो, तब कौन है जो आपकी रक्षा करे, एक श्वास चाहनासे अचाह होनेसे आपसे आप मुक्ति है पीछे सर्व दर्शन आपका ही होगा क्योंकि, अहंकाररूप चाहना ही भगवान्‌के मिलनेमें प्रतिबंध है जब चाहना करनेवाला अहंकार मिटा तब आप ही आप है । हे राजन् ! असली विचार करे तो चाहना मनको लगी है, इस व्यवहारके सिद्ध करता आप चैतन्यको तो चाहना नहीं लगी क्योंकि चाहना और मनके जाननेवाले आप तो चैतन्य साक्षी आत्मा हैं और चाहना मनको लगी है आपको नहीं । मन चाहनाकी निवृत्ति करै वा न करै चाहे मनको छोडे वा न छोडे आपको दूसरेके व्यवहारमें क्या फिक्र है कि इस मनका फिक्र करते हो तो दूसरोंका फिक्र क्यों नहीं करते ? क्योंकि जैसे सत्य चैतन्यसे इस संघात सहित मन चाहना जुदी हैं, तैसे सर्व लोक जुदे हैं । जो दया करना है तो सब पर करो नहीं तो तूष्णी हो रहो। हे राजन् ! मनको पिशाचके समान चाहना लगी है इस चाहनासे भी अचाह हूजिये । सारांश यह कि, आपको स्वतः ही सर्व स्वस्वधर्म सहित मनवाणीके फुरनेसे रहित अफुर जानो, माया और मायाके कार्य नाम रूप प्रपंचको फुरना रूप जानो वा चाहना अहंकार रूप जानो । रानीने कहा- हे राजन् ! अतीत हूजिये ! राजाने कहा--अतीत गृही होने वाले ही नहीं रहा भस्म होगया है, अब अतीत कौन होवे ? जो मुझसे पूछो तो मैं स्वरूपसे ही बंध मोक्षसे अतीत हूँ अब अतीत होने-

वास्ते मुझ चैतन्यका यत्न नहीं, क्योंकि, बंध मोक्षरूप प्रपंच भ्रमरूप है, भ्रमकी निवृत्तिवास्ते अपने स्वरूप अधिष्ठानका जाननेवत् जानना ही कर्त्तव्य है, अन्य नहीं। हे रानी ! मैंने अपने स्वरूपको सम्यक् अवाङ्मनसगोचर कर जाना है इससे स्वतः ही अतीत हूँ। रानीने कहा-हे राजन् ! जब आप चैतन्य मन वाणीका अविषय हो तो मन वाणीका विषय कौन है ? हे रानी ! अस्ति भाति प्रियरूप मैं आत्मा ही मन वाणीका विषय हूँ और मन वाणीरूप भी मैं ही हूँ और अविषय भी हूँ। तात्पर्य्य यह कि, माया और मायाका कार्य सर्व नामरूप प्रपंच भी मैं हूँ तथा तिससे रहित भी मैं ही हूँ इसके आगे क्या कहूँ ? यह कहकर राजा तूष्णीं हो विष्णुका ध्यान करने लगा क्योंकि पूर्व ही राजा विष्णुका उपासक था। धर्मराजने कहा–हे किंकर ! जिनके मनसे द्वैत मलीनता दूर होती है तिनकी यह अवस्था है। यमकिंकरने कहा–मुझ प्यासेको अमृतरूप कथा उस राजाकी कहो, ढील मत करो। गोविन्द विना, सब मिथ्या है क्योंकि, जब मैं प्राणीको लेने जाता हूँ तब धन, पुत्र, स्त्री, गृह, माता, पिता, संबन्धी, शरीर सर्व वहां ही रह जाते हैं, अपना कर्तव्य साथ लिये एकला ही आता है और एकला ही जाता है, इससे सब मिथ्या है।

धर्मराजने कहा–हे यमकिंकर ! व्यापक विष्णु आत्मा राजाके अंतःकरणविषे ही था परंतु राजाके दृढ संकल्पने ही विष्णुरूप होकर बाहर दर्शन दिया। विष्णुने कहा--हे रूप ! मेरे वचन क्यों नहीं करता, ? राजाने कहा--हे विष्णु ! वाणीसे पूछो–वचन क्यों नहीं करता, जो वाणी वचन करे वा न करे मुझ चैतन्यका हानि लाभ नहीं। जैसे वायुका छिद्रद्वारा शब्द हो वा न हो परन्तु आकाश दोनों

अवस्थामें सम है। हे विष्णु ! जब सर्व तू ही था तब मुझको क्यों न उपदेश किया कि, सर्व मैं हूँ। विष्णुने कहा--तबतक तेरे कषाय परिपक्व नहीं हुए थे। जैसे मलीन दर्पणसे अपना मुख स्पष्ट नहीं दीखता, तैसे तेरा मनरूपी दर्पण मलीन था। "आप सहित सर्व विष्णु है" इस भावनारूपी भक्तिरूप छाँई (रोली) करके अब शुद्ध हुआ है इसीसे तूने आपको अस्ति भाति प्रिय सर्व आत्मारूप जाना और अब तू विष्णु हुआ है। हे राजन् ! विष्णु नामक व्यापक वस्तुका है; जो व्यापक वस्तु है सोई सत्य है, परिच्छिन्न वस्तु सत् नहीं होती, घटके समान जो सत् वस्तु है सोई चैतन्य ज्ञानस्वरूप वस्तु होती है, असत् वस्तु ज्ञानस्वरूप नहीं होती। जो ज्ञानस्वरूप वस्तु है, सोई सुखस्वरूप वस्तु होती है, जड वस्तु आनंदस्वरूप नहीं होती। इसीसे व्यापक सच्चिदानंद वस्तुका नाम विष्णु है, सोई मेरा स्वरूप है, सोई तेरा स्वरूप है, सोई चींटीका, श्वानका, स्त्रीका तथा सर्व जगत्का स्वरूप है और जिसने अपने इस स्वरूपको सम्यक् जाना है सोई विष्णु है, हे राजन् ! शंख, चक्र, गदा, मोरमुकुटादिक लक्ष्मीसहित चतुर्भुज दृश्यमान यह मूर्ति तो मायामात्र है और परिच्छिन्न वैकुंठनिवासी है, यह व्यापक सच्चिदानंद स्वरूप नहीं हो सकता। जैसे अन्य दृश्यमान मूर्ति मायामात्र हैं तैसे यह चतुर्भुज मूर्ति भी है, विशेषता नहीं। हे राजन् ! यह बात पक्षपातसे रहित मैंने तुझको कही है, इस सम्यक् विचारमें बडाई छुटाई किसीकी नहीं होती, जहां पक्षपात है तहां सम्यक् आत्मनिरूपण नहीं, इससे अब विष्णु हुआ है।

राजाने कहा-- हे विष्णु ! जगत्की उत्पत्ति ब्रह्मासे होती है जगत्की पालना विष्णु करता है और संहार

शिव करता है शास्त्रोंमें ऐसा कहा है तुम सत्यवक्ता हो जैसे यह बात है तैसे कहो। विष्णुने कहा--हे राजन्! जिस सच्चिदानंद व्यापक अधिष्ठान वस्तु ब्रह्मा, विष्णु, शिवकी यह दृश्यमान मूर्ति भी उत्पन्न होकर प्रतीत होती है पुनः जिसमें लीन होती है, तिसी वस्तुसे जगत्की उत्पत्ति पालना संहार होता है, अन्यसे नहीं क्योंकि व्यापक सच्चिदानन्द आत्म वस्तुसे भिन्न सर्व परिच्छिन्न असत् जड दु:खरूप अनात्म वस्तु है असत् जड दुःखरूप अनात्मवस्तुसे असत् जड दुःखरूप अनात्म-वस्तुकी उत्पत्ति पालना संहार नहीं हो सकता। जैसे इन्द्रजाली ही सर्व पदार्थोंकी मिथ्या भ्रममात्र प्रतीति कर सकता है, इन्द्रजाली द्वारा मायामात्र रचे पदार्थ किसी दूसरे पदार्थको नहीं रच सकते इन्द्रजाली ही रच सकता है। जैसे स्वप्न जगत्की स्वप्नद्रष्टा ही उत्पत्ति, पालना, संहार कर सकता है, स्वप्न पदार्थ किसी पदार्थका भी उत्पत्ति; पालना संहार नहीं कर सकते क्योंकि, स्वप्न-द्रष्टा भिन्न, सर्व स्वप्न पदार्थको तुल्य ही भ्रममात्र है। इससे हे राजन्! जो तूने सम्यक् अपने सच्चिदानन्द व्यापक स्वरूपको जाना है तो निःसंग होकर चिंतन कर कि, मुझ चैतन्यसे ही सर्व जगत्की मर्यादा है इस नाम-रूप प्रपंचका मैं ही चैतन्य मालिक अधिष्ठान हूँ मुझ चैतन्यसे ही इस जगत्की उत्पत्ति पालना संहार है अन्यसे नहीं यही वेदान्त शास्त्रका डिमडिमा है तथा अपना अनुभव है जिसको अपने स्वरूपका अनुभव हुआ है वह शास्त्रका आश्रय नहीं लेता क्योंकि, अनुभवसे ही सर्व शास्त्र होते हैं। अनुभव नाम सत् चित् आनन्द आत्माका है, शास्त्र तो केवल प्रमाणमात्र ही होते हैं। इससे हे राजन्! और शास्त्र तो कर्मकांड और उपासनाके प्रति-पादक हैं और वेदान्त शास्त्र ज्ञानकांडका प्रतिपादक है।

जो कर्म उपासनाके प्रतिपादक शास्त्र सत् हैं तो वेदान्त शास्त्र भी सत्य है, जो वह असत् हैं तो यह भी असत् है क्योंकि सर्व शास्त्रोंको सत् अंगीकार करना चाहिये या असत् अंगीकार कराना चाहिये। एकको सत् और एकको असत् मानना यह हिसाब बाहिर बात है। वास्तवमें विचारे तो कर्मकांड उपासनाकांड अन्तःकरणकी मलीनता और चञ्चलताके दूर करनेके लिये ज्ञान उपयोगी है। अब हे राजन्! तू कौन है? राजाने कहा–हे विष्णु! तूने जो कहा "तू कौन है" इसमें त्रिपुटी सिद्ध होती है। एक वचन करता, दूसरा वचन, तीसरा जिस प्रयोजनके लिये वचन किया यह त्रिपुटी जिस प्रकाश कर सिद्ध हुई है सोई मैं हूँ। पुनः राजाने कहा-हे विष्णु! तुम्हारा स्वरूप क्या है? विष्णुने कहा--जो तेरा स्वरूप है सोई मेरा है शंख, चक्र, गदादिकों सहित यह दृश्यमान मूर्ति तथा सर्व जगत् मायामात्र है, मैं चैतन्य अमायक स्वरूप हूँ परन्तु हे राजन्! मुझ अतिथिका तुम आतिथ्य करो। राजाने कहा--हे प्रभो! स्वराज्य अपना तुझको दिया, मैं नहीं हूँ जो कुछ है सो तू ही है। विष्णुने कहा–अहंकार तूने मुझको दिया क्या दिया? परन्तु अहंकारसे ही सर्व जगत्की उत्पत्ति पालना संहार है तथा अहंकार कर ही जीव ईश ब्रह्म है तथा सर्व संसार है, जब तू नहीं तब संसार कहां है? अहंकारके देनेसे सर्वस्व दान है। राजाने कहा--क्या अहंकार तुझसे भिन्न है? मैंने जाना है कि, तुझसे भिन्न कुछ नहीं। विष्णुने कहा--जो भिन्न नहीं तो अहंकारका देना कहां है? राजा यह वचन सुनकर अपने स्वरूपमें लीन हुआ। जैसे घटाकाश महाकाशमें लीन होवे।

रानीने कहा--हे विष्णु! राजाको तूने मारा है? विष्णुने कहा--हे रानी! राजा मरा नहीं अमर हुआ है। रानीने

कहा--हे विष्णु ! तू कौन है ! विष्णुने कहा–मैं सत् चित् आनन्द व्यापक अद्वितीय हूँ । रानीने कहा--इन पदोंका अर्थ कहो क्योंकि, मैं वेद शास्त्र पढ़ी नहीं हूँ और सत्संग भी मुझको स्त्री होनेसे किंचित् मात्र ही है । विष्णुने कहा--सत् उसको कहते हैं जो असत्से जुदा होवे और चित् उसको कहते हैं जो जडसे भिन्न होवे तथा आनन्द उसको कहते हैं जो दुःखसे न्यारा होवे, व्यापक उसको कहते हैं जो परिच्छिन्न न होवे और अद्वितीय उसे कहते हैं जो द्वैतसे रहित होवे । रानीने कहा--मैं जानती थी कि, तू निर्वैर निर्विकार है परन्तु तेरे कहनेसे जाना कि, सर्व विकार तेरेमें ही हैं क्योंकि; अवाङ्मनसगोचर विषे बुद्धिरूपी वाणियोंके हिसाबका खाता नक्की हो चुका है; अब इन हिसाबोंसे कुछ मतलब नहीं हे विष्णु ! जब सर्व अस्ति भाति प्रियरूप तू ही है तो किससे तू न्यारा है ? और किससे तू अभिन्न है ? तुझ विषे द्वैत अद्वैत भिन्न अभिन्नका मार्ग नहीं; नहीं तो अपने अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे जुदा असत्, जड दुःखरूप प्रपंचको दिखला जिससे तू न्यारा है । जैसे सुवर्णसे भिन्न भूषणोंको दिखला इत्यादि जलतरंगादि दृष्टांत अनेक हैं । इससे हे विष्णु ! सर्व मैं ही हूँ, तू है ही नहीं । विष्णु हँसा और कहा मुझे ब्रह्म कहते हैं । रानीने कहा -जीव, ईश, ब्रह्म, सच्चिदानंद इत्यादि नामरूप मुझ अवाच्य पदसे ही सिद्ध होते हैं , मैं चैतन्य किसी कर भी सिद्ध नहीं हो सकता, इससे मेरा नमस्कार मुझको है । मुझमें जानने न जाननेका मार्ग नहीं और जानना न जानना भी मेरेमें ही है तथा सर्व दृश्य मेरा चमत्कार है लालकी दमकवत् । विष्णुने कहा--हे रानी ! तू कौन है ? रानीने कहा--मैं आपको नहीं जानती कि, कौन हूँ क्योंकि जो जाननेमें

आता है सो दृश्य मिथ्या है बुद्धिका धर्म है और मैं चैतन्य सर्वका जाननेवाला हूँ मुझको कौन जाने कि, तू कौन है ? इसीसे स्वयं प्रकाश हूँ। विष्णुने कहा--तुमसे सर्व जगत् प्रगट हुआ है तू क्यों नहीं आपको जानती ? क्या तू जड है ? रानीने कहा--जड घटादि तमोगुणके कार्य हैं और बुद्धि भूतोंके सत्त्व गुणका कार्य है। इसीसे घटादिकोंकी अपेक्षासे बुद्धि चैतन्य है। मैं आवाङ्मन-सगोचर जड चैतन्यसे रहित चैतन्य स्वरूप हूँ जिस मुझ कर जड चैतन्य सत्, असत्, ज्ञान अज्ञान, ग्रहण, त्याग, धर्म, अधर्म, मन वाणीका कथन, चिन्तन सिद्ध होता है, जिस मुझकर नामरूप जगत् सिद्ध होता है सो मैं स्वयं प्रकाश स्वरूप आत्मा हूँ, यही सम्यक् जानना है।

मोक्षकी प्राप्तिके हेतु कुछ कर्तव्य नहीं

बंधमोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते शारीरिक वा मानसिक वाणीसे भी कर्तव्य करना कुछ नहीं, क्योंकि, बन्ध मोक्ष अपने स्वरूपके अज्ञानसे भ्रम मात्र सिद्ध है। तात्पर्य्य यह कि, अपने स्वरूपको सम्यक् न जानना बंध है और अपने स्वरूपको सम्यक् जानना ही मोक्ष है। इससे अतिरिक्त बन्ध मोक्ष कोई वस्तु नहीं, जिसके ग्रहण त्यागसे पुरुषको बन्ध मोक्ष होवे और न कोई बन्ध मोक्षका स्थान है जहां जाकर बंधकी निवृत्ति और मोक्षकी प्राप्ति होती है। विष्णुने कहा--हे रानी ! बंध मोक्षका प्रतिपादक शास्त्र निष्फल हो जावेगा। रानीने कहा--बंधमोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते शास्त्र यत्न नहीं कहता, वरन् जैसे अंधकारके दूर करने वास्ते तथा अंधकारमें धरी मणिके प्राप्ति वास्ते दीपकका चसाना ही कर्तव्य है अन्य नहीं परन्तु दीपकके चसाने वास्ते अनेक साधन हैं, कोई अंधकारके दूर करने वास्ते तथा अंधकारमें धरी मणिकी

प्राप्ति वास्ते अनेक साधन नहीं। तथा जैसे--अपने मुखके देखने वास्ते केवल शुद्ध दर्पणका सम्मुख करना ही कर्तव्य है, परन्तु जिस दर्पणमें मलिनता होवे तिस दर्पणकी मलिनताके दूर करने वास्ते अनेक साधन हैं, कोई मुख देखनेके अनेक साधन नहीं। तैसे--बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते केवल अपने स्वरूपका सम्यक् जानना ही कर्तव्य है, अन्य नहीं, परन्तु जानना सम्यक् बुद्धिसे होता है, जिस बुद्धिरूपी दर्पणमें मल विक्षेपादि दोषरूप मलिनता है तिसके दूर करने वास्ते अनेक जप, तप, भजन, यज्ञ, दान, पूजा, तीर्थयात्रा व्रत, शम, दम, वैराग्य, विवेकादि साधन हैं, कोई बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते साधन नहीं। इसी अंशमें गुरु शास्त्र पुरुषार्थ सफल है वा अस्तित्व स्फुरणत्व प्रियत्व निज स्वरूपसे जो भिन्न प्रतीति होती है, सोई भ्रम है, तिस भ्रमकी निवृत्ति वास्ते ही गुरु शास्त्रकी सफलता है, कोई मोक्ष रूप ब्रह्मात्माकी प्राप्तिवास्ते गुरु शास्त्र नहीं। हे विष्णु! अपने स्वरूपमें मन वाणी वेदकी गम नहीं क्या कहूँ! मैं ऐसा हूँ कि; वैसा हूँ, जो मैं हूँ, सोई हूँ मुझसे कुछ कहा नहीं जाता।

रानीने कहा--बड़ा आश्चर्य है कि; सत्संगतिसे पहले भी स्वतः ही बंध मोक्षसे रहित, शुद्ध चैतन्य, निर्विकार, निर्विकल्प; देश; काल, वस्तुभेदसे रहित थी परन्तु अपने स्वरूपके न जाननेसे मैं आपको यह मल मूत्ररूप संघात ही जानती थी। जैसे--कोई तृणोंमें हस्तीको छिपाया चाहै सो मूर्ख है तैसे मैं पंचभूतोंका विकाररूप जो यह पंचज्ञानेंद्रिय, पंचकर्मेंद्रिय, पंचप्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार संयुक्त संघात तृण है सो इन तृणोंविषे (इन तृणोंकी) उत्पत्ति नाश तथा इनके भावाभावको जानने

वाले तथा शब्द स्पर्शादिक विषयोंको सिद्ध करनेवाले, साक्षी चैतन्य आत्मा रूप हस्तीको गुह्य भावसे रहित भी मैं छिपाती थी । तात्पर्य यह कि, मैं प्रकट सूर्यकी न्याईं द्रष्टा रूप होती हुई भी आपको दृश्य रूप जानती थी । इसी अपराधसे भ्रमसे भ्रम रूप जन्म मरणको प्राप्त होती रही परन्तु अब मैंने अपने स्वरूपको सम्यक् जाना है भ्रमरूप चोरको निकासा है, जो दुःख देता था, अब मेरे भ्रम निवृत्त हुए हैं । विष्णुने कहा हे रानी ! यह भी तुझको भ्रम है कि, पूर्व मैं अज्ञानी थी अब मैं मोक्षको प्राप्त हुई हूँ आत्मामें तीनों कालोंमें बंध मोक्ष है नहीं, जिस मनने आपको बन्ध माना था उसी मनने अब मोक्ष माना है । इससे जाना जाता है कि, बंध मोक्ष मनन मात्र है, तू आत्मा दोनों मनकी अवस्थाका साक्षी है । हे रानी ! तू सबसे उच्च पदको प्राप्त हुई है । रानीने कहा-- मेरे विषे ऊंच नीच दोनों नहीं, एकरस आत्मा हूँ । विष्णुने कहा--हे रूप ! मेरे ऐसे वचन गौरवताके मत कह । जिसने अपना स्वरूप पाया है उसकी भली चुप ही है । जैसे संसारमें जो धन रखता है तिससे कोई पूछे कि, तुम्हारे पास कुछ धन है तो कहता है " कुछ नहीं " । रानीने कहा--हे विष्णु ! जो खाता है उसको डकार आती है, जिसको चिन्तामणि प्राप्त हुई है सो हजार छिपावे तो छिपती नहीं । हे विष्णु ! निर्बल पुरुष ही किसीके भयसे धनको छिपाता है जो निर्भय सबसे बली है उसका धन छिपाया छिपता नहीं । जैसे--सूर्यका प्रकाश रूप धन ब्रह्मांडसे छिपाया छिपता नहीं और सूर्यको भी अपने स्वयंप्रकाशरूप धनको छिपानेकी ताकत नहीं । तैसे मुझ चैतन्यका स्वयं प्रकाशता कर सर्व दृश्यको प्रकाशता

तथा स्वरूपसे ही बंध मोक्षसे रहितता, नित्यमुक्तता, परिपूर्णता, एक रहस्यता, सत रूपता, आनंद रूपता तथा अवाङ्मनसगोचरतादि धन इस असत् जड़ दुःखरूप दृश्यसे छिपाया छिपता नहीं उलटा मुझ चैतन्यको सत्ता स्फूर्ति रूप धन करके असत् जड़ दुःख रूप दृश्य भी सत् चित् सुख रूप धनी प्रतीति हो रही है तथा भयमान हो रही है। जैसे गुड़ करके कटुपदार्थ भी मधुर होते हैं जिसे रज्जुकी सत् रूपता कल्पित सर्प दंडमालादिकोंसे छिपाये छिपती नहीं उलटा रज्जु करके ही तिनकी सिद्धि होती है। इससे हे विष्णु ! कहो मैं सत् कहती हूँ कि, असत्? जो असत् कहती हूँ तो मुझको दंड दे। विष्णु तूष्णीं हुआ क्योंकि आगे वचनकी गम नहीं।

रानीने कहा--हे विष्णु! तूष्णीं मत हो, विना वचन विलास कहे सुने संशय दूर नहीं होते। विष्णुने कहा--हे राजन् ! अब तू क्या किया चाहता है ? कौन ठौर तूने पकड़ी है ? राजाने कहा--चाहना, अचाहना, पकड़ना, छोड़ना, बंध मोक्षकी निवृत्ति, प्राप्तिवास्ते कर्तव्य मानना और ज्ञानके पीछे आपको निष्कर्तव्य मानना इत्यादि सर्व अंतःकरणके स्वभाव हैं, मुझ चैतन्यके पूर्वोक्त स्वभाव नहीं। इससे मुझको कुछ इच्छा नहीं। जैसे आप फरमाइये तैसे ही मैं करता हूँ विष्णुने कहा--हे राजन् ! तू अब विष्णु हुआ है, यथा प्राप्तविषे हर्ष शोकसे रहित तथा ग्रहण त्यागसे रहित होकर धर्म पूर्वक जीवन मुक्त होकर विचर। यह सर्व दृश्य पदार्थ तुझ चैतन्यकी लीलामात्र है तुझको कोई दुःखके हेतु नहीं, उलटा सुखके हेतु हैं।

अहंकारका कर्तव्य

तुझ चैतन्य महाराजकी प्रसन्नता वास्ते अहंकाररूप मालीने तुझ चैतन्यकी सत्ता पाकर यह संसाररूप

बगीचा रचा है। अंडज, जरायुज, स्वेदज, उद्भिज्ज इन चार खानियोंमें होनेवाले जीव इस संसाररूप बगीचेमें पुष्प खिल रहे हैं। सात समुद्र इसमें बावलियां हैं सूर्य चन्द्रमा लालटेन लग रहे हैं, ज्योतिष चक्र छोटी बत्तियोंकी रोशनी हो रही है; मेघमालारूप फुहारे चल रहे हैं, देखो हे राजन्! कोई मनुष्यरूपी पुष्प शुद्ध शुक्लरूप है, कोई लालरूप है, कोई कृष्णवर्णवाला पुष्प है, कोई शुक्ललाल मिश्रित है, कोई कृष्णलाल मिश्रित है। किंचित् रज तम सहित सत्त्वगुण प्रधान स्वभाववाले विष्णु आदि शुद्ध शुक्लरूप पुष्प हैं। रजोगुण स्वभाववाले जीवरूप लाल पुष्पवत् जानना। तमोगुण स्वभाववाले जीव नीले पुष्पवत् जानना। सत्त्वगुण स्वभाववाले जीव केवल धवल पुष्प जानने। किंचित् सत्त्व रज सहित केवल तमोगुण प्रधान नारकी, वृक्ष, राक्षस, दैत्य, सर्पादिक जीवरूप पुष्प हैं। किंचित् तम सत्त्वगुण सहित रजोगुण प्रधान मनुष्यादि अनेक भेद हैं। ये चार प्रकारके जीव तीनों गुणोंके स्वभाववाले हैं पृथक् नहीं। देखो कोई जीवरूप पुष्प देखते २ अदृश्य हो जाता है, कोई नवीन प्रगट हो आता है, कोई कुम्हला जाता है। कभी हैजा बीमारी रूप वायुकर वा अनेक जीवोंकी प्रारब्ध कर्म क्षयरूप वायुकर इकट्ठे ही जीवरूप पुष्प गिर पडते हैं अनेक प्रकारके कौतुक अहंकाररूप मालीने संसाररूप बगीचेमें कर रक्खे हैं।

मनका कर्तव्य

देख मनरूप नट तुझ चैतन्य महाराजाकी प्रसन्नतावास्ते अनेक स्वांग धारण कर रहा है, कभी आपको बन्धन मानता है, कभी आपको मोक्ष मानता है, यह भी मनका स्वांग है। कभी निर्विकल्प होता है तब हर्ष

मानता है, कभी विषयके सम्बन्धसे चञ्चल होता है तो आपको धिक्कार मानता है, हे राजन् ! यह भी मनरूप नटका स्वांग ही जान । कभी आपको वैराग्यवान् मानके उत्कर्ष होता है, दूसरेको अवैराग्यवान् मानके तर्क करता है, कभी आपको पंडित मानता है, कभी मूर्ख मानता है, कभी ज्ञानी होकर निजको कृतकृत्य मानता है, अज्ञानी होकर अकृतकृत्य मानता है देख यह भी विचित्र मनके ही स्वांग हैं कभी आपको पुण्यवान् मानता है, कभी आपको पापवान् मानता है, कभी आपको जीव मानता है, कभी आपको शिव मानता है, कभी वेदांतके सम्बन्धसे आपको ईश्वर मानता है, कभी जीव ईश्वरका भेद मानना रूप स्वांग करता है । कभी जीव ईश्वरका अभेद मानना रूप स्वांग करता है । कभी संशयवान् होता है, कभी निस्संशय होता है, यह भी मनरूप नटका स्वांग ही जान । कभी समाधि करना, कभी योग करना, कभी शांतिमान् होना, कभी अशांतिमान् होना, कभी मौनी होना, कभी अमौनी होना, कभी आपको वर्णी मानना कभी आपको आश्रमी मानना, कभी इनसे रहित आपको मानना, यह सब मनरूप नटका तुम्हारे आगे नृत्य है । कभी आपको द्रष्टा साक्षी, सत्, चित्, आनन्द रूप मानना, कभी आपको असत्, जड, दुःखरूप दृश्य मानना, यह भी मनरूप नटका स्वांग है । कभी कर्मकांडसे अन्तःकरणकी शुद्धि माननी, उपासनाकी मनकी निश्चलता माननी, ज्ञानसे आवरणकी निवृत्ति माननी कभी तीर्थादिकोंके स्नानसे पुण्य मानना, कभी न मानना वेदाध्ययन करना परस्पर शास्त्रोंका विवाद कर खंडन मंडन करना और कभी ज्ञानसे मुक्ति माननी, कभी कर्म उपासनासे माननी, कभी बन्ध मोक्ष न मानना इत्यादि, मन वाणी

सहित मन वाणीका कथन चिंतनरूप सब मनरूप नटका नाटक है, कभी राजसी संकल्प होना, कभी सात्विकी, कभी तामसी संकल्प होना, देख यह भी मनरूप नटके स्वांग हैं।

बुद्धिका कर्तव्य

किसी पदार्थका निश्चय करना, किसीका न करना यह बुद्धि रूपी वेश्याका तुम्हारे आगे नृत्य है। हजारों बार जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति मूर्च्छा, मरण समाधि यह भी बुद्धिरूपी वेश्याका तुम्हारे आगे नृत्य है। कभी बालक होना, कभी युवा होना, कभी वृद्ध होना, कभी उत्पत्ति होना, कभी नाश होना, यह शरीररूप नटका तुम्हारी प्रसन्नताके वास्ते नाटक है, कभी क्षुधा होनी, कभी तृषा होनी, यह प्राणरूपी नटका तुम्हारे आगे नाटक है कभी चिंतन निर्गुण वा सगुण परमेश्वरका ध्यान करना और करनेसे प्रसन्न होना, कभी न करनेसे अप्रसन्न होना, यह चित्तरूपी नटका तुम्हारे आगे नाटक है। कभी देहाभिमान करना, कभी आत्मामें अहंप्रत्यय करना, यह अहंकाररूपी नटका तुम्हारे आगे नाटक है।

हे राजन् ! और नाटक देखो, श्रोत्रादिक इंद्रिय तुझ चैतन्यके गुलाम हैं, तुझ चैतन्य साक्षीकी प्रसन्नतावास्ते शब्दादिक विषयोंको ग्रहण करके तुम्हारे आगे भेंट रखते हैं। जैसे–पालित बाज, पक्षीको मार करके स्वपालकके आगे आन रखते हैं और बाजका पालक यह तमाशा देखकर प्रसन्न होता है। तैसे श्रोत्रादिक इंद्रिय रूपी बाज, शब्दादिक विषयरूप पक्षीको ग्रहण करके तुझ चैतन्यके आगे आन रखते हैं इस नाटकको देखकर तू खुश हो। तैसे ही वागादिक कर्मेंद्रियरूप नट भी, शब्द उच्चारणादिक नाटक कर रहे, तुम्हारे आनंदके वास्ते। तात्पर्य यह कि,

कायिक, वाचिक मानसिक जितनी इस संघातकी चेष्टा हैं, सो सब तुझ चैतन्य साक्षीके आगे नाटक हैं. हे राजन्! तुम साक्षी चैतन्य, मनादिक नटोंके साथ एकरूप होकर नाटक मत करना क्योंकि, इस विपर्य बुद्धिसे तुम्हारे इस तुच्छ व्यवहार करनेसे विद्वानोंमें हँसी होगी । जैसे कोई भला मनुष्य नटोंके साथ मिलकर नाटक करता है तो तिसकी सब लोग निन्दा करते हैं । तू मनादिक नटोंके नाटकका, द्रष्टा, साक्षी, भला मानुष, चैतन्य निर्विकार, निर्विकल्प, स्वतः सिद्ध है यत्नकर नहीं । हे राजन् ! असली विचार करे तो तुझ चैतन्यको द्रष्टापना भी दृश्यसे भिन्न करनेवास्ते उपदेश किया है, क्योंकि प्रथम निषेध मुख ही उपदेश मुमुक्षुको कर्तव्य है, जब अपने स्वरूपको दृश्यसे भिन्न करके जाना, पीछे सर्व-रूप विधिका उपदेश करना चाहिये । जैसे- प्रथम स्वप्न-पदार्थोंसे स्वप्नद्रष्टाको भिन्न बोधन करके पीछे सर्वसे स्वप्नद्रष्टाको ही उपदेश करना चाहिये । इससे हे राजन् ! अस्ति भाति प्रियरूप तू ही सर्वात्मा है । द्रष्टा, दर्शन, दृश्य त्रिपुटीरूप भी तू ही है, त्रिपुटीका प्रकाश करने-वाला भी तू ही है । उठो । जबलग शरीर है तबलग कोई न कोई चेष्टा करनी ही है और सर्व चेष्टा स्वप्नके तुल्य मिथ्या ही हैं इससे यथाप्राप्तिमें ही क्यों न विचरो ? ऐसे कहकर विष्णु चले गये । रानी राजा विज्ञातवेद्य होकर, अपने राज्य कार्यको करने लगे परंतु जलकमलवत् सर्व व्यवहार करते भी अलिप्त रहे ।

कालसे कैसे और कान छूट सकता है

धर्मराजने कहा--हे यमकिंकर ! जो देह अभिमानसे रहित, सम्यक् अपने स्वरूपको जानता है । सारांश यह कि, यह पंचभूतोंका विकाररूप संघात मैं नहीं; किन्तु मैं चैतन्य साक्षी आत्मा हूँ, इस निश्चयवान् पुरुषके ऊपर

हमारा तुम्हारा जोर नहीं चलता। जो धर्मात्मा है; जो धर्मपूर्वक धन उपार्जन करके अपने बाल बच्चोंकी पालना भी करता है, यथायोग्य अपनी सामर्थ्यके अनुसार अतिथि सेवन भी करता है और पाप आचरण नहीं करता, तिसके ऊपर भी तुम्हारा हमारा जोर नहीं चलता। तथा जो पुरुष हरिको अपने आत्मासे भेद करके वा अभेद करके सगुण वा निर्गुण परमात्माका स्मरण ध्यान करता है और सत्य संभाषणादि गुणोंसे युक्त सज्जन रीतिसे रहता है, तिस ऊपर भी तुम्हारा हमारा बल नहीं चलता तथा जो प्रणवादिक हरिके नाम श्रद्धापूर्वक हर वक्त उच्चारण करता है, पर उपकारी है तथा पाप आचरण करता नहीं। तिसके ऊपर भी तुम्हारा हमारा बल चलता नहीं।

काल किसको पकडता है ?

हे यमकिंकर ! जो पापाचारी है, अन्यायकारी है, विश्वासघाती है, दुराचारी है, जो माता पिताका मन वाणी शरीर करके किसी प्रकारसे भी तिरस्कार करता है, जो कृतघ्न है, जो चोरी कर पर धन हरता है जो गुरु विद्वानोंका तिरस्कार करता है, देह अभिमानी है तथा जो परमेश्वरका नाम भी स्मरण नहीं करता, तिसके ऊपर तुम्हारा हमारा बल चलता है तिसको तुम दुःख दे सकते हो। जैसे-लोकविषे राजा और राजाके सिपाही, अन्यायकारी (जुल्मी) को ही दुःख दे सकते हैं।

जो भला मनुष्य, सराफ, अपने रस्तेमें ही आता जाता है, तिसको राजा वा राजसिपाही कोई भी दुःख नहीं दे सकते, उलटा जहां धर्मका काम पड़े तहां तिनकी गवाही मञ्जूर की जाती है। इससे हे यमकिंकर ! तू और मैं किसीको भी दुःख सुख नहीं दे सकते, अपने शुभाशुभ कर्तव्य करके ही जीव दुःख पाते हैं, इससे

अभिमान मत कर कि, मैं दुःख देता हूँ। हे यमकिंकर! तूने जो कहा था कि मैं प्राणीको लेने जाता हूँ ले भी आता हूँ परन्तु उसका रूप नहीं जानता कि, क्या वस्तु है? हे यमकिंकर! जिस प्राणीके स्वरूपको तू देखा चाहता है, सो तेरा अपना आत्मा है. अपने आत्माको तू कैसे देखे ? जैसे चक्षु अन्यको तो देखते हैं परंतु चक्षु चक्षुओंको तो नहीं देख सकते, देखना दूसरेमें होता है। दृश्य करके तो द्रष्टाका जानना नहीं होता; द्रष्टा करके ही दृश्यका जानना होता है। मन करके वा चक्षु आदिक इन्द्रियों करके हे किंकर ! तू प्राणीके स्वरूपके देखनेकी इच्छा करता है सो तो मन इन्द्रियादिक दृश्यका स्वयं द्रष्टा, अपने स्वयं प्रकाशको कैसे देखेंगे ? किन्तु नहीं देखेंगे। जैसे-चक्षु सर्वको देखते हैं, चक्षुओंको कोई देखता नहीं, चक्षुओं करके प्रकाशित पदार्थ कहें कि, हम चक्षु-ओंको देखें वा जानें सो तिनका कहना निष्फल है। तैसे ही-तू अपने आत्माको मन करके वा चक्षुओं करके देखा चाहता है इससे तेरी बुद्धि हँसने योग्य है। हे यमकिंकर! तू देह अभिमानको त्याग और आपको चिद्घन नित्य सुखरूप जान; जो कालके भयसे निवृत्त होवे। जिसको अपने सहित, यह सर्व नामरूप प्रपंच; वासुदेव निश्चय है, तिसको यमसे क्या प्रयोजन है? जिसने देह अभिमान त्यागा नहीं और पापाचारी है सोई मेरे पास आता है इससे हे किंकर ! भजन गोविंदका कर जो मलीनतासे निर्मल होवे. भजन यही है " जान आप सहित सर्व हरी है" और आगे क्या पूछता है ? किंकरने कहा-जैसे मछलीको समुद्रके जलसे निकासकर सुगन्धीके समुद्रमें डाले तो मछलीको नामंजूर है बरन् सुगन्धी उसको विषकी न्याई है, तैसे मुझको और कुछ मतलब नहीं, यही प्रयो-

जन है कि अपने स्वरूपको जानूं पर मैंने जाना है कि अज्ञानी पुरुषके ठगने वास्ते तुम्हारी हमारी धूमधाम है, विचारसे सर्व भ्रम मात्र है। धर्मरायने कहा--ऐसे मत कह, मेरी शासनासे भय कर, प्रभुसे किंकरको समता करनी नहीं चाहिये। यमकिंकरने कहा--न तू प्रभु, न मैं किंकर एक गोविंद आत्मा ही है, पर कथा उस राजाकी कहो। धर्मरायने कहा--किंचित् बात कहनेसे कहता है धर्मराय, यमकिंकर, सर्व भ्रम मात्र हैं, जब भिन्न भिन्न सम्यक् कहूँगा; तब निश्चय करेगा कि, त्रिलोकी ही नहीं अनुचरसे बात बेमर्याद करनी दुःखका मूल है। हे किंकर! चौरासी लक्ष योनि नरक हैं, सो देहाभिमानी नारकी तिन नरकोंमें भोक्ता है और एक ही आत्मारूप स्वर्ग है। चाहे स्वर्गमें वा नरकमें वास ले। यमकिंकरने कहा-स्वर्ग नरकरूप अहंकार है नहीं, सर्व गोविंद है पर कथा राजाकी कहो। धर्मराजने कहा--जब तू उसके जैसा आप नहीं होता तो उसकी कथा पूछनेसे क्या प्रयोजन है? इससे नारायणको अपने आत्मासे अभेद जान जो तेरा हृदय शुद्ध होवे, शुद्ध हृदय विना मेरा वचन तुझको प्रवेश न करेगा। हे किंकर! जब तू आप न विचारेगा तब ब्रह्मा विष्णु शिव भी तुझको उपदेश करैं तो भी कुछ गुण न होगा, इस कारण देहाभिमानको त्याग और सत्य प्रतीत कर कि " विना आत्मा और कुछ नहीं है " हे किंकर! गोविंद तो जगत् की उत्पत्ति, पालना, संहार विकार स्वभाववाला है और तेरा स्वरूप आत्मा निर्विकार शुद्ध है। किंकरने कहा--तुम शुद्ध अशुद्ध कहते हो मैं दोनोंसे न्यारा हूँ, पर कथा कहो।

धर्मराजने कहा--सुन, काल पाकर पुनः राजाके अंतःकरणमें विष्णुके दर्शनकी अतिप्रीति हुई सो भक्त वत्सल ईश्वर विष्णु तत्काल राजाके अंतःपुरविषे प्रगट हुआ। राजा देखकर प्रेममें मग्न होकर स्तुति करने लगा। हे विष्णु ! मैं कुछ नहीं, जो कुछ है सो तू ही है, मध्यमें भी तू ही है। अंतमें भी तू ही है । विष्णुने कहा--जब सर्व मैं ही हूँ तू नहीं, तब तूने कैसे जाना कि, सर्व विष्णु तू ही है । आपा अहंकार विना यह जानना नहीं होता। राजाने कहा जो कहता हूँ सो अविद्यासे कहता हूँ तेरे मिलापसे आपा अहंकार नहीं रहा, जैसे-अग्निके संगसे काष्ठका आकार नहीं रहता । क्या कहूँ ? जो कुछ है सो तू ही है। आपही आपको कहता है, आपको जानना, सुनना, सूँघना, स्पर्श करना, लेना, देना, दाता, मँगता सर्व त्रिपुटी रूप आपही है, जैसे--स्वप्नद्रष्टा सर्व रूप है। विष्णुने कहा-कुछ मांग। राजाने कहा-मैं तो हूँ ही नहीं, मांगूँ क्या ? यही कृपा कर कि, तुझ बिना न देखूँ, न सुनूं। विष्णुने कहा-- अभेद दृष्टि तब प्राप्त होती है जब किसी पदोंकी भी चाहना न रहे। चाहना ही अपने स्वरूपके दर्शनविषे पर्दा है। जब चाहना नाश हुई तब आपसे आप है चाहनाके दूर करनेको ही शास्त्र कर्तव्य कहता है, कोई अपने स्वरूप (कामना) दर्शनमें कर्तव्य नहीं कहता । जैसे--बादलके दूर करनेका ही कर्तव्य है, सूर्यदशनमें कोई कर्तव्य नहीं।

चाहना कैसे छूटे

राजाने कहा--चाहनाके दूर करनेका उपाय कहो । विष्णुन कहा--मायाके गुणोंके साथ मिलके आप कुछ बनता है, तब चाहना भी होती है, जब आपा अहंकार

गया तो चाहना भी संग ही जाती है। इससे आपाको बीचसे उठा दे, बाकीशेष जो है सो अवाच्य पद है, जो परमात्माका भक्त कहाता है और आपाबीच रखता है, तिसको धिक् है । हे राजन् ! जैसे सर्व पदार्थोंके अंतर बाहर आकाश पूर्ण है--तू आपको पूर्ण जान "यह सर्व नाम रूप जगत् मैं ही हूँ मुझ चैतन्य बिना न कोई हुआ है न होगा, मुझ चैतन्य की ही सर्व उपासना, प्रार्थना तथा पूजा करते हैं, म ही चैतन्य सर्वको आप अपने कर्मके अनुसार फल देता हूँ, मुझ चैतन्यकी सर्वदा जय है और मैं ही वेदसे वेद्य सर्वको प्राप्त होने योग्य हूँ" इस दृढ भावनाको धारण करे कि वही रूप होवे। हे राजन् ! प्रगट है जब लग लकडी अग्निका संग नहीं पाती तब लग लकडीका रूप है, जब अपना आपा अग्निको सौंपा तब अपना रूप त्यागके अग्नि रूप होती है। तैसे-जब तक आपा अहंकार रूप लकडीको ब्रह्म अग्निमें नहीं जलाता तब तक ही तुझको आवागमन है, जब तूने जाना कि, एक आत्म चैतन्य मैं हूँ, तब द्वैत है ही नहीं, तब निःसंशय तद्रूप होवेगा हे राजन् ! मरनेके भयकर और जीनेकी आशासे एक घडी भजन करता है तो सबसे कहता है--मैंने तो इतना भजन किया और रात दिन जब इंद्रियोंकी पालनामें बिताता है तब किसीसे बात भी नहीं करता सो तो किसीसे नहीं कहता, इससे सब चाहनासे अचाह हो और आपको परिपूर्ण जना कि, सर्व मैंही हूँ, फिर दुःख सुख कहां है ? राजाने कहा--जब सर्व अस्ति भाति प्रियरूप मैं ही हूँ, तो चाहना अचाहना ग्रहण त्याग भी मैं ही हूँ; किससे अचाह होऊँ ? विष्णुने कहा--जो तू चिंतन करता है जिसका चिन्तन होता है तथा चिन्तन यह त्रिपुटी तू तो

है ही नहीं क्यों भ्रम करता है ? राजाने कहा–जब मैं नहीं सर्व अन्तर बाहर तूही है तो चाहना अचाहना भी तूही है, "तू चाहनासे अचाह हो" यह तुम्हारा कहना बेहिसाबकी बात है। चाहना हो वा न हो मुझको क्या फिक्र है ? कुछ नहीं। जिसको फिक्र है सोई त्यागेगा, मुझको फिक्र नहीं है तो त्यागूँ क्या ? विष्णुने कहा--हे राजन् ! आशासे निराश हो और मेरी शरण आ, मुझ विना न जान, न देख। जो दृश्यमात्र जगत् है सो स्वप्नसमान है। राजाने कहा--जब मैं नहीं तू ही है तो मुझको इन बातोंसे क्या मतलब है ?

भक्ति तीन प्रकारकी है

विष्णुने कहा--भक्ति कर। राजाने कहा--जहां अहंकार है वहां ही भक्ति है, जहां अहंकार नहीं वहां भक्ति कौन करे ? विष्णुने कहा--भक्ति तीन प्रकारकी है--१ उत्तम, २ मध्यम, ३ निकृष्ट। २ अपने आत्मासे अभेद परमेश्वरको जानना (घटाकाशको महाकाशरूपवत्) उत्तम भक्ति है क्योंकि सत् चित् सुखरूप आत्मासे भिन्न घटादिक अनात्मा है परमात्माको आत्मासे भिन्न माने तो असत्, जड, दुःखरूप अनात्मा होवेगा असत् जड दुःखरूप अनात्मा होता है और जड मिथ्या दृश्य होता है। इस हेतु अपने आत्मासे परमेश्वरको भिन्न मानना भक्ति नहीं अभक्ति है। इससे "मुझ व्यापक चैतन्य विष्णुको अपने आत्मासे अभेद जान," यही परमभक्ति है। २ अपने आत्मासे जुदा परमात्माको मानके ध्यान स्मरण करना मध्यम भक्ति है। ३ पाषाणादिक मूर्तियोंकी पूजा निकृष्ट भक्ति है।

राजाने कहा--मेरे स्वरूपमें भेद अभेद दोनों नहीं, जिसमें भेद अभेदका मार्ग है वही (तीन प्रकारकी)

भक्ति करो वा न करो । जब सर्व मैं ही हूँ तो उत्तम क्या ? मध्यम क्या ? और निकृष्ट क्या ? उत्तम मध्यम निकृष्ट भी मैं ही हूँ । विष्णुने कहा--जो भक्ति करता है सो पर अपरसे छूटता है । राजाने कहा--जिसमें पर अपर हो और जिसको पर अपर दुःख देता हो सो पर अपरसे छूटनेका साधन करे, मेरे स्वरूपमें देश काल वस्तुका भेद नहीं एक रस पूर्ण हूँ । पर अपर कहां है ? पर अपर भी मैं चैतन्य ही हूँ । जैसे स्वप्नमें पर अपर है नहीं, स्वप्न-द्रष्टा ही सर्व रूप है, ऐसा होकर जो भक्ति न करे, आपा अहंकार रक्खे तो भक्ति नहीं, कपट है । विष्णुने कहा--हे राजन् ! भक्ति कर जो मूल अपना पावे । राजाने कहा--हे विष्णु ! तूने आप ही कहा है, "सर्व मैं ही हूँ" जब सर्व तू ही है तो मैं जो भक्ति करूँ सो मैं कौन हूँ ? विष्णुने कहा--मैं हूँ और भक्ति भी मैं ही करता हूँ । राजाने कहा--जब सब तू ही है तब मेरी भक्ति करनेसे और न करनेसे तुझको क्या हानि लाभ है ? विष्णुने कहा--भक्ति बिना सुख नहीं । राजाने कहा--भक्ति करनेसे सुख होगा, न करनेसे दुःख होगा तो ऐसी भक्ति करनेकी मुझको इच्छा नहीं । जब सब तू ही है तो दुःख सुख किस पर है ? आप अपनी भक्ति कर चाहे न कर मुझसे पूछे तो भक्ति करने न करने तथा बन्ध मोक्ष जीव ईशादि संसार मारनेवाला अहंकार था, सो मिथ्या अहंकार मेरा नष्ट होगया है । अब भक्ति ज्ञान ध्यान भजन कौन करे ? मेरे स्वरूपमें तो संसार आगे ही नहीं था भ्रम करके अहंकारने कल्पा था; सो अहंकार जानेसे संसार भी गया अब भक्ति कौन करै ? भक्ति सेवक स्वामीभाव विना होती नहीं और मैंने आप सहित सर्व जगत्को हरिरूप जाना है । विष्णुने कहा--यही परमभक्ति है, कि अपने आत्मासे मुझको अभेद जानना नहीं तो कपट है ।

इतनी बात कहके विष्णु अन्तर्धान हो गये। धर्मराजने कहा--हे किंकर ! जब तेरी भी यह अवस्था होवे तब स्वरूपको पावे। किंकरने कहा अपनी स्थिति बिना स्वरूप पाना कठिन देखता हूँ; क्योंकि, रसनासे बारंबार नारायण ! नारायण ! कहता हूँ, पर मन पाप पुण्यमें बद्ध है इससे भजन नहीं, कपट है। जब कर्म करते आपको निष्कर्म जानूँ, सर्व आशासे निराशा होऊँ तब पूर्ण काम होऊँ। हे धर्मराज ! मैं कौन हूँ ? मूल मेरा क्या है ? धर्मराजने कहा--तुझको कितनी बार कहा है कि, यह बात मुझसे मत पूछ, क्योंकि मुझको जीवोंके भले, बुरे कर्मोंके पक्षपातरहित धर्मपूर्वक न्याय करनेकी परमात्माकी आज्ञा है; कोई जीव ईशके स्वरूपके उपदेश करनेकी आज्ञा नहीं. किंकरने कहा--बड़ा आश्चर्य है कि अपने स्वरूपको जाने बिना सुखके वास्ते कर्म करना, प्रकाश बिना अंधेरेको दूर करना है। हे मैत्रेय ! उसी समयमें वसिष्ठ सर्वमिदमहं च वासुदेवः २ " कहते हुए आये वसिष्ठने कहा--हे धर्मराज ! तुमने जो कहा है, जिसका मन अविद्यामें लीन है तिसको स्वरूप पावना कठिन है, जिसका मन शुद्ध है तिसको सुगम है। कहो मलीनता शुद्धता दोनों किससे प्रकाश राखते हैं और किसमें हैं ? धर्मराजने कहा--प्रकाश दोनोंका आत्मासे है और अंतःकरणमें दोनों हैं। जैसे दपर्णके मकानमें शुद्धता, अशुद्धता, अमृत, विष दोनोंका प्रकाश नेत्रोंसे होता है और शुद्धता, अशुद्धता, अमृत, विष दोनों दपर्णके मकानमें हैं जैसे-शुद्ध दपर्णसे मुख देखा जाता है अशुद्धसे नहीं देखा जाता। तैसे ही शुद्ध अंतःकरणरूपी दपर्णसे आत्मारूपी मुख देखा जाता है अशुद्धसे नहीं। जो कहो अंतःकर-

१ आप सहित सर्व वासुदेव है॥

णके शुद्ध करनेका उपाय कौन है ? तो जप, तप, दान, भजनादि अनेक उपाय हैं परन्तु आप सहित सर्व जगत्को सत, चित, आनंदरूप निरन्तर दीर्घकालतक सत्कार पूर्वक, श्रद्धासे, ध्यान करनेसे अंतःकरण शीघ्र ही शुद्ध होता है, । यही निश्चय बुद्धिमें सम्यक् जँच जाना ज्ञान है, नहीं तो निर्गुण अहंग्रह उपासना है । वसिष्ठने कहा-- आत्मा स्त्री है, कि पुरुष है, कि नपुंसक है ? धर्मराजने कहा--आत्मा न स्त्री, न पुरुष, न नपुंक और स्त्री पुरुष नपुंसक भी आत्मा ही है, । जैसे--स्वप्नके, स्त्री पुरुष, नपुंसक द्रष्टा नहीं और सर्व वे ही हैं, इससे आत्मा आपसे आप है वसिष्ठने कहा--जब आप है तब और भी होगा जो और नहीं तो आप कहां है ? धर्मराजने कहा-- नित्य सुख ज्ञानस्वरूप आत्मासे ही सर्व दृश्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं, रज्जुसर्पवत् । आत्मासे ही जाने जाते हैं । आत्मा किसी दृश्य पदार्थसे जाना नहीं जाता, स्वयं प्रकाश होनेसे । इस प्रकार आत्मा पर, अपर, द्वैत, अद्वैत, दृश्यसे पर नाम भिन्न है । वसिष्ठने कहा जो आत्मा अदृश्यसे परे है तो उरे भी होगा, नहीं तो कहो, दृश्य उरे कौन है ? दृश्य और अदृश्य उरला देश आत्मा विना खाली होगा । हे धर्मराज ! पूर्ण आत्मामें उरे पर नहीं । जैसै पंचभूतोंमें उरे परे नहीं, सर्व रूप पंचभूत ही हैं ।

धर्मराज तूष्णीं हुआ । उसी समय गौतम और याज्ञवल्क्य दोनों आये गौतमसे कहा--हे वसिष्ठ ! कहो रूप मेरा क्या है ? कृष्ण वा श्वेत वा लालादि ? वसिष्ठने कहा--मैं नहीं, जानता कि कोई मेरे वचनोंका श्रोता है मुझविषे द्वैतका मार्ग नहीं क्या कहूँ ? किसको कहूँ ? पर कहता हूँ, श्वेत सत्त्वगुण, कृष्ण तमोगुण और लाल रजोगुणरूप, माया तथा मायाका कार्य जो कुछ मन

वाणीका गोचर है तेरा स्वरूप नहीं यह मिथ्या मायाका स्वरूप है तेरा स्वरूप तो अवाङ्मनसगोचर, सर्वाधिष्ठान, जगदांध्यप्रकाशक, अवेद्यत्व सदा अपरोक्ष साक्षी, सच्चिद्घन विशुद्धानंद है । गौतमने कहा--जब तुझ विषे द्वैत नहीं तो तुझको श्रोता वक्ता कैसे भान हुआ कि, आपही आप है ? वसिष्ठने कहा--जो दोनों नहीं तो तूने कैसे सुना है ? गौतम तूष्णीं हुआ । तब याज्ञवल्क्यने कहा--मैं एक सत्त्व ज्ञान अनंत स्वरूप सर्व आत्मा हूँ, मुझ आत्मासे पृथक् जो दृष्टि आता है सो भ्रम मात्र है । जैसे--सुवर्णसे पृथक् जिसको भूषणोंकी प्रतीति होती है सो भ्रमी है वसिष्ठने कहा--हे याज्ञवल्क्य ! जलको अपनेसे पृथक् फेन बुद्बुदा तरंग, कदाचित् भी भान नहीं होते, तुझ चैतन्य अधिष्ठान आत्माको "आत्मासे पृथक् दृश्य भ्रम मात्र है" यह कैसे भासा ? याज्ञवल्क्यने कहा--जल जड है और मैं आत्मा सूर्यवत् स्वयं प्रकाश स्वरूप हूँ मुझ सत्‌रूप आत्मासे ही भ्रम अभ्रमकी सिद्धि होती है । नहीं तो कहो, आत्मा विना भ्रम अभ्रमको किसने न जाना ? भ्रमको भ्रम तो सिद्ध नहीं कर सकता । यमकिंकरने कहा--हे याज्ञवल्क्य ! सत् मैंने अब तक नहीं देखा, भिन्न भिन्न कर कहो । याज्ञवल्क्यने कहा--सत् तू है, सत्‌को देखे कैसे ? जो सत् देखने जाननेमें आवेगा तो असत् दृश्य पर प्रकाश होगा । अध्यारोप कर तिसका स्वरूप कहता हूँ, साक्षात् नहीं जिससे इस दृश्य संसारकी उत्पत्ति, पालना, संहार होता है तथा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति हजारों वार हो होकर मिट जाते हैं, जिसमें हजारों वार क्रमसे सत्त्व रज, तम, गुण होकर मिट जाते हैं, जिसमें हजारों वार भूत, भविष्यत्,

वर्तमान काल हो होकर मिट जाते हैं, जो आप तीनों कालोंमें एक रस रहता है, जो कदाचित् विकार (अन्यथा भाव) को नहीं प्राप्त होता, तिस आत्माको सत् कहते हैं। अन्तर जो अपने स्वयं प्रकाश करके सूर्यवत् सर्व मन आदिक दृश्यको परिणाम करता है, कांटेवत् (तराजूके समान) तात्पर्य यह कि, जिसका अंतर सर्व मनादिकोंका वृत्तांत जाना जाता है आत्माको ज्ञान स्वरूप कहते हैं उसकी इयत्ता परिमाण करा जाता नहीं इस वास्ते आत्माको अनंत कहते हैं इस आत्मासे भिन्न सर्व दृश्य पदार्थ असत् जड़ दुःखरूप जाने जाते हैं, इससे आत्माको सत् चित् आनंदरूप कहते हैं। यमकिंकरने कहा--जलसे बुद्बुदा उत्पन्न हुआ है, प्रगट जलरूप ही है तैसे सत् आत्मासे जगत् उत्पन्न हुआ है इससे सत्‌रूप ही है असत् क्यों कहते हो ? याज्ञवल्क्यने कहा--यह नहीं कि, जिससे जो चीज उत्पन्न होवे सो वैसे ही होवे। उपादान कारणके समान तो निःसंदेह कार्य होता है। जैसे मृत्तिकाके समान सत्तावाले ही घटादिक होते हैं-परंतु विवर्त कारणके समान कार्य की सत्ता नहीं होती। जैसे स्वप्न द्रष्टासे निद्रा दोष कर स्वप्न प्रपंच उत्पन्न होता है परंतु स्वप्न द्रष्टा सत् रूप है स्वप्न प्रपंच असत् रूप है,तथा जैसे इन्द्रजाली अपनी माया करके अनेक पदार्थ उत्पन्न करता है परन्तु इन्द्रजाली सत् है तिसके किये हुए पदार्थ असत् हैं तथा रज्जुके अज्ञानसे सर्पादिक उत्पन्न होते हैं परन्तु रज्जु सत् रूप है। सर्पादिक असत् रूप हैं। तैसे ही आत्माके अज्ञानसे जगत् उत्पन्न होता है परन्तु आत्मा सत् रूप है, तिससे उत्पन्न हुआ जगत् असत् रूप है। हे किंकर ! तू अब तक अविद्यामें बँधा है ज्ञान तुझको प्राप्त

नहीं हुआ इसीसे अपने मूलसे अप्राप्त है । यमकिंकरने कहा--पूर्व तुमने स्वयं ही कहा है कि, मैं ही सर्वात्मा हूँ तो ज्ञानी अज्ञानी भी तुमही हो, द्वैत है ही नहीं । तब अन हुई द्वैतको क्यों आरोपण करते हो । याज्ञवल्क्यने कहा--मैं कौन हूँ ? यमकिंकरने कहा--जो मैं हूँ । याज्ञवल्क्यने कहा--तू कौन है ? यमकिंकरने कहा--मुझमें जानने न जाननेका मार्ग नहीं आप ही आप हूँ याज्ञवल्क्यने कहा--जब तुझमें जाननेका मार्ग नहीं तो मेरे विषे ज्ञान अज्ञान क्यों आरोपता है ? किंकर तूष्णीं हुआ ।

तिसी समय व्यास आये और कहा--जो कोई मुक्ति हुआ चाहे भक्ति गोविन्दकी करे। याज्ञवल्क्यने कहा--भक्तिका स्वरूप क्या है ? व्यासने कहा--आप सहित सर्व जगत्को हरिरूप जानना ही परम भक्ति है । याज्ञवल्क्यने कहा--आप सहित सर्व हरिरूप जाननारूप भक्ति जीवरूप मनको करनी है । मन दृश्य मिथ्या संकल्प विकल्परूप कल्पित है । तिस मनकी मुक्ति नहीं हो सकती और जीवनका लक्ष्य स्वरूप हरि साक्षी आत्मा चैतन्य "आप सहित सर्व हरि है" इस जानने न जाननेसे पहिले ही स्वतः सिद्ध ही बंध मोक्षसे रहित कथन है, तिसकी मुक्ति भी नहीं बन सकती यहां (जीव भी मनके अतर्भूत ही जानना) । जिसे--जलके अंतर्भूत ही सूर्यका वा आकाशका प्रतिबिंब है, जलके ग्रहणसे प्रतिबिंबका भी ग्रहण होता है तैसे मनरूप जलके ग्रहणसे साक्षी आत्माका मनविषे प्रतिबिंबरूप जीवका भी ग्रहण होता है । अपने स्वरूपका जानना ही मुक्ति है न जानना बन्ध है और मुक्ति बन्धकी कल्पना करना भ्रममात्र है । कोई मुक्ति वस्तु नहीं, जिसके ग्रहणसे मुक्ति होवे ।

योगका प्रयोजन

याज्ञवल्क्यने कहा--इससे हे व्यास ! योग कर जो तेरा मन शांत होवे। व्यासने कहा--मुझ चैतन्य आत्मामें योग वियोग दोनों नहीं; स्वतः ही शांत स्वरूप है, योगके करनेसे नहीं। योग नाम है चित्तकी एकाग्रताका। जब मैं चैतन्य चित्तसे परे नाम जुदा होके चित्तका साक्षी द्रष्टा हूँ तो मुझको चित्तकी एकाग्रता अनएकाग्रतासे क्या मतलब है ? यह चित्त तो एकरस रहता ही नहीं, कभी स्वतः ही एकाग्र हो जाता है (सुषुप्ति आदि स्थानोंमें) कभी चञ्चल हो जाता है। मुझ चैतन्यको इस चित्तकी चञ्चलता और एकाग्रता, दु:ख सुख नहीं देती, विना प्रयोजन नाहक किसीसे छेड़ा छेड़ी करना भलमन्सीका काम नहीं उलटा अपना (लुच्चोंसे छेड़ाछेड़ी कर) बड़प्पन खोना है। इससे मैं चैतन्य योग वियोग दोनोंसे मुक्त हूँ याज्ञवल्क्यने कहा--आत्मा एक है कि दो ? व्यासने कहा--आत्मा एक अद्वितीय है। याज्ञवल्क्यने कहा--जो आत्मा एक होता तो कोई योगमे, कोई भोगमें कोई धर्ममें, कोई कर्ममें, कोई मोक्षके साधनोंमें, कोई संसारके व्यापारोंमें रति कर रहा है, कोई सुखी है, कोई दुःखी है, कोई सर्वज्ञ है कोई अल्पज्ञ है, एकसा नहीं। इससे जाना जाता है कि, आत्मा अनेक हैं एक नहीं। वसिष्ठने कहा--जैसे अनेक मृत्तिकाके घड़े एक स्थानमें धरे हैं, किसी घटमें घृत है, किसीमें मल मूत्र है किसीमें अमृत है, किसीमें विष है, किसीमे तेल है, किसीमें शुद्ध गङ्गाजल है। तिस जलमें सूर्यका वा आकाशका आभास भी पड़ता है। किसीमें शराब है, किसीमे उत्तम २ औषधि हैं, अनेक घड़ोंमें शुद्ध जल भर रहा है, तिनमें सूर्यका वा आकाशका सम ही प्रतिबिंब पड़ता है। अनेक घट मिलन

जलके भरे हैं, तिनमें भी आभास स्पष्ट है। कोई घट बड़े हैं, अनेक छोटे हैं, कोई मध्यभावी हैं, परन्तु आकाश सर्व घटोंमें एक ही निर्विकार, असंग सत्यरूप पूर्ण है; नाना आकाश नहीं और मृत्तिकारूप घट भी एक ही सरीखे हैं, तिनमें जल भी एक ही सरीखा है, सूर्यका वा आकाशका प्रतिबिंब भी सर्व घटोंमें एक ही सरीखा है, परन्तु एक घटके हिलानेसे सब हिलते नहीं; एक घटके फूटनेसे सर्व घट फूटते नहीं क्योंकि, भिन्न भिन्न हैं, परन्तु आकाशका आभास सर्वमें एकसा है जो आकाशका धर्म फूटना हलना होता तो एकके फूटने हलनेसे सब फूटते हलते, परन्तु आकाश आभासका धर्म फूटना हलना नहीं। तैसे ही पञ्चभूतरूप मृतिकाके यह अण्डज, जरायुज, उद्भिज्ज, स्वेदज, देहरूप घट हैं तिनमें अन्तःकरणरूप जल भी एक ही सरीखा है, तिस अन्तःकरणरूप जलमें चैतन्यका आभास भी एक सरीखा है। कोई अन्तःकरण सात्विकी है, कोई राजसी है, कोई तामसी है, कोई मिश्रित है, कोई क्रोधी है, कोई लोभी है, कोई अन्तःकरण भोगी है, कोई वैरागी है, कोई अन्तःकरण शांतिवान् है, कोई धन कमानेमें (रति) प्रीतिवान् है, कोई फकीरीमें रहता है, कोईका अंतःकरण सुखी है और कोईका अंतःकरण दुःखी है कोईका अन्तःकरण सर्वज्ञ है कोईका अल्पज्ञ है इत्यादि अनेक स्वभावोंवाले अंतःकरण ही हैं परन्तु सर्व देहोंमें आत्मा भगवान् एकही निर्विकार निष्क्रिय, सर्वका साक्षीरूप करके स्थित है। जो सुख दुःखादि आत्माके धर्म होवें तो एकके सुखसे वा दुःखसे सर्व सुखी और दुःखी होने चाहिये, इसलिये आत्माके धर्म नहीं किंतु अंतःकरणके धर्म हैं सो अंतःकरण विशिष्ट चैतन्यके देह अनेक हैं इससे एकके दुःख सुखके सर्व सुखी दुःखी

नहीं होते, जैसे-वृक्षरूप औषधियोंके स्वभाव जुदे हैं परन्तु तिनको प्राप्त जल एक है। हे याज्ञवल्क्य! असली विचार करे तो जब अस्ति भाति प्रियरूप सर्वात्मा ही है तो भोक्ता, भोग, भोग्य, कर्ता, कर्म, क्रिया; द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, ध्याता, ध्यान, ध्येय; प्रमाता, प्रमाण प्रमेय; पूजक, पूजा, पूज्य इत्यादि त्रिपुटारूप भी आप हैं और त्रिपुटीका प्रकाश भी आप ही हैं। जैसे--स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नके पदार्थरूप भी आप ही हैं और तिनका प्रकाशक भी आप ही हैं। याज्ञवल्क्यने कहा--जब प्राणायाम कर प्राणको दशवें द्वार चढ़ता है तब भगवान् मिलता है और आनंद प्राप्त होता है। यमराजने कहा--प्राणायामसे दशवें द्वारमें परमेश्वर मिलता है, यह व्यवहार जिसकर सिद्ध हुआ सोई भगवान् है, सो पूर्ण है। क्या भगवान् दशवें द्वारमें ही बैठा है और जगह नहीं? सो नहीं। जिसका मिलाप होगा उसका बिछोह भी होगा। जो भगवान्की योगसे प्राप्ति होती है तो ऐसे योगकी हमको इच्छा नहीं और न मिलाप बिछोहवाले भगवान्की इच्छा है क्योंकि, व्यापक, चैतन्य सुख, नित्य, मुक्ति, बुद्धि, आदिकोंके साक्षी आत्मासे पृथक्, असत् जड़ दुःखरूप परिच्छिन्न अनात्मा वंध्याके पुत्र समान भगवान् है, जैसे मधुरता द्रवता शिथिलतारूप जलसे भिन्न समुद्र अत्यंत असत् है ऐसे भगवान्को मिलकर क्या कार्य सिद्ध होगा? कुछ नहीं, जिसकी योगसे प्राप्ति होवेगी तिसकी अयोगसे अप्राप्ति भी होगी, अपने सच्चिदानंद स्वरूप आत्माको सम्यक् जाननारूप योग करो जो खाने, सोने, बैठने, चलने, भोगने, अभोगने, ध्यान, अध्यान, योग, अयोग, ग्रहण, त्याग, शांति, अशांति, ज्ञान, अज्ञान तात्पर्य यह कि, कायिक, वाचिक, मानसिक सर्व व्यवहारमें एकसा है,

न्यूनाधिक भावको नहीं प्राप्त होता । बालकोंकी लीलाके पीछे क्यों फिरते हैं ? तुझ चैतन्यसे पृथक् भगवान् स्वप्न तुल्य शशश्रृङ्गवत् है, इससे आपको त्यागकर क्यों भटकता है ? इस अनात्मक योगको त्याग । याज्ञवल्क्यने कहा--इस नामरूप जगत्का उपादानकारण अज्ञान है, जब ज्ञानकर अज्ञान नाश हुआ तो ज्ञानीको अपने शरीर सहितजगत् कार्यकी प्रतीति क्यों होती है ? न होनी चाहिये । क्योंकि, उपादानकारणके नाशसे कार्य नहीं रहता यह नियम है । जैसे मृत्तिका सुवर्णके नाशसे घटभूषण नहीं रहते ।

दो प्रकारका भ्रम

धर्मराजने कहा- अन्य शास्त्रोंमें यह प्रकरण विस्तृत कर लिखा है, (यह केवल सिद्धांत ग्रंथ है) परंतु संक्षेपसे सुन । भ्रम दो प्रकारका होता है एक निरुपाधिक भ्रम होता है, दूसरा सोपाधिक भ्रम होता है । जैसे--रज्जुमें सर्पादिक भ्रम तथा स्वप्न भ्रम निरुपाधिक भ्रम है. क्योंकि रज्जुज्ञानसे तथा निद्रारूप कारण (निद्रारूप अविद्या) के नाशसे सर्पादिक कार्य तथा स्वप्नकार्यकी तिसी कालमें अत्यन्त अप्रतीति होती है बाकी शेष कार्यकी प्रतीति होती नहीं, इत्यादि स्थानोंमें निरुपाधिक भ्रम है । तथा जैसे शुद्ध स्फटिकमणि किसी जगहमें पड़ी है तिसके पास लाल पुष्प भी धरा है, तिस स्फटिकमणिमें लाल पुष्पकी शुद्ध लालीकी दमक पड़ती है, परन्तु स्फटिकमणिके अज्ञात पुरुषको शुद्ध स्फटिकमणि लाल प्रतीत होती है । कदाचित् उपदेशसे वा अपनी बुद्धिके विचारसे, किसी पुरुषको शुद्ध स्फटिक मणिका ज्ञान भी हो गया हो तथापि जबलग लाल पुष्प स्फटिकमणिके समीप पड़ा है, तबलग स्फटिकमणि लाल

ही प्रतीत होता है पुष्पके अभावसे लीलाका अभाव होगा अन्यथा नहीं इत्यादि सोपाधिक भ्रमके अनेक दृष्टान्त हैं। तैसे ही यह संसार सोपादिक भ्रम है । यद्यापि आत्मवेत्ता विद्वान्ने कार्य कारणरूप संसारका अत्यंताभाव अपने स्वरूप विषे सम्यक् जान भी लिया है, तथापि जब लग प्रारब्धरूपी पुष्प पडा है,तब लग सम्यक् विद्वान्को भी अपने शरीर सहित संसार रूप लालीकी अपने शुद्ध स्वरूप आत्मामें प्रतीति होती है । जैसे--जलके समीप वृक्षोंके सम्यक् ज्ञाता पुरुषको भी जल विषे उलटे वृक्ष दीखते हैं, जैसे वस्त्र जला भी जब लग वायुका सबन्ध नहीं हुआ, तबलग वैसे ही दीखता है परन्तु कार्य नहीं देता केवल देखने मात्रको ही है। तथा कैसा भी कपडा वा कोई और पदार्थ हो पर अग्निके संबन्धसे बदलकर काला हो जाता है तैसे ही इस पुरुषका ज्ञानरूपी अग्निके संबन्धसे·पूर्व, मैं देह हूँ· कर्ता भोक्ता सुखी, दुःखी पापी, पुण्यवान्·वर्णी, आश्रमी हूँ, मैं जन्म मरणवान् हूँ इत्यादि देहाध्याससे मिलकर जो निश्चय है, सोई सफद कपडेकी मुवाफिक है। जब ज्ञानरूपी अग्निका पुरुषरूपी सफेद कपडेको संबन्ध हुआ तब--मैं शुद्ध, चैतन्य, नित्य, मुक्त, सुखरूप, व्यापक आत्मा हूँ, न जन्मता हूँ, न मैं मरता हूँ, न मैं खाता, पीता, लेता, देता, सोता, जागता हूँ, न मैं देह हूँ न वर्णी आश्रमी हूँ'' इत्यादि सर्व देहके धर्म हैं, मेर नहीं । यही पूर्वसे विलक्षण निश्चय पुरुष सफेद कपडेका रंग बदलकर काला होता है। तथा ज्ञानरूपी अग्नि कर, कारण उपादान अज्ञान सहित यह देह संसार रूप कार्य दग्ध हो भी गया परतु जब लग प्रारब्धके नाश रूप वायुका देह सहित संसार रूप कपड़को संबध नहीं हुआ, तब लग कार्य कारण देह सहित ससाररूप कपडा

ज्ञानीको वैसे ही प्रतीत होता है परन्तु भावी जन्मरूप कार्यको नहीं देता। जैसे, भूना चना पूर्ववत् प्रतीत भी होता है, भक्षणसे क्षुधाका नाशरूप कार्य भी करता है परन्तु भावी अंकुरको नहीं दे सकता तैसे ही दार्ष्टान्त जान लेना तथा जैसे पुरुष मन विशिष्ट देहसे भुवाटी (चक्कर) लेता है। तिस भुवाटी कर सर्व पृथिवी आदि पदार्थ फिरते मालूम होते हैं, तिन पदार्थोंके घूमनेका उपादान कारण अन्तःकरण विशिष्ट देहका घूमना था, पुनः देहके न घूमनेसे भी किंचित् काल पीछे भी सर्व घूमते प्रतीत होते हैं। तैसे ही ज्ञानसे संसारके उपादान कारण (अज्ञान) के नाश हुए भी प्रारब्धके नाश पर्यन्त, किंचित् काल इस देह सहित जगत्के (ज्ञानीको भी) प्रतीति होती है।

याज्ञवक्ल्यने कहा-हे वसिष्ठ ! नाम तेरा योग वशिष्ठ है, तुझको चाहिये योगका पक्ष करना। वशिष्ठने कहा--क्रिया रूप योग कर्ताके अधीन है, चाहे करे चाहे न करे, इसीसे मिथ्या है, जिस कर योग अयोग दोनों अन्तर सिद्ध होते हैं, सोई सत् रूपी है। तेरा मेरा तथा सर्व जगत्का स्वरूप भी वही है। जो कर्ता न हो तो योग अयोग कहां है ? याज्ञवल्कयने कहा--व्यासकी प्रसन्नता निमित्त योगको त्याग कर ज्ञानको निश्चय करता है। व्यासने कहा--मेरा पक्ष अपक्ष नहीं परन्तु जो अकृत्रिम, स्वतः सिद्ध, सत् वस्तु सर्वके अनुभव सिद्ध होवे, तिसीको निश्चय मानता हूँ कहो योग आपसे आप है, कि कर्तासे प्रगट होता है ? याज्ञवल्कयने कहा--करनेसे ही योग होता है। व्यासने कहा--योगके करनेवाले सत् आत्माको जान कि, योग अयोगते मुक्त होवे।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! मैं भी तिस सभामें गया और कहने लगा, सब नहीं है, एक मैं ही हूँ । वसिष्ठने कहा--ऐसे मत कह; जो तू है तो सब भी हैं । मैंने कहा--मैं आपसे आप मुझ विषे पर अपर नहीं । वसिष्ठने कहा--सभासे निकल जा, क्या पर अपर मुझसे भिन्न है ? जैसे पञ्चभूत कहैं पर अपर भौतिक पदार्थ हमारेमें नहीं तिनका कहना सभामें हांसी योग्य है । मैंने कहा -मैं किसीकी सभामें नहीं बैठा हूँ आपसे आप स्वयंप्रकाश स्वरूप हूँ; यदि बैठा भी हूँ, तो अपनी सभामें बैठा हूँ, क्योंकि, पंच ज्ञानेंद्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय, पंच प्राण, मन, बुद्धि, चित्त अहंकार इत्यादि कार्य कारण नामरूप प्रपंच मुझ अधिष्ठान समुद्रविषे फेन बुद्बुदे तरंगादिकोंके समान कल्पित हैं, मुझ चैतन्यकी सत्तासे पृथक् श्रोत्रादिक इंद्रियोंकी पृथक् सत्ता नहीं, मुझसे ही चैतन्य हो रहे हैं, जैसे–दाहकता, उष्णता, प्रकाशकतारूप अग्निकर ही लोहा उष्ण, प्रकाश, दाहक होता है स्वतः नहीं । इससे पूर्वोक्त इन्द्रिय मनादि मुझ चैतन्यके गुलाम हैं, तिनमें मैं चक्रवर्ती राजाके समान विराजमान हूँ । इससे यह अन्य किसीकी सभा नहीं किन्तु मैं अपनी सभामें बैठा हूँ । जैसे--फेन, बुद्बुदे, झाग, तरंगादिकोंकी सभामें जल बैठे जैसे अनेक घटोंकी सभामें मृत्तिका बैठे, जैसे अनेक भूषणोंकी सभामें सुवर्ण बैठे, जैसे स्वप्नके ऋषिश्वरों, मुनीश्वरों, सिद्ध योगीश्वरों, ब्रह्मवेत्तों धर्मात्माओं तथा अन्य स्वप्ननरोंकी सभामें स्वप्नद्रष्टा बैठे तैसे मैं इस मायिक प्रपंचरूप संघात सभामें बैठा भी अमायिक स्वरूप हूँ । हे याज्ञवल्क्य ! जो योग सत् होता तो आपसे आप क्यों न होता ? योग करनेसे होता है । काया मन वाणीसे

जो जो कर्म होते हैं और जो तिन कर्मोंका फल है सो सर्व अनित्य मायामात्र है । तेरा योग भी कायिक, वाचिक मानसिक कर्मरूप है इससे अनित्य है । मुझ योगसे जाननेवाले सत् आत्माको तेरे अनित्य योगकी इच्छा नहीं ।

विष्णु

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! तिसी समय विष्णु भी आया और कहा कि विष्णु नाम व्यापक, नित्य, सुख, चैतन्यके साथ अपने आत्माको अभेद सम्यक् जानेगा सो कालके भयसे छूटेगा, क्योंकि जो देश, काल, वस्तु भेदवान् पदार्थ होता है, सोई परिच्छिन्न अनित्य पदार्थ होता है, तिसीको काल भक्षण करता है इससे मुझ चैतन्यके साथ अभेद हो, जो अज्ञानरूपी कालसे छूटे । जैसे घटाकाश जब आपको महाकाशसे अभेद सम्यक् जानता है तब भ्रमरूप, पर अपर परिच्छिन्न प्रतीतरूपी मृत्युसे मुक्त होता है । मैंने कहा--हे विष्णु ! मुझ चित् सुख नित्य व्यापकक साथ जो अभेद होगा सो कालसे मुक्त होगा, जिसकर यह मन वाणीका कथन किंचित् सिद्ध नहीं होता है सो मैं अवाङ्मनसगोचर; स्वयंप्रकाश स्वरूप हूँ मुझविषे भेद अभेद दोनों नहीं जिसमें अभेद हो तिसमें भेद भी होगा और जो भेद अभेद-वान् पदार्थ हैं सो मिथ्या दृश्य मायामात्र हैं । विष्णु नाम मायाका है, मायासे रहित विष्णुका परम पद है, कहो मायिक अमायिक अभेद कैसे होगा ? दूसरा यह बड़ा आश्चर्य है, कि, तुझ नित्यसुख चित् व्यापक स्वरूप विष्णुको "यह मुझसे भिन्न है कि जब मुझसे अभिन्न होगा, तब कालकी फांससे मुक्त होवेगा" यह भेद अभेद कैसे प्रतीत हुआ ? जैसे मधुरता, द्रवता, शीतलतारूप जल,

फेन बुद्बुदे, तरंगादिकोंको उपदेश करे कि, तुम सब मुझसे अभिन्न होगे, तो कालते बचोगे, भिन्न रहोगे तो कालका ग्रास होगे। यह तिसका उपदेश हांसी योग्य है, क्योंकि, फेन, बुद्बुदे, तरंगादिक, मधुरता द्रवता, शीलतारूप जलसे पृथक् हैं ही नहीं। वा जलरूप ही हैं, तिन तरंगादिकोंको जलसे भेद अभेदका उपदेश जलको लज्जाका काम है। तैसे जब नित्य, सुख, प्रकाश, व्यापक, कालादिक स्वरूप भी तू ही है, तब तुझसे कहो कौन भिन्न है ? तुझसे अभिन्न होके कालसे बचे ? इससे यह सब कहनेमात्र हैं। विष्णुने कहा--तुझ अवाङ्मनसगोचरने मन वाणीका चिंतन कथन कैसे जाना ? मैंने कहा--मैं चिद्घन देव अवाङ्मनगोचर होकर भी सर्वका आत्मा-होनेसे स्वतः ही सर्वको अनुभव करता हूँ, जो मैं अनुभवस्वरूप नहीं होऊँ तो यह जड, चैतन्य है यह नहीं, इत्यादि दृश्यके व्यवहारकी सिद्धि कैसे होवे। जैसे-स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नसृष्टिसे अवाङ्मनसगोचर हुआ होता भी सर्व स्वप्नसृष्टिको अनुभव करता है, जो स्वप्नद्रष्टा स्वयंप्रकाश, स्वप्नका अनुभव करनेवाला नहीं होता तो स्वप्न सृष्टिका तथा तिसके व्यवहारोंका भिन्न भिन्न हाल कैसे जाना जाता, किन्तु नहीं जाना जाता।

शिव

तिसी समय ज्ञानके समुद्र शिव आये और कहा--शिव नाम कल्याणस्वरूप तथा मंगलस्वरूप एक चिद्रूप मैं ही हूँ, मुझसे पृथक् यह सर्व नामरूप दृश्य अकल्याण अमंगलस्वरूप हैं, मुझकर ही यह मंगलस्वरूप ही रहा है अन्यथा नहीं। जैसे--सूक्ष्म शरीर करही स्थूल शरीर मंगलरूप हो रहा है, क्योंकि, तिस अमंगलस्वरूप दृश्यका

मैं शिव मंगल स्वरूप आत्मा हूँ। धर्मराजने कहा--स्वरूप मंगल अमंगलसे न्यारा है, मंगल अमंगल दृश्य माया-कोटिमेंही है जैसे स्वप्नमें कोई पदार्थ मंगलरूप प्रतीत होता है, कोई अमंगलरूप प्रतीत होता है (मंगलनाम सुखका है अमंगलनाम दुःखका है) परंतु स्वप्नद्रष्टा-दोनोंसे अतीत है। शिवने कहा--हे धर्मराज ! अपेक्षित दृश्यरूप मंगल अमंगलको प्रकाश करने हारा मैं शिव स्वयंसिद्ध मंगलस्वरूप हूँ। व्यासने कहा--जो मंगलस्वरूप है सो अमंगल भी होगा। शिवने कहा--मंगलस्वरूप चैतन्यको अमंगल किसने किया है ? कहो, जीव वा ईश्व-रने वा ब्रह्माने वा मायाने वा मायाके कार्य प्रपंचने ? जीव ईश्वर ब्रह्म तो मुझ शिवसे भिन्न होकर मुझको अशिव कर नहीं सकते, मुझ शिव चिद्घन देवसे भिन्न अशिव होनेके भयसे और मायाके कार्यप्रपंच मुझ सद्रूप, शिवसे जुदे अशिव असत् रूप हैं, सत् असत्का एक कालमें और एक ही स्थानमें इकट्ठा संबंध होता नहीं। जैसे--स्वप्न जाग्रत्का संबंध होता नहीं। संबंध विना शिवको अशिव कैसे कर सकेंगे किन्तु नहीं कर सकेंगे इस कारण मैं एक ही अनंत नित्य ज्ञानरूप शिव हूँ। जैसे--निमकके डलेको कोई भी मधुर नहीं कर सकता, स्वभावसे ही लवण स्वयं सिद्ध है। यमकिंकरने कहा--जब तुम एक ही शिव हो तो अशिव कहां है। जिसका निरूपण करते हो ? शिवने कहा--जिसने मुझ शिवसे भिन्न होकर मुझ शिवका निरूपण सुना है सोई अशिव है। हे यमकिंकर ! जब मैं ही हूँ तू है ही नहीं, तूने मेरा निरूण कैसे सुना इससे तू ही अशिव है। यमकिंकर तूष्णीं हुआ।

योगविषयक-संवाद

पराशर कहते हैं। मैंने कहा--हे याज्ञवल्क्य ! रूप तेरा क्या है ? याज्ञवल्क्यने कहा--मैं पूरक, कुम्भक, रेचक करता हूँ ईश्वरका योगविषे स्थित होकर ध्यान करता हूँ। परन्तु आपको नहीं जानता कि. मैं कौन हूँ ? तू ही कह, मैं कौन हूँ ? मैंने कहा--हे याज्ञवल्क्य ! जिससे पूरक, कुम्भक, रेचक प्राणायामका न्यूनाधिकभाव जाना जाता है जिसकर योगविषे स्थित हुआ "मैं ईश्वरका ध्यान करता हूँ वा नहीं" यह मनका धर्मरूप ध्यान अध्यान जिसने सिद्ध किया सोई तू निर्विकार, निर्विकल्प, स्वतः सिद्ध, मनका ध्यानरूपयोग वा प्राणोंकी क्रियारूप योगका द्रष्टा चैतन्य है। हे याज्ञवल्क्य ! तू बन्धरूप दुःखकी निवृत्तिवास्ते और मोक्षरूप सुखकी प्राप्तिवास्ते ही योगादिक साधनोंमें प्रवृत्त होता है और तो कुछ योगादि साधनोंसे मतलब नहीं। सो तू पक्षपातसे रहित होकर सूक्ष्म विचारसे देख। मनकी वृत्तिरूप सुख दुःखके सिद्ध करनेवाले तुम द्रष्टा, साक्षी, चैतन्यमें सुख दुःख कहां है ? अंतर मनकी एकाग्रतारूप समाधिके सुखको और मनके विक्षेपरूप दुःखोंको वा शारीरिक दुःखोंको जिसने अनुभव किया, सोई तू अनुभवस्वरूप सुख दुःखसे रहित आत्मा है। क्योंकि विना कीचड़ लागे कीचड़के दूर करनेका यत्न करता है। आत्मा विज्ञानवान् पुरुषोंके मध्यमें क्यों अपनी हांसी कराता है। योग, अयोग, सुख, दुःख बन्ध मोक्ष और बन्ध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते यत्न, विद्या, अविद्या, ग्रहण त्यागादि सब अनात्म धर्म तुझ आत्माके दृश्य हैं। दृश्यके धर्म अपनेमें मान कर क्यों विक्षेपवान् होता है ?

श्रवणादिका स्वरूप

याज्ञवल्क्यने कहा--हे पराशर ! श्रवण, मनन, निदिध्यासन, साक्षात्कारका स्वरूप कहो। मैं तो तूष्णीं हुआ। शिवने कहा--हे याज्ञवल्क्य ! सुन, श्रवण, करनेवाला चैतन्यके आभास सहित अंतःकरण और श्रवण नाम अन्तःकरणकी वृत्ति और श्रवण करने योग्य शब्दका अर्थ इस त्रिपुटीका प्रकाश करनेवाली जो चैतन्य वस्तु है सो ही मैं हूँ अन्य नहीं। इस दृढ निश्चयका नाम श्रवण है। वा अन्तर प्राणरूप वायुके संचारसे साधारण शब्द होता रहता है जिसको अनहद शब्द बोलते हैं, सो मनकी भावनारूप दश प्रकारके शब्द की कल्पना होती है, उसीमें एकाग्रता वास्ते मनको जुडना होता है, सो दश प्रकारके शब्द तथा तिन दश प्रकारके शब्दोंमें मनका जुडना न जुडना जिसकर यह सर्व व्यवहार जाना जाता है सो हो मैं निर्विकार, निर्विकल्प वस्तु हूँ अन्य मैं नहीं। इस निश्चयका नाम श्रवण है। श्रवणका सिद्ध करनेवाला आत्मा ही श्रवणीय है इससे आपको आत्म श्रवणी जान,। इसीका नाम श्रवण है। तात्पर्य यह कि, श्रोत्र इंद्रिय सहित मनका धर्म श्रवण है मुझ चैतन्यका धर्म नहीं; किंतु मैं असंग चिद्घन देव हूँ। हे याज्ञवल्क्य ! तैसे ही चैतन्यके प्रति बिंब सहित मननकर्ता मन, मनकी वृत्ति तथा (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष,) मनन करने योग्य पदार्थ, इस त्रिपुटीके सर्व व्यवहारको अनुभव करनेवाला मैं नित्यमुक्त ज्ञान स्वरूप आत्मा हूँ सारांश यह कि, मन और मनके मननको जाननेवाला मैं हूँ इस निश्चयका नाम मनन है तैसे ध्याता, ध्यान- ध्येय सारांश यह कि, साक्षी चैतन्यके आभास सहित अन्तःकरण ध्याता बालकके समान वा तालाबके जलके समान

जानना. ध्यान डोरके समान वा तालाबमें छिद्र द्वारा निकले जलकूलके सामान जानना और गुण वा निर्गुण परमेश्वरसे आदि लेकर सर्व नाम रूप कार्य कारण प्रपंच, ध्येय कोटिमें जानना । तथा कनकौवा क्यारीके तुल्य दृष्टांत जानना । तात्पर्य यह कि, ध्यता, ध्यान, ध्येय रूप त्रिपुटीके न्यूनाधिक भावाभावका पहचान करनेवाला, अपनी महिमामें स्थित, साक्षी आत्मा मैं हूँ, यह त्रिपुटी दृश्यरूप मैं नहीं । जैसे--सूर्य वा आकाश लड़केको, डोरे--को, गुडीको निर्विकार असंग हुआ (पूर्वोक्त त्रिपुटीको) प्रकाश करता अवकाश देता है, तिस त्रिपुटीको अपना स्वरूप नहीं जानता है, इस दृढ निश्चयका नाम निदिध्यासन है । जैसे-संशय विपर्ययसे रहित सर्व अज्ञानी जीवोंकी देह विषे आत्म बुद्धि अपरोक्ष है ! तैसे ही--श्रवण, मनन, निदिध्यासनका जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदिका, तिनमें वर्तनेवाले प्रपंचका जो प्रकाश है सो अनंत नित्य चिद्घन देव निश्चय कर मैं ही हूँ ! इस अपरोक्ष बुद्धिका नाम आत्म साक्षात्कार है । परंतु इस बुद्धिके निश्चयरूप, साक्षात्कारको भी मैं जाननेवाला इस साक्षत्कारसे परे अवाङ्मनसगोचर, स्वयं प्रकाश स्वरूप हूँ, इससे परे और कुछ नहीं । यही अनुभव ही परम अवस्था है, यही परम पद है, यही परम साक्षात्कार है, आगे जो तेरी इच्छा हो सो कर । हे याज्ञवल्क्य! जब इस अनुभवका अनुभव होता है तब प्रह्लादके समान अनेक संकटोंमें प्राप्त हुआ भी अपने अस्ति भाति प्रिय रूप सर्वात्म स्वरूपके निश्चयसे चलायमान नहीं होता, जिधर किधर अपना ही स्वरूप देखता है। बाहरसे तिसका व्यवहार जैसे पूर्व श्रेष्ठाचरणवाले विद्वान् पुरुषोंका हुआ है तैसे ही होता है परन्तु वास्तवसे अन्तर तिसका, जड

चेतनका तथा जीव, ईश्वर, स्त्री, पुरुष, शुभाशुभ, बंध, मोक्षादि भेद निवृत्त हो जाता है। याज्ञवल्क्य तूष्णीं हुआ। यमकिंकरने कहा-मन इंद्रियोंके प्रकाशक-गोविंद आत्माने ही अनेक नामरूप होकर प्रकाश किया है, कैसे एकात्मा जानूँ ? शिवने कहा- हे यमकिंकर ! जैसे--एक ही सुवर्णसे अनेक नाम रूप भूषणोंका प्रकाश होता है, परंतु सुवर्ण ही है अन्य कुछ नहीं। जैसे--अनेक नामरूप करके वृक्ष प्रकाशमान भी है, परन्तु विचारसे सर्व काष्ठ-रूप ही हैं, तैसे यह अनेक नामरूप जगत् भासता भी है परंतु सम्यक् विचारनेसे सर्व नामरूप प्रपंच अस्ति, भाति, प्रियरूप आदि, मध्य, अंत तू ही सर्वात्मा है, तुझसे पृथक् कुछ नहीं। यमकिंकर तूष्णीं हुआ क्योंकि, जब समुद्र लहर मारे तब हँसली कूप तलाव कहां रहे।

भजन किसे कहते हैं ?

गौतमने कहा--मुक्ति भजनसे होती है, भजन यही है कि, रसनासे "-नारायण नारायण" कहना। मैंने कहा--भजन सब करते हैं पर सुखकी अप्राप्ति है। हे गौतम ! भज नाम भंज जानेका नाम त्याग जानेका है न अर्थ निषेधका है तात्पर्य यह कि, इस कार्य कारणरूप संघात देहविषे अन हुए अहंकारका त्याग करनेका नाम भजन है। पुनः तिस देहविषे, अहंकार बुद्धिके त्यागका भी अभिमान न करनेका नाम परम भजन है। माया और मायाके कार्य स्वप्नवत् सर्व नामरूप प्रपंचका नाम नर है सो नररूप गृहविषे अस्ति, भाति, प्रिय सर्वका आत्मा-रूपसे है निवास जिसका, सो कहिये नारायण। जैसे फेन बुद्बुदे तरंगादिरूप गृहविषे मधुरता शीतलता, द्रवता रूपसे है निवास जिसका सो कहिये जल वा पूर्वोक्त नरका अयन (आश्रय) जो नित्य सुख प्रकाश स्वरूप

अधिष्ठान है, सो कहिये नारायण। जैसे फेन बुद्बुदे तरंगादिकोंका अधिष्ठान जल है। सो पूर्वोक्त नारायण मुझ असंग, निर्विकार, बुद्धि आदिकोंके साक्षी आत्मासे भिन्न नहीं; जो भिन्न मानोगे तो तुम्हारा नारायण अनात्मा घटवत् अनित्य हो जावेगा। क्योंकि आत्मासे भिन्न अनात्माही होता है, यह नियम है। इससे क्या सिद्ध भया कि, पूर्वोक्त रीतिसे इस संघातका तथा संघातके सुखदुःखादि धर्मोंका अहंकार त्यागना पुनः तिस अहंकारके त्यागका भी अभिमान न करके सच्चिदानन्द नारायणको अपने आत्मासे अभेद जानना ही परम भजन है। सब संतोंसे पूछ देखो ऊँचा, नीचा, अंतर, बाहर सर्व नारायण आत्मा ही है।

विरक्त किसे कहते हैं ?

गौतमने कहा--मैं सर्वको त्यागकर विरक्त होता हूँ। मैंने कहा-विरक्त उसको कहते हैं जो किसीके हेतु खेद न करे; परंतु तू गृहस्थादिक पदार्थोंको द्वेषसे त्याग करता है; किसी मोक्षादिक पदार्थके लिये विरक्तता ग्रहण करता है; इससे तू विरक्त न हुआ, दूसरा यह है कि जिस अहंकारको त्यागवत् त्यागकर आत्माकी प्राप्तिकी प्राप्ति जाननी थी सो तो करता नहीं, जो अयत्न ही सुखका हेतु है। कपासके सफेद वस्त्र तथा धातुके पात्रको त्यागके सयत्न मृगछाला वा भोजपत्र तथा कमंडलुका ग्रहण करनेसे क्या त्याग और क्या ग्रहण किया ? केवल जिस अभिमानसे संन्यास करना था उसीकी उलटी बुद्धिका हुआ ! विरक्त वही है, जो ग्रहण त्याग बुद्धिरहित अपने स्वरूपमें स्थित है। जो एक वस्तुसे द्वेषपूर्वक संन्यास करता है और अन्य वस्तुको रागपूर्वक ग्रहण करता है

सो विरक्त नहीं। वा निजस्वरूपसे पृथक् दृश्यमें रति नहीं करता, तिसका नाम विरक्त है वा नाम रूप दृश्यके मिथ्यात्व निश्चय पूर्वक जो निजस्वरूपमें ही विशेष करके रति करता है तिसीका नाम विरक्त है। गौतमने कहा--भेष मेखली आदि विरक्त राखते हैं, तैसे ही मैं भी होता हूँ। मैंने कहा--तेरी बुद्धि हँसने योग्य है क्योंकि, विरक्तको भेष मेखलीसे क्या प्रयोजन है ? जो अहंकारका त्यागी है सोई विरक्त है।

प्राणायामका फ़ल वर्णन

इतनेमें अत्रिने आकर कहा--कि, प्राणायामरूपी योग करके ही मुनींद्र, योगीन्द्र मुक्त हुए हैं विना योग मुक्ति नहीं। व्यासने कहा--योग स्वयंप्रकाश है कि पर प्रकाश है ? अत्रिने कहा--योग करनेसे होता है इससे जाना जाता है पर प्रकाश है। व्यासने कहा--पर प्रकाश योगसे स्वयंप्रकाश, नित्यमुक्त आत्माकी मुक्ति कैसे होगी, उलटा स्वयंप्रकाशक आत्मासे ही योगकी सिद्धि होती है जो आगे ही स्वरूपसे मुक्त है सो किसी रीतिसे आपको भ्रम करके अमुक्त माने, तिसी भ्रमकी निवृत्तिसे मुक्तकी मुक्ति होती है, अन्य किसी योग कर्मादि अनेक क्रियारूप साधनोंसे तिसकी मुक्ति नहीं होती क्योंकि, कर्म योगादि भी भ्रमरूप हैं। जैसे स्वप्नमें राजा निद्रा दोषसे आपको दरिद्री मानता है, सो तिसकी दरिद्रता निद्रारूप दोषकी निवृत्ति विना अनेक क्रियारूप योगादि साधनोंसे दूर नहीं होती। जैसे--पर प्रकाश स्वप्न पुरुषोंके योगादि अनेक साधनोंसे स्वप्नद्रष्टा स्वयंप्रकाश स्वरूपकी मुक्ति नहीं होती. क्योंकि, स्वप्न पुरुषोंसहित सर्व योगादि स्वप्नके पदार्थ स्वप्न द्रष्टामें कल्पित हैं, कल्पित पदार्थ अधिष्ठानकी अनुकूलता तथा प्रतिकूलता कुछ कर नहीं सकत। किन्तु विचार द्वारा ही

भ्रमकी निवृत्तिसे मुक्त स्वरूप आत्मा पुनः आपको मुक्त स्वरूप मानता है। अत्रिने कहा--योगसे शुद्धि होती है। व्यासने कहा--कितने ही आपको योगी माननेवाले थे तथा जगत्में भी तिनका योगीपना प्रसिद्ध था, परन्तु जब वे मुये हैं वा जीवित अवस्थामें भी तिनके अंग, शरीर, मांस, त्वचा, रुधिर, अस्थि, नाडी, रोम, मल, मूत्र जैसे सर्व अयोगी पुरुषोंको हैं तैसे ही तिन योगियोंके देख गय हैं विशेषता नहीं रोज ही नेती, धोती, जलका पखालना मलके दूर करनेवास्ते करते हैं परन्तु उलटी आगेसे दुगुणी होती है, न्यून नहीं। यह सब विद्वानोंका अनुभव है । तथा यह क्रियारूप योग तो नट मँगता लोक भी कर सकते हैं (पंजाबके राजा रणजीत सिंहके वक्तमें यह प्रसिद्ध बात है और पञ्जाब देशके निवासी विद्वान् जानते भी हैं कि, कोइक मंगताने लाहौरमें रण-जीत सिंहके सम्मुख तथा अन्य हजारों पुरुष स्त्रियोंके सम्मुख षट्मासका प्राणायाम करके समाधिनामा दशवें द्वारमें प्राण चढाया था पीछे सरकारसे इनाम माँगा) इससे योग क्रिया है, करनेवाला सम्यक् चाहिये, सब हो सकता है। अन्य जगहमें भी सुननेमें आता है। देखो ! प्रसिद्ध है नट और नटनी लोगोंके शरीरकी कसरत देखकर सबको आश्चर्य होता है (नित्य अभ्यासका फल है) परन्तु तिनकी मुक्ति नहीं होती जिन्होंने अपने सम्यक् आत्म विचारसे सम्यक् स्वरूपको अपरोक्ष जाना है वे जीवित अवस्थामें ही कृतकृत्य हुए हैं। इससे हे अत्रि ! आत्मविचारसे ही भ्रम दूर होता है क्रियारूप योगसे भ्रम दूर नहीं होता। भ्रम छूटे विना सुख नहीं, आत्म-विचारसे योग आपही आप होता है । अत्रिने कहा--योगके विना अन्तर्दृष्टि कैसे खुले ? व्यासने कहा--अन्त-

दृष्टि आत्मविचारसे खुलती है, योगसे नहीं योगसे उलटा अन्तर मलिन होता है. क्योंकि, जब योग करता है तब दृष्टि सर्व अंगोंपर करता है जिधर जिधर रुधिर मांस ऊपर दृष्टि आती है और कुछ नहीं आती। शरीर अति मलीन हैं शारीरिक दृष्टि भी मलीन है। जिसको सम्यक् आत्मविचार हुआ है तिसको दिव्य दृष्टि कहते हैं क्योंकि, "जो पिंडे सोई ब्रह्मंडे, जो खोजे सो पावे"। जैसे-एक घटका सम्यक् विचार करनेसे घटका मृत्तिकारूप अपरोक्ष बोध पुरुषको होता है। तैसे ही सर्व ब्रह्मांडके सर्व घटोंका भी विना यत्नसे तिसको मृत्तिका रूप अपरोक्ष बोध होता है। तैसे ही जिस विद्वान् पुरुषने इस व्यष्टि शरीरको दृश्य रूपता वा पंचभूत रूपता वा माया रूपता वा अनात्म रूपता वा अपने आत्म स्वरूपमें कल्पित स्वरूपता और अपने आत्माको अवाङ्मनसगोचरता, वा अस्ति भांति प्रिय, सर्व रूपता, सम्यक् अपरोक्ष रूप जाना है तिसको समष्टिका विना यत्न अपरोक्ष बोध होता है, जो पिंडे सोई ब्रह्मण्डे। जिसको भूत, भविष्यत्, वर्तमान कालका ज्ञान है वह काल दृष्टि कहलाता है, सो ज्योतिषी आदिक घने हैं; कोई परम पदको नहीं प्राप्त होते। मोक्षके हेतु आत्मदृष्टि वास्ते आत्मविचार ही कर्तव्य है। इससे हे अत्रि! अन्तर बाहर सर्व गोविंद आत्मा मैं ही हूँ, मुझ आत्मासे भिन्न कुछ नहीं। इस दृढ निश्चयका नाम ही योग है। जो अपने स्वरूपसे पृथक् देखना है सोई मलीनता है, जैसे--जलसे भिन्न बुद्बुदे तरंगादिकोंकी प्रतीति भ्रम है। अत्रि तूष्णीं हुआ।

इन्द्र

तिस समय इन्द्रने आकर कहा--"मैं नित्य सुख चिद्रूप, इंद्र इस संघात रूप स्वर्ग विषे मन चक्षु इंद्रियादि देव-

तोंका साक्षी रूप होकर स्थित हूँ । सत, रज, तम गुण-रूप त्रिलोकीका मैं चैतन्य साक्षी ही प्रेरक हूँ" वा स्थूल शरीर समष्टि व्यष्टि तथा समष्टि व्यष्टि सूक्ष्म शरीर तथा समष्टि व्यष्टि कारण शरीर रूप, त्रिलोकीका व्यवहार मैं चैतन्य इंद्र ही सिद्ध करनेवाला हूँ । वा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति रूप त्रिलोकीका प्रकाशक मैं ही तुरीय चैतन्य रूप इंद्र हूँ । माया रूप मुझ आत्मा इन्द्रादी इन्द्राणी इस त्रिलोकीका उपादान कारण है । श्रोतादिक देवता रूप इंद्रिय, शब्द, स्पर्श रूप, रस, गन्ध आप अपने विषयोंमें मुझ द्रष्टा साक्षी चैतन्य इन्द्रकी आज्ञा रूप सत्ताकर ही प्रवृत्त होते हैं अन्यथा नहीं । पृथिवी, अप, तेज, वायु, आकाश मुझ चैतन्य इंद्रके आगे प्रधान देवता हैं, मैं चैतन्य साक्षी इन्द्र सर्व नाम रूप त्रिलोकीमें पूर्ण हूँ, मैं चैतन्य ही त्रिलोकीको प्रकाश करता हूँ, जस-स्वप्न द्रष्टा सर्व स्वप्न सृष्टिमें पूर्ण है तथा सर्वको प्रकाश करता है; जो मैं पूर्ण नहीं होऊँ तो तिनकी सिद्धि कैसे होवे ? मुझ सत् रूप चैतन्यको त्रिलोकी तथा त्रिलोकी अंतर्वर्ती पदार्थ कोई भी जान नहीं सकते, मैं सबको जानता हूँ । इसीसे मैं स्वयं प्रकाश हूँ । व्यासन कहा--स्वयं प्रकाश और परप्रकाश, मन वाणीका कथन चिंतन रूप धर्म है । मै आत्मा इससे भी परे हूँ । मुझ आत्मामें पूर्ण अपूर्ण दोनों नहीं । स्वतः ही निर्विकल्प हूँ इन्द्र तूष्णीं हुआ ।

ब्रह्मा

तिसी समयमें ब्रह्माने आकर कहा--मैं व्यापक ब्रह्म, चैतन्य, अतर्यामी, परमेश्वर, सर्व ब्रह्मलोक रूप देहोंमें साक्षी रूप होकर स्थित हूँ, परंतु जिस अधिकारीको मुझे व्यापक चैतन्य परमेश्वरके दर्शन करनेकी इच्छा हो सो "इस मनुष्य देहरूप ब्रह्मलोक विषे जो सर्व मनादिकोंका

हर वक्त सदा अपरोक्ष साक्षी रूप चैतन्य आत्मा है सोई मेरा स्वरूप है और इससे पृथक् नहीं, सो साक्षी चैतन्य आत्मा मैं हूँ'' यही निश्चय करे; यही मेरा दर्शन है। ऐसा बहम (भ्रम) नहीं करना कि, पूर्वोक्त स्वरूपसे भिन्न परमेश्वरका स्वरूप किसी स्थानमें है वा किसी कालमें मिलेगा परन्तु हे अधिकारी जनो ! मैं तुम्हारा आत्मा मन आदिकोंका साक्षी रूप होकर सदा अपरोक्ष स्थित हूँ। व्यासने कहा--हे देवनके देव ! वचन तुम्हारा अमृतके समान है, तुम नित्य, सुख, अनंत, साक्षी, आत्मा मन-वाणीके अगोचर हो, तुमको कैसे जाना जावे ? ब्रह्माने कहा--हे व्यास ! मुझ सुख चित्, नित्य, साक्षी आत्माका अवाङ्मनसगोचर कर जो अनुभव होना है, यही मुझ परमेश्वर साक्षीका सम्यक् जानना है, अन्य प्रकार असं-म्यक् जानना है। व्यास तूष्णीं हुआ।

महादेव

महादेव कहते भये--हे सभा ! जो तुम्हारे अंतर सच्चिदा-नन्दरूप, मन आदिकोंका साक्षी आत्मा है तथा मन वाणीके चिंतन कथनसे परे है तथा स्वरूपसे ही बंध मोक्षसे रहित है, परन्तु सदा हाजिर हुजूर है सोई वस्तु तुम आपको जानो। इस वस्तुसे जुदा परमेश्वर, परमात्मा, ईश्वर, नारायण, गोविंद, विष्णु, शिवादिक नामोंसे प्रतिपादित परमात्मा भिन्न नहीं । जो भिन्न होवेंगे तो असत् जड दुःखरूप वाणीके तथा मन वाणीके गोचर अनात्मा दृश्य होवेगे, जो जो मन वाणीके कथन चिंतनमें आता है सो सो दृश्य, दुःख, जड, अनित्य, अनात्मा है तिनको तुम सम्यक् अपना स्वरूप मत जानो, कायिक, वाचिक, मानसिक कर्म करते भी आपको अकर्ता अभोक्ता जानो तुमको तिन कर्मोंका स्पर्श सुख दुःख न होगा।

जैसे चकोरकी चंद्रमाके साथ अतिप्रीति होनेसे अग्निका भक्षण करता हुआ भी अग्निका दाह तिसको नहीं होता।

शुक्र

तिसी समय शुक्र आये और कहने लगे--जबलग त्रिपुटी विषे न बैठे तबलग सुख नहीं पाता। उससे तुरीया श्रेष्ठ है व्यासने कहा--हे शुक्र जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिके प्रकाश करनेवाले आत्माका नाम तुरीया है, तिसकी ही श्रेष्ठता है अन्यकी नहीं। सो आत्मा जाग्रत् स्वप्न, सुषुप्तिमें भी हरवक्त अपरोक्ष है, जो आत्मा तिनमें पूर्ण न होवे तो तिनका प्रकाश कैसे होवे ? इससे "जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिको त्याग कर तुरीयामें स्थित होवे" यह वचन हँसीके योग्य है; हाँ ! जाग्रतादिकोंमें पूर्ण हुआ तिनका प्रकाशक सुखरूप तुरीया आत्मा मैं हूँ, यह निश्चय तो ठीक है तैसे ही सुखरूप आत्मा सर्व अंगोंमें पूर्ण है, जो आत्मा सर्व अंगोंमें पूर्ण नहीं होवे तो सर्व अंगोंका ज्ञान न होना चाहिये. क्योंकि, ज्ञानस्वरूप आत्मा ही है अन्य नहीं। सर्व अंगोंको त्यागकर त्रिपुटीमें स्थित होवे यह तेरा कहना लज्जाका काम है। क्योंकि, सुखरूप आत्मा पूर्ण है, त्रिपुटी तो रुधिर मांस अस्थि रूप है; तिसमें सुख कहां है ? आत्मा सर्व अवस्थामें सम है और आत्मामें सब अवस्थामें सम है।

मैत्रेयने कहा--हे पराशर ! मैं कौन हूँ ? नेत्र, त्वचा, कान, रसना, घ्राण हूँ ? वा हाथ, पाँव, वाक्, शिश्न, गुदा हूँ ? शब्दादिक पंच विषय हूँ ? वा सत्, रज, तम, तीन गुण हूँ ? वा प्राण, मन बुद्धि, चित्त, अहंकार हूँ ? वा पञ्चभूत हूँ ? वा जड़ माया हूँ ? पराशरने कहा--यह सब तुझे चिद्घन देवसे प्रगट हुए हैं, तुझको कौन कहे जो तू अमुक है,

संसार सागर

मैत्रेयने कहा--इस संसारसमुद्रजलसे मैं पार कैसे होऊँ ? पराशरने कहा--तुझ अस्ति भाति प्रियरूप वस्तुसे भिन्न संसार समुद्र जल है ही नहीं तो पार किससे उतरता है ? लज्जावान् हो, जो मृगतृष्णाके जलसे पार होनेवास्ते नौकाकी इच्छा करता है, पहले संसारविषे जलको निश्चय कर पीछे पार हूजियो । मैत्रेयने कहा--तुमहां कहो--जल कौन है ? पराशरने कहा--जैसे जलके विना समुद्र असार है, तसे तुझ सुख, अनन्त, चिद् आत्मारूप जलसे यह नाम रूप संसार तरंग असार है । इससे तू ही चैतन्य आत्मा जलरूप है, जब तूने आपको अस्ति भाति प्रियरूप सार जल जाना तो विचारसे देख, संसाररूप समुद्र कहां है ? किंतु कुछ नहीं, यही मुख्य पक्ष है । गौण अर्थ यह है कि, संसाररूप समुद्रमें जल, अहंकाररूप वासना है । मैत्रेयने कहा--वासनाका रूप क्या ह ? पराशरने कहा--वासनाका रूप मैंने देखा नहीं मैत्रेयने कहा--जब रूप देखा नहीं तो संसार समुद्रविषे वासना जल है, यह कैसे कल्पा ? जब अहंकाररूप वासना नहीं राखता तो मुझको वासनासे क्या भय है ? क्योंकि, रूप रहित आकाश किसीको दुःख नहीं देता ।

गणेश

तिस समय गणेश आये और कहा--गणनाम मन सहित चक्षु आदि इंद्रियोंका है, वा गण नाम इस नामरूपमूर्ति सहित सकारण समूह प्रपंचका है, तिनको जो नियमन करे नाम प्रेरणा करे, तिसका नाम ईश है वा ब्रह्मा, बिष्णु, शिवादिक सर्व मूर्ति, अमूर्तिमान् प्रपच गणका जो मालिक होव तिसका नाम गणेश ह । सो यह पूर्वोक्त गणोंका ईशपना चैतन्य वस्तुमें ही घट सकता ह, अन्य

किसी सूक्ष्म वा स्थूल मूर्तिमान् वस्तुमें घट सकता नहीं. क्योंकि, चैतन्य भिन्न सर्व संसारके अंतर्भूत है। इससे गणेश नाम मन आदिकोंके साक्षी चैतन्य आत्माका है । सो पूर्वोक्त गणेश तुम्हारा तथा सर्व जगत्का स्वरूप है ! यह नहीं कि, ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक देवतोंका पूर्वोक्त गणेश आत्मा है और चींटीका आत्मा नहीं चींटीका स्वरूप और है, ऐसा नहीं । चाहे ब्रह्मा, विष्णु. शिव, सत् वक्ता यथार्थ स्वरूपके ज्ञाता बैठे हैं, तिनसे पूँछ लो । पुनः सबने कहा--यथार्थ दृष्टि यही है, स्वरूपमें भेद नहीं, व्यवहारमें भेद है । पुनः गणेशजी कहने लगे--हे सभा ! असली विचार करे तो व्यवहारमें भी भेद नहीं. क्योंकि, व्यवहार नाम कथन प्रतीतका है, सो भी एकसा है । पंच ज्ञानेंद्रिय पञ्च कर्मेंद्रिय, पञ्च प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार यह तो ग्राहक और शब्दादिक विषय ग्राह्य सो यह ग्राहक ग्राह्यभाव करके प्रीति सर्व शरीरोंमें तुल्य है । इंद्रिय विषयके संयोग वियोगजन्य सुख दुःखकी प्रतीति भी पुरुषोंकी तुल्य ही है तथा पंचभूतोंकी प्रतीति भी तुल्य ही है। चक्षु आदिक इंद्रियोंका दर्शनादिक व्यवहार, स्वतःसिद्ध ही भिन्न भिन्न सर्व शरीरोंमें हो रहे हैं, यह भी तुल्य ही है । इससे हे सभा ! सम्यक् गणेश अपने आत्माको जानो और संसारके पदार्थोंमे न्यूनाधिक भाव मत देखो, यह दृश्य मान प्रपंच मायामात्र है, यह कह गणेश तूष्णीं हुए सर्व सभाने गणेशजीका अनुमोदन किया ।

चन्द्रमा

फिर चन्द्रमा आये और कहने लगे--भ्रम सिद्ध जो बन्ध मोक्षरूपी तिससे रहित विष्णु है सोई शांति रूप मुख्य

चन्द्रमा है तथा जो स्वतः ही ज्ञान अज्ञानसे, जन्म मरणसे, हर्ष शोकसे सर्व संसारके धर्मरूपी तमसे रहित है सोई चन्द्रमा है जो स्वतः ही कामक्रोधादिकोंसे तथा उदय अस्त भावरूपी तमसे रहित है. सोई शांतिरूप मुख्य चन्द्रमा है। जो न्यूनाधिक भावसे रहित, सदा एकरस, निर्विकार दृश्य, सम्बन्धसे रहित, सदा अपरोक्ष मनादिकोंका साक्षी, आत्मा हृदयरूप आकाशमें स्थित है सोई चन्द्रमा है। नित्य चित्सुख आत्मारूप चन्द्रमाके दर्शन ही अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव ताप मिट जाते हैं तथा सर्व दर्शन अपना ही हो जाता है, दर्शन योग्य अन्य कोई पदार्थ रहता नहीं। ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, शिवलोकादिकोंके सुख जिस चन्द्रमाके नजदीक, समुद्रमें एक किनकेके समान हैं, उसी आत्मारूप चन्द्रमाके सम्यक् दर्शनसे जो कुछ करना था सो हो चुकता है तथा जहां जाना था सो जा चुकता है सर्व कर्ता भोक्ता भी आपको अकर्ता अभोक्ता मानता है। उसी आत्मरूप चन्द्रमाके दर्शनसे वास्तवसे आप अकर्ता अभोक्ता भी अपनी मायासे सर्वका कर्ता भोक्ता आपको जानता है उसी आत्मारूप चन्द्रमाके दर्शनसे इस अनित्य सर्व नाम रूप जगत्का आपको ही अधिष्ठान प्रकाशक, नियामक, उत्पादक, पालक, संहारक, सम्यक् संशय रहित अपरोक्ष जानता है उसी आत्मारूप चन्द्रमाको जानकर अस्ति भाति प्रियरूपसे आपको सम्यक् सर्वात्मा जानता है। उसी अनन्त, नित्य, चिद् आत्मारूपी चन्द्रमाके आनन्दसे सर्व आनन्दवान् हो रहे हैं। यदि आनन्द स्वरूप (सर्वके हृदय विषे) आत्मारूप चन्द्रमा न होवे तो सर्व जीवोंका कैसे जीवन होवे ? किन्तु नहीं होवे देखो, मुझ चैतन्य चन्द्रमारूप आत्मा आनन्दकी पूर्णता कि,

मेहतर अपने हालमें ही मस्त है, जब मलसे निपटकर अपने बालबच्चोंमें निवास करता है तब राजाको भी कुछ गिनता नहीं; अन्यकी क्या बात है ? तैसे ही शूकर कूकर भी अपने बालबच्चोंमें ही प्रसन्न हैं। इंद्राणी सहित इन्द्रादिकोंके भोगोंकी इच्छा नहीं करते। देखो ! मजदूर सारा दिन मजदूरी करता है, परन्तु जब रात्रिमें अपने बालबच्चोंमें निवास करता है, तब धनियोंको स्वप्नमें भी याद नहीं करता। आप लोग ख्याल करो मलका चींटा मलमें ही (अपनी सृष्टिमें) प्रसन्न है, अपनेसे भिन्न सृष्टिके भोग विलासको मंजूर ही नहीं करता । तैसे ही पक्षी अपनी सृष्टिमें खुश रहते हैं, वनोंके वृक्षोंमें ही रहना मंजूर रखते हैं (महलोंका नहीं), अन्य सृष्टिके भोग विलासोंको तृणके समान जानते हैं। सारांश यह कि, एक दूसरेकी दृष्टिसे सुख दुःख न्यूनाधिक भाव प्रतीत होता है नहीं स्वदृष्टिमें ही सुख है । तसे मृगादि पशु भी आप अपनी सृष्टिमें आनन्दी हैं अन्य सृष्टिमें नहीं। देखो ! मच्छरादि हमारी दृष्टिसे तुच्छ जीव भी एक दिनमें ही बालक, युवा, वृद्धादि अवस्था अपने बालबच्चोंसहित भोग कर नष्ट हो जाते हैं परन्तु अन्य सृष्टिके सुखोंको तुच्छ जानते हैं इत्यादि सर्व सृष्टिमें सूक्ष्म अन्तर विचार करनेसे ही अपने स्वरूप आनन्दकी पूर्णता मालूम होती है, अन्यथा नहीं। तात्पर्य यह कि, जहां कोई जिस किस योनि वा स्थानमें, जातिमें, मंत्र, तंत्र, औषधी, शास्त्र, वेद, पुराण, षट्, शास्त्रादि विद्यामे विषय लंपटतामें तथा धर्म, अधर्म लड़ाई, चोरी यारी, ठगी, दंभ, जिमीदारी, नौकरी, व्यापार, स्त्री, पुरुष, राज्य, वर्ण, आश्रम, ज्ञान, अज्ञान, फकीरी, अमीरी, ध्यान पूजा, जप, तप, योग, वेदांत, समाधि, व्रत, तीर्थ, यम नियम, तमाशे, जादू, कविता,

धूर्तता तथा परम हंसीसे आदि लेकर जहां जो स्थित है वहां ही आनन्द मान रहा है क्योंकि आनंदस्वरूप चैतन्य साक्षी आत्मा सबके हृदयमे पूर्ण है, इसीसे ही सर्व आनंदवान् हो रह हैं । जो चैतन्य सुख अनुभव आत्मारूप अलौकिक चन्द्रमा सर्व प्राणी मात्रके हृदय देशमें नित्य स्थित न होवे तो यह सुख दुःखरूप संघातम एक दिन भी कटना कठिन हो जावे । उलटा जिस शरीरमें है, उस शरीरको अन्य शरीरोंसे सुखरूप उत्कृष्ट मानता है। जो आपको निकृष्ट माने तो जीवना कठिन होवे। इस हेतु आत्मारूपी चंद्रमाकी महिमा अवाङ्मनसगोचर है। किनकी उपमा देवें ? मन वाणी आदिक सर्वका तथा षट् प्रमाणोंका वही प्रकाशक है। जो अनंत चित् सुखात्मारूप अलौकिक चंद्रमाके पूर्वोक्त विशेषण कहे हैं, सो लौकिक दृश्यरूप आकाशज चंद्रमाविषे एक भी घटते नहीं अथवा और मन आदिक दृश्य पदार्थोंमे भी घटते नहीं। यह सूक्ष्म भाव बुद्धिके विचारसे जाना जाता है, स्थूलतासे नहीं। इससे पूर्वोक्त विशेषणों युक्त नित्य सुख मनआदिकोंका साक्षी चिदात्मारूप, चन्द्रमा ही ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यन्त सर्वका स्वरूप है, तिसी चन्द्रमाको मैं अपना आत्मा जानकर सर्व संसार भ्रमसे रहित, संतुष्ट हुआ सुखसे जीवता हूँ। कोई भी संसार धर्म मुझको स्पर्श नहीं करता, सदा आकाशमें गमनरूप क्रिया करता भी अकर्ता हूँ।

आत्मप्राप्तिका साधन

व्यासने कहा--तिसके जाननेका साधन कौन है ? चंद्रमाने कहा--हे व्यास ! तुम सरीखे सत्यवक्ता, ब्रह्मनिष्ठ, पक्षपातसे रहित, हस्तामलकवत् अपरोक्ष स्वरूपके विद्वान् पुरुषोंका संग ही परम साधन है; आत्मा साक्षीरूप चन्द्र-

माके देखनेको संत्सग नेत्र है। शम दमादि अन्य सर्व साधन संत्सगके अंतर्भूत हैं। इस हेतु निःसंग पुरुषोंको सत्संग ही कर्त्तव्य है अन्य नहीं। व्यास तूर्ष्णीं हुए।

कुबेर

तिसी समय कुबेर आये और कहने लगे-हे सभानिवासी ! धन नाम प्रसिद्ध, निज कार्य सहित जड मायाका है, कई एक महात्माओंने धन नाम स्त्री पुत्र पैसा गृह पशु आदिकोंका कहा है, तदुपलक्षित सर्व संसार ले लेना; इस व्यक्ति सहित सर्व नाम रूप जगत् का जो स्वामी होवे सो कहिये धनेश वा धन नाम है कृत कृत्यका सो कृत कृत्य धर्म मनका है क्योंकि जो अकृत्य कृत्य होता है वही कृत कृत्य होता है सो मन आदिकोंको कृत कृत्यता रूप मोक्ष देवे अथवा अपनी सत्तास्फूर्ति रूप धन देकर जड मन आदिकोंको ऐश्वर्यवान् नाम चैतन्य करे तिसका नाम धनेश है। सो यह धनेशका अर्थ किसी माया तथा मायाके कार्य रूप दृश्यमान् मूर्तिविषे घटता नहीं, साक्षी चैतन्य आत्माविषे ही घटता है सो पूर्वोक्त धनेश ही सर्वका आत्मा है। इस बुद्धि आदिकोंके प्रकाशक धनेश (साक्षी आत्मा) को ही सम्यक् जानकर कृत कृत्य हुआ संसार भ्रमसे रहित होता है और तब संसारमें स्थित भी जल कमलवत् संसार धर्मोंसे असंग रहता है, इससे यह दृश्य मान व्यक्ति धनेश कहने मात्र ही है, असली धनेश चैतन्य आत्मा ही है। मैं आत्मा रूप धनेश ही सर्वको स्फूर्ति रूप धन देता हूँ, मुझको कोई दृश्य पदार्थ सत्ता स्फूर्ति दे नहीं सकता। इस हेतु तुम मुझ चैतन्य धनेशको ही अपना आत्मा रूप जानो कि, जिससे तुम भी आत्मा धन रूप धनके ईश (धनेश) होओ । वसिष्ठने कहा-मैं चैतन्य आत्मा

कर्तव्यसे धनेश नहीं होता, किंतु स्वतः ही धनेश हूँ, जैसे–घटाकाश महाकाश रूप बनानेसे नहीं होता, किन्तु आगे ही महाकाश रूप है! धनेशने कहा--तू कौन है? वसिष्ठने कहा–तू है। धनेशने कहा--मैं कौन हूँ वसिष्ठने कहा–जो मैं हूँ। धनेशने कहा–जहां मैं तू है वहां माया है, मैं मायासे परे हूँ व्यासने कहा--जो तू चैतन्य सर्व रूप है कि, असर्वरूप है! यदि तू चैतन्य धनेश सर्व रूप है तो माया भी तू ही है, परे उरे भी ही है। जो जो तू असर्वरूप है जो असर्वरूप होता है सो परिच्छिन्न जड उत्पत्तिमान् अनित्य दृश्य होता है। धनेशने कहा–सर्व असर्व दोनों रूप मैं चैतन्य आत्मा ही हूँ, क्योंकि, अस्ति भाति प्रिय रूप दृष्टि द्वारा सर्व माया, अमाया जड, चेतन, नित्य, अनित्य में ही सर्व रूप हूँ और अवाङ्मनसगोचर दृष्टिसे कल्पित सर्व संसारसे परे अधिष्ठान हूं। कल्पित अधिष्ठानकी यही रीति है, जैसे--स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नका पदार्थ रूप भी है और स्वप्नपदार्थोंसे अगोचर भी है क्योंकि, स्वप्नपदार्थ कल्पित हैं और स्वप्नद्रष्टा अधिष्ठान सत् है। व्यासने कहा--"वाङ्मनसगोचर और अवाङ्मनसगोचर" तुझ चैतन्यमें यह भेद कहाँसे आया? धनेशने कहा--भेद अभेद तूने कल्पा है; मुझ चैतन्यमें नहीं। जैसे--सूर्यमें दिन रात्रि नहीं औरोंने दोनों कल्पे हैं। व्यास तूष्णीं हुए।

ध्रुव

तिस समय ध्रुव आये और कहा--हे मैत्रेय! विचार और शोच कर देख। यह जगत् अनादि कालका चला आता है इस जगत् के व्यवहारकी मर्यादा स्थापन करने वास्ते, सच्चिदानंद आत्मा ध्रुव ईश्वरने जैसे--सूर्य चन्द्रमा लोक रचे हैं तैसे ही ध्रुव (उत्तर और दक्षिण) दो रचे हैं; कोई पीछे होनेवाला उत्तानपाद राजाका पुत्र

ध्रुव नहीं हुआ। ध्रुव सूर्यादि अनादि हैं। उत्तानपाद राजाके पुत्रका नाम भी ध्रुव ही था, नाम नामकी तुल्यतासे लोगोंने अनादि आकाशज ध्रुव ही कथामें लिख दिया सो उत्तानपाद राजाका पुत्र ध्रुव भी अपने तपके प्रभावसे माता पिता सहित वा एकला ही निश्चित बहुत कालस्थायी लोगोंको प्राप्त हुआ अथवा ध्रुवलोक ही प्राप्त हुआ है। यहां ध्रुव नक्षत्रका प्रकरण है।

ध्रुव कहने लगा--हे सभानिवासी उत्तमजनो ! ध्रुव नाम निश्चयका है तथा अचलका है, निश्चय करके जो अचल होवे तिसका नाम ध्रुव है। सो ऐसा निश्चय अचल, अनित्य सुख, चिद्रूप आत्माही है अन्य नहीं, क्योंकि ये नक्षत्र ध्रुवसे आदि लेके सूर्य, चन्द्रमा, सुमेरु, समुद्र, पृथिवी, अप्, तेज, वायु, आकाशादि जो अचल महान् पदार्थ दीखते हैं सो महाप्रलयतक ही हैं, महाप्रलयमें चलरूप हो जावेंगे अपनी उत्पत्तिसे पहले थे नहीं और अंत रहेंगे नहीं, मध्यमें ही इनकी अचलता प्रतीति होती है, सो भी भ्रममात्र है, इसीसे चल हैं। जिस चैतन्य द्वारा चल भी प्रपंच अचल प्रतीत होता है सो आत्मा ही अचल है क्योंकि, जिसका जो स्वरूप आदि अंत होता है, वैसा ही तिसका मध्यमें होता है, यह न्याय प्रसिद्ध है। आदि अंत मध्यमें तथा भूत भविष्यत् वर्तमान कालमें जिसका बोध ज्ञानसे वा अन्य साधनसे न हो, किन्तु एकरस रहे सो अचल होता है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव भी महाप्रलयमें अपने नित्य, चित, सुख, ध्रुवस्वरूप आत्मामें आगे ही स्थित होनेपर भी उपाधिके अदृश्यताके कारणसे पुनः स्थित होते हैं, जैसे–घटाकाश महाकाशरूप होनेपर भी घट उपाधिके अभावसे यह घटा-

काश महाकाशरूप होगया है, ऐसे प्रतीत होता है। यह ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि भी अध्रुव दृश्यरूप शरीरोंको त्याग देते हैं अन्यकी क्या बात है ! इससे यह सर्व नामरूप प्रपंच अध्रुवरूप है ध्रुव नहीं। नित्य सुख चिद्रूप आत्मा ही एक ध्रुव है अन्य नहीं सोई सर्वका आत्मा है। अपने ध्रुवस्वरूपके अज्ञानसे आपको अध्रुव मानते हैं। अपने ध्रुवस्वरूप आत्मासे ही अध्रुव मन आदिक संघातकी तथा संघातके धर्मोंकी सिद्धि है। बडा आश्चर्य है, जिस अध्रुव नामरूप मन आदिकोंको यह ध्रुवात्मा सिद्ध करता है, उसीको अपना स्वरूप मानता है, परन्तु वास्तवसे अध्रुवरूप होता नहीं मुझ ध्रुव स्वरूप आत्माद्वारा ही यह अवध्रुवरूप संसार ध्रुवरूप प्रतीत हो रहा है। जैसे अग्निकर ही लोहा प्रकाशमान होता है, स्वतः अप्रकाश-रूप है। इससे जिस अधिकारीको भ्रमरूप बंधकी निवृत्ति और मोक्षकी प्राप्तिकी इच्छा होवे सो मुझ चैतन्य ध्रुवको अपना साक्षी आत्मा जाने। सारांश यह कि, "मैं नित्य-सुख, चित्‌रूप बुद्धिआदिकोंका द्रष्टा साक्षी आत्मा हूँ" सत्य संभाषणादि धर्मपूर्वक सम्यक् ऐसा जानना ही कर्तव्य है और कोई भ्रमनिवृत्तिके वास्ते कर्तव्य नहीं। जैसे आकाशज ध्रुवके चौफेर शिशुमार चक्र फिरता है परन्तु ध्रुव नहीं फिरता, जो ध्रुव भी फिरेगा तो ध्रुव-संज्ञासे रहित होवेगा। तैसे सर्वके अंतर साक्षीरूप होकर जो मैं ध्रुव हूँ, सो मेरे चौफेर भी जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तथा सत्, रज, तम, शुभ अशुभ संकल्पादिक तथा बालक युवा वृद्धादि सर्वपदार्थोंका न्यूनाधिकभाव होना ही शिशुमार चक्र फिर रहा है। तात्पर्य यह कि, कभी जाग्रत् होता है, कभी स्वप्न होता है, कभी सुषुप्ति होती है, कभी तुरीया होती है, कभी सत्त्व, कभी रज, कभी

तब होता है, कभी शुभ संकल्प विकल्प होता है, कभी अशुभ संकल्प विकल्प होता है, कभी बालक, कभी युवा, कभी वृद्ध अवस्था होती है (ऐसे ही सर्व पदार्थ जान लेने) परन्तु मैं चैतन्य ध्रुव निर्विकार स्थित हूं। जो पूर्वोक्त चक्रवत् मेरा भी चक्र होवे मेरी भी अध्रुवता होवेगी। इससे मुझ चैतन्यरूप भिन्न सर्व नामरूप जगत् अध्रुव जडरूप हैं।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय! ध्रुवकी वाणी सुनकर यम-किंकरने कहा--"ध्रुव अध्रुव द्वैतमें हैं, मैं अद्वैत हूं।" ध्रुवने कहा--मुझ चैतन्य ध्रुवसे अभिन्न होकर तू अद्वैत सिद्ध होगा नहीं तो अध्रुव होगा। यमकिंकरने कहा-जब अद्वैत है तो भिन्न अभिन्न क्या? ध्रुवने कहा--भिन्न अभिन्न भी अद्वैत ध्रुव ही है। धर्मराजने कहा--ध्रुव है तो चल भी है। ध्रुवने कहा-लौकिक ध्रुव अध्रुवसे रहित मैं अलौकिक ध्रुव हूं वास्तवसे अस्ति भाति प्रिय सर्व चल अचल नामरूप मैं ही आत्मा हू। धर्मराजने कहा--लौकिक अलौकिक ध्रुव तीन पद हुए। बुद्धिमान् एक कहते भी लज्जायमान होते हैं, तुम तीन कहते हो? ध्रुव तूष्णीं हुआ।

दक्षप्रजापति

तिस समय दक्ष प्रजापति आये और कहने लगे-दक्ष-नाम चतुरका है, चतुराई बुद्धिसे होती है, बुद्धि नाम ज्ञानका है; इससे दक्ष नाम ज्ञान स्वरूपका है। सर्व नामरूप प्रजाकापति (स्वामी) ज्ञानस्वरूप होवे तिसका नाम दक्ष प्रजापति है। वा सर्व प्रजा जिससे होवे सो प्रजापति है। सो यह अर्थ ज्ञानस्वरूप आत्मामें ही घटता है। इससे हे साधो! इस ब्रह्मासे आदि लेके चींटी पर्यंत सर्व प्रजाका ज्ञानस्वरूप मैं आत्मा ही पति हूँ। मन करके भी अचिंतनीय है रचना जिसकी; ऐसे नामरूप

सर्व प्रजाकी उत्पत्ति पालना संहार करता हूँ और मननादि प्रजाविषे मैं निवास कर सर्वको आप अपने व्यवहारमें नियमन भी करता हूँ (मेरा नियमन कोई नहीं करता) और तिनके कर्मोंसे अस्पर्श भी हूँ, यही मेरी चतुराई है । जैसे--आकाश सर्वमें स्थित होता हुआ अस्पर्श (अलग) है, यही आकाशकी चतुराई है। इस कारण तुम सर्व प्रजा मुझ ज्ञान स्वरूप अनन्त चिदात्माको पति जानो । क्योंकि, मैं ज्ञान स्वरूप आत्मा ही सर्वका स्वरूप हूँ । जो जिसका स्वरूप होता है सोई तिसका पति होता है जैसे सर्प दण्ड मालादि कल्पित पदार्थोंका रज्जु ही पति है क्योंकि, रज्जुके अधीन ही तिन सर्पादि-कोंकी प्रतीति होती है अन्यथा नहीं। तैसे मुझ चैतन्यसे ही मुझविषे कल्पित इस दृश्य जडकी प्रतीति है, अन्यथा नहीं। चन्द्रमाने कहा–जो मुझ आनन्द स्वरूपसे भिन्न तू दुःखरूप है। दक्षने कहा–जो ज्ञान स्वरूप है सोई आनन्द स्वरूप है, तथा सद्रूप है; मुझ ज्ञान रूपसे तुम जुदे हुए असत् जड हो जावोगे। ज्ञानके भीतर सबको आना पडेगा। चन्द्रमा तूष्णीं हुआ और सूर्य भगवान् आये ।

सूर्य

सूर्य भगवान्ने कहा--कि, मैं एक ही चित् सुख नित्य स्वरूप आत्मा, सर्व सूर्य चन्द्रमा आदिक ज्योतियोंका तथा मायासे आदि लेकर देह पर्यंत सर्वका प्रकाशक हूँ, मैं आपही स्वयं प्रकाश स्वरूप हूँ मेरा कोई प्रकाशक नहीं। जैसे--बारह सूर्यसे ही चैत्रादि बारह मास षट् ऋतु, तीन चातुर्मास सिद्ध होते हैं; तैसे ही अन्तर बाहर पञ्चभूतोंको सात्त्विक साँझी एक एक अंशसे होनेवाले ज्ञानेंद्रिय तथा अन्तःकरण पांच जानना । तैसे ही भूतोंकी राजसी सांझी एक एक अंशसे प्राण तथा कर्मेंद्रियोंकी

उत्पत्ति होती है इससे पांच यह जानने, देवता ११ विषय १२ तात्पर्य यह कि पंच ज्ञानेंद्रिय, पंच कर्मेंद्रिय, साधारण वायुरूप प्राण और अन्तःकरण, तिन अन्तःकरणादिकोंके देवता तथा श्रोत्रादिक इंद्रियोंके विषयरूप बारा महीने मुझ चैतन्य साक्षी आत्मा सूर्यकर प्रकाशक हुए सिद्ध होते हैं। मुझ चैतन्य बिना इनकी सिद्धि कोई नहीं कर सकता। तैसे ही मनादिकोंके साक्षी मुझ चैतन्य सूर्य कर ही देहके षट्भाव विकाररूप षट्ऋतु जाननेमें आती हैं वा पृथिवी अप तेज वायु आकाश तथा तिनका कारण माया यह षट्ऋतु सिद्ध होती हैं वा षट्शास्त्ररूपी षट्ऋतु भी मुझ चैतन्य सूर्य कर ही सिद्ध होता हैं वा मन सहित श्रोत्रादिक षट् इंद्रिय तथा षट् ही तिनके विषय ये दोनों प्रकारकी षट् ऋतु मुझ बुद्धि आदिकोंके साक्षी नित्य सुख चैतन्य आत्मा सूर्यकर ही सिद्ध होती हैं। वा अन्नमयादि पञ्चकोश और एक अविद्या यह षट्ऋतु भी मुझ चैतन्य सूर्यकर ही सिद्ध होती हैं। वा षट् दोषरूप षट्, ऋतु भी मुझ चैतन्य सूर्यकर ही सिद्ध होती हैं। वा १ अविद्या, २ अस्मिता, ३ राग, ४ द्वेष, ५ अभिनिवेश यह पञ्चक्लेश तथा पञ्चक्लेशोंके भोक्ता ६ जीव (सूक्ष्म शरीर) यह षट् ऋतु भी मुझ साक्षी चैतन्य अंतर सूर्यते ही प्रकाशमान् होते हैं। वा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तुरीया और तुरीयातीत ये पांच बुद्धिकी अवस्था तथा एक बुद्धि यह षट् ऋतु वा स्थूल, सूक्ष्म कारण तथा महाकारण शरीर तथा तिनका उपादान कारण माया और तिन शरीरोंके निमित्त कारण कर्म यह षट् ऋतु वा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, मूर्च्छा, मरण, समाधि यह षट् ऋतु हैं। वा तीन व्यष्टि शरीर तथा तीन समष्टि शरीर यह षट् ऋतु हैं वा समष्टि व्यष्टि षट् शरीरोंके अभिमानी विश्व वैराटादि षट् ऋतु हैं

इत्यादि अनेक ऋतु मुझ सम्यक् आत्मा सूर्य कर ही सिद्ध होती हैं बारह की भी मधु, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, वसंत यह षट् ऋतु भी मुझ चैतन्य सूर्य कर ही सिद्ध होती हैं क्योंकि, जो सर्वका स्वरूप चैतन्य साक्षी सूर्यादिकोंका भी प्रकाशक है सोई वसंतादिक षट् ऋतुका भी प्रकाशक है।

चातुर्मास

तैसे ही जैसे--बारह सूर्य कर तीन चातुर्मास सिद्ध होते हैं तैसे ही मुझ चैतन्य अंतर साक्षी आत्मा रूप सूर्यकर ही सत्, रज, तम, तीन गुण रूप तीन चातुर्मास सिद्ध नाम जाने जात हैं तथा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तथा तिनके अभिमानी विश्व, तैजस, प्राज्ञ रूप तीन चातुर्मास मुझ तुरीय रूप सूर्य कर ही जाने जाते हैं। समष्टि व्यष्टि स्थूल तथा समष्टि व्यष्टि सूक्ष्म तथा समष्टि व्यष्टि कारण तीन शरीर रूपी तीन चातुर्मास भी मुझ चैतन्य तुरीय रूप सूर्य कर ही प्रकाशमान होते हैं। तथा बालक युवा वृद्ध अवस्था रूप तीन चतुर्मास भी मुझ चिदात्मा रूप सूर्यसे ही सिद्ध होते हैं, क्योंकि, जिस शरीरकी अवस्था है सो शरीर रूप जड़ सर्व संघात अपनी अवस्था सहित आपको जान नहीं सकता बाकी शेषमे मैं ज्ञानस्वरूप आत्मा ही सर्वको असंग होकर सिद्ध करता हूँ। तथा जीव, ईश्वर, ब्रह्म शब्द रूप तीन चातुर्मास भी मुझ चैतन्य सूर्य कर ही सिद्ध होते हैं। अर्थ सहित जो शब्द रूप ऋक्, यजुः, सामवेद रूपी तीन चातुर्मास तथा ब्रह्मादिक अभिमानी सहित जगत् की उत्पत्ति, पालन, संहार, रूपी तीन चातुर्मास मुझ चैतन्य सूर्यसे ही सिद्ध होते हैं। तथा मरण मूर्छा समाधि तथा, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य इत्यादि त्रिपुटी रूप तीन भी मुझ ज्ञानस्वरूप द्रष्टा साक्षी सूर्य कर ही जाने जाते हैं।

त्रिलोकी रूपी तीन चातुर्मास मुझ चैतन्य सूर्य आत्मा कर प्रकाश मान हैं। त्रिलोकी रूपी मंदिरका मैं चैतन्य आत्मा ही दीपक हूँ।

तीन प्रकारकी वृत्ति

सुषुप्तिमें १ प्रिय २ मोद ३ प्रमोद रूप तीन वृत्ति रूप चातुर्मास भी मुझ निर्विकार साक्षी आत्माकर ही सिद्ध होते ह। अन्यसे नहीं किसीका कोई मित्र वा पुत्र बहुत कालसे परदेश गया होवे सो अकस्मात् आजावै तिसको व मित्रके देखते ही जो तिस कालमें आह्लादकारक अन्तः करणकी वृत्ति होती है तिसका नाम प्रियवृत्ति है, जब परस्पर नजदीक हुए तिस कालमें जो वृत्ति होती है तिसका नाम मोदवृत्ति है। जब भुजा पसारकर आपसमें मिल तिसकालमें जो वृत्ति होती है सो प्रमोद नाम वृत्ति है; पूर्व पूर्व वृत्तिसे उत्तर उत्तर वृत्तिमें एकाग्रता और वृत्ति जन्यसुखकी अधिकता जान लेनी, यही हाल सुषुप्तिमें भी जान लेना।

अयन

जैसे बारह सूर्य कर दक्षिणायन उत्तरायण दो अयन सिद्ध होते हैं तैस ही बंधरूपी दक्षिणायन मोक्षरूपी उत्त-रायण भी अन्तर बाहर मुझ चैतन्य सूर्य कर ही सिद्ध होते हैं। पुरुषोंके अंतर बंधमोक्षका तो बाहरके हजार सूर्यसे भी प्रकाश नहीं होता, मै चैतन्य सूर्य तो पुरुषके अंतर मन कर कल्पित बंधमोक्षको अपरोक्ष साक्षी रूपसे प्रकाश करता हूँ और बाहरके अयनोंको सूर्य मण्डल होकर प्रकाशमान करता हूँ। इससे मैं चैतन्य ही प्रका-शमान हूँ अन्य जड़ दृश्य नहीं। तैसे ही जैसे ब्रह्माण्ड-विषे आकाशज सूर्य कर ही दिन और रात्रि सिद्ध भी होती है तथा दिनरात्रिविषे वर्तनेवाले साठ चौंसठ मुहूर्त भी

तिसी सूर्य कर सिद्ध होते हैं, परन्तु सूर्यविषे दिन रात्रिका तथा साठ मुहूर्तोंका अत्यंता भाव है तैसे ही अंतर अज्ञान नाम रूप दिन रात्रिका तिन विषे वर्तवाले दैवी आसुरी गुण दोषरूप घटिका मुझ सत् सुख, चिद्रूप आत्मा सूर्यकर ही सिद्ध होते हैं परंतु मैं चैतन्य आत्मा सूर्य पूर्वोक्त सर्व पदार्थोंसे रहित अवाङ्मनसगोचर स्थित हूँ। मुझ चैतन्य सूर्यकी ही यह सर्व नामरूप किरणें हैं। कोई किरण ब्रह्मारूप, कोई किरण जटाधारी शंकररूप कोई किरण विष्णुरूप, कोई देवता, दैत्य, कोई जड, कोई चैतन्यरूप होकर स्थित हुई हैं। कोई किरण पृथिवी, अप, तेज, वायु, आकाशरूप होकर स्थित हुई हैं। कोई किरण स्त्री, कोई पुरुष वर्ण आश्रमरूप होकर स्थित हुई हैं। कोई किरण सप्त व्याहृतिरूप, कोई अतलादि सप्त नीचेके लोक रूप, कोई स्वर्गरूप, कोई नरक रूप होकर स्थित हुई हैं। कोई इन्द्र, यम तथा मनुष्य देहरूप, कोई माया प्रकृति महत्तत्त्वरूप होकर स्थित हुई हैं। बहुत क्या कहूँ! अस्ति, भाति, प्रियरूप सर्व आत्मा मैं हूँ, मेरा मुझको ही नमस्कार है मैं चैतन्य अपनी महिमा विषे आप ही स्थित हूँ, जैसे-स्वप्न द्रष्टा ही स्वप्नमें सर्वरूप होता है। हे यमकिंकर! कह, तू कौन है? यमकिंकरने कहा-मैं आपको नहीं जानता कि, कौन हूँ क्योंकि, अवाङ्मनसगोचर हूँ। तुम भी कहो मैं कौन हूँ? सूर्यने कहा-"मैं आपको नहीं जानता" यह मन वाणीका कथन चिंतन अंतर जिसने जाना; (मैं) सोई तू है। यमकिंकरने कहा-ऐसे मेरे स्वरूपको तुमने कैसे जाना? सूर्य तूष्णीं हुआ क्योंकि, जो जो मनवाणी कथन चिंतन करेंगे तिस कथन चिंतनकी अनुत्पत्तिको तथा तिनके लयको मानो पास बैठा देख रहा है जैसे दाई बालककी अनुत्पत्तिको पुनः उत्पत्तिको

तथा तिसके अभावको जानती है। जैसे अंकुरकी अनुत्पत्तिको तथा तिसकी उत्पत्तिको तथा तिसके नाशको अवकाश आकाश देता है। इससे अंकुर आकाशके हालको क्या जाने।

बृहस्पति

तिस समय बृहस्पति देवतोंका गुरु आया और कहा—"गु नाम है इन्द्रियोंका वा पृथिवीका वा अज्ञानका और रु नाम है प्रकाशका। तात्पर्य्य यह कि, जो कारण अज्ञानसहित सब नामरूप प्रपंचको काँटे (तराजू) के समान परिमाण करे वा प्रकाशे नाम जाने सो कहिये गुरु"। सो ऐसा अनंत, चित्, सुखरूप यह आत्मा ही गुरु शब्दका अर्थ बन सकता है। माया तथा मायाके कार्य्य दृश्यवस्तुमें गुरु शब्दका अर्थ घटता नहीं। सोई पूर्वोक्त गुरु आत्मा ही तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का अपना स्वरूप है अन्य नहीं। चाहे इस संघात ब्रह्मांडमें खोज देखो। इससे हे अधिकारी जनो ! पूर्वोक्त अपने आत्मा स्वरूपको ही तुम सर्व सूर्यादि दृश्य प्रपंच नीतिपूर्वक आप अपने व्यवहारमें आज्ञा चलानेवाला जानो तथा सर्व दृश्यसे अपने गुरुस्वरूपको ही महान् जानो तथा पूज्य जानो। तुम्हारे गुरुरूप आत्मासे भिन्न सर्व प्रपंच तुच्छ, अपूज्य, असत्, जड, दुःखरूप है, यह प्रत्यक् चैतन्य आत्मा ही लौकिक गुरुमूर्ति धारण करके अपने सत्, चित्, आनंद स्वरूपका सत् उपदेश कर मुमुक्षुओंका उद्धार करता है। इस हेतु प्रत्यक् चैतन्य तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का इष्ट देव। इसीको अपना स्वरूप सम्यक् जाननेसे संसारसे मुक्त होता है। संसारके तरनेका यही जहाज है, अन्य तृणोंका आलंबन करना है।

पृथ्वी

तिस समय मनुष्याकृति धारण कर भूमि आई और कहने लगी--हे सभाके निवासी सज्जन पुरुषो ! देहको देही ही धारण करता है, यह अति प्रसिद्ध बात है। यह दृश्यमान पर्वतों सहित कठिनरूप पृथिवीसे आदि लेकर मायापर्यंत सर्व नामरूप, जगद्रूप देहको मैं सुख स्वरूप, प्रत्यक् आत्मा, चित् सत्ता, देही धारण कर रहा हूँ। जैसे फेन बुद्बुदे तरंगादिक देहोंको जलही धारण करता है यह नहीं कि, तरंग बुद्बुदेको वा बुद्बुदा तरंगको धारण करता है. क्योंकि, रज्जुविषे सर्पवत् कल्पित होनेसे परस्पर आधाराधेय भाव नहीं बन सकते तैसे ही इस पृथिवीसे आदि लेकर मायातक, सर्वको मुझ अनंत चित् सत्ताविषे कल्पित होनेसे इन कल्पित पृथिवी आदिकोंका परस्पर आधाराधेय भाव नहीं बन सकता। जो कहो सर्व जगत्को पृथिवी धारण करती है, परन्तु पृथिवीको कौन धारण करता है ? इसका भी विचार करना चाहिये। इससे यह सिद्ध हुआ कि, जो पृथिवीको धारण करता है सोई सर्व जगत्को धारण करता है अन्य नहीं। हे साधो ! देह अनेक हैं परन्तु मैं अनंत प्रत्यक् चित् सत्ता देही एक हूँ. जैसे घट अनेक हैं परन्तु देही मृत्तिका वा आकाश एक ही है। सारांश यह कि, सर्व नामरूप जगत्का मैं प्रत्यक् अनंत चित् सत्ता आत्मा स्वरूप हूँ इससे पृथिवीके विकारभूत शस्त्रोंसे भी कटनेमें नहीं आता हूँ. क्योंकि, तिन शस्त्र आदिकोंका आत्मा हूँ. अपने आत्माको कौन काट सकता है इससे ही सर्वका आधार रूप हूँ. क्योंकि, आप अपना स्वरूप ही काल्पित सर्वका आधार अधिष्ठान होता है। यह प्रसिद्ध है, जैसे घटका स्वरूप मृत्तिका है सोई तिस घटका आधार

अधिष्ठान है। जैसे--पटका स्वरूप तन्तु है, सोई तिसका आधार अधिष्ठान है इससे मुझ अनन्त चित् सत्ता सर्वके अधिष्ठानको अपना आत्मा सम्यक् जाननेसे ही भ्रमकी निवृत्ति होगी। भ्रम दूर हुए बन्ध मोक्ष भी जाते रहेंगे, आगे जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो।

वरुण

पुनः जलोंका राजा वरुण आया और कहा। माया और तत् कार्य मलसे रहित मैं शुद्ध चैतन्य आत्मा हूँ। सर्व वस्तुका गीलापन भी मैं ही करता हूँ। गीला नाम द्रवणा, द्रवणा नाम सर्व पदार्थोंको आप अपने कार्यके सम्मुख करना। यमकिंकरने कहा--जो मैं चैतन्य तुझ देह सहित जलको गीला कर रहा हूँ सोई मैं सर्वको गीला कर रहा हूँ क्योंकि तू जल मुझ चैतन्य आत्मासे भिन्न किया हुआ है ही नहीं गीलापन किसको करेगा? हे वरुण! जैसे तुझकर सर्व वृक्ष हरियालीको पाते हैं तैसे मुझ चैतन्य आत्मासे ही तुझसे आदि लेकर सर्व जगत् हरियाई नाम स्फुरण हो रहा है अन्यथा नहीं। हे जलराज! जो तेरा चैतन्य स्वरूप है सोई शुद्ध है अन्य नहीं। इससे परिच्छिन्न अभिमानको त्याग, पुनः तिसका भी त्यागकर। पीछे निर्विकल्प तेरा स्वरूप है। वरुण तूष्णीं हुआ।

अग्नि

अग्नि देवता आया और कहने लगा--मैं सर्वको भक्षण करता हूँ धर्मराजने कहा-सर्व कहां है तू ही है। अपने आपको भक्षण कर वा न कर। अग्निने कहा- यह सर्व प्रकाश मेरा है। यमकिंकरने कहा--तेरे प्रकाशसे हमें क्या मतलब है? हम अपने प्रकाशसे प्रकाशमान हैं। तू

अपना प्रकाश अपने पास रखे । अग्निदेवने कहा--मैं सर्वको दाह करूंगा । गणेशने कहा--तेरी क्या ताकत है कि, मुझ चैतन्य विना तृणको भी दाह करे । मुझ साक्षी चैतन्यसे पृथक् तू अनग्निरूप है, दाह क्या करेगा ? हे अग्नि ! तू अपनेसे भिन्न पृथिवी जलको तथा तिनके कार्य पदार्थोंको ही दाह कर सकता है, आकाश वायुको भी दाह नहीं कर सकता तो आकाशसे अतिसूक्ष्म तेरा जो चैतन्य सो ही स्वरूप है तिसको तू दाह नहीं कर सकता इसमें क्या कहना है ! अग्निने कहा--तू कौन ? गणेश बोले--हे अग्नि ! तेरे अंतर, तुझसे अज्ञात और तेरे सर्व व्यवहारको जाननेवाला सदा अपरोक्ष साक्षी तेरा आत्मा स्वरूप मैं हूँ । अग्नि तूष्णीं हुआ ।

वायु

तब वायुदेवता आया कहा--अब ही मैं सर्वको शोषण करता हूँ व्यासने कहा--पहले अपने अहंकार अंतर शत्रुको शोषण कर जो तुझको दुःखदायक है पीछे सबको शोषण करियो । वायुने कहा--तू ही मेरा शत्रु है जो मुझ निर्विकार निर्विकल्प चैतन्यमें अहंकार आरोपण करता है । व्यासने कहा--जब तू निर्विकल्प है तो मेरे अहंकार आरोपणका तुझको ज्ञान कैसे हुआ ? वायूतूष्णीं हुआ ।

आकाश

आकाश मनुष्य मूर्ति धारणकर आया और कहा कि, मैं ही सर्वमें पूर्ण हो रहा हूँ निर्विकार हूँ, तथा अक्रिय हूँ, पृथ्वी, अप, तेज, वायु तथा इनके कार्य मुझमें ही समा रहे हैं परंतु मैं निर्लेप हूँ वशिष्ठने कहा--हे आकाश ! लोकदृष्टिसे तथा पृथिवी, जल, तेज, वायु इन चार भूतोंकी दृष्टिसे जैसा तूने कहा है तू वैसे ही है, परंतु

तेरा जो साक्षी चैतन्य अपना स्वरूप है सो नित्य सुख चिद्रूप है। तू असत् जड दुःखरूप है तथा उत्पत्तिमान् है, इससे विकारी है। तेरी और आत्माकी उपमा एक कैसे होवे ? किन्तु नहीं होती। जो चैतन्य तुझको भी अवकाश देता है नाम स्फुरण करता है सोई सर्वको अवकाश देता है। चैतन्य आत्माने इस संसार बगीचेके निर्वाहके वास्ते तेरा देह अवकाशरूप ही रचा है, वायुका देह वैसे ही रचा है, अग्निका प्रकाशमय ही देह रचा है, आगेभी ऐसे ही जान लेना, परंतु देही सबका एक चैतन्य आत्मा है। कहो सुषुप्तिमें तेरा स्वरूप कहां रहता है ? इससे अपने प्रत्यक् चैतन्य आत्माको अपना स्वरूप सम्यक् जानकर मौन रहो। आकाश तूष्णीं हुआ।

दुर्वासा

पुनः दुर्वासा ऋषि आये और कहने लगे--सर्वको मैं अभी भस्म करता हूँ। धर्मराजने कहा--दुर्वासा ! जो शरीरको भस्म करता है तो इसको तो भस्म कृमि विष्ठारूप होना ही है तो भस्म करनेकी बड़ाई कुछ न हुई, केवल तरा अभिमान ही है कि, मैं सर्वको भस्म करता हूँ। यह शरीर पंचभूतोंका है व स्वभवत मायाका कार्य है इनके भस्म करनेवालेके साथ मायाका वा पंचभूतोंका मुकदमा होगा, उनहीको इन शरीरोंके भस्म होने और नाश होनेमें हर्ष शोक होगा. हम संघातके साक्षी चैतन्यको हर्ष शोक नहीं। एकवक्त नहीं लक्ष वक्त भस्म करो वा न करो, अपना जोर किसको दिखलाते हो ? जो तुम कहो मैं चैतन्यको भस्म करता हूं सो चैतन्य तुम्हारा आत्मा है, उलटा अपने आत्माको कोई भस्म कर नहीं सकता और होता भी नहीं ! साक्षी चैतन्यसेही तुम सहित जगतकी तथा तुम्हारे भस्म करनेके संकल्पादिक

सर्वकी उपलब्धि हो रही है। इससे किसको भस्म करता है ? तुझको लज्जा नहीं आती ? पहले भस्मकरनेवाले अहंकार दुःखदायक शत्रुको नाश कर। पीछे दूसरेको भस्म करियो। आपको महान् तपस्वी और पण्डित मानकर लोगोंको वर शाप भय देता फिरता है। लोग भी यही कहते हैं, "जहां दुर्वासा जाता है वहां शापरूप भय ही देता है और अभय नहीं देता" तू अपने नामके अर्थको स्मरण कर। दुर्वासा नाम सच्चिदानंद आत्माका है तू आपको शरीर मानके दूसरेको भस्म करा चाहता है। विचारे तो तू शिवरूप है, क्योंकि जन्म मरणरूपी दुर्नाम दुःख देनेवाला संसार, वा अहंकार वा अज्ञान तिसते परे होवे वासा नाम स्थिति जिसकी सो कहिये दुर्वासा वा दुर्नाम दुःख असत्, जड़, माया, विकाररूप संसारका है तिसविषे उलटा सत्, चित्, आनंद, अमाया असरूप करके होवे निवास जिसका, सो कहिये दुर्वासा। वा कठिनता करके होवे स्थिति जिसमें सो कहिये दुर्वासा वा दुर्नामकठिन है सहन जिनका, ऐसे जो कामक्रोधादिकों विषे और दुर्वासना विषे तथा मायाविषे तथा सर्व मायाके कार्य मनआदिकों विषे जो असंग, निर्विकार, निर्विकल्प, अक्रिय रूप होवे निवास जिसका सो कहिये दुर्वासा। सारांश यह कि, अवाङ्मनसगोचर पदविषे मनकी स्थिति अत्यंत कठिन है। इससे तुम अपने पूर्वोक्त स्वरूपमें स्थित हो। और सर्वको अभयदान दो दुर्वासा तूष्णीं हुआ।

नारद

इतना कह उसी समय सभामें नारद आये और कहने लगे -जो भक्ति करेगा, सोई कालके भयसे छूटेगा, अन्यथा नहीं। यमकिंकरने कहा--भक्तिका स्वरूप कहो ?

नारदने कहा--"आप सहित सर्वको हरिरूप सम्यक् जानना" यही भक्तिका स्वरूप है। यमकिंकरने कहा--हे नारद! तुम सर्वस्थानमें गमन करते रहते हो, सबसे उत्तम स्थान कौन है? कहीं परमात्मा भी आपने देखा कि नहीं? तिसका भी वर्णन करो। नारद कहने लगे--हे साधो मैं दशों दिशा फिरा हूँ परन्तु मायाके कार्यरूप, सर्व पंचभूतरूप ही सृष्टि दृष्टि आई है, कहीं भी इन पंचभूतोंसे पृथक् सृष्टि दृष्टि नहीं आई। यही पंच ज्ञानेंद्रिय पंचकर्मेंद्रिय पंच प्राण चतुष्टय अंतःकरण, यही श्रोत्रादिक इंद्रियोंके शब्दादिक विषय और विषय इंद्रियोंके संयोग वियोगजन्य सुख दुःख सर्वत्र वैकुंठादिक स्थानोंमें भी सम ही दृष्टि आये हैं। काम क्रोधादिक भी सर्वत्र ही न्यूनाधिक भावकर देखे हैं। कहीं जलका स्नान है, कहीं धातुमय वा पाषाणमय मूर्तिका दर्शन है। जैसे--इंद्रिय अंतःकरणादिकोंका स्वभाव अस्मादिकोंके शरीरोंमें वर्तता है तैसे ही सर्वत्र देखा है। सारांश यह कि स्त्री पुरुषादि व्यवहार भी सर्वत्र एक सरीखा ही देखा है और सर्वत्र असत् जड दुःखरूप पंचभूत भौतिक सृष्टि ही देखनेमें आई है, कहूँ भी सच्चिदानंद स्वरूप परमात्माकी मूर्ति देखनेमें नहीं आई क्योंकि, परमात्मा व्यापक सर्वके हृदयमें है बाहर कहां देखनेमें आवे? विचाररूप दिव्य दृष्टिसे भी अन्तर बाहर सर्वात्माही भान होता ह।

सनकादिक

इतनेमें सनकादिक आये और कहने लगे--कि हे नारद सो नित्य चिद् अनत परमात्मा अंतर तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का आत्मा है बाहर देखनेमें कहां आवे? यद्यपि अस्ति, भाति, प्रियरूप आत्मा ही अतर बाहर भेदरहित, सर्वदा सर्वको प्रत्यक्ष दर्शन होता है

तथापि सम्यक् विचार दिव्य दृष्टिसे जाना जाता है। सम्यक् विचाररूपी दिव्य दृष्टिसे रहित पुरुषोंको पूर्वोक्त स्वरूप जाना नहीं जाता किंतु मिथ्या नाम रूप माया तथा मायाके कार्य असत् जड दुःखरूप प्रपंचकाही तिनको प्रत्यक्ष दर्शन होता है। आत्मा अधिष्ठान ज्ञानी अज्ञानी सर्वको प्रत्यक्ष ही है, जानने न जाननेका भेद है। सारांश यह कि, अधिष्ठान तथा कल्पितका विचार करनेसे प्रथम अपरोक्ष अधिष्ठानके प्रतीति पूर्वक ही मिथ्या कल्पित नाम रूपकी पश्चात् प्रतीति होती है सर्वको, परंतु जानने न जाननेका भेद है, दर्शनका नहीं। जैसे--मधुरता, द्रवता, शीतलतारूप जल अधिष्ठानकी प्रथम अपरोक्ष प्रतीति-पूर्वक ही पश्चात् नामरूप मिथ्या तरंगादिकोंकी प्रतीति होती है। जैसे--सुवर्ण अधिष्ठानकी प्रथम अपरोक्ष प्रतीति पूर्वक ही मिथ्या नामरूप भूषणोंकी पश्चात् प्रतीति होती है, जैसे--रज्जु शुक्ति प्रथम ठूँठादिक अधिष्ठान अपरोक्ष प्रतीतिपूर्वक ही कल्पित सर्पादिक नामरूपकी पश्चात् प्रतीति होती है इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं। तैसे--तुम्हारे हमारे तथा सर्व जगत्के स्वरूप सच्चिदानंद आत्मा अधि-ष्ठानके प्रथम अपरोक्ष दर्शनपूर्वक ही सर्व नामरूप घट-पटादिकोंका पश्चात् दर्शन होता है। पूर्व अज्ञानी लोगोंकी दृष्टिसे जहां कहीं नाम रूप प्रपंचका ही दर्शन कहा है। जैसे--तू नारदको बाहर तलाश करे सो कहाँ मिले किंतु नहीं मिलेगा, क्योंकि, नारद आप ठहरा इससे हे सज्जनो ! देश, काल, वस्तु, भेदरहित, मन वाणीका अगोचर, अपरोक्ष तुम्हारा साक्षी आत्मा है सोई आनंद नित्य चिद्रूप है। जो मन वाणीका गोचर देश, काल, वस्तु भेदवान् पदार्थ है सो दुःख रूप

दृश्य जड रूप है, इससे बाहर मत खोज "जो पिंडे सोई ब्रह्मण्डे" नारद तूष्णीं हुआ।

कागभुशुण्ड

पुनः कागभुशुण्ड आये और कहा--हे साधो! मैंने कोटानकोट ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति, लय, स्थिति, सम और विलक्षण भी देखी हैं अनेक ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकोंके राम कृष्णादिक अवतार देखे हैं परंतु सब प्रतीति मात्र हैं सत् नहीं, आत्मा ही सत् है। जैसे--समुद्रमें अनेक फेन बुद्बुदे तरंगादि होते हैं पुनः मिट जात हैं, जल ज्योंका त्यों स्थित है। हे साधो! मेघोंसे जो चातुर्मासमें बूँद पडती हैं तिनकी गिनती होनी कठिन है समुद्रके किनारे बालूकी गिनती होनी कठिन है पर तिनकी गिनती भी कोई बुद्धिमान् कर सके तो हो सके, परन्तु सत्, चित्, आनंद रूप, निजस्वरूप आत्मासे यह मायामात्र अनंत ब्रह्मांड उत्पन्न होते हैं पुनः मिट जाते हैं तिनकी गिनती नहीं हो सकती, जलतरंगोंवत्। जब अपने स्वरूपको जानता है तब सर्व कल्पित ब्रह्मांडोंका अत्यंताभाव प्रतीत होता है। जैसे--जलके जाननेसे अनंत फेन बुद्बुदे तरंगादिकोंका अत्यंताभाव प्रतीत होता है, किन्तु जलसे पृथक् सत्ता तिनकी नहीं प्रतीत होती। जैसे--भौतिक पदार्थ अनंत हैं परन्तु तिन पदार्थोंका स्वरूप जो पंचभूत हैं, तिन पंचभूतोंके ज्ञाता पुरुषको भौतिक पदार्थों विषे अनंतता किंचित् मात्रकी प्रतीत होती नहीं।

वसिष्ठने कहा--हे कागभुशुण्ड! अपने स्वरूपका स्वरूप क्या है? कागभुशुण्डने कहा--हे साधो! किसी निमित्तसे दुःखाकार वा सुखाकार अंतः करणकी वृत्ति उत्पन्न होकर निमित्तके अभावसे वा स्वभावसे ही मिट गई पुनः दुःखाकार वा सुखाकार उत्पन्न हुई नहीं वा उत्पन्न हुई है इस व्यवहारको जिसने अनुभव किया है सोई अपने स्वभा-

वका स्वरूप है। तैसे ही--पुण्य वा पाप रूप संकल्प उत्पन्न होकर मिट गया है पुनः पुण्य पापका संकल्प उत्पन्न हुआ नहीं वा हुआ है इन सर्व व्यवहारोंका अंतर जिसने देखा है सोई अपने स्वरूपका स्वरूप है। तैसे ही सात्विकी वा राजसी वा तामसी अन्तःकरणकी वृत्ति उत्पन्न होकर मिट गई, जब लग पुन सात्विकी वा राजसी वा तामसी वृत्ति उत्पन्न हुई नहीं, वा उत्पन्न हुई है, यह सर्व व्यवहार अंतर जिसने जाना है सोई अपने स्वरूपका स्वरूप है। तैसे ही जाग्रत् वा स्वप्न वा सुषुप्ति अवस्था होकर मिट गई है, जब लग दूसरी अवस्था प्राप्त हुई नहीं वा प्राप्त हुइ है इन सर्व संधियोंके संधियोंमें स्थित हुआ जो स्वयं प्रकाशमान वस्तु है तथा पूर्वोक्त जाग्रतादिक संधियोंकी जिससे सिद्धि होती है सोई अपने स्वरूपका स्वरूप है। तैसे ही-कमर पर्यंत कोई पुरुष जलमें स्थित होवे, सो कमरके नीचे शीतलताका तथा कमरके ऊपर उष्णताका जिससे अनुभव होता है सो ही निर्विकल्प अपना स्वरूप है। तैसे ही--कामाकार, क्रोधाकार, लोभाकार, मोहाकार तथा अहंकारादिक वृत्तियां उत्पन्न होकर नष्ट हो गई हैं, पुनः कामाकारादिक वा अकामाकारादिक वृत्तियां जब लग उत्पन्न हुई नहीं वा हुई हैं, तिनके मध्यमें जो निर्विकल्प निर्विकार तिन कामाकारादिक वृत्तियोंके भावाभावको तथा अन्य वृत्तियोंकी अनुत्पत्तिको वा उत्पत्तिको जानता है सो द्रष्टा साक्षी वस्तु अपना स्वरूप है। तैसे ही शांति आदिक वृत्तियां उत्पन्न होकर नष्ट हो गई हैं। अन्य शांतिरूप वा अशांतिरूप वृत्तियां उत्पन्न हुई वा नहीं उत्पन्न हुई हैं तिनके भावाभावको प्रकाश करनेवाला साक्षी चेतन्य वस्तु अपने स्वरूपका स्वरूप है। तैसे ही--हर्षाकार वा शोकाकार वृत्ति उत्पन्न होकर समाप्त

होगई और अन्य उत्पन्न हुई नहीं हैं इन सर्व व्यवहारकी पहँचान करनेवाला अपना स्वरूप है तैसे ही--प्राणोंके बाहर कुम्भकको, प्राणोंके रेचक पूरकको, अंतर कुम्भकको प्राणोंके गमनागमनको, प्राण अपानकी संधिको जो सिद्ध करता है सोई अपना स्वरूप है। ज्ञान, अज्ञान, बन्ध, मोक्षकी कल्पना जिसकर सिद्ध होती है सोई अपना स्वरूप है इत्यादिक अनेक संधिया हैं।

योगी अयोगी और परमयोगी

वसिष्ठने कहा--हे कागभुशुण्ड ! तुम योगी हो और दीर्घ वायुवाले हो जो अलौकिक देखा हो सो कहो। भुशुण्डने कहा--योग (चित्तकी एकाग्रता) के करनेवालेका नाम योगी है और चित्तकी एकाग्रताके न करनेवालेका नाम अयोगी है। सो चैतन्यके आभास सहित मनरूपी जीव योगकर्ता है। इससे मनरूप है जीवयोगी है। मनके धर्म एकाग्रता न एकाग्रतारूप योग अयोगके भावा भावसहित जो मनके सर्व व्यवहारको अंतर जानता है सोई परमयोगी है। सो ऐसा परम योगी अनंत नित्य, चिद्रूप, प्रत्यक् आत्मा है। तिस पूर्वोक्त प्रत्यक् आत्माको सम्यक् जो अपना स्वरूप जानता है सो पुरुष परम योगी है। नेति धोती जल पखालके करनेवालेका नाम न समान योगी है और न परम योगी है अयोगी है। हे वसिष्ठजी अनंत ब्रह्मांड होगये हैं और अनंत होवेंगे परन्तु चैतन्यके दृश्यरूप वा मायामात्र रूप, पंचभूतरूप, शब्दादि पंचविषयरूप, श्रोत्रमनादि इंद्रियरूप, सात्त्विकादि त्रिगुणरूप, काम क्रोधादिरूप जैसे यह ब्रह्माण्ड वर्तमानमें है तैसे ही अतीत ब्रह्मांड हो गये हैं तथा आगे होवेंगे। कदाचित् विलक्षणता होती भी है, तो भौतिक पदार्थोंमें होती देखी

है । पूर्वोक्त प्रकारसे नहीं देखी है । हे वसिष्ठजी ! बहुत जीनेसे कुछ लाभ नहीं और थोडा जीनेसे कुछ हानि नहीं, परन्तु सम्यक् आत्म बोधपूर्वक जीना ही सफल है अन्य नहीं । वास्तवसे पूछो तो यह सर्व अज्ञानी जीव भी चिरंजीव हैं, क्योंकि अनेक प्रलय इन्होंने देखे हैं और अनेक देखेंगे, अनेक बार अनेक ब्रह्मांडोंमें इनकी उत्पत्ति हुई है और होवेगी इसीसे सर्व अज्ञानी जीव चिरंजीवी हैं । परन्तु अविद्यासे आच्छादित होनेसे इनको ज्ञान नहीं । इस विद्यमान शरीरका अनेक (महा प्रलयतक) प्रारब्ध कर्म है । स्वरूपके सम्यक् ज्ञान पूर्वक इस शरीरका जीना है ईश्वरकी नियति ऐसे ही है इतना ही जीवोंकी चिरंजीवितामें तथा मेरेमें भेद है अधिक नहीं । जैसे स्वप्नमें सर्व जीवोंकी आयु समान ही है न्यूनाधिक भाव नहीं । एक स्वप्नद्रष्टा ही चिरंजीवी है अन्य नहीं तो भी अविद्याने किसी स्वप्न नरमें चिरंजीविता प्रतीति कर रक्खी है किसी स्वप्न नरमें अचिरंजीविता प्रतीति कर रक्खी है वास्तवसे नहीं अविद्याकी विचित्र महिमा है एककालावच्छेदकर स्वप्नसृष्टिकी उत्पत्ति होती है निद्रारूप अविद्याके अभावसे एक कालावच्छेदकर ही निराश होता है, कहो चिरंजीवी और अचिरंजीवी कौन हुआ ! परन्तु तिसी स्वप्न सृष्टिमें किसी स्वप्न नरको तो युगोंकी तथा कल्पोंकी पंगति व्यतीत होती प्रतीत होती है, किसीको उसी कालमें चार घटिका ही व्यतीत होती प्रतीत होती है, किसीको उसी क्षणिक ही प्रतीत होता है, किसीको वही काल चित्तोशविषे होनेवाले स्वप्नमें अनंत योजनों सहित अनंत ब्रह्मांड प्रतीत होते हैं इत्यादि अविद्याकी महिमा कहांतक कहूँ ? इससे चिरंजीवी एक चिद्वस्तु है अन्य सर्व मायामात्र है । यह कह काकभुशुण्डि चुप हुआ है ।

लोमश ऋषि

और लोमश ऋषि आये और कहा--हे साधो ! यह मिथ्यामन वाणीका गोचर, परिच्छिन्न दृश्य वस्तु द्रष्टा साक्षी चैतन्य निर्विकार आत्माका रोममात्र भी कुछ बिगाड़ नहीं करता। जैसे--पृथिवी, अप तेज, वायु तथा तिनके कार्य आकाशमें स्थित हुए आप अपना व्यवहार करते हुए भी आकाशका किंचित् मात्र भी बिगाड़ नहीं कर सकते तैसे सर्व देह इन्द्रियमनादिकोंके व्यवहारमें साक्षी आत्मा निर्विकार रहता है, कदाचित् भी अपने असंग स्वरूपको नहीं त्यागता।

यमकिंकरने कहा--हे रोमशऋषि ! सुनते हैं कि, ब्रह्मा मरता है तो रोमशऋषि एक रोम उखाड कर फेंक देता है, यह बात कैसी है ? रोमशने कहा--यह लौकिक व्यवहार वैदिक नहीं। इससे केवल आत्माकी तथा दृश्यवर्गकी अनंतता बोधन है और कुछ तात्पर्य्य नहीं है। हे साधो ! जैसे तुच्छ आयुवाले जीव सदा जीवनेकी इच्छा रखते हैं जीनेसे तृप्त होते नहीं तथा जैसे--अज्ञानी मरनेते भय करते हैं, चक्षु आदिक इन्द्रियोंसे रूपादिक विषयोंको ग्रहण करनेमें धावते (अघाते) नहीं, शरीरकी आरोग्यता चाहते हैं इत्यादि अनेक व्यवहारोंमें पश्चात्ताप तथा विलाप करते हुए ही जैसे शरीरको त्यागते हैं तैसे ही अज्ञानी दीर्घ आयुवालोंका हाल भी सम्यक् तैसे ही जानना। यह व्यवहार सब विद्वानोंका अनुभव सिद्ध है, बल्कि ज्ञानीको भी जीना अच्छा लगता है मरना बुरा ही लगता है। इससे नित्य चिद् अनन्त निजस्वरूप आत्माका सम्यक् बोध ही श्रेष्ठ है न्यूनाधिक जीवना श्रेष्ठ नहीं। हे यमकिंकर ! असली विचारकी बात सुन। जैसे--स्वप्न नर किसी स्वप्नके ऋषिपुरुषको कहें "हे ऋषि !

अमुक (स्वप्नका) ऋषि स्वप्नावीके मरे वा स्वप्नावीके जागेसे एक अपना रोम उखाड़के फेंक देता है'' क्योंकि, स्वप्नावी (हमारे पिता) को रोज मरना ठहरा; हम कैसे क्षौर कराते तकलीफको पाते हैं। हे साधो ! तुम अपने मनमें शोच देखो कि, स्वप्नावीके मरनेसे वा स्वप्नावीके जागनेसे स्वप्नपुरुष पीछे कहां रहेंगे ? किंतु नहीं रहेंगे ! क्योंकि; स्वप्नसृष्टि स्वप्नावीके संकल्पमें है अन्यमें नहीं। तैसे ही समष्टि हिरण्यगर्भ परमेष्ठीके वा शबलब्रह्म विष्णुके माया विशिष्ट चैतन्य ईश्वरके संकल्पमें अस्मदादिकोंसहित सर्वसृष्टि है, तिसके संकल्पके अभावसे अस्मदादिकोंका शरीर पीछे रहना कैसे होगा ? और शरीर विना रोम उखडना कैसे होगा ? जो कहो हिरण्यगर्भ समष्टिके संकल्पसे अस्मदादिकोंके शरीर बाहर हैं तो जैसे--दूसरे स्वप्नद्रष्टाकी सृष्टिको स्वप्नद्रष्टाको स्वप्नद्रष्टाके मरनेको तिसके हर्ष शोकको। सारांश यह कि, तिसके सर्व न्यूनाधिक व्यवहारकी दूसरे स्वप्नके स्वप्नपर जान नहीं सकते तैसे ही हिरण्यगर्भकी संकल्पित सृष्टि सहित हिरण्यगर्भको और हिरण्यगर्भकी कल्पित सृष्टिके बाहर अस्मदादिकोंके शरीर जान नहीं सकते। जो हिरण्यगर्भके संकल्पमें अस्मदादिकोंके शरीर हैं तो पूर्वोक्त रीतिसे हिरण्यगर्भको निज आयुके क्षयसे सर्व संकल्पको त्यागके विदेह कैवल्यको प्राप्त होते ही अस्मदादिकोंके शरीर ही पीछे न रहेंगे। रोम उखाडनादि व्यवहार कैसे बन सकता अर्थात् नहीं बन सकता। इस हेतु यह सब आत्मभिन्न लौकिक बात है। जब रोमशने कहा--तो सबने सच्ची बात सुनकर श्लाघा की और बहुत हर्षित हुए।

अश्विनीकुमार

तिसी समय में अश्विनीकुमार आये और कहने लगे--हे सभासदो ! अनंत चित् सत्यरूप निजात्मा साक्षी सूर्य है, यह ब्रह्माण्डरूप संघात साक्षी चैतन्यरूप सूर्यका रथ है समष्टि बुद्धिसे अभिन्न ही यह व्यष्टि बुद्धिरूपी अश्विनी (घोडी) तिस रथके आगे जुडी हुई है तिस पूर्वोक्त बुद्धिरूपी अश्विनीसे नाम रूप अश्विनीकुमार हम दोनोंकी उत्पत्ति हुई है इसीसे ही नामरूप हम दोनों अश्विनीकुमार इकट्ठे रहते हैं। यमकिंकरने कहा--हे अश्विनीकुमारो ! तुम कहाँ कहाँ रहते हो ? अश्विनीकुमारोंने कहा--हे यमकिंकर ! मन वाणीसे अगोचर जो प्रत्यक् आत्मा अपरोक्ष है तिस विषे हम नहीं रह सकते, तिसके पृथक् माया और मायाके सर्व कार्यमें हम पूर्ण होकर रहते हैं, यद्यपि पृथिवी आदिकोंकी अपेक्षासे वायु आकाश मायामें शास्त्र दृष्टिसे तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणसे रूप प्रतीत नहीं होता, परंतु चेतनकी अपेक्षासे वायु आकाश मायादिरूप रहित नहीं। क्योंकि, चैतन्यकी दृश्य हैं। जो जो दृश्य होता है सो सो नाम रूप स्वरूप ही होता है, जैसे अस्मदादिकोंकी दृष्टिसे परमाणु सूक्ष्म रूपरहित हैं, परंतु आकाशकी दृष्टिसे नहीं। तथा सूर्य जैसे सुमेरुको प्रकाशता है, तैसे मणियोंको प्रकाशता है, हम देव वैद्य हैं, समष्टि ब्रह्मांडसे अभिन्न जो यह व्यष्टि संघात स्वरूप स्वर्ग है, तिसमें हम मूर्ति धार कर विशेष रहते हैं। प्रत्यक् साक्षी चैतन्य इस स्वर्गका महान् इन्द्र है, मन गुरु बृहस्पति हैं। श्रोत्रादिक इन्द्रिय देवता हैं। जीव केवल इन्द्र है। हे यमकिंकर ! जो पुरुष हमारी विचाररूप (मृत्युसंजीवनी) औषधी अंतर खावेगा तिसका अज्ञानरूप रोग चला जावेगा।

विचार

यमकिंकरने कहा--विचाररूपी औषधी कहो ! अश्विनीकुमार कहने लगे--हे यमकिंकर ! एक द्रष्टा पदार्थ है एक दृश्य पदार्थ है तीसरा पदार्थ है ही नहीं । द्रष्टा दृश्य नहीं होता, दृश्य द्रष्टा नहीं होता । दृश्यका कोई भी धर्म द्रष्टाको स्पर्श नहीं करता यह नियम अति प्रसिद्ध है । चक्षु, दीपक, सूर्यादिकोंविषे सर्व लोकोंको देखनेमें आते हैं जो जाननेमें आते हैं सो दृश्य हैं, जाननेवाला द्रष्टा है । सारांश यह कि, जो जो ज्ञानका विषय है सो सो दृश्य, असत्, जड़, दुःखरूप कोटिमें है और जो स्वयंप्रकाश ज्ञान है जिस ज्ञानद्वारा मायासे आदि लेकर देह पर्यन्त सर्व दृश्य जाना जाता है; सो ज्ञानस्वरूपसे ज्ञान एक ही है । सो ज्ञान सत् चित् आनंदस्वरूप आत्मा साक्षी द्रष्टा है सो साक्षी द्रष्टासे परमात्मा, परमेश्वर, ईश्वर, गोविन्द, नारायणादिक भिन्न माने तो सर्वको असत्, जड़, दुखरूपता तथा दृश्यरूपता बलात्कार आवेगी । क्योंकि, सत्से भिन्न असत् है, चैतन्यसे भिन्न जड है. सुखसे भिन्न दुःख है, द्रष्टासे भिन्न दृश्य है । इससे सत्, चित्, सुखरूप द्रष्टा साक्षी आत्मा वस्तुके अंतर्गत ही ईश्वरादि नामोंकरके प्रतिपादित वस्तु होगी पृथक् नहीं । पृथक् मानो तो पूर्वोक्त उनकी असत् आदि गति होगी । इस हेतु इस प्रकरणमें महावाक्योंविषे जीव ईश्वरका भिन्न भिन्न लक्ष्य वाचकता कथन तथा वाच्य वाचक भागत्यागसे लक्षण लक्ष्यकी एकता लक्षणासे करना केवल परिश्रम ही है । हे यमकिंकर ! पूर्वद्रष्टा साक्षी आत्मा कैसा है सर्वके अन्तर स्थित होकर भी स्वरूपसे ही बंध मोक्षादि धर्मोंसे रहित है । जैसे--आकाश स्वरूपसे ही सर्वमें स्थित भी अस्पर्श है । हे यमकिंकर ! यह

अधिकारी पुरुष अपनी शुद्ध बुद्धिसे वा संतोंके सङ्गसे विचार करे कि, इन द्रष्टा दृश्य दोनों पदार्थोंमें मैं कौन हूँ ? द्रष्टा हूँ वा दृश्य हूँ ? जो मैं दृश्य हूँ तो दृश्यको मैं जानूँ कैसे ? जो दृश्यको जानता है सो दृश्य नहीं होता ! जैसे- चक्षु रूपको जानते हैं तो स्वयम् रूप नहीं होते, तैसेही मैं सुषुप्तिमें अज्ञानसे आदि लेकर जाग्रत्‌में देह पर्यन्त सर्व नामरूप दृश्यको प्रकाश करता हूँ अर्थात् जानता हूँ, उसमें मैं दृश्य कदाचित् भी नहीं बन सकता । बाकी शेष द्रष्टा ही मैं सम्यक् निश्चय करके हूँ, अन्य दृश्य नहीं । हे यमकिंकर ! जब इस अधिकारीने अपनेको सम्यक् द्रष्टा जाना तो बंध मोक्षादि सर्व कर्तव्योंसे रहित निष्कलंक स्थित होकर विराजमान होवेगा, क्योंकि, द्रष्टामें कोई भी बंध मोक्ष है नहीं बंध मोक्षादि प्रपंचकी अपने स्वरूप द्रष्टाविषे निवृत्ति प्राप्तिवास्ते कर्तव्य भी कुछ नहीं । जो बध मोक्षकी निवृत्तिवास्ते कर्तव्य करता है सो भ्रमजन्य है जिसने अपने द्रष्टास्वरूपको सम्यक् जाना है सो बन्ध मोक्षके फिक्रसे रहित हुआ व्यवहार परमार्थ दोनोंमें आनन्द लूटता है ।

जो ऊपरसे बन्धमोक्ष भ्रमसे रहित आपको कथन करता है अंतरसे सम्यक् भ्रम दूर नहीं हुआ सो अनधिकारी पुरुष व्यवहार परमार्थ दोनों विषे तपायमान दुःखी रहता है । यमकिंकरने कहा--तपायमान क्यों रहता है ? अश्विनीकुमारोंने कहा--मायाके कार्य जो वैराग्य, शम, दमादि दैवी गुण हैं और कामक्रोधादिक जो आसुरी गुण हैं स्थूल सूक्ष्म शरीरोंमें न्यूनाधिक भावसे अनात्मधर्म हैं तिसको अपना धर्म मानके तपायमान होता है क्योंकि, सम्यक् अपने द्रष्टा प्रत्यक् आत्माका अनुभव उससे नहीं है । "स्वभावसे ही सर्व

दृश्य और दृश्यके धर्मोंसे रहित अलिप्त साक्षी द्रष्टा आत्मा है कर्तव्यसे नहीं" इसके प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रमें सम्यक् तिसका विश्वास नहीं होता। हे यम-किंकर ! जिसको सम्यक् अपने स्वरूपका अनुभव हुआ है सो किसी भी शास्त्रकी कुछ अपेक्षा नहीं रखता क्योंकि, आँखों देखी चीजमें संशय नहीं होता। मायासे लेकर देहपर्यंत सर्व द्रष्टा आत्माको दृश्यका स्वभावसे ही कोई भी धर्म द्रष्टाको स्पर्श नहीं करता, सम्यक् जानना ही कर्तव्य है करना कुछ नहीं। सम्यक् अपने स्वरूपको न जानना ही तपनेका हेतु है दूसरा नहीं। जैसे--भेदवादियोंको वा निष्कपट श्रद्धालु सूधे शरीरको गुरुशास्त्र जो परोक्ष बात भी पकड़ा देते हैं सो मृत्युपर्यंत छोडते नहीं; वैसे ही तपनेवाला जो वेदांती है तिसकी सिद्धांतमें श्रद्धा नहीं है। यह नहीं विचारता कि, जो परोक्ष विष्णु, शिव, गणेशादिकोंके प्रतिपादक शास्त्र तथा मीमांसादिक पंच शास्त्र जो सत् हैं तो वेदांत शास्त्र भी छठवां सत् है जो वह असत् हैं तो यह भी असत् है। इससे "आप सहित सर्व हरि है" इस दृढ श्रद्धापूर्वक भावना रूप उपासनासे भी ताप नहीं होता।

अंगिरा

तिस समय अगस्त्य और अंगिरा ऋषि आये अंगिरा कहने लगे--हे साधो ! चार वेद चार उपवेद, तिनके व्याकरणादिक षट् अङ्ग षट् शास्त्र और पुराण इत्यादिक सर्व विद्या अपर विद्या हैं इन्हें निकृष्ट विद्या कहते हैं, साधारण भाषा वाणी द्वारा चाहे फारसी द्वारा, चाहे अंग्रेजी, चाहे संस्कृत, चाहे दक्षिणी भाषा चाहे बंगाली भाषा चाहे किसी भी देशांतरकी भाषा द्वारा अवाङ्मनसगोचर सर्वाधिष्ठान जगद्विध्वंस प्रकाशक अवेद्यत्व सदा परोक्ष,

साक्षी, सच्चिद्घन, विशुद्धानंदका सम्यक् बोध होवे सोई परमविद्या है नाम उत्कृष्ट विद्या हैं। इससे येनकेन भाषा द्वारा वा संस्कृतद्वारा सम्यक् अपने स्वरूपका बोधक ही परमविद्या है।

अगस्त्य

तिस सभामें अगस्त्य आकर बोले-कि, अगस्त्य नाम प्रत्यक् अभिन्न परमात्माका है। सारांश यह कि, अगस्त्य नाम अक्रिय पदार्थका है वा सूर्यका है सो अगस्त्य नाम (परमात्मा) प्रलय कालके आदिमें सूर्य रूप होकर सर्व समुद्रादिकोंके जलको पान कर लेता है, पुनः कोई काल पीछे महा प्रलयके आरंभ कालमें हाथीके शुंड तुल्य जल धाराको त्याग देता है वा हमेशा सालके साल ग्रीष्मऋतुमें अगस्त्य नाम सूर्य जलको अपनी किरणोंद्वारा जलपान करलेता है, चातुर्मासमें त्याग देता है। वा सर्व जीवोंके सुख दुःखका अनुभव रूप भोग देनेवाले कर्मोंके उपराम होनेसे अगस्त्य रूप परमात्मा सर्व नाम रूप प्रपंचरूप जलको अपनी माया शक्तिमें खैंच लेता है पुनः जब भोग देनेके सम्मुख कर्म होते हैं तो अगस्त्य रूप परमात्मा नाम रूप प्रपंचरूप जलको त्याग देता है अर्थात् सूक्ष्मसे प्रगट करता है। इसीसे तिस प्रत्यक् अभिन्न, परमात्माका नाम अगस्त्य है जो ऐसा नहीं माने परंतु-अगस्त्यऋषिके ही समुद्र (जो पहले ही मधुर था) किसी निमित्तसे पान करके पुनः लघुशंकावाले रास्तेसे निकालनेसे खारा हो गया है; ऐसे माने तो "धाता जो ईश्वर है सो जैसे पूर्वकल्पमें जगत्की मर्यादा थी तैसे ही उत्तर कल्पमें मर्यादा रचता भया" इस मंत्रकी व्यवस्था नहीं लगेगी। जो ऋषिसे ही माने तो मंत्रका अर्थ ऐसा लगे

कि, हमेशह कल्पके कल्प पहले ईश्वर इस समुद्रको शुद्ध मधुर जलको रचता है पीछे अगस्त्य ऋषि पीकर लघुशंका कर देता है, इससे खारा हो जाता है सो यह बात विद्वानोंके अनुभवसे मिले नहीं और सत् शास्त्रसे भी मिले नहीं । बृहदारण्यकके पचम अध्यायमें याज्ञवल्क्य भुज्युके प्रसंगमें तथा जगत्‌की अनेक उत्पत्ति प्रसंगमें इस समुद्रको पहलेसे ही खारा लिखते हैं यह नहीं लिखते कि, पीछे अगस्त्य ऋषिने खारा किया है । इससे अगस्त्य नाम सूर्यका भी है, सो महाप्रलयके आदि कालमें वा हमेशह सालके सालमें जल खैंच लेता है पुनः त्याग देता है ।

क्षीरसमुद्रमंथन और चौदह रत्न

यही हाल क्षीर समुद्र मथनेका तथा चौदह रत्न निकालनेका जान लेना । क्योंकि, पूर्व समुद्र प्रकरणके समान हरेक कल्पमें पहले चन्द्रमादि रत्नों रहित जगत् उत्पन्न होता है पीछे देवता, दैत्य क्षीरसमुद्रको मथके चन्द्रमादि रत्नोंको निकालते हैं, सो वेद अनुभवसे विरुद्ध है । वेदमूलमें, ब्राह्मणमें, धर्म शास्त्ररूप स्मृतियोंमें सम्यक् जगत्‌की उत्पत्ति पालना प्रकरणमें यह बात कहीं भी लिखी नहीं । श्रुतिमें रयीरूप चन्द्रमाको भोग्य लिखा है और सूर्यको भोक्ता लिखा है । भोक्ता भोग्यमय ही यह सर्व संसार है, जो पुरुष सूर्य चन्द्रमाको भोक्ता भोग्य-मय सब संसाररूप जानकर उपासना करता है सो उत्तम सुखको प्राप्त होता है, ऐसे लिखा है । जो चन्द्रमा पीछे हो तो चन्द्रमासे प्रथम होनेवाले वेद वाक्यकी व्यवस्था न होगी । तथा भोग्य विना भोक्ताकी सिद्धि नहीं होगी, इससे सूर्य भी जगत्‌की उत्पत्तिके प्रथम ही उत्पन्न होना चाहिये । सारांश यह कि, भोक्ता भोग्यमय ही संसार अगस्त्य नाम भी ईश्वरका है तथा ऋषि नाम भी

ईश्वरका है सो अगस्त्य ऋषि नाम ईश्वरका है तथा महान् तपस्वी ब्राह्मण अगस्त्यकी नाम संज्ञा एक होनेसे ऋषिका नाम लेते हैं। वा इससे तपकी महिमा प्रगट होती है। इससे जगत्के पीछे जगत् हुआ यह अर्थ अनुभव शास्त्रसे मिले नहीं। इस हेतु यह अर्थ जानना कि, शुद्धि माया वा अज्ञान क्षीरसमुद्र है, जगत् रचनेकी ईश्वर इच्छा मन्दराचल पर्वत है। ईश्वरकी क्रिया शक्ति शेष नाग है। जीवोंके पुण्य पापरूप देवता और दैत्य हैं। ईश्वरकी ज्ञान शक्तिको कूर्म (कछुवा) जानना, जिनने मन्दराचलको धारण किया था क्योंकि, ईश्वरकी ज्ञान शक्तिसे ही यथायोग्य यह जगत् धारण हो रहा है। पूर्वोक्त क्षीरसमुद्र मन्थन करनेसे पंच ज्ञानेंद्रिय, पंच कर्मेंद्रिय, चतुष्टय अन्तःकरण, (प्राण कर्मेंद्रियोंके भीतर ही जान लेने क्योंकि कर्मेंद्रिय तथा प्राण भूतोंकी रजो अंशत उत्पन्न हुए हैं) तिनके देवता तथा तिनके विषय यह चौदह प्रकारकी त्रिपुटीरूप चौदह १४ रत्न भोक्ता भोग्यमय संसारमें उत्पन्न हुए। यथार्थ वक्ता अगस्त्यका वाक्य सुनकर सर्व सभा प्रसन्न हुई।

काल

तिसी समय काल भगवान् आया और कहने लगा– हे सभासद विद्वान् लोगो ! काल तीन प्रकारका है--१ एकका नाम केवल काल है २ दूसरा महाकाल है। ३ तीसरा अतिकाल है। तीन प्रकारका सत् चित् आनन्द स्वरूप प्रत्यक् आत्माके अज्ञानसे उत्पन्न हुआ जो काल देश सहित भूत, भौतिक सूक्ष्म, स्थूल जगत् है तिस जगत्के मध्यमें मैं केवल काल हूँ। कैसा मैं हूँ कि, जब लग अज्ञानरूप पिता मेरा जीता है तबतक ही मेरी भाइयों सहित आयु है पीछे नहीं। हे विद्वानो ! मुझ केवल

काल करके ही जगत्की उत्पत्ति, पालना, तिरोभाव होता है, मुझ कर ही जीवोंके स्थूल शरीर जीर्ण होते हैं, पुनः नवीन उत्पन्न होते हैं, परन्तु मुझ केवल कालसे सूक्ष्म शरीर न जीर्ण होते हैं न उत्पन्न होते हैं। पूर्वोक्त सर्वके निज स्वरूप अधिष्ठानके अज्ञानने स्थूल सूक्ष्म संसाररूप बगीचा रचा है, तिस स्थूल बगीचेका मुझको मालीपना सिपुर्द किया है। जैसे--माली जीर्ण झाडोंको काटके नवीन लगा देता है; कदाचित् नवीन भी झाड शोभादायक नहीं होते तो तिसको भी काटके अन्य स्थानोंमें लगा देता है परंतु बीजका नुकसान नहीं कर सकता क्योंकि बीज विना झाड़ कहांसे होगा ? सारांश यह कि, माली ही बगीचेकी सफाई तथा गुलजार रखता है तथा जब बगीचा देखें तब वैसेका वैसा ही दीखता है नदीप्रवाह-वत्। तैसे ही पिता अज्ञानने मुझे केवल कालको स्थूल संसाररूप बगीचेका माली किया है सो मैं मालीकी न्याई जीवोंके कर्मोंके अनुसार स्थूल शरीरोंको तथा अन्य स्थूल पदार्थोंको तोड़ फोड़कर तथा नवीन पैदाकर वैसेका वैसा ही गुलजार प्रतीत कराता रहता हूँ। जैसे माली झाड़ोंको तोड़े फोड़े नहीं तथा नवीन लगावे नहीं तो बगीचेकी शोभा जाती रहती है। जैसे--बहुत प्राचीन झाड कोई सूख जाता है कोई फल नहीं देता है। तैसे मैं स्थूल पदार्थोंको जीर्ण पुनः नवीन नहीं करूँ तो संसाररूप बगीचेकी शोभा जाती रहे। इससे मैं इस स्थूल संसार बगीचेकी सफाई करनेवाला केवल काल-रूप माली हूँ। ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकोंकी स्थूल मूर्ति-योंको भी नाश करता हूँ, मैं नहीं छोड़ता, चाहे ब्रह्मा-दिकोंसे पूछ लो, अन्यकी क्या बात है ? पूर्वोक्त अज्ञान-पिताका ही पुत्र और हमारे भाई सर्व नामरूप कल्पित

संसारका अधिष्ठान जो अनन्त चित् सत् स्वरूप बुद्धि आदिकोंका साक्षी आत्मा है, तिसका जो सम्यक् बोधरूप ज्ञान है सो महाकाल है। क्योंकि, अपने अज्ञान पिताका तथा पिताके कार्यरूप मुझ केवल काल भाई सहित परिवारका एक कालावच्छेदकर नाश कर देता है। सारांश यह कि, सर्व कार्य कारण प्रपंचमें सम्यक् मिथ्यात्व दृष्टि करा देता है ! इससे पूर्वोक्त सर्व कल्पित संसारके अधिष्ठानका ज्ञान ही महाकाल है। यमकिंकरने कहा--हे देव ! परिवारसहित अपने पिताको ज्ञानरूप महाकाल क्यों मारता है ? कालने कहा--हे यमकिंकर ! वस्तुका स्वभाव अपना बिगाना नहीं देखना, जैसे--अग्नि अपने उत्पत्ति कर्ताको अपने पूजकको तथा अपने अपकारीको स्पर्श करनेसे दग्ध कर देती है; जैसे विच्छू अपनी माताको नाश कर ही उत्पन्न होता है। जैसे--बाँसोंसे ही अग्नि उत्पन्न होती है, पुनः बाँसोंकोही जलाती है। जैसे--कोई राजाका दुष्ट नौकर राजासे ही वृद्धिको प्राप्त होकर पुनः राजाको ही नाश करता है इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं। तैसे यह ज्ञान भी अपने कारणको नाश करता हुआ ही उत्पन्न होता है। इससे ज्ञान महाकालरूप है, मुझ काल सहित सर्व कारण कार्य जगत्के मिथ्यात्व निश्चयका नाम ही भक्षण है। तैसे ही सत् चित् आनन्द स्वरूप प्रत्यक् आत्मा अतिकालरूप है । क्योंकि ज्ञानरूप महाकालको भी यज्ञ पूर्वोक्त साक्षी आत्मा भक्षण कर जाता है जैसे--अग्नि सर्वको दाहकर आप भी समानरूप महाअग्निमें लीन हो जाती है, जैसे निर्मली जलकी मलीनताको दूर करके आप भी नीचे बैठ जाती है, इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं, विस्तार भयसे लिखते नहीं। तैसे ही ज्ञानरूप महाकाल मुझसहित सर्वकल्पित जगत्की

निवृत्ति करके अर्थात् मुझ सहित सर्व नामरूप जगत्में मिथ्यात्व निश्चय कराके वा अभाव निश्चय कराके प्रारब्ध प्रतिबंधकके नाश हुए पीछे वृत्तिरूप ज्ञान आप भी साक्षी चैतन्यमें लीन हो जाता है। इससे हे विद्वान् लोगो! सच्चिदानंद प्रत्यक् मनादिकोंका साक्षी आत्मा ही अतिकाल है सो अतिकाल आत्मा ही ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत सर्वका निज स्वरूप है। जो अधिकारी अपने अतिकाल स्वरूपको सम्यक् स्वतः ही बंध मोक्षसे रहित ऐसा जानता है कि मैं बुद्धि आदिक सर्व दृश्यका द्रष्टा साक्षी चैतन्य निर्विकार निर्विकल्प हूँ। ऐसे अपरोक्ष दृढ निश्चय करता है सो मुझ केवल स्थूलके नाश करनेवाले कालके भयसे भय नहीं करता। जैसे स्वप्नावीके निद्रारूप अज्ञानसे देशकाल सहित सर्व स्वप्नसृष्टि उत्पन्न होती है और स्वप्न नर सत् जानता है सो स्वप्न स्थूल सृष्टिको ही स्वप्नका काल नाश करता है, तिस कालसे स्वप्न पुरुष भय करते हैं। कदाचित् स्वप्नके गुरु शास्त्रसे स्वप्न पुरुषको अपने स्वप्नावी स्वप्न अधिष्ठानका सम्यक् ज्ञान होता है तो अज्ञान देश काल सहित सर्व स्वप्न सृष्टिको मिथ्या निश्चय जानता है वा स्वप्नावी अधिष्ठानविषे अत्यन्ताभाव निश्चय जानता है यही तिस ज्ञानका सर्वको भक्षण करना है। कोई दृश्यकी अप्रतीतिका नाम भक्षण नहीं। जैसे-घट वं बुग्रीवावान् प्रतित होना हुआ भी घट नाम उच्चारण होता हुआ भी जलका धारणरूप वा जलका लावनारूप क्रिया देता हुआ भी सम्यक् मृत्तिकाके ज्ञानवाले पुरुषको पूर्वोक्त घटका मृत्तिकामे अत्यन्ताभाव है। यह सब विद्वानोंको अनुभव है और ठीक-ठीक ऐसे ही है। घटको चूर्ण करके वा किसी रितिसे घटकी अप्रतीति होवे तब ही घट मृत्तिकारूप होता है वा अभाव होता है

यह नहीं। इसी प्रकार सुवर्णादि अनेक दृष्टांत हैं। अपनी बुद्धिसे जान लेना. सारांश यह कि, जैसे-स्वप्नद्रष्टाका ज्ञान स्वप्न सृष्टिको मिथ्यात्व निश्चय रूप वा अभाव निश्चय रूप भक्षण कर जाता है इसीसे महाकाल है। पुनः वह ज्ञान सहित पुरुष तथा ज्ञान कर बाधक होती हुई सर्व स्वप्न सृष्टि किसी निमित्तसे निद्रा रूप प्रतिबंधकके दूर होनेसे जिस स्वप्नद्रष्टाको अज्ञानसे हुई थी तिसी स्वप्न द्रष्टामें लीन हो जाती है यही तिसका भक्षण है। इसीसे स्वप्नद्रष्टा अतिकाल है। तैसे ही सांगोपांग अपनी अक्लसे दार्ष्टान्त (विद्वानोंको) जान लेना। हे सभानिवासी पुरुषो ! मैं लौकिक केवल काल ब्रह्मासे लेकर चींटीतक सर्वकी स्थूलताको ही नाश करता हूँ, पुनः नवीन पैदा करता हूँ, परन्तु सूक्ष्म सृष्टि मुझसे नाश पैदा नहीं होती। वह ज्ञान रूप महाकालसे ही मिथ्यात्व निश्चय रूप वा अभाव निश्चय रूप नाश होता है अन्यथा नहीं। मुझ केवल कालकर ही अनंतवार स्थूल सृष्टि उत्पन्न होती है; पुनः लीन होती है। तात्पर्य यह कि, लौकिक वैदिक सर्व व्यवहार मुझ कालकर ही होते हैं, पुनः लीन होते हैं, परन्तु यह नहीं कि, सृष्टि मिथ्या है और मैं सत् हूँ, किन्तु सृष्टिके साथ ही मरी सत्ता है पृथक् नहीं। अतिकालरूप आत्मामें मुझ सहित सर्व सृष्टि कल्पित मिथ्या है परन्तु नित्य सुख चिद्रूप प्रत्यक् आत्माने किसीको कोई भाव सिपुर्द किया है, किसीको कोई सूर्यादिकोंको उदय अस्तादिकोंका कार्य सौंपा है, यह वैसाही करते हैं। जैसे-जिसको जो व्यवहार राजाने सिपुर्द किया है सो तिसी हुकुमको तामिल करते हैं, मुझको सर्व जीवोंके स्थल शरीरोंका नाश उत्पन्न करना अदिक काम सिपुर्द किया है, सो मैं तिसी हुकुमकी तामीली बजाता

हूँ कोई मुझमें बड़ाई नहीं। काल सर्व स्थूलको नाश उत्पन्नादिक करता है इससे काल बड़ा है सो नहीं, जैसे—स्वप्नका काल और सृष्टितुल्य ही है। यमकिंकरने कहा—हे यथार्थवक्ता देव! कई एक शास्त्रोंमें अज्ञानको मृत्यु नाम काल लिखा है तथा शब्दादिक विषयोंको अतिकाल लिखा है वा काम क्रोधादिकोंको काल लिखा है परन्तु आपने महाकालका स्वरूप और ही कहा है। कालने कहा--हे किंकर! विचार देख। अज्ञानसे तो सुख दुःखरूप जगत् की उत्पत्ति होती है, कोई अज्ञान जगत् का नाशक नहीं, लौकिक पितावत्। जैसे--रज्जुका अज्ञान सर्पादिकोंकी उत्पत्तिका कारण है कोई सर्पादिकोंका नाशक नहीं। स्वप्नादिक अनेक दृष्टांत हैं, तैसे शब्दादिक विषय ही तो संसार है, सो विषय दुःख देनेवाले होनेसे काल कहा है। सो विषय अपरोक्ष आत्म ज्ञानीको तथा भ्रम ज्ञानसे विषयलंपटको भी तथा ब्रह्मादिक ईश्वरोंको भी दुःख नहीं दे सकते और यह ज्ञान रूप महाकाल तो सर्व दृश्यको मिथ्यात्व निश्चय रूप वा अभाव निश्चय रूप भक्षण कर जाता है। इससे ज्ञान ही महाकाल है, आगे जैसी इच्छा हो तैसे मान। ऐसे कह कर काल चुप हुआ।

माया (प्रकृति)

तिस सभामें जगज्जननी माया, जिसको प्रधान, प्रकृति, अविद्या, अज्ञान शक्ति भी कहते हैं सो मूर्ति धारकर आई और कहने लगी--हे पुत्रो! मैं सत्त्व, रज, तम त्रिगुणात्मक स्वरूप हूँ। नित्य सुख चिद्रूप प्रत्यक् आत्माकी मैं शक्ति हूँ, मैं आत्मासे भिन्न हूँ न अभिन्न हूँ। न सावयव निरवयव हूँ उभयरूप भी नहीं। न मैं सत् हूँ न असत् हूँ, न उभयरूप हूँ (क्योंकि, विरोधी धर्म एक ही स्थानमें

नहीं हो सकते) किन्तु अनिर्वचनीय हूँ । जैसे-अग्निविषे दाहक शक्ति अग्निसे भिन्न अभिन्न तथा उभयरूपता नहीं। जैसे स्वप्नद्रष्टामें निद्रारूप अविद्यासे भिन्नाभिन्न कुछ नहीं कह सकते परन्तु साक्षात् स्वप्न प्रपंच कार्यद्वारा निद्रारूप अविद्याका अनुमान होता है यह नहीं कि, स्वप्नद्रष्टामें निद्रारूप अविद्या नहीं । यद्यपि प्रत्यक्ष नहीं दीखती तौ भी निद्रारूप अविद्या विना स्वप्न प्रपंच होता नहीं । जो स्वप्न प्रपंचको अनुभव करनेवाला स्वप्नद्रष्टा चैतन्य वस्तु है सोई जाग्रत् अवस्थाको अनुभव करनेवाला चैतन्य वस्तु अब भी वर्तमान हाजिर हुजूर है, परन्तु अब जाग्रतमें स्वप्न प्रपंच नहीं है, इससे प्रमाणित होता है कि, स्वप्न जगत्का उपादान कारण निद्रारूप अविद्या ही स्वप्न प्रपंचकी उत्पत्ति पालना संहारका कारण है और स्वप्नद्रष्टा निर्विकार असंगरूप है । यद्यपि निद्रारूप अविद्या अब भी है तथापि कार्यके सम्मुख नहीं । तैसे तुम मुझ मायाको जगत्की उत्पत्ति पालन संहारादि सर्व व्यवहारका निर्वाहक जानो, चैतन्य असंग पुरुष निर्विकार जानो । मैं माया चैतन्यके भासको ग्रहण करके ही जगत्की उत्पत्ति आदि सर्व व्यवहार करनेको समर्थ होती हूँ स्वतः नहीं. क्योंकि, स्वतः जड हूँ। मै माया और मेरे ये सर्व नाम रूप कार्य चैतन्य द्रष्टाका दृश्य होनेके कारण मिथ्या मृगतृष्णाके समान केवल प्रतीति मात्र हैं, मेरा और मेरे कार्यका स्वरूप पृथक् नहीं । मैं माया अनेक अपने हाव भाव कटाक्ष करती हूँ तथा मोहित करनेवाले अनेक विचित्र कार्य उत्पन्न करती हूँ । सारांश यह कि, मैं अपना सर्व बल इस मनादिकोंके साक्षी चैतन्यके मोहित करने वास्ते करती हूँ। सत्को

अपने बलसे असत्, असत्को सत्, जडको चैतन्य, चैतन्यको जड़, सुखको दुःख, दुःखको सुख, पूर्णको अपूर्ण, अपूर्णको पूर्ण इत्यादि अनेक रूप अवास्तव इन्द्र-जालके समान कर दिखलाती हूँ वास्तवसे नहीं. तौ भी प्रत्यक् आत्मा प्रसन्न अप्रसन्न नहीं होता । तथा प्रसन्न करने वास्ते अनेक प्रकारके शांति आदि रस उत्पन्न करती हूँ, परन्तु नित्य सुख चिद्रूप यह साक्षी आत्मा मुझ सहित मेरे चरित्रोंका (ऊपरका ऊपर) द्रष्टा ही रहता है कदाचित् भी साक्षी आत्मा हर्ष शोकको नहीं प्राप्त होता, जैसे–इन्द्रजाली पुरुष अपनी माया द्वारा रचे अनेक सुंदर असुन्दर पदार्थोंसे आप हर्ष शोकको नहीं प्राप्त होता अन्य होते हैं ।

देखो मेरी अवस्था नवीनों यौवनवान् हूँ, अत्यंत सुन्दररूप हूँ पतिव्रता हूँ क्योंकि, अनंत चित् सत् स्वरूप प्रत्यक् आत्मा (मेर स्वामीसे) भिन्न सर्व नाम रूप प्रपंच मेरा कार्य नाम बाल बच्चा है, शेष एक चैतन्य ही मेरा पति है । परन्तु वह मुझ स्त्रीसे कदाचित् भी स्पर्श नहीं करता जो मैं लीला रचूँ तिससे पहले ही स्थिर होकर मेरा तथा मेरी लीलाका द्रष्टा रहता है । मैं क्षणमात्र भी तिससे भिन्न नहीं कर सकती । हे पुत्रो ! चैतन्य तुम सर्व नाम रूपका पिता है और मैं माया तुम्हारी माता हूँ इससे तुमको योग्य है कि, अपने माता पिताका सम्यक् स्वरूप जानो । जो अपने माता पिताका सम्यक् स्वरूप नहीं जानता सो पुत्र नालायक है अर्थात् द्रष्टा दृश्यका सम्यक् स्वरूप जानना ही कल्याणका हेतु है । वर्त्तमान साक्षात् माता पिताके पुत्रको कोई अधिकारी पूछे कि तुम अपने माता पिताको जानते हो ? जो वह कहे कि, मैं सम्यक् जानता हूँ

तो उत्तमता सिद्ध होती है और जो कहे मैं नहीं जानता तो नीचता सिद्ध होती है। तैसे-जो दृश्य, द्रष्टारूप माता पिताको जानता है सो उत्तम है, जो नहीं जानता सो नीच है। इससे तुम लोग अपनी नीचताके दूर करनेवास्ते सम्यक् अपने माता पिताको जानो।

व्यासने कहा-हे मातेश्वरी ! तू ही यथार्थ वक्ता अपना तथा अपने पतिका सम्यक् स्वरूप कह ! मायाने कहा-हे पुत्रो ! मुझ सर्वकी जननी मायाका तथा नामरूप आकाशादि प्रपंच मेरे बाल बच्चोंका सम्यक् असत् जड़ दुःख परिच्छिन्नरूप ही स्वरूप जानना अन्यथा नहीं। तात्पर्य यह कि, जो स्वरूपसे होवे नहीं और अधिष्ठानके अज्ञानसे प्रतीति होवे सो अपने कार्य सहित मायाका स्वरूप है स्वप्नवत् तथा मृगतृष्णाके जलवत् है तैसे ही सत् चित् आनंदस्वरूप ब्रह्म साक्षी आत्मा (मेरेसे पति और अपने पिता) का सम्यक् स्वरूप जानना अन्यथा नहीं। सारांश यह कि आपको सर्व दृश्यका द्रष्टा जानना। मायासे लेकर देहपर्यंत अपनी दृश्य जाननी। द्रष्टा स्वभावसे ही बंध मोक्षसे रहित है क्योंकि बंध मोक्षका भी द्रष्टा है। इस हेतु बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते प्रयत्न भ्रमसिद्ध है सम्यक् नहीं। यह कहकर माया चली गई।

कश्यपऋषि

(देवता दैत्यकी उत्पत्ति, सुरासुर लडाई, स्वर्गनरक बन्धमोक्ष तथा मनोनाशका वर्णन)

कश्यप ऋषि आये और कहने लगे-हे सभासद जनो ! दैवी आसुर गुणदोषरूप जो देवता दैत्य हैं, मुझ कश्यप नाम चैतन्यसे ही उत्पन्न होते हैं और मुझमें ही लय होते हैं, परंतु मैं चैतन्य निर्विकार ही रहता हूँ, जैसे-

स्वप्नद्रष्टा स्वप्न प्रपंचको उत्पन्न करता भी निर्विकार है, जैसे अनेक अँधेरी वर्षादिक उत्पन्न लय होते भी आकाश निर्विकार है इससे मैं चैतन्थ सर्वाधिष्ठान हूँ, मुझ चैतन्यको अपना स्वरूप जानो । तब कालके भयसे छूटोंगे अन्यथा नहीं । वा मनरूप कश्यप जानो, प्रवृत्ति निवृत्ति तिस मनरूप कश्यपकी दिति अदिति दो स्त्रियां जानो तिनसे देवी आसुरी गुण देवता दैत्य हुए। जिसके शरीरमें दैवीगुण अधिक है, सो शरीर स्वर्गवत् जानो । शरीरमें जिसके आसुरीगुण अधिक है सो शरीर पातालवत् जानो वा यह एक ही शरीर स्वर्गपातालरूप जानो क्योंकि जब इसी शरीरमें अमानित्व अहिंसादिक दैवीगुणरूप देवतोंकी अधिकता तथा बलिष्ठता और क्रोधादिक दैत्योंकी निर्बलता तथा न्यूनता होती है तब यही शरीर स्वर्गरूप जानना और जब इसी शरीरमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, दंभादिक आसुरीगुणरूप दैत्योंकी अधिकता, बलिष्ठता, अमानित्व, अहिंसा ब्रह्मचर्यादिक देवी गुणरूप देवतोंको न्यूनता तथा निर्बलता होत है तब यही शरीर पातालरूप जानो वा नरकरूप जानो । जब दैवी आसुरी गुणरूप देवता दैत्य इस शरीरमें सम रहें तो तब इस शरीरको भूमिलोक जानो । हे साधो ! पूर्वोक्त इस शरीरमें दैवी आसुरीगुणरूप देवता दैत्योंकी लडाई होती रहती है तथा सर्वदा विरोध रहता है । जब कभी दैवी गुणरूप देवता बली हो जाते हैं तब शरीररूप स्वर्गमें यह जीवरूप इन्द्र परम शोभाको पाता है और आसुरी गुणरूप दैत्य शोभारहित होकर मलिन भावको प्राप्त होते हैं । जब आसुरी गुणरूप दैत्य बली हो जाते हैं तब इस शरीररूप पातालविषे दैत्य शोभायमान होते हैं । देवता शोभारहित होते हैं । हे विद्वान् लोगो ! यह

दैवी आसुरी गुण दोनों इस जीवको बंधनके हेतु हैं जैसे-सुवर्णकी बेडी तथा लोहेकी बेडी दोनों बंधनके हेतु हैं ये सब दैवी आसुरी मनके धर्म नाम बालबच्चे हैं; प्रत्यक् साक्षी आत्माके यह धर्म नहीं। मन अनित्य है क्योंकि, सुपुप्तिमें अपने बालबच्चों सहित इसका अभाव हो जाता है, पुनः जाग्रत् स्वप्नमें अपने बालबच्चों सहित उत्पन्न होता है, एक रस नहीं रहता इसीसे अनित्य है। जब यह पुरुष मनको नाश करता है तब सर्व बंधनोंसे छूट जाता है। मन और किसी भी उपाय कर नाश नहीं होता, जिस नित्य सुख चैतन्य रूप आत्मासे यह फुरना रूप मन उत्पन्न हुआ है तिसीमें डालनेसे नाश होता है। सारांश यह कि, सूर्यकी किरण सूर्य रूप हैं, लालकी दमकका लाल रूप है तैसे ही चैतन्य सूर्य लालकी मन रूप किरणें दमकका हैं पृथक् नहीं, यही जानना ही मनका नाश करना है। जैसे-घटको तथा भूषणोंको मृत्तिका सुवर्ण रूप जानना ही घट भूषणोंका नाश है। जैसे-कोयला किसी भी उपायसे सफेद नहीं होता परन्तु जिसके वियोगसे काला हुआ है तिसीमें डाल देनेसे तिसकी कालखता मिटती है अन्यथा नहीं। सारांश यह कि, मनको मिथ्या जानना ही मनका नाश है। आप सहित सबको वासुदेव जानना यही परम उपदेश मुमुक्षुओंको है अन्य नहीं, पूर्वोक्त दैवी गुणोंसे संयुक्त जो पुरुष हैं सो देवता हैं और पूर्वोक्त आसुरी गुणोंकर जो पुरुष संयुक्त हैं सो दैत्य हैं। दोनों इस भूलोकमें ही रहते हैं, तिनका परस्पर विरोध हमेशह बना रहता है. क्योंकि, सच्च पुरुषका और झूठे पुरुषका एकत्व कैसे होगा ? किन्तु नहीं होगा। इत्यादि दृष्टांत अपनी बुद्धिसे जानलेना. इन मनुष्योंमे ही देवता दैत्य दोनों संज्ञा हैं। धर्मात्मा राजा ही इन्द्र है और अधर्मात्मा

राजा ही दैत्यराज है । ऐसे कह कर कश्यप ऋषि चुप हुए ।

मनु

पश्चात् मनु भगवान् आये और कहा-कि, हे साधो ! यह जगत् मनोमात्र है । जैसे-संकल्प मन दृढ करता है तैसे ही भासता है जो देह सहित जगत् का सत् संकल्प करता है तो सत् भान होता है, असत् संकल्प दृढ करता है तो असत् भासता है । जैसे-एकही स्त्रीमें अनेक पुरुषोंके अनेक ही संकल्प होते हैं तिन पुरुषोंको एक ही स्त्री अपने २ संकल्पके अनुसार अनेक रूप प्रतीत होती है "मैं देह नहीं किन्तु मैं प्रत्यक् साक्षी आत्मा हूँ" यही निरन्तर दृढ़ संकल्प करे तो काल पाकर वैसे ही हो जावेगा ।

सृष्टि उत्पत्ति

मनुने कहा-हे सभासदो ! चूना मट्टीसे यह संसार किसीने बनाया नहीं और न बना सकता है । केवल समष्टि वा व्यष्टि मनके फुरनेसे हुआ है । जब लग फुरना है तब ही तक जगत् है, जब फुरना नहीं तब सुषुप्ति आदिकोंमें जगत् भी नहीं । अपना सत्, चित्, आनंद रूप प्रत्यक् आत्मा एकरस, विकार शून्य है और सर्व मन वाणीके गोचर पदार्थ एकरस नहीं । जैसे-स्वप्नका प्रपंच केवल मनोमात्र है एक रस नहीं, स्वप्नद्रष्टा ही एक रस नाम एक रूप है । तैसे जाग्रत् स्वप्न सुषुप्त्यादि सर्व पदार्थ परस्पर व्यभिचारी हैं, एक आत्मा ही अव्यभिचारी है, आत्मा व्यभिचारी नहीं ।

यमकिंकरने कहा-हे मनु ! शास्त्रमें लिखा है कि, मनु शतरूपासे सृष्टि हुई है सो कैसे है ? मनुने कहा-हे साधो ! मनु नाम चैतन्य पुरुषका है, शतरूपा नाम प्रकृ-

तिका है सो प्रकृति पुरुषके संयोगसे यह सृष्टि उत्पन्न होती है नहीं तो मनु शतरूपा कहांसे उत्पन्न हुए जो कहो ब्रह्मासे तो ब्रह्मा कहाँसे उत्पन्न हुआ ? जो कहो ब्रह्मा विष्णुसे तो विष्णुकी व्यक्ति किससे हुई ? जैसे तरंगसे तरंग नहीं होता जलसे ही तरंगादिक होते हैं। जैसे–स्वप्नद्रष्टाके और निद्रा रूप अविद्याके संयोगसे ही स्वप्नसृष्टि होती है अन्य हेतुसे नहीं। स्वप्न सृष्टिसे स्वप्नसृष्टि नहीं होती सो चैतन्य पुरुष ही तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत् का साक्षी आत्मा स्वरूप है। यह कह कर मनु तूष्णीं हुए।

परमात्मा

इतनेमें सर्व जगत् का स्वामी जो परमात्मा है सो मुमुक्षुओंके निःसंदेह अपरोक्ष अपने स्वरूपको बोध करने वास्ते दिव्य मूर्तिको धारण कर तिस सभामें आया। सर्व सभा उठ खड़ी हुई और सब दण्डवत् प्रणाम कर स्तुति करने लगे। हे परमेश्वर ! सर्वरूप तुम ही हो और असर्वरूप भी तुम ही हो। सर्व जगत्की उत्पत्ति, पालना, संहार करते भी आप निर्विकार हो तथा आकाशके समान असंग हो स्वप्न द्रष्टावत् करते भी अकर्ता हो। हे भगवन् ! आप हम सर्व अधिकारियों प्रति उपदेश करो। यद्यपि "आपकी यथार्थ वेदरूप वाणी सर्व अधिकारियोंको उपदेश प्रसिद्ध है, अब नवीन मैं क्या कहूँ" जो ऐसे कहा तथापि वही वेदरूप उपदेश पुनः हम अधिकारियोंके प्रति कथन करना योग्य है क्योंकि, आपका इस सभामें उपदेश सर्वके कल्याण का कारण होगा। हमको पूछो तो आज हम कृतकृत्य हुए हैं क्योंकि जिसकी प्राप्ति वास्ते कर्म, उपासना, ज्ञानकाण्डरूप वेद साधन कहते हैं सो आप हमको अपरोक्ष प्राप्त हुए हो, इससे हमको अब करना कुछ नहीं रहा परन्तु अन्य

अधिकारियोंको अपने सम्यक् अपरोक्ष स्वरूपका उपदेश करो। परमेश्वर कहने लगे-हे अधिकारी जनो! मैं सत्, चित्, आनन्द स्वरूप परमात्मा देश काल, वस्तु भेदसे रहित परिपूर्ण हूँ। ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत सर्वके हृदय-विषे मनादिकोंका साक्षीरूप करके नित्य प्राप्त अपरोक्ष स्थिर हूँ। मुझ नित्य प्राप्त साक्षीकी प्राप्ति वास्ते जो यत्न करना है सो भ्रम है।

संसार उत्पत्तिके (वेदादिमें) कथन करनेका आशय

हे अधिकारी जनो! मुझ परमात्माने जो त्रिकांडरूप वेद रचे हैं सो संसाररूप भ्रमकी निवृत्ति निमित्त रचे हैं कोई संसारकी अनेक प्रकारकी रचनाविषे मेरा तात्पर्य नहीं। वेदविषे सृष्टिका अध्यारोप करके पुनः अपवाद किया है जो संसारकी रचनामें ही तात्पर्य होता तो अपवाद पुनः वेद नहीं कहता। इससे जिस परमात्मासे यह भूत भौतिक सृष्टि हुई है पुनः तिसमें लीन होती है सो परमात्मा तुम्हारा स्वरूप है। जैसे-कोई तरंगको उपदेश करे कि, हे तरंग! तुम सहित जिससे यह तरंग बुद्बुदाफेनादि उत्पन्न होकर पुनः लीन होते हैं सो तुम्हारा स्वरूप है। जैसे-स्वप्न जीवको कोई उपदेश करे, हे जीव! तुम सहित यह स्वप्न प्रपंच जिस स्वप्न द्रष्टा चैतन्यसे उत्पन्न होकर पुनः तिसीमें लीन होता है सो स्वप्न द्रष्टा ही तुम्हारा स्वरूप है सो स्वप्न प्रपंचकी तथा तरंगादिकोंकी उत्पत्ति लीनताके कथनमें वेद देशिकका तात्पर्य नहीं, किन्तु जल (स्वप्नावी निर्विकार निर्विकल्प) के बोधमें है। कोई तरंगादिकोंकी सृष्टि कथनमें तात्पर्य नहीं तो संसार तथा संसारके पदार्थोंके कथनमें जीवको तथा वेदको क्या लाभ है? उलटा संसार कथनमें दुःखकी प्राप्तिरूप श्रम ही फल है। इससे बन्ध-

रूप संसार भ्रमकी निवृत्तिकी निवृत्ति और सत् चित् आनन्द मोक्षरूप ब्रह्मकी प्राप्तिमें वेदका तात्पर्य है।

वेदमें त्रिकाण्ड कथनका आशय

उपरोक्त गुह्य तात्पर्य्यके अज्ञात भ्रमी पुरुषोंके भ्रम दूर करने वास्ते वेदमें कर्म, उपासना, ज्ञान कथन किया है, कोई बन्ध मोक्ष यथार्थ है इस अभिप्रायसे नहीं कथन किया है। हे अधिकारी जनो! जैसे महाकाश ही घट उपाधिसे घटाकाश संज्ञाको पाता है तैसे मैं परमात्मा ही देहरूप उपाधिसे साक्षी आत्मा संज्ञाको प्राप्त हुआ हूँ; जैसे--एक ही आकाश ब्रह्मलोकादिकोंमें तथा ब्रह्मलोक निवासी पुरुषादिकोंमें तथा इस भूमिमें अन्तर बाहर व्यापक एकरस है तैसे मैं 'सत् चित् आनन्द रूप परमात्मा सर्वके हृदयदेशमें मनादिकोंके साक्षीरूपसे स्थित हूँ।

परमात्माका निवास स्थान

हे अधिकारी जनो! यह संशय नहीं करना कि, "यह बुद्धि आदिकोंका प्रकाशक आत्मा परमात्मारूप नहीं, परमात्मा तो ब्रह्म वैकुंठादिक लोकोंमें रहता है" वरन् मैं परमात्मा तो तुम्हारा आत्मा प्रत्यक् स्वरूप हूँ इसीसे पूर्ण हूँ। जो ऐसा मुझ परमात्माको नहीं मानोगे तो जो देश काल वस्तु भेदवान् पदार्थ है सो अनित्य है। अनित्यके जाननेसे अनित्य ही फल होता है। इससे अपने प्रत्यक् आत्मासे पृथक् करके जो मुझ परमात्माको जानेगा तो मानो मेरा तिसने खंड खंड किया है और असत्‌में सत् बुद्धिमान् भ्रमी है। इससे तुम भूलकर भी अपने प्रत्यक् आत्मासे मुझको भिन्न नहीं जानना।

परमात्माका दर्शन

मुझको अपने अंतर सम्यक् अपरोक्ष स्वरूप विद्वान् पुरुषोंके साथ मिलके आत्मा अनात्माके विचाररूपी

उपाय निरहंकारसे करोगे तो अवश्यमेव मुझ परमात्माका तुमको दर्शन होगा, दर्शन नाम मुझको निःसंशय साक्षी आत्मारूप जानोगे । बाहर कोई हठ क्रियासे वा अंतर हठक्रियासे वा अभिमानसे मुझको ढूंढोगे तो लाखों वर्षतक न मिलूंगा । जैसे--कंठस्थित माला बाहर कभी भी नहीं मिलती ।

कर्म उपासना और ज्ञानकाण्डोंका फल

हे अधिकारी जनो ! कर्मकांड अंतःकरणकी निर्मलताके लिये है, निर्गुण वा सगुण उपासना अंतःकरणकी निश्चलताके लिये है । ज्ञानकांड अज्ञानरूप आवरणकी निवृत्तिवास्ते है, जब मुझ परमात्माको सम्यक् अपना आत्मारूप जाना तो कृतकृत्य होता है । इससे आगे कुछ जानना नहीं । वेदसहित सर्व संसारको स्वप्नवत् जानना है । जो इससे आगे भी कर्तव्य माने सो भ्रमी पुरुष है ।

परमात्माकी पूर्णता

हे अधिकारी जनो ! मुझ सत्, चित्, आनंदरूप ब्रह्मात्माकी भेद उपासना तो बेशक करो परन्तु मुझ पूर्णको अपूर्ण मत करो । जो अपूर्ण है सो अनित्य है । अपने प्रत्यक् आत्मासे जुदा मुझको मत मानो क्योंकि, आत्मासे भिन्न अनात्मा होता है । इससे आत्मासे मुझे भिन्न मानोगे तो मुझ परमात्माको अनात्मपना सिद्ध होगा दूसरी परिच्छिन्नता होगी । मुझ सत्, चित्, आनंदरूप परमात्मासे प्रत्यक् आत्माको भिन्न मानोगे तो प्रत्यक् आत्माको असत् जड दुःखरूपता सिद्ध होगी, प्रत्यक् आत्माकी असत् जडदुःखरूपता किसीको इष्ट नहीं और अनुभव शास्त्रसे भी प्रत्यक् आत्माकी असत् जड दुःखरूपता जानी जाती नहीं । इससे मुझ ब्रह्मके स्वरूपको,

सम्यक् जानो, असम्यक् मत जानो। क्योंकि सम्यक्रूप जाननेसे ही लाभ है अन्यथा नहीं।

परमात्माका स्वरूप

हे विद्वान् पुरुषो ! जो मैं चैतन्य आत्मा तुम्हारे अंतर प्रकाशक न होऊँ तो मनादिक जड पदार्थोंकी सर्व चेष्टा कैसे जानी जावे ? क्योंकि जडको स्वपरका ज्ञान नहीं होता और किसी देशमें परमात्मा कचहरी लगाकर नहीं बैठा। हे अधिकारी जनो ! इस नामरूप संसाररूपी जड पुतरीको मैं चैतन्यदेवने कहा है मैं और ही इसमें प्रवेश कर इसकी चेष्टा करता हूँ क्योंकि उस परमात्मासे भिन्न और कोई चैतन्य है नहीं और स्वतः सिद्ध जड भी चेष्टा होती नहीं। इससे यह विचारना चाहिये जो इस मनादिक जडसंघातकी चेष्टा करता है तथा जो चेष्टाका प्रकाशक है सो ईश्वरका रूप है। सुषुप्तिकालमें जो केवल अज्ञानका द्रष्टा है और जाग्रत् स्वप्नमें जो अज्ञानसहित अज्ञानके कार्यका द्रष्टा है, सोई ईश्वरका स्वरूप है। जो प्रिय मोद प्रमोद वृत्तियोंके भावाभावको अनुभव करनेवाला है तथा सात्त्विकी राजसी तामसी मनके स्वभावोंको जाननेवाला है तथा समाधि आदि अन्य सुखका तथा विक्षेपजन्य दुःखका जो अंतर अनुभव करता है और आप किसीसे अनुभव नहीं होता सोई ईश्वरका रूप है। जिस कर ध्याता, ध्यान, ध्येय, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, द्रष्टा, दर्शन, दृश्यादि अनेक त्रिपुटियां अंतर बाहर निरंतर सिद्ध होती हैं सो ईश्वरका स्वरूप है। ज्ञान, अज्ञान, बन्ध, मोक्ष है। उपादयादिक मनकी कल्पनाका तथा मनादिकोंका जो द्रष्टा है सो ईश्वरका रूप है।

स्वरूपकी प्राप्ति

हे विद्वान् लोगो ! पूर्वोक्त ईश्वर ही तुम्हारा स्वरूप है, मैं सत् कहता हूँ । ब्रह्मचर्यादि व्रतोंपूर्वक सत्संगमें तुम आत्मविचार निरन्तर करोगे (श्रद्धापूर्वक) तो अपने स्वरूपको सम्यक् अपरोक्ष जानोगे। जो मन वाणीका गोचर वस्तु है, सो ब्रह्मात्माका स्वरूप नहीं किन्तु सो दृश्यका रूप है । जो मन वाणीसे अतीत है और मन वाणी सहित मन वाणीकी कल्पनाको जो सदा परिमाण करता है सो ब्रह्मात्माका स्वरूप है । देश देशांतरको मन जाता है, पुनः आता है, पुनः आकर दूसरे कार्यमें लगता है, कभी शुभाशुभकी कल्पना करता है; यह सर्व मनका व्यवहार जिससे जाना गया सो तुम्हारा स्वरूप है ।

स्वरूप अपरोक्षक हेतु कर्तव्य

हे साधो ! अपने स्वरूप अपरोक्षके लिये प्रथम अन्तःकरणकी शुद्धिवास्ते तुम निष्काम कर्म करना और अंतःकरणकी निश्चलतावास्ते तुम सगुण वा निर्गुण अन्य कोई वेदरीति अनुसार उपासना करनी, इन दोषोंको दूर करके पश्चात् ज्ञान मार्गमें पडना पूर्व जन्मोंमें करे जो कर्म उपासनासे पूर्वोक्त दोष अंतःकरणमें नहीं देखो तो प्रथम ही ज्ञानमें प्रवृत्ति करे और वासना त्यागे। इस प्रकार परमात्मा सर्व अधिकारियों प्रति उपदेश कर अन्तर्धान हो गये ।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! चैतन्य स्वरूप आत्मामें पृथक् देहादिकोंमें आत्मबुद्धि होनी यही अहंकाररूप वासनाका स्वरूप परमात्माने कहा है, क्योंकि इस अहंकारपूर्वक ही आगे सुख दुःख रूप संसार पसरता है, जैसे--बीजसे ही वृक्ष पसरता है। मैत्रेयने कहा--अहंकार संसार समुद्रका

मूल नाम बीज है तो मुझ असंग चैतन्यको क्या प्रजोजन है ? जैसे--वृक्षका बीज पृथ्वीमें है आकाशको तिससे क्या प्रयोजन है ? इससे अहंकार भी मैंने किया है त्यागना भी मुझको ही है पार भी मुझको ही होना है । भ्रमकर बन्ध मोक्ष भी मैंने ही माना है और विचार कर बन्ध मोक्षको भी मुझको ही छोड़ना है तो और किसीका क्या नाम है ? आप ही आप हूँ ।

संसारसागरसे पार उतरनेकी नौका

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! जो तू संसार समुद्रसे पार हुआ चाहता है तो आत्म विचाररूपी नौका कर जो अयत्न ही पार होवे । विचार यही है कि, अनविचारे मिथ्या परिच्छिन्न अहंकारको त्यागकर देख संसारसमुद्र कहां है ? जिससे पार होता है, आप मुए जगत्प्रलय है । हे मैत्रेय ! तूने कभी चाहनासे रहित स्वरूपको न जाना, यही दृढ़ किया कि, किसीका ग्रहण करना, किसी वस्तुका त्याग करना । जो तुझे धनकी उत्पत्तिकी बात कहे उसीकी तरफ तेरे मन इंद्रिय प्राण तद्रूप हो जाते हैं, स्वरूप चिंतनमें आलस्य करता है । पर यह तू कौन है ? मैत्रेयने कहा--मैं चैतन्य स्वरूप ब्रह्म हूँ । पराशरने कहा--तू जीवत्व अहंकारमें मिथ्या बद्ध है, मैं चैतन्य रूप ब्रह्म हूँ यह कैसे जाना जावे ? मैत्रेयने कहा--जाना जावे चाहे न जाना जावे, मुझको अपने निश्चयका फल होना है, परन्तु तुमने भला कहा है ब्रह्म पूर्णको कहते हैं । जब मैं ब्रह्म चैतन्य हूँ, जीवत्व मिथ्या अहंकार बन्धमें भी व्यापक हूँ, तब ही तिनकी सिद्धि होती है, जो मैं पूर्ण नहीं होऊँ तो तिनकी सिद्धि कैसे होवे ? पराशरने कहा--हे अभाग्य तुझको कालसे भय नहीं ? यह सर्व देवता ऋषि मनुष्य कालके भयमें हैं । मैत्रेयने कहा--जब मैं दृश्यके

अन्तर बाहर अस्ति भाति प्रियरूप सर्वात्मा हूँ तो कालका भी मैं ही आत्मा हूँ। अपने आत्मासे भय किसीको होता नहीं वा अपने आत्माको कोई भी भय देता नहीं भय द्वैतसे होता है, मैं आत्मा अद्वैत हूँ। भय अभय सर्व चिद्रूप है। वर्तमानमें ही स्वरूपसे ही मुझ असंग चैतन्य साक्षी आत्माका काल रोममात्र भी छेदन नहीं कर सकता, पीछे क्या भय देवेगा ? हां ! जब मैं चैतन्य असंग भ्रमसे संगी दृश्य रूप हो जाऊँ तो काल भय बेशक देवे परन्तु मुझ कालादिक दृश्यके द्रष्टा असंग चैतन्यका कभी भी संगीस्वरूपसे दृश्य होता नहीं। इससे विचारकर देखो मैं असंग चैतन्य कालसे भय कैसे करूँ ? जिसका स्वभावसे जो स्वरूप होता है अन्यथा सो किसीसे भी नहीं हो सकता, जैसे--अग्निका स्वभाव अन्यथा किसी भी प्रकार नहीं हो सकता तथा जैसे--स्वभावसे असंगी आकाशको कोई भी पृथिवी अप् तेज वायु तथा इनके कार्य देश काल अंधेरी आदिक पदार्थ संगी तथा भय नहीं कर सकते। हे पराशर ! मैं भयसे रहित हूँ, उलटा कालादिक दृश्य मुझ चैतन्यसे भय करते हैं। कालका भी यह नियम है "संगवान् मन वाणीके गोचर दृश्य वस्तुको ही भक्षण करना" तो असंग मन वाणी अगोचर आत्माको कैसे भक्षण करेगा ? किन्तु कदाचित् भी करेगा नहीं। पराशरने कहा--अब मैं तुझको पर ब्रह्म कहूँगा। मैत्रेयने कहा--तुम्हारी कल्पना है, कोई नाम राखो, मैं चैतन्य नाम रूप तथा पर अपरसे परे हूँ। पराशरने कहा--ऐसे मत कह, आप नाम रूपमें फँसा पड़ा है और कहता है मैं नाम रूपसे परे हूँ। मैत्रेयने कहा--ठीक है, जैसे--मृत्तिका सर्व नाम रूपमें फँसी पड़ी है (घटादिकोंका स्वरूप होनेसे) तैसे--मैं

नित्य सुख प्रकाश रूप आत्मा सर्व नाम रूप प्रपंचमें फँसा पडा हूँ, (सर्व नाम रूपका स्वरूप होनेसे)। पराशरने कहा--तू इंद्रियोंकी पालनामें तत्पर है और बातें अतत्परकी कहता है। मैत्रेयने कहा--जो मैं सत् अधिष्ठान चैतन्य आत्मा इंद्रियादिक अनित्य जड प्रपंचकी पालना नाम चेष्टा प्रतीतिका तत्पर नाम करण नहीं होऊँ तो इनकी चेष्टाकी प्रतीति कैसे होवे, किन्तु नहीं होवेगी। इससे मैं चैतन्य इंद्रियोंका पालक ठीक ठीक ही हूँ। जैसे--स्वप्नद्रष्टा नहीं होवे तो स्वप्नके इंद्रियादिक प्रपचकी चेष्टाकी प्रतीति कैसे होवे ? इससे स्वप्नद्रष्टा ठीक स्वप्न प्रपंचका पालक है। तथा जैसे--पुरुष नहीं होवे तो जड पुतलियोंकी चेष्टा कौन करावे इससे पुरुष ही जड पुतलियोंका पालक है। इसमें जल तरंगादि अनेक दृष्टांत हैं।

अनेक अनात्म साधनोंके नाम

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! कहने मात्र बात और होती है, धारणकी बात और होती है। मैत्रेयने कहा--पूर्व तुम आप ही कह चुके हो " अपने स्वरूपके अधिष्ठानविषे भ्रम सिद्ध जो बंधमोक्षादि प्रपंच है तिसकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते केवल अधिष्ठान आत्माका, सम्यक् जानना ही कर्तव्य है, शारीरादिकोंके कर्तव्य कुछ नहीं करना " अब कुछ शारीरिक कर्तव्य अन्य बतलाते हो जो आप कहो तो बन्ध मोक्षवान् आपको मानूं, मोक्ष सत् मानूं बंध वा बंध मोक्षरूप भ्रमकी निवृत्तिवास्ते मैं तीर्थपर्यटन करूँ, कृच्छ्रच'द्रायणादिक व्रत करूँ, अन्न नहीं खाऊँ, दूध ही पिया करूं वा फलाहार करूं वा नग्न होऊँ वा हठकर एक मकानमें ही पडा रहूँ। वा मौनी हो जाऊँ वा पंचधूनी तापूँ वा पूजा करूँ वा गृहस्थी त्याग कर जङ्गलमें

चला जाऊँ वा शरीरको अनशन व्रत कर नाश करूँ वा अनेक न्यायादि शास्त्र पढ़ूं, मन्त्र यन्त्र विद्या सीखूं, वैद्यक शास्त्र पढ़ूं, । मंडली चलाऊँ वा अनेक अनात्म उपाय कर लोगोंको वा रईसों को चिताऊँ । किसीकी माला कंठी छापा मारकर अर्थात् तिलक करूं वा जप करूँ वा अपनी सामर्थ्यके अनुसार मानसी वा शारीरिक यज्ञ दान होमादि करूँ वा विभूतादि लगाऊँ इत्यादिक अनेक साधन जो तुम कहो अपनी सामर्थ्यके लायक सोई करूँ और करें भी हैं । परंतु " यह सब भ्रम मात्र संसार ही है विना भ्रमके अधिष्ठान सम्यक् जाने विना भ्रमकी निवृत्ति नहीं होती, अन्य अनेक साधनोंसे भी " जो यह ठीक है तो आप हमको अन्य जंजालमें क्यों गेरते हो ? आगे हम अनेक जन्मोंमें तथा इस वर्तमान शरीरसे भी बहुत भटके हैं, आप सत्यवक्ता हो, यह बात ठीक नहीं तो आप पुनः पुनः यह बंध मोक्षादि प्रपंच भ्रममात्र है क्यों उपदेश करते हो ? जो ठीक नहीं उसको ठीक कहना विप्रलिप्सादि दोष होता है तथा वेदांत उपनिषदोंमें इस भ्रमरूप संसारकी निवृत्ति और परम आनंद मोक्षरूप आत्माकी प्राप्ति केवल अधिष्ठानके ज्ञानसे ही वारंवार डोंडी पिटाकर कहा है सो निष्फल हो जावेगा । यह बात अप्रमाण है । इसीलिये मैंने तुम्हारी कृपासे इस संसार भ्रमका अधिष्ठान अपने सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माको सम्यक् अपरोक्ष जाना है । इससे मुझ चैतन्य आत्माको भ्रमरूप बंध मोक्षरूप संसारकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते किंचित् मात्र भी कर्तव्य नहीं । चाहे तुम, चाहे शास्त्र, चाहे कोई और विद्वान् भी अनेक उलट पुलट कहे भी, परन्तु जो मुझको सम्यक् अनुभव हुआ है तिसको कोई भी दूर नहीं कर सकता । जैसे-किसी पुरुषने किसी

स्पर्शादिक विषयका अपरोक्ष सम्यक् अनुभव किया है, तिसके शरीरको मारो, बांधो, तिरस्कार करो, अनेक पीडा दो परन्तु तिसके अनुभवको नाश कोई भी नहीं कर सकता । जैसे--ब्राह्मणको राजा वा राजपुरुष लोभ भयादि देके निज ब्राह्मणत्वसे उलट पुलट कराया चाहे तो यद्यपि भयादि कारणोंसे मैं क्षत्रियादि हूँ ऐसा कहे भी तथापि भीतरसे क्षत्रियादि आपको नहीं जानेगा, किंतु ब्राह्मणत्व ही निश्चय रहेगा ।

एक कथा

(ज्ञानविषयक अनेक संशय निवारण ।)

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! इसीपर एक सूक्ष्म कथा सुन । एक समय मैं वनविषे गया, परंतु उस समय मेरे मन विषे पराशरकी लक्ष थी न दूसरेकी । न जानता था कि, मैं कौन हूँ । जो मेरा नाम लेकर पुकारता तो मुझसे शब्द न निकसता था । उस वनमें तपस्वी बसते थे । उन्होंने ऐसी मेरी अवस्था देखकर जाना कि यह मृतक है । उन्होंने लकडी इकट्ठीकर मेरा शरीर चितामें डाल दिया और अग्नि लगा दिया परंतु लकडी जलती थी और मैं होशमें न था तथा कुछ भी मुझको अग्निका स्पर्श नहीं हुआ । तू इन्द्रियोंके पालनमें बँधा है, कहता है "मैं देहसे मुक्त हूँ" कैसे प्रतीत करूं ? मैत्रेयने कहा--मुझ चैतन्यका नाम ही इन्द्रियोंकी पालनामें बंध है, जो मैं चैतन्य इन्द्रियों सहित सर्व जड जगत्की पालनानाम सत्तास्फूर्ति नहीं करूं तो कौन करै ? जैसे--तागेकर मणियां बंधनमें रहती हैं, तैसे मुझ चैतन्य तागेकर यह नामरूप मणियां ठीक ठीक बंधनमें रहती हैं अर्थात् मेरी सत्तास्फूर्तिसे स्फुरण होता है । हे पराशर ! तुम ही धर्मपूर्वक कहो--मैं साक्षी आत्मा देहसे

भिन्नस्वतःसिद्ध स्वरूपसे हूँ वा यत्नसाध्य हूँ जो स्वरूपसे हूँ तो मेरा कहना भी सफल है और न कहूँ तो भी सफल है। जो यत्न साध्य हूँ तो मुझको यत्न कहो देह-नाश पर्यंत करूँगा। यह प्रकरण जैसे है तैसे ही रहो परंतु यह कहो तुम बेसुध कैसे हुए? क्या भाँग पीथी? वा तुमको सिरसाम रोग हो गया था? वा ज्ञानसे बेसुध कर दिया था? भाँग और रोगकी विशेषता होनेसे तो बेसुध सब हो जाते हैं इसमें तुम्हारी बड़ाई क्या? जो ज्ञानसे बेसुध हुए थे तो तुमको ज्ञान हुआ न हुआ एक महान् रोग हुआ। अन्य पुरुषोंकी प्रवृत्ति कैसे होगी? ज्ञानसे कोई भी वर्तमानमें विद्वान् बेसुध होता देखा नहीं; ना कोई सुना है जान करके भला ही बेसुध होवे वा होश मन्द हो। कोई २ विद्वान् बावला देखनेमें आते हैं सो रोगकी वृद्धिसे होता है ज्ञानसे नहीं उलटा ज्ञानसे अन्य पुरुषसे कई दर्जे बुद्धि अधिक हो जाती है, कहो--तुम बेसुध कैसे हुए? दूसरे तुमको अग्निने दाह न किया इसमें कारण कौन है? तुम जंत्री मंत्री हो, वा अग्निने तुमसे भाई चारा किया जो तुम न जले? वर्त्तमान विद्वानोंका तो अग्निके संबंधते शरीर न जले ऐसे देखनेमें नहीं आता। वा तुमको वर्तमान विद्वानोंसे आत्मज्ञान अधिक है इससे न जले? जो सम्यक् आत्मज्ञानको न्यूनाधिक-भाव कहोगे तो श्रुति अनुभव दृष्टि विरोध होगा, क्योंकि, हजारों विद्वानोंका सम्यक् अनुभव एक ही है (वस्तु एक होनेसे) जैसे एक घटके हजार सम्यक् द्रष्टा पुरुषोंको मृत्तिकारूप ही बोध होवेगा अन्यथा नहीं यह श्रुति कहती है। जो जानने योग्य वस्तु पुरुषोंको भिन्न २ होवे तो पुरुषोंको शांति कदाचित् भी नहीं होगी; परंतु ऐसा नहीं, ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत सर्वका स्वरूप अखंड, सच्चिदा-

नंद, साक्षी आत्मा एक ही बंधमोक्षसे रहित, निर्विकार, निर्विकल्प है दूसरा नहीं। इसीसे ही सर्व जीव अपने आनंदसे आनंदी हैं, ब्रह्मादिकोंके आनंदकी इच्छा भी नहीं रखते, क्योंकि जिस आनंदस्वरूप आत्मासे ब्रह्मादिक भी आनंदी हैं सो आत्मा सर्वके हृदयविषे साक्षीरूप होकर विराजमान हो रहा है। इससे सम्यक् आत्मज्ञानमें न्यूनाधिक भाव नहीं हो सकता। तुम अग्निमें प्रवेश होकर कैसे न जले? पराशरने कहा--प्रह्लाद नहीं जला था ऐसे हम भी नहीं जले। मैत्रेयने कहा--प्रह्लाद भेद उपासक था अपने इष्टको अपनी रक्षा करनेवाला अपनेसे भिन्न जानता था इसीसे तिसकी रक्षा होती थी, परंतु तुम ज्ञानी लोग तो अपने आत्मासे भिन्न इष्ट मानते नहीं तुम्हारी रक्षा किसने की? ऋषभदेव अग्निके संबंधसे जल गया महाज्ञानी था। पराशरने कहा--हे मैत्रेय! मेरे शरीरकी प्रारब्ध शेष थी तिसने रक्षा करी; जैसे--भृगुके पुत्र शुक्रके शरीरकी शेष प्रारब्धने रक्षा की। जैसे--बालक वा अन्य पुरुष भी तीसरे वा चौथे अंबालेसे वा कुवेमें तथा दीवालादिकोंके नीचे आ जाते हैं, तिनके जीनेका कारण प्रारब्ध किंचित् मात्र भी चोट नहीं लगने देती। उलटा हँसते रहते हैं। तैसे हमारी भी प्रारब्धने रक्षा की। पराशरने कहा--हे मैत्रेय! जैसे- तू कहता है व्यवहारमें ऐसा ही है, परंतु इस प्रकारका तात्पर्य और ही है। मैत्रेयन कहा--सो कहो? पराशरने कहा--हे मैत्रेय! सुषुप्ति वा समाधि अवस्थामें भोग देनेवाले प्रारब्ध कर्मोंके उपराम हुए मुझको जाग्रत् स्वप्नमें सुख दुःखरूप भोग देनेवाले प्रारब्ध कर्मरूप तपस्वियोंने विषय इंद्रियरूप काष्ठ इकट्ठा कर विषय इंद्रियके संबंधरूप अग्निमें गेर दिया। अब मुझ चैतन्यको अपनी तथा परकी सुधि

नहीं थी, इसका अर्थ सुन। हे मैत्रेय ! मैं चैतन्य स्वयंप्रकाश स्वरूप हूँ, किसी मनादिक इंद्रियोंका मैं विषय नहीं, अपने आप भी मैं अपने आपका विषय नहीं (आत्माश्रयादि दोष तथा अवाङ्मनसगोचर होनेसे) यही मुझको स्वपरकी सुधि न थी। मुझको अग्निने नहीं दाह किया तिसका अर्थ सुन। "जो मैं चैतन्य समाधि कालमें तथा सुषुप्ति कालमें निर्विकार निर्विकल्प, सर्व दृश्यसे रहित स्वयंप्रकाशरूप था सोई मैं चैतन्य जाग्रत् स्वप्नादिक अवस्थामें तथा विषय इन्द्रियके संबंधरूप अग्निमें असंग निर्विकार हूँ अन्यथा भाव मैं चैतन्य कदाचित् भी नहीं होता" यह मुझको दृढ निश्चय था यही अग्निका स्पर्श है। जैसे--आकाशको यह निश्चय दृढ है कि, जैसे--मैं ब्रह्मलोकादिक उत्तम स्थानोंमें सर्व पदार्थोंमें अलिप्त व्यापक शुद्ध निर्विकार हूँ तैसे ही भूमि लोकविषे तथा पातालविषे तथा नरकादिक मलीन स्थानोंविषे मेरा वही स्वरूप है यह बात ठीक ही है सब जाने हैं। इससे हे मैत्रेय ! जो तू चैतन्य आत्मा जगत्की उत्पत्तिसे आदि निर्विकार निर्विकल्प था सोई तू चैतन्य अब वर्त्तमानमें भी वही है अन्यथा नहीं हुआ। यह दृढ निश्चय कर। यह निश्चय ही जन्म मरण संसाररूप अग्निके दाहसे रहित है।

दत्तात्रेयकी एक समयकी वार्ता

हे मैत्रेय ! इसीपर एक कथा सुन, एक समय दत्तात्रेय स्वाभाविक वनमें विचरता था। तिस स्थानमें जो पक्षी थे तथा मृगादि पशु थे वे सर्व शिव शिव पुकारते थे दत्तने कहा--शिव तो आप हैं शिवके पुकारनेसे क्या प्रयोजन है ? उत्तर आया कि, जब सर्व शिव है तो पुकारना, न पुकारना भी शिव है। दत्त आगे चले-तब शीशकी जटा

एक वृक्षसे अटकि गई तब विचार कि, स्थावर जंगम सर्व शिव हैं कैसे छुटाकर जाऊं पुनः विचारा कि, जब सर्व शिव हैं तब छुटाना न छुटाना तथा छुटानेवाला भी शिव है। तिस वनके निकट एक नगर था तिस देशके राजाको भवानीने स्वप्न दिया कि, "मेरा तुझको तब दर्शन होगा जब अपना मनुष्य शरीर बलि देवेगा" देवीके तात्पर्यको मूर्ख राजाने न जाना अपने नगरमें ढंढोरा फेरा कि, जो अपना शरीर देवे तिसको धन बहुत मिलेगा परन्तु किसीने भी स्वीकार नहीं किया। तब प्रातःकाल राजा जिस वनमें शिकार खेलनेको निकसा तिस वनमें दत्त भी विचरते थे। कैसे दत्त हैं न हिंदू, न मुसलमान प्रतीत होते हैं । न वर्णी. न आश्रमी, न मूर्ख, न पण्डित मालूम होते हैं। तिनको देखकर राजाने पूछा कि, तुम कौन हो ? दत्तने कहा--शिव हूँ। राजाने जाना यह मूर्ख है, इसके मारनेका कोई दोष नहीं। नौकरोंसे हुकुम किया कि इसको बांध लेवो। तिनोंने वैसेही किया। दत्त जैसे अबन्ध अवस्थामें था तैसे ही बन्धमें रहा, हर्ष शोकको न प्राप्त हुआ, क्योंकि, बांधनेवाला और बन्धन करनेका साधन बन्धन योग्य सर्व त्रिपुटी शिव है, यह तिसको निश्चय था इसीसे हर्ष शोक न हुआ। दत्तको देवीके देवलमें ले गये। राजाने पूछा--तेरा माता पिता कौन है? दत्तने कहा-शिव है । पुनः पूछा तेरा वर्णाश्रम कौन है? दत्तने कहा-शिव है । राजाने कहा--तेरा शीश देवीकी प्रसन्नता वास्ते काटते हैं। दत्तने कहा--शिव है। राजाने कहा--तू कहांसे आया है? कहां जावोगे ? दत्तने कहा-सर्व शिव है । राजाने कहा--कुछ खाता पीता है ? दत्तने कहा--सर्व शिव है। वह अशास्त्री जंगली देशका राजा था, दत्तके गलेमें रस्सी डाली और खड्ग निकासकर चाहा

कि, इसका शीश काटूँ तिसी कालमें आकाशवाणी हुई--हे मूर्ख राजा ! अबतक तूने जाना नहीं कि, इसको आदिसे लेकर मारनेवास्ते मियानसे खड्ग (तेरे) निकासन तक एकसा है, हर्ष शोकको प्राप्त नहीं हुआ, यह विद्वान् है इसको सुख देनेवाला तथा दुःखदेनेवाला एकसा है, किसीको भी वर शाप नहीं देता, पूर्व जो तुझको मैंने स्वप्न दिया था तिसका तात्पर्य तून नहीं समझा। राजाने दीनता पूर्वक कहा--हे मातेश्वरी ! सो तात्पर्य कहो ? आकाशवाणीने कहा--कि, पूर्व जो मेरा तूने अनेक जन्मसे पूजन किया है तिसका परम फल आत्मज्ञान है। तिस ज्ञानकी प्राप्ति वास्ते मैंने तुझको यह उपदेश किया था कि, मानुष सूक्ष्म शरीर भेंटकर मेरा तुझको साक्षात् होगा। तात्पर्य यह कि शरीरसे आदि लेकर ब्रह्मादिक पर्यंत--बन्ध, मोक्ष, सुख, दुःख, हर्ष, शोकादिक सर्व नाम रूप प्रपञ्च मनका मनन है; कोई अन्यरूप प्रपञ्चका नहीं। क्योंकि, जब मन सुषुप्तिमें अपने कारण उपादान अज्ञानमें लीन होता है तब संसारकी गन्धमात्र भी प्रतीति होती नहीं। जो यह प्रपञ्च मनकर रचित न होता तो उनके अभावसे जगत् प्रतीत होता। मनके अभावसे जगत् प्रतीत होता नहीं। इससे जाना जाता है " जगत् मनो मात्र है पृथक् नहीं " सो पूर्वोक्त मन मेरी भेंटकर पीछे जो शेष रहेगा सोई तेरा बन्ध मोक्षसे रहित अवाङ्मन-सगोचर यह स्वरूप है यही ज्ञान है यही मेरा दर्शन है। वा यह उपदेश किया था कि मैं देवी समष्टि फुरणारूप मनसे आदि लेकर देह पर्यंत सर्व जगत्का उपादान कारण हूँ, जैसे निद्रा रूप अविद्या मन देह सहित स्वप्न प्रपंचका उपादान कारण है घट मृत्तिकाके समान, इससे निद्रारूप अविद्या

स्वप्न प्रपंच है; जैसे स्वप्न द्रष्टा निद्रारूप अविद्या सहित, स्वप्न प्रपंचका प्रकाशक, असंग निर्विकार, अपनी महिमामें स्थित है। तैसे--मन शरीर सहित सर्व जगत् मेरा है तेरा नहीं। मेरी चीज मेरेको ही सम्यक् भेंट दे देना अर्थात् मन शरीर सहित सर्व नाम रूप जगत् माया मात्र जानना नाम मिथ्या जानना (स्वप्नवत्), शेष जिस अधिष्ठानकी सत्तास्फूर्तिसे मिथ्याकी प्रतीति होती है, (जैसे-स्वप्न द्रष्टा कर स्वप्नकी प्रतीति होती है) सो अधिष्ठान चैतन्य निर्विकार, बंध मोक्षादि सुख दुःखसे रहित स्वयं प्रकाशस्वरूप मैं हूँ, यह भेंट देनेका उपदेश किया सो प्रतिबंधके वशसे तूने तात्पर्य जाना नहीं।

हे मैत्रेय ! दत्त सर्व पूर्वोक्त व्यवहारोंमें एकसा था, इस प्रकार पूर्वोक्त परमहंसोंकी अवस्था होती है। तू कहता है मुझमें नाम रूप जगत् है ही नहीं, अभी तेरा नाक कान काटें तो कहे "मैं ब्रह्म नहीं जीव हूँ" इससे तेरी दृष्टि शरीरपर है। भक्ति गोविंदकी कर जो निर्मल होवे। मैत्रेयने कहा-हे पराशर ! जब सर्व जीव ब्रह्म ईश्वरादिक मैं हूँ तो जीव कहनेसे शरीरादिकोंका उपद्रव मिट जावे तो क्या नुकसान है किन्तु कुछ नहीं। जब सर्व मैं हूँ तो जीव भी मैं हूँ, कहा तो क्या हानि है और न कहा तो क्या लाभ है ? कुछ भी नहीं। जैसे-एक ही आकाशके घटाकाश, मठाकाश, महाकाशादिक अनेक नाम उपाधिकर कल्पित हैं तिस आकाशको आपको घटाकाश कहनेसे उपद्रव मिटें तो क्या हानि है ? क्योंकि, घटाकाश मठाकाश महाकाश नाम आकाशके ही हैं। सर्व नाम रूप अपने ही हैं, एक नामीके नामोंका अर्थ एक नामीमें ही घटता है। जैसे-गङ्गाधर, नीलकंठ, विश्वेश्वरादिक नाम महादेवके ही हैं। जैसे-एक पुरुषके दो नाम होवें

और एकको छोडके दूसरा नाम लेनेसे उपद्रवसे मुक्त होता होवे तो क्या तिसको हानि है ? तात्पर्य यह कि, सम्यक् अपने स्वरूपके विद्वान् पुरुषको मैं जीव नहीं ब्रह्म हूँ वा ब्रह्म नहीं जीव हूँ इत्यादि सर्व कायिक, वाचिक, मानसिक, व्यवहारोंमें मनका आग्रह नहीं । अगर किसी व्यवहारोंमें मनका आग्रह हो जावे, किसीमें न होवे, तिसमें भी तिसको आग्रह नहीं, क्योंकि, आपको अवाङ्मनसगोचर सर्वाधिष्ठान, जगद्विध्वंसक. प्रकाशक, अवेद्यत्व सदा अपरोक्ष, सर्व दृश्यका साक्षी सच्चिदानन्द, विशुद्धघन जानता है और सर्व कायिक, वाचिक, मानसिक व्यवहारोंको आप चैतन्य दृश्य माया मात्र नाम मिथ्या जानता है, वास्तवसे जानने अजाननेसे आप पर है ।

मैत्रेयने कहा--कथा राजाकी कहो । पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! इस प्रकार विद्वानोंकी स्तुति पूर्वक अनेक प्रकारके वाक्य देवीने कृपा दृष्टिसे राजाको कहे और राजाके ज्ञानके प्रतिबन्धका निमित्त भी यहां तक ही था सो इस निमित्तसे ही दूर होना था, यही नीति थी । लज्जायमान होकर राजाने दत्तके मारनेका त्याग करके नम्रता पूर्वक कहा--" मेरे कर्मको मत देख. मेरे अपराधको क्षमा कर, जो कुछ हुआ है सो अविद्यासे हुआ है " । दत्तने कहा--हे शिव ! तुझसे भिन्न कौन है जो क्षमा करे ? राजाने कहा--नाम रूप इस संसारसे मैं कैसे छूटूँ ? दत्तने कहा--नाम रूपको तूने आप पकड़ा है, नाम रूपने तुझको नहीं पकड़ा इससे दूसरा कौन है जो तुझको छुडावे ? बडा आश्चर्य है जो है तू आप मुक्त और छूटनेकी इच्छा करता है सो भ्रम है । सारांश यह कि, अपने स्वरूपके न पहिचाननेके कारणसे है । जैसे स्वप्नद्रष्टा कहे कि, मुझमें कल्पित

स्वप्न प्रपंच नाम रूपसे मुझको कोई छुडावे सो न पहिचानने अपने स्वरूपके निमित्तसे यह स्वप्नद्रष्टाका फुरणा है उलटा तुझ चैतन्य अधिष्ठान आत्मासे कल्पित नाम रूप संसारका छूटना मुश्किल है । तुझ चैतन्य अधिष्ठानका नहीं क्योंकि कल्पित पदार्थ अपने अधिष्ठानसे विना नहीं होता और कल्पित विना अधिष्ठान होता है । जैसे-सुषुप्तिमें और समाधिमें तथा जगत्की उत्पत्तिके आदिमें तू चैतन्य कल्पित जगत्के विना स्थित है और जगत् तुझ चैतन्य विना नहीं; जैसे-भूषणोंकी कल्पना विना सुवर्ण है और सुवर्ण विना भूषणोंकी कल्पना नहीं; जैसे--स्वप्नद्रष्टा विना स्वप्न प्रपंच नहीं और स्वप्नप्रपंच विना स्वप्नद्रष्टा चैतन्य जाग्रत्में भी है तथा सुषुप्ति आदिकोंमें भी है परतुं स्वप्नप्रपंच नहीं । हे राजन् ! तू चैतन्य मनादिकोंका द्रष्टा है, मायासे लेकर देहपर्यंत यह तेरा दृश्य है, दृश्यका द्रष्टाको बाँधना न कभी किसीने देखा है और न शास्त्रमें सुना है, कोई चैतन्य दूसरा है ही नहीं जो तुझ चैतन्यको बांधे, तब किससे मैं तेरेको छुडाऊँ ? हे राजन् ! व्यावहारिक सत्तावाले आकाशको भी व्यावहारिक सत्ता बोले पृथिवी अप तेज वायु तथा तिनके कार्य मनुष्य शरीरादिक भी रज्जु आदिक साधनोंसे बांध नहीं सकते क्योंकि पृथिवी आदिकोंका कारण तथा सूक्ष्म, निराकार, व्यापक, असंगस्वरूप आकाश है, परंतु तू चैतन्य तो परमार्थ द्रष्टा सत् स्वरूप है, यह नामरूप तुझ चैतन्यका दृश्य असत्रूप है; सतको असत् कैसे बांधेगा किंतु नहीं बांधेगा । हे राजन् ! वैराग्य अर्थात् परिच्छन्न आप अहंकारको त्यागकर देख संसार कहां है ? यही परम वैराग्य है । जो तुझसे वैराग्य न हो तो जो नामरूप संसार

भासता है सो आपसहित तिन सर्व को वासुदेव जान। हे राजन् ! पंचभूतोंका विकाररूप जो यह महामलिन संघात है तिसको आप मत जान तू तो मनादिक संघातका साक्षी है और मलमूत्ररूप संघात आपको मानता है यही बन्धन है, तुमको किसीने बांधा नहीं; अपने संकल्पसे आप ही बाँधा गया है। जैसे--घुरायण आप ही अपना मकान बनाकर फँस मरती है इससे हे राजन् ! तू आपको मनादिकोंका द्रष्टा जान द्रष्टामें बन्ध मोक्ष है ही नहीं। इसीसे बंधमोक्षकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते किंचिन्मात्र भी तुझको कर्तव्य नहीं। अपने स्वरूप आत्माको सम्यक् जानना ही कर्तव्य है। हे मैत्रेय ! ऐसे कहकर दत्त चले गये, राजा जीवन्मुक्त होकर यथालाभमें विचरने लगा।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! राजा यत्किंचित् सत्संग होनेसे अपने स्वरूपको सम्यक् जान गया और तुझ अभिमानीको सत्संगका स्पर्श ही नहीं होता। मैत्रेयने कहा--चारों ओर दृश्यके मानने योग्य जो मैं निर्विकार चैतन्य हूँ सो मुझको ज्ञानसे प्रथम सत् है संज्ञा जिस दृश्यकी तिसका संग नाम स्पर्श नहीं होता। क्योंकि, मैं साक्षी चैतन्य असंग हूँ। इससे ठीक है मुझ अभिमानीको सत्संगका स्पर्श नहीं होता, मनसहित वाङ्मनसगोचर मैं अवाङ्मनसगोचर हूँ, अथवा अपने सहित सर्व वासुदेव है यही मुझको अभिमान है इससे मैं ठीक अभिमानी हूँ। पराशरने कहा--तू कौन है ? मैत्रेयने कहा--मैं आपको नहीं जानता, जानना द्वैतमें है; मैं चैतन्य स्वयं प्रकाश अद्वैत हूँ। सर्व शास्त्रोंकर मैं चैतन्य ही प्रतिपाद्य हूँ, सर्व ब्रह्मादिक मुझ चैतन्यको अपना आत्मा जाने हैं इससे तुम ही कहो मैं कौन हूँ ? पराशरने कहा--"मैं हूँ"।

ब्रह्मलोकविषे ऋषियोंका संवाद

हे मैत्रेय ! इसीपर एक कथा सुन--एक समय--मैं ब्रह्मलोकविषे गया, वहां ब्रह्मा सर्व देवता, ऋषीश्वर; मुनीश्वर, योगीश्वर, गन्धर्वों संयुक्त बैठे थे. मुझको देखकर ब्रह्मा हँसा और कहा--हे पराशर ! किस निमित्त यहां आया है ? मैंने कहा-निज स्वरूप पानेवास्ते आया हूँ । ब्रह्माने कहा--बड़ा आश्चर्य है। जैसे--फेनबुद्बुदादिक अपने स्वरूपके पानेवास्ते देशांतरको गमन करे, जैसे--घटाकाश अपने स्वरूपके पानेवास्ते देशांतरको गमन करे, जैसे प्रतिबिंब अपने स्वरूपके पानेवास्ते देशांतरको गमन करे तो हँसने योग्य है तैसे तेरा कथन भी हँसने योग्य है। योगियोंने कहा--हे पराशर ! योगकर जो स्वरूपको पावे। मैंने कहा--करता हूँ पर योगके करने न करनेवालेके जाननेवालेको प्रथम पहँचान करना चाहिये; जब तिसको जाना तो आपसे आप योग होगा । योगेश्वर तूष्णीं हुए। सनकादिकोंने कहा--बड़ा आश्चर्य है। हे पराशर ! अपने देखनेको यह आया है जैसे-कोई अपने देहके ढूंढनेवास्ते देशान्तरको जावे पर कहो जो सर्व अस्ति भाति प्रियरूप है तो द्रष्टा दर्शन दृश्य कहां है ! मैंने कहा-जब सर्व स्वरूप है तो द्रष्टा दर्शन दृश्य भी स्वरूप ही है। पुनः मैंने कहा--जो हूँ तो अपने आपको क्यों नहीं जानता ? सनकादिकोंने कहा--तू आप ही कहता है तथा जानता है कि, हाथ कान, नेत्र, शीश, उदर, छाती और पांव मेरे हैं, मन बुद्धि मेरी व्याकुल है वा नहीं है इत्यादि मनादिक इन्द्रियोंके तथा जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति आदिकोंके सर्व व्यवहारोंको जानता है, कहो आपको कैसे नहीं जाना ? परंतु तेरमें जाननेका मार्ग नहीं। मैंने कहा--जो दृश्य है सो

मिथ्याभ्रम है, जो दृश्यका प्रकाशक दृश्यसे परे है तिसको कौन जाने ? जो जाननेमें आता है सो दृश्यभ्रम है। उन्होंने कहा--जो दृश्य है सो ही अदृश्य, है, क्योंकि आदि अंत मध्य अव्यक्तरूप तेरा है। मैंने कहा--जो मैं ब्रह्म हूँ तो चाहना करता हूँ क्यों नहीं पूर्ण होती ? उन्होंने कहा--चहना धर्म चित्तका है तू चैतन्य अचिंत्य है, तेरी चाहना कैसे पूर्ण होवे। पुनः मैंने कहा--मैं कौन हूँ ? ब्रह्माने कहा--"सो"। मैंने कहा--"सो" कौन है ? ब्रह्माने कहा--"अहं"। पुनः मैंने कहा--"अहं" कौन है ? ब्रह्माने कहा--"सो"। मैंने कहा--"सो" कौन है ? पुनः ब्रह्माने कहा--"अहं"। मैंने विचार किया कि, मैंने सोको पूछा तो अहं और अहंको पूछा तो सो। इससे अब क्या पूछूं ? जैसे--"सोऽयं देवदत्तः" इस शब्दका अर्थ पुरुषका शरीरमात्र है तैसे सोऽहंका अर्थ अखंड सच्चिदानंद प्रत्यक् आत्मा मैं हूँ अन्य दृश्य जगत् मैं नहीं। तब ब्रह्माने कहा--हे पराशर ! सो कौन है ? मैंने कहा–जिस अखंड सच्चिदानंद पूर्णसे इस जगत्की उत्पत्ति होती है सो सो है। पुनः ब्रह्माने कहा--कि, अहं कौन है ? मैंने कहा--अहं साक्षी चैतन्य मैं हूँ, परंतु अहं और सो शब्द तथा शब्दके अर्थसे रहित अवाङ्मनसगोचर हूँ। तात्पर्य्य यह कि, "मैं अवाङ्मनसगोचर हूँ" इस मनके चिन्तनसे भी परे हूँ, । ब्रह्मा तूष्णीं हुआ !

वसिष्ठने कहा--हे पुत्र ! योग कर जो स्वरूपको पावे। मैंने कहा--हे पिताजी ! विना अपने पहिचाने योग कैसे करूँ ? स्वरूप जो सर्वका मूल है तिससे तो अज्ञात रहूँ और अनात्मयोग करूँ तिससे क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? अनात्मताकी प्राप्ति ही सिद्ध होगी अन्य नहीं। भृगुने कहा--योग, अभ्यास, कर्म, सर्वशरीरसे होते हैं और

शरीर अनित्य है इससे शरीरके कृत्यका जो फल है सो भी अनित्य ही है; अनित्य फलकी प्राप्तिवास्ते बुद्धिमान् यत्न नहीं करते। वसिष्ठने कहा--देखना स्वरूपका योगसे होता है कहनेसे नहीं। मैंने कहा--स्वरूपसे ही योग अयोग देखनेमें आता है योगसे स्वरूप देखनेमें नहीं आता, क्योंकि, जब योग नाम चित्तकी एकाग्रताको तथा चित्तके आदि अंत मध्यको जो देखता है सोई सर्वको देखता है। वसिष्ठने कहा--जो देखना योगसे नहीं तो यहां क्यों आया था? और क्यों पूछता है कि, मैं कौन हूँ? मैंने कहा--इस कारण आया था कि, ये क्या अनुभव कहैंगे, पर देखा तो सम्यक् आत्माका अनुभव एक ही है; असम्यक् अनुभव अनेक हैं। ब्रह्माने कहा--जब तू ही है तो क्यों अन्य उपाय करता है? सर्व जगत्को मृगतृष्णाके जलवत् जान और अपनेको अधिष्ठान जान। पराशरने कहा-जब सर्व जगत् मृगतृष्णाका जल है तो तुझसे क्या काम है? क्योंकि, तू भी जगत्कोटिमें ही है।

ब्रह्माने कहा--हे पुत्र! अपने आत्मासे ही हेत कर जो सत् है। जान कि, मैं शरीर नहीं, शरीर रूप वस्त्रसे नग्न हूँ; अर्थात् आपा अहंकार त्याग जो सुखी होवे। यह जो अतीत वनोंमें फिरते हैं तथा नगरोंमें फिरते हैं इनसे पूँछ तुम किससे अतीत हुए हो तो कहेंगे गृहस्थसे सो यह आपसे आप सिद्ध है क्योंकि, स्त्री मुई भर्ता रहा और भर्ता मुआ स्त्री रही। हे पुत्र! तू ऐसा अतीत हो कि, इस संघातरूप गृहस्थमें स्थित भी संघात तथा संघातके धर्मोंके अहंकारका त्याग कर यद्यपि तू साक्षी आत्मा स्वतः ही संघातसे अतीत नाम जुदा है परन्तु जुदेको जुदा ही जानना यही अतीत होना है। जब तू परिच्छिन्न पराशर नहीं तब देख जगत् कहां है? पाप

पुण्य तबतक ही है जबतक मायाके गुणोंके साथ मिलके कुछ बनता है। जहां बीज है तहां वृक्ष भी है; तैसे जहां परिच्छिन्न अहंकार है तहां ही संसार हैं। जहां अहं नहीं तहां संसार नहीं। मैंने कहा--हे ब्रह्मा पराशर नहीं तू ही है ! क्यों कहता है " पराशर जीव है।" ब्रह्माने कहा--जीव, ईश्वर, ब्रह्मको मैं चैतन्य सिद्ध करता हूँ और जीव ईश्वर ब्रह्म सर्व रूप भी मैं ही हूँ तथा कर्म भी मैं ही हूँ, जैसे-स्वप्न द्रष्टा स्वप्नके जीव ईश्वर, ब्रह्म सर्व स्वप्न जगत्का सिद्ध करता भी आप है और सर्व स्वप्न जगत् रूप भी आप ही है।

मीमांसा

पुनः मीमांसा आया और कहा--कि, जैसे कर्म करे तैसे ही कर्मका फल पाता है, इससे कर्म ही प्रधान है। हे प्रजापते ! यह बात सत्य है कि, झूठ ? ब्रह्माने कहा-- सत् है, अन्तःकरणकी शुद्धिवास्ते कर्मोंकी ही प्रधानता ह। मैंन कहा--हे ब्रह्मा ! तू कहता था कि मैं हूँ तो कर्म कौन करे ? ब्रह्माने कहा-जब सर्व हूँ तो कर्म भी मैं हूँ।

वैशेषिक

वैशेषिकने आकर कहा-सब झूठ कहता है, काल ही सर्वका आत्मा है कालकर ही जगत्की उत्पत्ति पालना संहार होता है, काल ही ईश्वर है अन्य ईश्वरका प्रकाश ह। हे ब्रह्मा ! कहो मैं सत्य कहता हूँ कि, झूठ कहता हूँ ? कालका किस वक्त अभाव है। भृगुने कहा-स्वप्नका काल, स्वप्नके भिन्न पूर्व उत्तर नहीं, स्वप्नके अंतर्वर्ती होनेसे स्वप्नवत् मिथ्या है, स्वप्नसे कालका जाग्रत्में अभाव है और जाग्रत्के कालका सुषुप्तिमें अभाव है। परन्तु काल ही सत् है काल ही ईश्वर है काल ही उत्पत्ति

आदि करता है यह बात जिसकर सिद्ध हुई सोई सत् है काल सत् नहीं उसमें कालका अभाव है। हे वैशेषिक! सुषुप्ति काल करके होवे, परन्तु कहो अनुभव सिद्ध सुषुप्तिमें काल है नहीं इससे काल मिथ्या हुआ, अज्ञानके भावका और कालादिकोंके अभावका सुषुप्तिमें सिद्ध करनेवाला साक्षी चैतन्य आत्मा ही सत् है तथा ईश्वर है अन्य कालादिक नहीं।

न्याय

पुनः न्यायने आकर कहा–कि, सर्व जगत् ईश्वरके आधीन है, कर्म बीज है, कालसे प्रकट होता है, पर ईश्वर चाहे तो नाश हो जाय इससे सब ईश्वरसे हैं। मैंने कहा–मुझ सत्, चित्, आनन्द, प्रत्यक् आत्मासे भिन्न ईश्वर नर शृङ्गवत् है, स्वप्न द्रष्टासे भिन्न स्वप्न ईश्वरवत् स्वप्नमें राजा तथा प्रजा भासती भी है, परन्तु सब प्रतीति मात्र हैं पूर्व उत्तर नहीं, स्वप्न द्रष्टा ही तीनों कालोंमें सत् है स्वप्न सृष्टिके संग ही स्वप्नके ईश्वरादिक हैं। तैसे ही दार्ष्टान्त जान लेना। न्यायने कहा––ईश्वर वह है जिसने तुझको उत्पन्न किया। मैंने कहा––मैं चैतन्य स्वयं प्रकाशरूप हूँ, मेरी उत्पत्ति करनेवाला कोई नहीं। न्यायने कहा–हे पराशर! ईश्वररूप सूर्यसे ही सर्व जगत्की तथा तेरे संघातकी चेष्टा होती है। मैंने कहा–सो चैतन्य रूप सूर्य मैं हूँ। हे न्याय! वेद सत् कहते हैं "एक नारायण अद्वितीय हैं।" न्यायने कहा–सबको भक्षण करूँगा। भृगुने कहा–सर्व श्रुतिस्मृति प्रतिपाद्य ईश्वर तेरा स्वामी उपास्य है तिसको भक्षण कर कि, तेरा स्वामी-दासपना सिद्ध होवे हे मूर्ख! जल और बुद्बुदेविषे क्या भेद है? न्यायने कहा–जीव ईश्वर नहीं हो सकता. क्योंकि, यह पराधीनादि गुणोंवाला है, ईश्वर स्वतंत्रादि

गुणोंवाला है । अगस्त्यने कहा--मैं नहीं जानता जीव ईश्वर क्या वस्तु है भिन्न है वा अभिन्न है ? परन्तु मैं सत् चित् आनंद प्रत्यक् आत्मा हूँ यह मैं जानता हूँ। जो जीव ईश्वर सत् चित् आनंद आत्मासे भिन्न है तो ऐसे असत् जड दुःख रूप अनात्मा जीव ईश्वरको हम क्या करें ? चाहे भिन्न रहे चाहे अभिन्न रहे। जो सच्चिदानंद आत्मा है सो मेरा स्वरूप है, स्वरूपविषे भिन्न भिन्न क्या है ? जैसे--स्वप्न जगत् के जीव ईश्वर भिन्न होवें वा अभिन्न होवें, स्वप्नद्रष्टाको क्या ? स्वप्नद्रष्टासे भिन्न जीव ईश्वरका अत्यंताभाव है । हे न्याय! कहो जीव ईश्वर तूने देखा है ! न्यायने कहा--देखा नहीं । भृगुने कहा--हे मूर्ख ! देखा नहीं तो भिन्न अभिन्न कैसे कल्पा है ? न्यायने कहा--जीव ईश्वरका अंश है । भृगुने कहा--अंशका अर्थ क्या मृत्तिकाका जैसे घट अंश है वा जलका जैसे--बुद्बुदा तरंगादिक अंश हैं वा सुवर्णके जैसे भूषण अंश हैं जैसे--महाकाशका घटाकाश अंश है तब भी अंश अंशी भाव नहीं होता है। पितापुत्रकी न्याईं जीव ईश्वरको कहे सो बनता नहीं, क्योंकि श्रुति स्मृतिसे विरोध होनेसे; अंश अंशी भाव पिता पुत्र दोनों अनित्य हैं । और जीवको नित्य कथन किया है। न्यायने कहा--जगत् परमाणुओंसे होता है। बृहस्पतिने कहा-हे न्याय ! धर्मसे कह स्वप्न प्रपंच किन परमाणुओंसे होता है । एक क्षणविषे परमाणुओं सहित स्वप्न जगत् निद्रारूप अविद्याने उत्पन्न किया है। किसी भी पुरुषके अनुभवमें नहीं घटे कि, स्वप्न जगत् परमाणुओंसे उत्पन्न हुआ है। तद्वत् जब घटको कुलाल मृत्तिकासे बनाता है वा नाश होता है, तो परमाणु विखरते मिलते किसीने भी नहीं देखा। हे न्याय ! पृथ्वीका गर्दा वायुसे आकाशमें देखकर परमाणुओंका कारण रूप

तासे नित्य और कार्य रूपतासे अनित्य कथन हाँसी योग्य है। हे न्याय ! इन्द्र जालकर रचा हुआ जगत् कह किन परमाणुओंसे रचा जाता है ? और किन परमाणुओंके विखरनेसे नाश होता है ? तैसे ही रज्जुविषे सर्प दंड मालादिक पदार्थोंकी उत्पत्ति नाश किन परमाणुओंसे हुई है ? किन्तु किसी परमाणुओंसे नहीं हुई, केवल रज्जुके अज्ञानसे सर्पादिकोंकी उत्पत्ति हुई है, रज्जुके ज्ञानसे सर्पादिकोंका नाश देखनेमें आता है । तैसे-यह जगत् जिस सच्चिदानन्द साक्षी आत्माके अज्ञानसे उत्पन्न होता है, तिसीके सम्यक् ज्ञानसे लीन होता है, बीचमें परमाणुओंकी टांगडी अडानी केवल मूर्खता है । न्यायने कहा-सप्त वा षोडश पदार्थोंके सम्यक् ज्ञानसे मोक्ष होता है मैंने कहा-हे न्याय ! जिस अधिष्ठानके अज्ञानसे बंध होता है। तिसीके ज्ञानसे मोक्ष होता है, अन्यथा नही। तात्पर्य यह--कि, अपने स्वरूपके अज्ञान पूर्वक आपको जन्म मरणवान्, बंधवान् तथा पञ्च क्लेशादिकों सहित संसारी मानता है, ज्ञान पश्चात् आपको नित्य मुक्त चैतन्यरूप मानता है, यही मोक्ष है और कोई मोक्ष पदार्थ नहीं। केवल मननरूप ही बंध मोक्ष है। हे न्याय ! स्वप्न पदार्थोंके ज्ञानसे या निर्णयसे पुरुषको क्या सिद्धि है ? निद्रारूप अविद्याके नाश विना स्वप्न भ्रम रूप पदार्थोंका हजारों वर्षतक निर्णय करे तो भी अंत नहीं होता यह अनुभव सिद्ध है । इससे माया मात्र पदार्थोंके अंतके हेतु अधिष्ठान, चैतन्य, आत्माका सम्यक् जाननाही कर्तव्य है. न भ्रम, रूप पदार्थोंका निर्णय !

पराशरने कहा-हे मैत्रेय ! मैंने कहा--हे ब्रह्मा ! जब सर्व तूही है तो न्याय कहां है ? ब्रह्माने कहा--

जब सर्व मैं हूँ, तो न्याय भी मैं ही हूँ। मैंने कहा--न्याय कर्म पर है वह कर्म कौन है, जिसपर न्याय करेगा ब्रह्माने कहा--अपना आप न्याय करता हूँ। वास्तवसे असंग निर्विकार हूँ, जैसे--स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नका व्यवहार भी आप ही करता है और वास्तवसे असंग भी है।

पातञ्जल

पुनः पातंजल योग शास्त्र आया और कहा--कि, जो प्रणवको लेकर योग करे सो जीवन्मुक्त है। मैंने कहा-प्रणवशब्दमात्र है, प्रणवको लेकर मनको योग करना है, मन प्रणवको सिद्ध करनेवाला, प्रत्यक् चैतन्य आत्मा स्वतः सिद्ध जीवन्मुक्त है योग करनेसे नहीं जो कर्तव्य सिद्ध होता है सो अनित्य। पुनः मैंने कहा--योगीका क्या स्वरूप है ? याज्ञवल्क्यने कहा- जिसने अहंकारको जलाकर उसीकी भस्म शरीरपर लगाई है और मन परमेश्वरमें जोडा है सो योगी है। मैंने कहा--जब अहंकार भस्म हुआ तो जीव ईश्वर मन कहां है जो जोडना होवे, परमेश्वरका स्वरूप क्या है ? याज्ञवल्क्यने कहा--सत् चित् आनंदरूप है परंतु वास्तवसे अवाङ्मनसगोचर है मैंने कहा--जब सच्चिदानंद परमेश्वर आत्मा मन वाणीके अगोचर है तो मनका जोड़नारूप योग कैसे होगा किंतु किसी दृश्य अनित्य पदार्थोंमें ही मनका जुड़ाना नामरूप योग होता, परमेश्वरमें नहीं।

मनको वश करनेका उपाय

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! तब पतंजलिने कहा, खाना पीना सोना आदि व्यवहार अल्प करनेसे इंद्रिय अपने वश होते हैं पश्चात् योग होता है। अगस्त्यने कहा--खाने पीने सोनेसे इंद्रियां वश नहीं होतीं बरन् संसारमें सम्यक् मिथ्यात्वज्ञानपूर्वक स्वस्वरूपके सम्यक् बोधसे इंद्रियें वश

होती हैं, अन्यथा नहीं। जैसे–इंद्रजालद्वारा रचे जो स्त्री आदिक पदार्थ हैं तिनके सम्यक् ज्ञाता पुरुषके इंद्रिय तिन पदार्थोंकी तर्फ भोगबुद्धिकर नहीं प्रवृत्त होते किंतु विलास पूर्वक होते हैं। हे पतंजली! खाने आदिकोंके अभावसे तो रोगीके भी इंद्रिय वश होते हैं परंतु पदार्थोंका सूक्ष्म राग बना रहता है और क्रोध अधिक हो जाता है। याज्ञवल्क्यने कहा–तू निगुरा है तुझको कहना योग्य नहीं। परंतु मन योगसे शुद्ध होता है। मैंने कहा–गो नाम अज्ञान तत्कार्यका है, रुनाम प्रकाशकका है। इससे नामरूप अज्ञान तत्कार्यको जो अपने स्वयंप्रकाशसे प्रकाशे तिसका नाम गुरु है, तिस स्वयंप्रकाशका और कोई प्रकाशक है नहीं, इससे मैं चैतन्य ठीक ही निगुरा हूँ। पुनः मैंने कहा--दयालु होकर कहो, योगसे मन कैसे शुद्ध होता है? पतंजलिने कहा--प्राणायाम करके प्राणोंको रोके पीछे अनाहत शब्द सुने। मैंने कहा–यह करनेसे नहीं अनाहत शब्द आपसे आप होता रहता है. क्योंकि, अन्तर अवकाशरूप आकाश है तिसमें प्राणवायुका संचाररूप शब्द यत्न विना हमेशह होता रहता है। प्राणरूपवायुका संचाररूप दश प्रकारका अनाहत शब्द तिस शब्दमें मनका जुड़ना वा न जुड़ना तिन दोनोंको जो चैतन्य साक्षी आत्मा जानता है सोई शुद्ध है, तिसको अपना आप जाननेसे ही मन शुद्ध होता है।

इतना कहकर फिर मैंने कहा–कहो योगके वास्ते और क्या करना चाहिये! याज्ञवल्क्यने कहा–जब गुरुशास्त्र अनुसार प्राणायामका अभ्यास करते करते सुषुम्ना नाडी द्वारा प्राण दशवें द्वारमें स्थित होवे तब जिह्वाको लंबी कर तालुमें लगाके प्राणोंको ऊपर ही रोके नीचे आने नहीं देवे, तब योगी अमृत पीता है। मैंने कहा–

हे विद्वन् ! आपलोग विचारो कि, शीशमें कोई अमृत पड़ा है नहीं केवल मिझ, मज्जा, मांस, अस्थि; रुधिर है (यह सबको अनुभव है शीशमें योगी अमृतपान कैसे करता है ? हां प्राणके रुकनेसे अग्नि प्रज्वलित होती है तिस अग्निके तेजसे मिझ, मज्जा, मांस पिघिल २ कर शीशसे नीचे गिरता है तिस अमृतको योगी पान करता है इससे भिन्न अमृत कोई अनुभवमें नहीं आता । याज्ञवल्क्यने कहा–परमेश्वरका मारा हो जो तुझसे वचन करै। मैंने कहा-परमेश्वर और आपमें जो बीच अहंकार है तिसका नाश करे सोई परमेश्वरका मारा है पर मैं तेरा चेला हूँ मुझको त्याग मत कर, पर कहो तिससे आगे योगी किससे जुडे ? याज्ञवल्क्यने कहा–दशवां द्वार कैसा है कि वहां सूर्य, चन्द्रमा, बिजली, तारागण विनाही प्रकाश है और ईश्वरका वहां ही निवास है तथा प्रकाश है। मैंने कहा–झूठ मत कहो–दशवें द्वारमें प्रकाश कहां है ! शीशमें तो अंधकार ही है, यह बात सबको अनुभव सिद्ध है । हे याज्ञवल्क्य ! साक्षी आत्मा इस शरीरके नखशिख पर्यंत पूर्ण हैं इसीसे दशवें द्वारमें भी आत्माका ही प्रकाश है अन्यका नहीं इसीसे आत्मासे ही दशवें द्वार तथा सर्व प्राणोंका न्यूनाधिक्य व्यवहार जाना जाता है । इतने काल प्राण मेरे दशवें द्वारमें स्थिर रहता है इतने काल नहीं रहता इन विचारोंको आत्मा जानता है इससे आत्मा ही सर्वका प्रकाशक है। हे याज्ञवल्क्य ! जैसे–स्वप्न द्रष्टाकी प्राप्ति वास्ते स्वप्न नर प्राणायाम करके प्राणोंको दशवें द्वार चढ़ावे सो तिसकी मूर्खता है, क्योंकि, स्वप्न द्रष्टा स्वप्ननरका आत्मा है ।

योगका अधिकारी

अपने आत्माके ढूँढनेवास्ते क्रियारूप प्राणायाम योग करना नहीं केवल विवेक द्वारा जानना ही है। जिसका

चित्त अतिस्थूल है, विचार करनेमें असमर्थ है, तिसके वास्ते "स्थूलारुंधती" न्यायकर हठयोग है, अन्यके लिये कहीं नहीं । याज्ञवल्क्यने कहा-योग सनातन है एक तेरे न माननेसे योगका खण्डन नहीं होता । मैंने कहा जैसे और सब शास्त्र तथा पृथिवी, अप्, तेज, वायु, आकाशादिक अज्ञानपूर्वक सनातन हैं तैसे ही योगशास्त्र भी संसारके अंतःपाती होनेसे सनातन है। इससे सर्व शास्त्रोंको तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणोंको सिद्ध करनेवाला तथा सर्व दृश्यको सिद्ध करनेवाला आत्मा ही असली सनातन है अन्य नहीं ।

सांख्य

पुनः कपिलदेव आये और कहा कि, जो स्वरूपको प्राप्त हुआ चाहे तो नित्य अनित्यका विचार करे । मैंने कहा-हे कपिल ! नित्य क्या और अनित्य क्या ? कपिलने कहा-तीन गुणोंसे उत्पन्न होनेवाला शरीर सहित संसार अनित्य है। तीन गुण अहंकारसे हैं जिससे यह सर्व प्रकाशमान हैं सो नित्य है । प्रकृति पुरुषके अविवेकसे बन्ध है और विवेकसे मोक्ष है। पुरुषके सुख दुःखके भोगवास्ते प्रकृति स्वतंत्र जगत्को रचती है । पुरुष असंग है, अनेक है और चौबीस तत्त्व हैं। यह संक्षेपसे सांख्य शास्त्रका सिद्धांत है । मैंने कहा-हे कपिल ! तेरा वचन सब ठीक है, परन्तु पुरुष असंगको अनेकता तथा प्रकृतिकी स्वतंत्रता, जगत्की रचकता यह ठीक नहीं । कपिलने कहा-भिन्न भिन्न पुरुष नहीं माने तो एकके सुखसे सुखी और एकके दुःखसे दुःखी सबको होना चाहिये । मैंने कहा-जैसे एक ही आकाश अनंत घटोंमें स्थित है घृततैलादिक अनेक पदार्थ तिन घटोंमें

पडे हैं और सर्व मृत्तिकाके घट भी एक हैं परन्तु एक घटके फूटने तथा एक घटमें क्रिया होनेसे सर्व घट फूटते तथा क्रियावान् नहीं होते आकाश सर्व घटोंमें एक ही असंग निर्विकार स्थित है। तैसे सत्से भिन्न प्रकृति असत् जड़ है । जड पदार्थमें स्वतंत्र क्रिया होती नहीं, जैसे-पुतलियोंमें स्वतंत्र चेष्टा होती नहीं । इससे चैतन्यके आभासयुक्त ही प्रकृति जगतको रचती है स्वतंत्र नहीं । हे कपिल ! सद्विचारसे देख, पक्षपात न कर । सुख दुखके संस्कार वास्ते ही असंग पुरुषको अनेक मानना था सो पूर्वोक्त प्रकारसे बन सकता है तब तो असंग पुरुषको नाना मानना व्यर्थ है। कपिल चुप हुआ ।

वेदान्त

व्यासने कहा-एक अद्वितीय नारायण है द्वैत नहीं। मैंने कहा-एक है तो दूसरा भी है। व्यासने कहा-नारायणविषे दूसरा कहां है ? स्वयंरूप है। मैंने कहा-दूसरा नहीं तो एक क्यों कहा ? व्यासने कहा-द्वैत अंगीकार विना वचन नहीं चलता । इससे तेरे कहनेसे ऐसा जाना जाता है कि, मुख बन्द ही रखना भला है। मैंने कहा-संत पदको वेद क्या जाने ? क्योंकि, वेद त्रिगुण रूप है और सत पद त्रिगुणातीत है इससे कुछ कहो कुछ सुनो। व्यास भी चुप हुआ ।

सिद्धांत

तब ब्रह्माने कहा-हे पराशर ! तूनें आपको सबसे बडा माना है, मल मूत्रका यह शरीर कालका ग्रास है, जो जगत् की उत्पत्ति पालना संहार करते हैं वह भी अहंकार नहीं करते, क्योंकि चैतन्य पाल इस नाम रूप जड मनादिक दृश्यसे स्वतंत्र कोई कार्य नहीं होता। विद्या आदिकोंका अभिमान भी विद्वान् नहीं करते. क्योंकि,

एक दिन ज्वर ठाढ होवे वा छिदामकी भांग पीनेसे सर्व विद्या विस्मरण हो जाती हैं वा कोई औषधी सूंघनेसे सर्व विद्या नष्ट हो जाती हैं। इन अनित्य पदार्थोंका क्या अभिमान करता है ? अभिमान करे तो यह करे कि, मैं देहादिक संघात नहीं, किन्तु "मैं अवाङ्मनसगोचर, सर्वाधिष्ठान, जगद्विध्वंसक, प्रकाशक अवेद्यत्व सदा अपरोक्ष, साक्षी, सच्चिद्धन, विशुद्धानंद स्वरूप हूँ" यही निरंतर चिन्तन करे। मैंने। कहा-हे ब्रह्मा ! वास्तवसे विचारे तो. शुद्ध अशुद्ध अभिमान तुल्यही अनात्मधर्म हैं। जैसे-सोनेकी बेडी और लोहेकी बेडी पुरुषके संसार निरोधमें तथा दुख देनेमें तुल्य ही हैं, क्योंकि अभिमान किसी मायाके गुणके लिये देह अध्यास पूर्वक होता है तुम अंतर्यामी होकर देखो ! मुझमें पराशरकी रेखमात्र भी नहीं। मैं स्वयं प्रकाश स्वरूप हूँ। मुझ साक्षी चैतन्यमें बडाई भी होवे तो छुटाई भी होनी चाहिये। यथार्थ वस्तुके निरूपणमें अभिमान और निरभिमानका क्या प्रयोजन है ? हे ब्रह्मा ! भ्रम मात्र सिद्ध वंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते, बन्ध मोक्षसे रहित मुझ चैतन्य मात्रको योगादिक साधन किंचित् मात्र भी कर्तव्य नहीं। यही मुझको बेशक अभिमानवत् अभिमान है, तुम तद्वक्ता हो कहो, यह बात ठीक है कि, नहीं ? जैसे स्वप्नद्रष्टाका सर्व स्वप्न प्रपंचसे रहित तथा स्वप्नके बन्ध मोक्षसे रहितता स्वप्नके जीव ईश्वरकी कल्पनासे रहितता तथा निष्कर्तव्यताका चिन्तन ठीक है कि, नहीं तुम कहो। ब्रह्माने कहा-कहो ब्रह्मका रूप क्या है ? मैंने कहा अन्तर बाहर जिसकर सर्व मनादिकोंका व्यवहार जाना जाता है तिसको ब्रह्म साक्षी चैतन्य कहते हैं वा यह सर्व ब्रह्म ही है। ब्रह्माने कहा-जो दृश्यमान है सो नाशी है और ब्रह्म

नाम रूपसे रहित है कैसे इसको ब्रह्म जानिये ? मैंने कहा-हे ब्रह्मा ! बस्तुके सम्यक् स्वरूप विचारे विना जो प्रतीत होवे सो भ्रम मात्र जानिये, जैसे-मधुरता, द्रवता, शीतलता रूप जलके स्वरूप विचारे विना जो फेन बुद्बुदा तरंगादिकोंकी प्रतीति है सो भ्रम मात्र है, तैसे अस्ति भाति प्रियरूप ब्रह्मके स्वरूप विचारे विना जो नामरूप संसारकी प्रतीति है सो भ्रममात्र है। इत्यादि मृत्तिका स्वर्णादिकोंके अनेक दृष्टांत हैं। भ्रमी पुरुषकी दृष्टि प्रमाण नहीं होती । ब्रह्माने कहा-तूने देखा है ? मैंने कहा-मायासे लेकर देहपर्यंत सर्वको देखनेवाले मुझ ब्रह्मको कौन देखे ? क्योंकि, माया और मायाके मन देहादिक कार्य दृश्य अपने द्रष्टाको देख नहीं सकते, क्योंकि इस साक्षी चैतन्यके पृथक् और कोई द्रष्टा है नहीं। इससे इस ब्रह्म चैतन्यको कौन देखे स्वयप्रकाश है, जैसे-सूर्य सर्वको प्रकाशता है, परन्तु सूर्यको कोई प्रकाश्य पदार्थ प्रकाशता नहीं ।

ब्रह्माने कहा-भजन कर । मैंने कहा-भजनका रूप क्या है ? ब्रह्माने कहा आप सहित सर्व भगवद्रूप जानना भजन है परन्तु तू वर्णाश्रममें तथा शुभ अशुभमें तथा इंद्रियोंके विषयोंमें बँधा है, भजनका रहस्य क्योंकर देखे ? मैंने कहा--यह सर्व दृश्य मुझ चैतन्य कर बँधा हुआ है मैं चैतन्य इनकर बँधा हुआ नहीं; जैसे--स्वप्नद्रष्टाकर सर्व स्वप्नपदार्थ बांधे हुए हैं। ब्रह्माने कहा-हे पराशर ! जिस समय तू कर्मसे निष्कर्म होवेगा, सर्व आशासे निराश होकर आत्मविचारके सम्यक् सम्मुख होवेगा तब देवता शोकवान् होवेंगे क्योंकि देह अभिमानी ही देवतोंका पशु है । देह अभिमान रहित सम्यक् विद्वान् पुरुष देवतोंका गुरु नाम आत्मा होता

है। उससे काल भी कांपता है क्योंकि आत्मा विद्वान् पुरुष कालका भी काल होता है। मैंने कहा--जो आशामें बँधा हुआ है सो निराश होवे, मैं चैतन्य सर्व दृश्यरूप आशासे नित्य मुक्त हूँ।

निर्वाण वैराग्य

ब्रह्माने कहा--आपा अहंकारको त्याग और निर्वाण-वैराग्य कर जो शांतिमान् होवे। मैंने कहा--निर्वाण-वैराग्यका क्या रूप है? ब्रह्माने कहा--वाण नाम देहादिकोंका है; "मैं देह मनादिक यह संघात नहीं किन्तु मैं चैतन्य इन देह मनादिक संघातका साक्षी हूँ" इस सम्यक् निश्चयका नाम निर्वाण वैराग्य है। मैंने कहा--हे ब्रह्मा! जो पूर्व तुमने भजनका रूप कहा था कि "आप सहित सर्व गोविंद है" सोई मैं भजन करता हूँ। ब्रह्माने कहा--जब सर्व गोविंद है तब तू कौन है? मैंने कहा--जब सर्व गोविंद है तो मैं भी गोविंद हूँ। ब्रह्माने कहा--गोविंद स्वयं प्रकाशरूप है मैं तू कहां है? मैंने कहा--जब सर्व गोविंद है तब मैं तू भी गोविंद ही हैं। हे ब्रह्मा। मैं पराशर नहीं हूँ। ब्रह्माने कहा--जब तू नहीं तो भजनसे क्या प्रयोजन रखता है? मैंने कहा--आपको जानता नहीं सुनकर कहता हूँ कि जीव हूँ। ब्रह्माने कहा--जब आपको नहीं जानता तो जीव, ईश्वर कैसे थापा? इससे यह जाना जाता है कि, जीव ईश्वरको तुझ चैतन्यने सिद्ध किया है। मैंने कहा--जो मैं भगवान् चैतन्य हूँ तो आपको क्यों नहीं जानता? ब्रह्माने कहा जाननेका तुझमें मार्ग नहीं. क्योंकि, जो तूही है तो किसको जाने? कौन है जो तुझको जाने? तू स्वयंप्रकाश है। जब तुझको यह निश्चय हुआ तो आवागमनसे मुक्त हुआ सर्व कर्म कर

नित विषे अहंकार मत कर आपसहित सर्व गोविंद जान और सर्व चाहनासे अचाह हो, गोविंद भी कहा है जो मुझ चैतन्यको अपना आत्मा जानता है सो अचिंत्य मेरा रूप होता है । हे पराशर ! आप कुछ मत कर, करने अकरनेको देखता रह ।

विष्णुका स्वरूप

पुनः विष्णु आये और कहा--हे ब्रह्मा ! मैंने अपने रूपको नहीं देखा, कहो रूप मेरा क्या है ? ब्रह्माने कहा--रूप तेरा शिव है, तुझको कौन देखे ? तुझ विना कुछ नहीं । मैं चुप होकर बैठा था । विष्णुने कहा--हे पराशर ! तू चिंता मत कर । ब्रह्माने कहा--हे विष्णु ! पराशर तूने अकार्थ माना है, सर्व तू ही है तो पराशर कहां है ? विष्णु हँसा और कहा--हे ब्रह्मा ! जो सर्व मैं हूँ तो पराशर भी मैं ही हूँ तुझको पराशर और मैं दो भासते हैं । जानता हूँ तेरा द्वैत भेद गया नहीं । ब्रह्माने कहा--जब सब तूही है द्वैत भेद भी तूही है तुझको लज्जा नहीं आती जो अपनेमें अपना देखता है । जैसे--स्वप्नद्रष्टा कल्पित स्वप्न भेदकर अपनेमें भेद नहीं मानता । विष्णुने कहा--लज्जा तो करूँ तब जो द्वैत राखूं, जब सर्व मैं ही हूँ तो लज्जा किससे करूं ? ब्रह्मा चुप हुआ ।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! तू भी सत् है कुछ कह । मैत्रेयने कहा–सर्व मैं ही चैतन्य कहता हूँ, सुनता हूँ, देखता हूँ, देता लेता हूँ सर्व रूप मेरा है स्वप्नद्रष्टावत् । कहो मुझ चैतन्यसे भिन्न वह कर्ता कौन है जो कथन करे ? पराशरने कहा--तुझको मूर्ख कहना जो चाहिये तू एक कर्ता है तो भेद क्यों किया ? मैत्रेयने कहा–मुझ चैतन्यमें भेद अभेदका मार्ग नहीं तेरे वचनका उत्तर दिया है ।

ब्रह्मयज्ञ

पराशरने कहा–हे ब्रह्मयज्ञ ! सुन । मैंने कहा--हे विष्णु ! तू भजन किसका करता है ? विष्णुने कहा--ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत सर्वका स्वरूप सत्, चित्, आनन्द आत्मा है सो स्वतःबन्ध मोक्षरूपी सुख दुःखसे रहित, अजन्मा व्यापक अद्वितीय मैं हूँ यह दृढ निश्चय ही भजन करना है । वा मन वाणी शरीर कर जो कुछ प्रवृत्ति निवृत्ति करनी है सो सुखकी प्राप्तिवास्ते और दुःखकी निवृत्ति वास्ते है सो सुखकी प्राप्तिरूप और दुःखकी निवृत्तिरूप पूर्वोक्त आत्मा स्वतः सिद्ध नित्य सर्वको प्राप्त है भजन करनेसे वा कोई और प्रवृत्ति निवृत्ति करनेसे प्राप्त नहीं होता। इससे अपनेसे भिन्नका भजन करना भ्रममात्र है। यह स्वयंप्रकाश है, भजन त्रिपुटीमें होता है मैं चैतन्य त्रिपुटीसे रहित हूँ क्योंकि त्रिपुटीरूप भजनका द्रष्टा हूँ, मुझ द्रष्टाका द्रष्टा है नहीं, जैसे--स्वप्नद्रष्टाको सुख दुःखादि स्वप्न पदार्थोंकी निवृत्ति वास्ते किंचित् मात्र भी कर्तव्य नहीं । जो मुझको अपने आत्मासे भिन्न जान मेरी उपासना करता है सो निजस्वरूप ज्ञानसे भ्रष्ट है क्योंकि उपासना करनेवालेका मैं आत्मा हूँ ।

शिवस्वरूप (शिवके विष खानेका आशय)

पुनः शिव आये और कहा--ब्रह्मा, विष्णु, पराशरादि हैं ही नहीं मैं चैतन्य अद्वितीय शिव हूँ । विष्णुने कहा--जो सर्व शिव है तो विष्णु भी शिव है । शिवने कहा--विष्णु विश्वको कहते हैं मेरे विषे विश्व कहां है मैं निर्मल हूँ । विष्णुने कहा--विश्वको जो अपना स्वरूप जाने वही शिव है । शिवने कहा--ऐसी विचाररूपी निर्मल विष खाई है कि तुझ विष्णुरूप विश्वको विचाररूप विषके साथ मिलाकर निगल गया हूँ । सारांश यह है कि, अपने चैतन्य

स्वरूपमें विश्वका अत्यंता भाव अनुभव करता हूँ। विश्व-विषे विश्वपना कहां है शिव है। जैसे--सुवर्ण ज्ञाता पुरुषको भूषणोंविषे भूषणपना कहां है सुवर्ण ही है। विष्णुने कहा--विष्णुविषे शिव है ही नहीं क्योंकि; शिव नाम आनन्दका है विष्णुविषे सुख दुःख दोनों नहीं। ब्रह्माने कहा--विष्णुपना तथा शिवपना मुझ चैतन्य ब्रह्म स्वरूपमें दोनों नहीं। प्रगट है कि, सर्वका आदि ब्रह्म है विष्णु शिवादिक मुझ चैतन्यविषे प्रकाश रखते हैं, मुझ अवाङ्-मनसगोचर साक्षी चैतन्यविषे पूर्णापूर्ण तथा भेद अभेद दोनों नहीं, ब्रह्माने कहा--मैं सर्वसे अतीत हूँ यह भी भूलकर कहा है, नहीं तो अतीत किससे हूँ सर्वसे अतीत भी सर्व मैं ही हूँ जैसे स्वप्नद्रष्टा कहे मैं स्वप्न प्रपंचसे अतीत हूँ परन्तु स्वप्नद्रष्टा ही सर्व रूप है अन्य वस्तुका अभाव होनेसे। शिवने कहा--हे विष्णु! रूप अपना कहो। विष्णुने कहा--किसको कहूँ ? मुझ चैतन्यसे भिन्न सर्व दृश्यजात जड है श्रोता कोई नहीं. पर कहता हूँ जो यह दृश्यमान है सर्व मैं हूँ। शिवने कहा--जो दृश्य है सो नाशी है। विष्णुने कहा--अस्ति भाति प्रियसे भिन्न दृश्य कहां है ? जो नाशी होवे। मैं ही सर्वते अतीत ही हूँ और सर्व रूप भी मैं ही हूँ जैसे--स्वप्नद्रष्टा स्वप्न प्रपंचसे अतीत भी है और सर्व स्वप्न प्रपंचरूप भी है।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! मनको सचेत कर सुन। मैत्रेयने कहा--मन कहां है जो सचेत करूँ ? शिव है। पराशरने कहा--चित्त विना चैतन्य कैसे कहेगा ? मैत्रेयने कहा--जैसे--स्वप्नद्रष्टा स्वप्नमें चित्त विना चिंतन करता है, वाणी विना कहता है, तात्पर्य यह कि, संघात विना संघातका व्यवहार करता है तैसे मैं चैतन्यचित्त वाणी विना सर्व व्यवहार करता हूँ इससे वास्तव अचिंत भी

मायाकर सचिंत हूँ सचिंत भी वास्तव अचिंत हूँ। शिवने कहा–मायारूप विश्वसे रहित तुम्हारे स्वरूपका स्वरूप क्या है? विष्णु चुप हुए क्योंकि, मायासे रहित अवाङ्मनसगोचर पदमें वचनका अवसर नहीं है।

शिवने कहा--हे विश्वरूप! बोलना न बोलना निजस्वरूपमें तुल्य है परन्तु वचनसे संशय नाश होता है, जो संशयसे छूटा है वही मौनी है। विष्णुने कहा--सत् तुमने कहा है, पर क्या कहूँ बुद्धि नहीं रही। शिवने कहा--जिसने शरीर वाणीको स्थिर कर रक्खा है और मन स्थिर नहीं किया तो मौनी होना निष्फल है। मन आत्मबोधसे वा पदार्थोंमें दोष दृष्टिके विचारसे, वा योगसे, वा किसी अन्य विचार साधनसे स्थिर है अर्थात् संघातविषे अहं नहीं करता और शरीर वाणीसे लौकिक शास्त्रीय व्यवहार करता है तिसको भी मौन होना निष्फल है; क्योंकि तिस विज्ञानीके वचनसे अनेक जीव कल्याणको पाते हैं और मौनी पुरुष दूसरेवास्ते भी तुल्य है उपदेश विना कल्याण सम्यक् होता नहीं इससे विद्वानोंको मौन अमौन तुल्य है। विष्णुने कहा-सत्य कहा है। प्रथम जिज्ञासुको योग्य है कि, ज्ञानका मुख्य साधन विद्वानों संग मिलकर आत्म विचार करे। जब स्वरूप जानेगा तब मन स्थिर होगा। विना विचारे स्वरूप प्रकाश नहीं होता। इससे मुमुक्षुको तूष्णीं होकर प्रथम विचार करना भला है। शिवने कहा--जब आप चैतन्यस्वरूप हैं तो कर्तव्य करनेसे क्या प्रयोजन है। क्योंकि, चैतन्यस्वरूप परमात्माकी प्राप्तिवास्ते ही सब साधन हैं वाक् इन्द्रियका वचन करना धर्म है, वाक्इन्द्रिय केवल भजन वास्ते प्रगट हुई है, वा भ्रमके निवृत्तिद्वारा निज चित सुख नित्य आत्माके दर्शनवास्ते, सम्यक् आत्मदर्शी पुरुषोंके आगे

प्रश्नवास्ते प्रगट हुई है। भजनसे अंतःकरणकी शुद्धि होती है अंतःकरणकी शुद्धि विना ज्ञान नहीं होता, ज्ञान विना सुख नहीं। इससे हे मित्रो ! आपा त्यागकर भजन गोविंदका करो जो आवागमनसे छूटो, ग्रहण त्याग वृद्धि केवल दुःख है। जिह्वा जो मुखमें चामका टुकडा है, भजन विना राखनी योग्य नहीं। चाहनासे अचाह होकर भजन करो क्योंकि, शरीर स्वप्नके समान क्षणभंगुर है और भजन संसारसे तारनेकी नौका है। यदि पूछो भजन क्या ? तो "आप सहित सर्व हरि है वा मैं परिच्छिन्न नहीं" पीछे जो शेष रहा सो अवाच्य पद है, वही सर्वका स्वरूप है इस निश्चयहीका नाम मुख्य भजन है। विष्णुने कहा--गोविंद जिह्वासे उच्चारण करना इसीका नाम भजन है।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञव्याख्या

शिवने कहा--हे विष्णु ! क्षेत्र कौन है ? विष्णुने कहा--जो मुख्य व्यापक चैतन्य क्षेत्रज्ञसे आपको भिन्न मानता है वही क्षेत्र है। शिवने कहा--भिन्न क्या ? विष्णुने कहा-यही भिन्न है कि, आप व्यापक चैतन्य है। विष्णु और कहता है "मैं देहवान्, वर्णी, आश्रमी हूँ"।

विष्णुने कहा- हे पराशर ! कहो तेरा निश्चय क्या है ? मैंने कहा--क्या कहूँ निश्चय बुद्धिसे होता है मैं चैतन्य बुद्धिसे रहित बुद्धिका साक्षी हूँ, पर जो तुम कहो सोई निश्चय करूं। विष्णुने कहा--तू निर्लज्ज है तुझको कहना योग्य नहीं। मैंने कहा शरीरके पहरावसे नग्न हूँ इसीसे निर्लज्ज हूँ ? हे विष्णु ! रूप तुम्हारा क्या है? विष्णुने कहा-शिव। मैंने कहा--हे शिव ! रूप तुम्हारा क्या है ? शिवने कहा--विष्णु। अगस्त्यने कहा--न शिव न विष्णु आपसे आप अवाच्य पद हूँ। हे मैत्रेय ! तिस सभामें यही निश्चय हुआ कि, आत्मा विना और कुछ नहीं। तू भी

शरीरके पहरावसे नग्न हो । मैत्रेयने कहा--मैं तो है ही नहीं तो नग्न होऊँ क्या ? मनकल्पित नवीन बनते ही नग्न होना है पर कहो नग्न किसको कहते हैं ? पराशरने कहा—वही नग्न है जो स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरके पहरावसे तथा सर्व पर्दोंसे मुक्त है । मैत्रेयने कहा--तू सबसे बडा भासता है, मानो दूसरा ब्रह्मा है । पराशरने कहा--द्वैत अद्वैतसे रहित स्वयं हूँ । ब्रह्मा विष्णुके देहसे लेकर सर्व नामरूप विकारको मैंने उत्पन्न किया है, परंतु मैं विकारी नहीं होता जैसे--स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नविकारको अविद्यारूप निद्रासे उत्पन्न करता है परंतु आप विकारी नहीं होता ।

अतीत अर्थात् भेषधारियोंके विषयमें

हे मैत्रेय ! तू अतीत हो जो सुखी होवे । मैत्रेयने कहा-अतीत होनेका मार्ग बतावो ? पराशरने कहा--वस्त्र उतार दे और रोम शीश दाढीको मुंडा डाल सब कहेंगे मैत्रेय बड़ा परमहंस सिद्ध है, तेरी कृपासे मेरा नामभी चलेगा । हे मैत्रेय ! किसी अतीतसे पूछिये "तू किससे अतीत हुआ है कहेगा गृहस्थसे" पूछिये "गोविंदके मिलनेका मार्ग कौन है ? तो कहेगा भक्ति" । पुनः पूछे "भक्ति क्या है ? कहेगा रामनाम भजन करना" पुनः पूछे "रामनामका स्वरूप क्या ? तो कहेगा चल लंडी, नामका स्वरूप ऐसे नहीं बताया जाता, गुरुनकी बारा-वर्ष सेवा कर" । हे मैत्रेय ! तू भी लम्बी माला लेकर भजन कर और राजा बाबुओंको चिता, स्वांग विरक्तताका धारण कर निज भोगोंके लिये वैद्यकके बहानेसे द्रव्य इकठ्ठा कर अपनी भेषवृद्धिके वास्ते यत्न कर और जगत् के ठगने वास्ते अतीतोंकी मंडली बांधकर विचर ।

सच्चे वैरागीका स्वरूप ।

हे मैत्रेय ! सच्चे दिलसे अतीत हो इस लोक परलोकके भोगोंकी इच्छाको त्याग, शरीररूप पहरावसे नग्न हो

और कुछ मत कर रक्षा तेरी इसीमें है। मैत्रेयने कहा--भक्तिका रूप कहो। पराशरने कहा--"आप सहित सर्व वासुदेव जानना मनादिक माया पर्यंत सर्वको अपना दृश्य जानना और आपको द्रष्टा जानना सो द्रष्टा आत्मा एक रस, निर्विकार, नित्य, मुक्त चैतन्य, आनंद स्वरूप है, कालसे रहित है तिस आत्माको जो अपना रूप जानना है सोई भक्ति है" सोई कालके भयसे रहित होना है। जो कालके भयसे रहित है तिसका सुख रसनासे नहीं कहा जाता. क्योंकि, सर्व जगत् कालके भयसे है, अकाल वस्तुको अपना स्वरूप जाने विना कालका भय दूर नहीं होता। हे मैत्रेय ! अपरोक्षसे तथा विद्यत अविद्यत मनके धर्मोंसे तथा सर्व देहादि संघातसे भिन्न आपको जानना अथवा स्वयं प्रकाश स्वरूप आपको जानना यही अतीत होना है, कोई स्वांग बदलनेका तथा रोम काटनेका नाम अतीत नहीं। यह अनेकता जो भासती है सो भी अपना स्वरूप ही जान, क्योंकि जो आदि अंत होता है सोई मध्यमें भी होता है। जो आदि अंत नहीं होता सो मध्यमें भी नहीं होता। इससे अपने स्वरूपमें तो अनेकता किसी कालमें भी नहीं जो है वही रूप है, जैसे--स्वप्न-द्रष्टामें अनेकता आदि अंत नहीं, मध्यमें अर्थात् स्वप्न कालमें जो अनेकता भासती है सो स्वप्न द्रष्टारूप ही है प्रत्यक् नहीं। ऐसा अपने स्वरूपका सम्यक् दृढ जिसको निश्चय है वही पुरुष सर्व कायिक, वाचिक, मानसिक, व्यवहार करता भी अकर्ता है। स्वरूपसे अकर्ता भी माया रूप उपाधिकर सर्व कर्ता है। जैसे--स्वप्न द्रष्टा स्वरूपसे अकर्ता असंग भी निद्रारूप अविद्याकर सर्व करता है। सर्व करता भी अकरता है। हे मैत्रेय ! वही नग्न है जो स्थूल सूक्ष्म कारण शरीररूप वस्त्रोंके अभिमा-

नसे नम्र है यह सब तुझसे प्रगट हुए हैं नहीं तो कहां हैं ? तूने ही बंध, मोक्ष, ज्ञान, अज्ञानादि प्रपंचकी कल्पना की है आपही तिनमें बद्ध हुआ है सो भी कबतक ? जब तक तूने आपको नहीं खोजा, जैसे- नट अपनेको सम्यक् जानता हुआ अनेक स्वांग करता हुआ भी बंधमान नहीं होता । हे मूर्ख ! भले प्रकार देख जो तुझ विना यह नाम रूप जगत् कुछ नहीं, जैसे--सुवर्णसे विना भूषण कुछ नहीं । हे मैत्रेय ! कहना मेरा अकार्थ है क्योंकि, तुझको निश्चय नहीं वचन मेरा अद्वितीय है जो अद्वितीय होवे तिसको ही मेरे वचनोंका सुख है अन्यको नहीं। मैत्रेयने कहा- निश्चय अनिश्चय बुद्धिका धर्म है और मैं मन बुद्धिसे परे हूँ । पराशरने कहा--श्वानके समान असत् विषे बन्ध है तुझको क्या सुख है मैं मूर्खोंके ठगने वास्ते नहीं हूँ । मैत्रेयने कहा-मैं पूर्ण हूँ इसीसे मैं असत्में भी पूर्ण हूँ । मैत्रेयने कहा-उपदेश करो । पराशरने कहा--यही उपदेश है " न तू न मैं, यह जगत् एक अद्वितीय आत्मा मैं हूँ वा सर्व नामरूप जगत् अस्ति भाति प्रियरूप मैं ही आत्मा हूँ " हे मैत्रेय ! जिन्होंने परमार्थ जाना है वे मौन हुए हैं, पर मौन होना यही है कि, आपको मन वाणीसे परे सम्यक् जानना वा " मौन अमौन " मैं आपको निर्विकार एकरस चैतन्य मात्र जानना । वेद और सन्त सत्य कहते हैं कि, सर्व नारायण है । मैत्रेयने कहा--नारायण कोई छिपा हुआ नहीं क्योंकि, सर्वके हृदयविषे मनादिकोंके साक्षी रूपसे प्रगट है जो साक्षी, चैतन्य, नित्य, आनन्द स्वरूप आत्मासे नारायणको भिन्न मानते हैं मानो वे नारायणके घातक हैं क्योंकि, सत, चित, आनंदसे भिन्न नारायण असत् जड

दुःखरूप होगा । पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! आत्मारूप नारायणविषे जाननेका मार्ग नहीं है इसीसे छिपा हुआ है। इस हेतु भजन गोविंदका कर । भजन पूछे क्या है तो " आप सहित सर्व हरि है " इस भजनको निरन्तर चिंतन कर क्योंकि जीवना श्वासमात्र है जबतक श्वास है तबतक सब वस्तु अपनी हैं नहीं तो सब स्वप्न समान हैं। चाहनाते अचाह हो और प्रसन्न रह देख ! जगत्का राजा मुआ क्या साथ ले गया। इससे देहाभिमान त्याग और चाहनासे निर्भय हो। जो प्रारब्ध है सो अमिट है। चाहना करै अथवा न करै हे मैत्रेय! जिस शरीरकी प्रारब्ध है तिसने तो कभी चिंता करी नहीं तू काहेको चिंता करता है। इससे अचिंत होकर भजन कर कि, मैं परिच्छिन्न नहीं तो तू और जगत् कहां है ? मैत्रेयने कहा-- भजन कैसे करूं ? मन भजनका मार्ग रोकता है कहा नहीं मानता । पराशरने कहा--तू इसीसे पाखण्डी है कि मनके कहे चलता है। विचारनेसे मन कुछ वस्तु नहीं जो तुझको रोके। पर कहो मनका रूप क्या है ? मैत्रेयने कहा--मनका रूप नहीं देखा । पराशरने कहा--हे मूर्ख ! जिसका रूप नहीं देखा सो तुझे क्या करैगा ? जैसे-- आकाशरूप रहित होनेसे किसीको रोकता नहीं पर जान, कि संकल्प मनका रूप है, तू आपको संकल्प विकल्पका साक्षी जान, यही परम भजन है। हे मैत्रेय ! मैंने तुझको अनेक रीतिसे उपदेश किया है जब तू आप न विचारेगा तो स्वरूपका जानना कैसे होगा ? इसीपर एक इतिहास सुन।

एक संशयात्मक ब्राह्मणतपस्वीकी कथा

एक ब्राह्मणने विष्णुका अति दारुण तप किया और विष्णुने दर्शन दिया और कहा हे ब्राह्मण ! मैं विष्णु

व्यापक चैतन्य तेरे हृदयविषे साक्षी आत्मा तेरा स्वरूप हूँ, मुझ व्यापक विष्णुको अपने आत्मासे भिन्न मत जान। यह दुःख तपस्याका मुझको मत दे। क्योंकि, अन्तर बाहर मैं ही हूँ मुझको अपना आत्मा जान। अपने आत्माको मुझको जान, जैसे--घटाकाश आपको महाकाशरूप जानता और महाकाश सर्व घटाकाशोंका अपना स्वरूप जानता है। यह वाक्य सुनकर ब्राह्मणने मनमें विचारा कि, यह कोई भजनमें विघ्न करनेवाला देवतोंका दूत है यह विचार कर बोला--कि, मैं मूर्ख नहीं हूँ जो तेरे कपटसे निश्चयका त्याग करूं, जहांसे आया है तहां चला जा, नहीं तो तप अग्निसे तुझको भस्म कर दूंगा। विष्णुने कहा-सुन जब अपने कर्मसे आप न फिरे तब तक कहना गुरुशास्त्रका व्यर्थ है। विष्णु यह बात कहकर चले गये। हे मैत्रेय ! आपको पहँचान अपने कार्यका करता आप है अन्य नहीं।

कच तथा वृहस्पतिका संवाद

हे मैत्रेय ! एक समय कचने बृहस्पतिसे पूछा--कि, हे पिता ! सर्व विद्यामें कुशल हूँ, पर नहीं जानता कि, मैं कौन हूँ। बृहस्पतिने कहा--यह सर्व नाम रूप दृश्य जगत् तुझ चैतन्यसे ही प्रकाशमान है और तू साक्षी चैतन्य स्वयं प्रकाश अविनाशी है। हे पुत्र ! अन्नमयादिक पञ्चकोश रूप देह तेरा स्वरूप नहीं यह पृथिवी आदिक पंचभूतोंका विकाररूप है। तू चैतन्य निर्विकार है. क्योंकि जन्म नाशादि विकारोंका तू साक्षी है। हे पुत्र ! सर्व दृश्यकी प्रतिष्ठा तु भूमा सुखरूप है, जैसे--सर्व स्वप्नप्रपंचका स्वप्नद्रष्टा ही प्रतिष्ठा है।

पक्षियोंके आत्मनिरूपणकी कथा--कच तथा वृहस्पति संवादान्तर्गत

इसीपर एक कथा सुन हंस अवतारने पक्षियोंको ज्ञान उपदेश किया था सो परंपरा ज्ञान संप्रदाय रीतिसे चली

आती है। सोई ज्ञान एक समय सारस पक्षीने अपनी बोलीमें अपनी स्त्रीको ज्ञान उपदेश किया । सारसने कहा--हे रूप! मेरे यह जो अनेक प्रकारका दृश्यमान जगत् है केवल नाशी और मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्या है, विचारे विना प्रतीत होता है। तेरा स्वरूप इस दृश्यमानसे परे नाम भिन्न है। स्त्रीने कहा--हे प्रभो ! दृश्यमान तो नाशी है और द्रष्टा इन्द्रियोंसे अगोचर है, पर निश्चय कैसे करिये ? सारसने कहा--हे रूप! मेरे यह साक्षी आत्मा मन वाणीसे अगोचर होनेपर भी मन वाणीके साक्षीरूपसे प्रगट है छिपा नहीं। पर निश्चय तब हो जब दृष्टि मूलपर पडे, जैसे--पत्र फूल फल मूलके अंतर्भूत हैं। स्त्रीने कहा--सो मूल कौन है ? सारसने कहा--"मूल कौन है इस मनके चिंतनको तथा कथनको जिसने जाना वही मूल है"। स्त्रीने कहा--सो तो मैं हूँ पर नहीं जानती कि कौन हूँ। सारसने कहा--सत्, चित्, आनंद तेरा रूप है। स्त्री सुनकर हँसी और कहा--हे निर्बुद्धि ! यह सर्व लक्षण द्वैतसे मिले हुए हैं क्योंकि, सत् तब कहिये जब असत् होवे चैतन्य तब हो जब जड हो और आनंद तब हो जब दुःख होवे, सो मैं इन पदोंसे मुक्त हूँ। अवाङ्मनसगोचर मेरे स्वरूपमें सत्, चित्, आनंद यह क्यों कलपता है ? पर कहो रूप मेरा क्या है ?

गरुड

पुनः गरुड आया और कहा--सर्व जगत्‌विषे एक विष्णु ही है द्वैत नहीं। सारसने कहा--जो केवल विष्णु ही है, तो जगत् कहां है ? परन्तु हमको क्या लाभ है दूसरेके धनसे ? गरुड़ने कहा--जब सर्व विष्णु है तो तू भी विष्णु है। सारसने कहा--इस तेरे वचनको मेरी स्त्री प्रतीत न करेगी । गरुडने कहा--तेरी स्त्री स्वरूपसे अप्राप्त है ।

"एक दो कहां है ? और विष्णु ही सर्व है" ऐसे कथन चिंतन करता है पर अपने साक्षी चैतन्य आत्मासे विष्णुको भिन्न मानता है, तब मानो विष्णुका घाती है क्योंकि, आत्मासे पृथक् अनात्मा है, इससे विष्णुको अपने आत्मासे अभेद जानना, कथनसे अद्वितीयपना नहीं सिद्ध होता। सारसने कहा--जब सर्व विष्णु है तो आपको आप कहे तो क्या हानि है ? गरुडने कहा-मेरा वचन ज्ञानियों प्रति है, अज्ञानी प्रति नहीं। सारसने कहा अबतक् तेरी द्वैत दृष्टि नहीं गई, यह अस्ति भाति प्रियरूप विष्णु चैतन्य आत्मा ही है द्वैत नहीं तो ज्ञानी मूढ कहां है ? तुझको मूलकी अप्राप्ति है और मलीनताविषे बंध है।

काकभुशुण्ड

इतनेमें कागभुशुण्ड पुनः आया और कहा-ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत एक राम ही है। गरुडने कहा--जब राम ही है तब तू कौन है ? भुशुण्डने कहा-मैं रामका दास हूँ। गरुडने कहा-तब राम पूर्ण न हुआ क्योंकि, आदि अंत मध्य जब राम है तथा अंतर बाहर परोक्ष अपरोक्ष सर्व राम ही है तब तूने अकार्थ आपको दास माना है। भुशुंडने यह वचन सुनकर मनमें विचारा और खोजा कि, जो कुछ मैंने पूर्ण रामविषे अहंकार कर आपको माना है सो मैं नहीं क्योंकि, मानना केवल मनका मनन है, जैसे-स्वप्नमें स्वप्नद्रष्टासे जो कुछ पृथक् मानना है सो भ्रम है, जैसे-स्वर्णसे पृथक् कुछ भूषणोंकी सत्ता मानना है सो केवल भ्रम है। इससे जब सर्व राम है तो मैं जुदा कहाँ हूँ मैं भी राम हूँ। ऐसे विचार कर कहा--हे गरुड ! मुझहीको राम कहते हैं एक अद्वितीय राममें दासस्वामीभाव मानना केवल भूल है। गरुडने कहा--अभी विष्णुको जाकर कहूँ कि,

काकभुशुंड तेरी आज्ञासे बाहर हुआ है, "कहता है मैं विष्णु हूँ"। काकभुशुंडने कहा--जो मैंने कहा है उसमें फर्क नहीं, जैसे--घटाकाश यह कथन चिंतन करे कि, मैं महाकाश स्वरूप हूँ, तो ठीक ही है।

हंस

पुनः हंस आया और कहा--"शुद्ध चैतन्य मैं ब्रह्म स्वरूप हूँ" भुशुंडने कहा-हे गरुड! देख यह क्या कहता है कि, मैं ब्रह्म हूँ; जो मैंने कहा--कि, मैं विष्णुरूप हूँ तो क्या भय है? अचिंत्य आपसे आप विष्णु है। गरुडने कहा--जो मैं प्रभुके सम्मुख हंसको लेके कहूँ कि, यह हंस कहता है मैं ब्रह्म हूँ तो तू साक्षी कैसे देवेगा? भुशुंडने कहा--यह कहूँगा हे विष्णु! तूने मुझ चैतन्यसे प्रकाश पाया है।

मयूर

पुनः मयूर आया और कहा--"सर्व जगत् विषे प्रकाश मेरा है, मैं स्वयं प्रकाशमान हूँ"। भुशुंडने कहा--हे मयूर! ऐसे मत कह, सर्व रामरूप है। मयूरने कहा-राम तेरा किस ठौरमें है? भुशुंडने कहा--राम सर्व ठौरमें है। गरुडने कहा--जो राम एक ठौरमें है तो तूने उसमें त्रिपुटी किया। आत्मामें द्रष्टा दृश्य दर्शन तीनों नहीं। मोरने कहा हे गरुड! तुझको अपने स्वरूपकी अप्राप्ति है जब सर्व राम है तो त्रिपुटी भी राम है; जैसे--स्वप्नकी त्रिपुटी स्वप्न द्रष्टा रूप है। भुशुंडने कहा--हे मयूर! राम एक है कि, दो? मयूरने कहा-हे बुद्धिखोये! जब सर्व राम है तो एक और दो क्या?

कुलंग

पुनः कुलंगने आकर कहा--हे मयूर! जब तक तू त्रिगुणरूप प्रणवको नहीं त्यागता तबतक तुझको सुख न

होगा क्योंकि, आत्मा प्रणवसे परे है। मयूरने कहा--जो विचार रहित हैं सो ग्रहण त्यागकी इच्छा करते हैं, जैसे-मृगतृष्णाके जलको न जानके ही जलपानकी इच्छा करता है । हे कुलंग ! कल्पितके अधिष्ठानके ज्ञाता पुरुष कल्पित पदार्थोंमें ग्रहण त्याग बुद्धि नहीं करते. क्योंकि, जो मूलसे कुछ है ही नहीं तो किस वस्तुका ग्रहण त्याग करिये । हे कुलंग ! जो मैं ही हूँ तो ग्रहण त्याग मुझमें अविद्यासे है प्रणव मुझ चैतन्यकर सिद्ध होता है इसीसे दृश्य है। इससे रसना प्रणवका जप करो वा न करो मुझ चैतन्यको हानि लाभ नहीं। हे कुलंग ! जब तू स्वरूपको जानेगा तब तेरा ग्रहण त्यागका भ्रम दूर होगा; विचार कर देख। वक्ता श्रोतादिक आप ही है ! सारसने कहा-- हे मयूर ! तुझको आत्म बोधकी अप्राप्ति न होती तो तुझको कैसे भासती कि, कुलंगने कहा है ? हंसने कहा-हे सारस ! तू भी आत्म बोधसे अप्राप्त न होता तो इनको आत्म बोधसे रहित क्यों कहता ? सारस तूष्णीं हुआ । गरुडने कहा--हे हंस ! तू कह तूने स्वरूप देखा (जाना) है कि, नहीं ? देखा नाम जाना है तो भी कह और न जाना है तो भी कह। हंसने कहा--हे अंध ! प्रगट तुझको स्वरूप ज्ञान नहीं क्योंकि, अपना आत्म स्वरूप जानने न जाननेसे परे है न जानना रूप अज्ञान और जानना वृत्ति ज्ञान भी माया रूप है वा मायाका कार्य रूप है। आत्मा, माया और मायाके विकारसे परे नाम भिन्न है; जानना न जानना आत्मामें कैसे होवे ? जानना न जानना दूसरेमें होता है । आत्मा तो जानने वाले जीवका तथा जानना न जानना बुद्धि रूप वृत्तिका आत्मा स्वरूप है। स्वरूपमें जानना न जानना नहीं होता जुदेमें होता है। आत्मासे पृथक् सर्व ज्ञान अज्ञानादिक कल्पित

अनात्मा प्रगट है। कल्पित पदार्थ अधिष्ठानको विकार नहीं कर सकते, जैसे निद्रारूप अविद्याका स्वप्नद्रष्टा चैतन्यकी सहायता कर रचा जो ज्ञान अज्ञानादि स्वप्न प्रपंच; सो स्वप्नद्रष्टाको स्पर्श नहीं कर सकता है। हे मूर्ख ! देखना नाम जानना न जानना कहना मात्र है। सर्व सत् चित् आनंद स्वरूप आत्मा मैं ही हूँ कहो मुझसे पृथक् कौन है ? जो मुझको देखे वा न देखे क्योंकि, देखना न देखना नाम जानना न जानना त्रिपुटी विना होता नहीं, जब त्रिपुटी भी मैं चैतन्य ही हूँ, तो जानने न जानने योग्य भी मैं ही हूँ और जानने न जाननेके अयोग्य भी मैं ही चैतन्य हूँ। भिन्न भी तथा अभिन्न भी मैं ही हूँ और सर्वसे असंग भी हूँ, जैसे-स्वप्नद्रष्टा ही सर्व स्वप्न सृष्टिरूप होता है और असंग निर्विकार सर्व स्वप्न सृष्टिसे अगोचर भी है। अविद्याकर किसी वस्तुकी जब जाननेकी चाहना करता है तब तिस वस्तुको प्रथम स्थानापन्न करता है, पीछे दृष्टि जानने वास्ते उत्पन्न होती है पुनः पीछे तिस वस्तुको देखा है। जहां एककी भी समाई नहीं तहां, तीन कैसे होवेंगी किन्तु नहीं होवेंगी। गरुडने कहा-वचन मेरा सुन। हंसने कहा--कान (श्रोत्र) नहीं रखता पर कानों विना सुनता हूँ, कहो। गरुडने कहा-रसना नहीं पर कहता हूँ। गरुडने कहा--मैं चैतन्य आत्मा ही जब सब हूँ तो तू मैं जगत् त्रिपुटी रूप भी मैं हूँ। हंसने कहा-जब मैं आत्मा हूँ तो तीनों नहीं; द्वैत अद्वैत मुक्त हूँ, द्वैत अद्वैत कहना मात्र है। दोनों तूष्णीं हुए। कुलंगने कहा--हे मयूर ! कुछ मुझको उपदेश कर। मयूरने कहा-- ऐसा उपदेश करता हूँ कि, तू न रहै। कुलंगने कहा--जब मैं न रहा तब तीनों लोक न रहेंगे।

मयूरने कहा--सभी मेरा सत् वचन सुनो। सबोंने कहा--हमारे विषे कहना सुनना दोनों नहीं पर कहो।

मयूरने कहा–कुछ नहीं कहता हुआ भी सर्व कहता हूँ। सबोंने कहा--उपदेश उपदेष्टा उपदेशके योग्य यह सर्व त्रिपुटी स्वप्न भ्रममात्र है। मयूरने कहा--सबको निर्वाण उपदेश करता हूँ। सबोंने कहा--हमारे स्वरूपमें वाण निर्वाण दोनों नहीं स्वयंरूप हूँ। सबने कहा--नमस्कार हमारी हमको है यह तीन लोक चैतन्यरूप हमको ही नमस्कार करते हैं तथा उपासना करते हैं। सर्वके कर्ता भी चैतन्य रूप हम ही हैं और सर्वके भोक्ता भी हम ही हैं। दिन रात्रि देवता मनुष्य यह सर्व दर्शन चैतन्यरूप हमारा ही है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सूर्य, चन्द्रमा, यम, कुबेरादिकोंने चैतन्यरूप हमारसे ही प्रकाश पाया है। पराशरने कहा--हे मैत्रेय! सन्तोंका यही नमस्कार है कि, सर्व रूप हम ही हैं।

चकवी चकवा

इतनेमें चकवी चकवा आये और कहा--कि, यह दृश्यमान क्षेत्र है सो नाशी है और मैं चैतन्य क्षेत्रज्ञ अदृश्यमान हुआ सत् हूँ। सबने कहा--तू कहां है? हम ही हैं।

कचने कहा–हे पिता! वह सन्त कैसे थे जो ऐसा नमस्कार करते थे? बृहस्पतिने कहा–हे पुत्र! जो उन सन्तोंने कहा--सो सत् ही कहा है, क्योंकि चैतन्य ही सर्वको उपास्य है तथा सर्व कर्ता भोक्तादिके चैतन्य ही है तिससे पृथक् सर्व मायामात्र है। हे कच! कारण ही कार्यका भोक्ता, कर्ता, उपास्यादिक होता है कार्य कारणका नहीं। सो चैतन्य ही सर्व नामरूप दृश्यका कारण है वे आपको चैतन्य दृष्टि लेकर कहते थे उनकी शरीर दृष्टि न थी। उन्होंने जो कहा था "हे चकवा! तू क्षेत्रज्ञ नहीं हम ही हैं" सो क्षेत्रको उठाकर कहा था क्योंकि

क्षेत्रके अभावसे क्षेत्रज्ञ कहां है ? जैसे--दण्डके अभावसे दण्डी कहां है ? कोई क्षेत्रज्ञके अभाव कहनेमें उनका तात्पर्य नहीं किन्तु, क्षेत्रज्ञ क्षेत्र शरीरसे है स्वरूपमें नहीं बन सकता है ।

हे पुत्र ! सुन । चकवा कहने लगा--कहनेमें तो नहीं आता पर सुनो । हे सन्तो ! यह सर्व विकाररूप चकवी है और मैं चैतन्य विकारका द्रष्टा होनेसे निर्विकार हूँ । यह चकवी प्रकृति है, मै पुरुष हूँ । सब ठाट जगत्‌का इसके मिलापसे है और मैं अक्रिय सर्वव्यापी सत् चित् आनन्द ब्रह्मरूप हूँ । जब मै चकवीरूप प्रकृतिको अपने विषे लीन करता हूँ तब प्रकृतिका कार्य जगत् नाश होता है और मैं अद्वितीय सदा आपसे आप रहता हूँ क्योंकि, मैं निराश्रय हूँ और सब मुझ चैतन्यके आश्रय हैं । जैसे--स्वप्नद्रष्टा आप किसीके आश्रय नहीं स्वयं है, स्वप्नप्रपंच स्वप्नद्रष्टाके आश्रय है तुम कहो प्रकृति रखते हो वा नहीं ? सब पक्षियोंने कहा--हे चकवा ! जो तू चैतन्य है तो प्रकृति कहां है ? जो प्रकृति है तो तू कहां ! क्योंकि, पद एक है प्रकृति कहो वा पुरुष कहो । चकवेने कहा-एकता विषे वचन नहीं चलता इसीसे प्रकृतिको संग लिया है । सबने कहा--तू आत्मासे जुदा रहा है अबतक दृष्टि मायामें राखता है । चकवेने कहा--सत् है, मैं आत्मासे भिन्न रहा हूँ, क्योंकि, आत्माको मिलना भ्रमसे है मुझ आवाङ्मनसगोचर विषे पावना मिलना जुदा होना न होना है नहीं । तुम सबोंने आत्मा पाया है तुमको लज्जा नहीं आती ? आत्मा तो अपना स्वरूप है भ्रम विना अपने स्वरूपका पावना मिलना जुदा नहीं होता जैसे--भूषणोंको तथा घटको तथा पटको सुवर्ण, मृत्तिका, तन्तुका पावना मिलना जुदा होना नहीं होता । यह वचन सुनकर सब तूष्णीं हुए ।

चकवेने कहा--तुम मेरे शिष्य होओ। सबने कहा--जहाँ आत्माका पावना जुदा होना नहीं तहां गुरु शिष्य कहां हैं ? चकवेने कहा--जो कुछ वचन मनमें आता है सो कर्म सहित सर्व नामरूप प्रपंचका प्रगट करनेवाला मैं चैतन्य हूँ अपनी की हुई वस्तुसे क्या मुझको बंध है ? जैसे--इंद्रजालीको अपनी मायाकर रचे पदार्थ बद्ध नहीं करते, जैसे--नट अपनी विद्याकर अनेक स्वांग करता हुआ भी तिन स्वांगोंमें बद्ध नहीं होता किंतु, अपनेको नटत्व भाव ही जानता है; सर्व अपने स्वांगको मिथ्या जानता है। हंसने कहा-जिस पदमें वचन नहीं तिस पदमें तू कहां है ? तू चकवेपनेको और मैं हंसपनेको त्याग तब पीछे वचन करैं। चकवेने कहा-तू निश्चय कर कि; मैं हंस नहीं हूँ जब हंस नहीं तब चकवा आपसे आप न रहा। आप मुये जगत् प्रलय होता है। हे हंस ! यह सर्व दर्शन मुझ चैतन्यका है; मैं किसीका दर्शन नहीं स्वयंप्रकाशक हूँ। हंसने कहा--तुझको इस वचनसे लज्जा नहीं आती जो सर्व दर्शन तेरा हुआ तो तू भिन्न कैसे हुआ ? जैसे राजा कहे सर्व दर्शन मेरा है तो क्या राजा दर्शनसे भिन्न है। चकवेने कहा--हे हंस ! ऐसे नहीं; जैसे सुवर्ण कहे यह सर्व भूषण दर्शन मेरा है तो द्वैतापत्ति दोष नहीं, जब सर्व मैं चैतन्य हूँ तो कहनेसे क्या हानि है ? कहना और लज्जा भी मैं हूँ अहंकारसे बंध होता है, देहाभिमान रहित मोक्ष है; परन्तु बन्ध मोक्षादि केवल मनका मनन है मैं प्रत्यक् चैतन्य निर्विकार हूँ। सारसने कहा-हे चकवा ! जब तेरे में बन्ध मोक्षरूप जगत नहीं, तो तूने बंध मोक्ष कल्पना कैसे की ? जैसे-आकाश असंग निर्विकार है, तिसको विचार संगकी कल्पना भ्रम विना नहीं होती। चकवेने कहा--मैं चैतन्य अद्वितीय हूँ, सर्वकल्पनासे रहित

हूँ परन्तु जैसे-नेत्ररोगसे आकाशमें दो चंद्रमा भान होते हैं; तैसे तुझ जीवको अविद्यादोषसे मुझ चैतन्य अधिष्ठान निर्विकल्पमें बंध मोक्षादि प्रपंच प्रतीत होता है। जैसे स्वप्ननरोंने स्वप्नद्रष्टामें बंध मोक्षकी कल्पनाकी है परंतु स्वप्नद्रष्टा निर्विकार है हे सारस! सोया पुरुष जाग्रत् पुरुषके हाल नहीं जान सकता। सारसने कहा--जो तू अद्वितीय है तो प्रश्न उत्तर किससे करता है? चकवेने कहा--प्रश्न उत्तरादि सर्व व्यवहार कल्पितमायासे करता हुआ सद्वितीय भी वास्तवसे अकर्ता अद्वितीय हूँ जैसे--निद्रारूप अविद्यासे अनेक प्रकारका स्वप्नप्रपंच प्रतीत होते भी स्वप्नद्रष्टा वास्तवसे अद्वितीय है।

मयूरने कहा--यह सर्व प्रकाश मेरा है, जैसे--सर्वकिरणें सूर्यकी हैं। लोगोंको नेत्रदोषसे किरण लाल, सुफेद, नीली प्रतीत होती हैं परन्तु सूर्यको अपना रूप ही भान होता है। तैसे न चकवा न सारस न मयूर एक मैं ही अद्वितीय हूँ। हे सभा! अहं त्वंका त्याग करो और निज स्वरूपको भजो मुक्ति आनंदको पावोगे। सबने कहा--हमारे प्रत्यक् चैतन्य स्वरूपमें ग्रहण त्याग है नहीं हम आप ही आनंद स्वरूप हैं, हमारे बन्ध मोक्ष है नहीं, बन्ध मोक्ष केवल कहना मात्र है वास्तवसे नहीं. क्योंकि आत्मामें बन्ध हो तो मोक्ष भी होवे। स्थिर अस्थिर रूप भी हम ही हैं और स्थिर अस्थिरसे रहित भी हम ही हैं आश्चर्य रूप हमारा है। मन वाणीके गोचर अगोचरसे रहित भी हम ही हैं ऐसे चिंतन करते हुए सब तूष्णीं हो गये कुछ बल न रहा जो वचन करें। सारांश यह कि द्वैतके फुरनेसे रहित होगये।

कोकिला

कुछ काल पीछे कोकिला आई और कहा--हे सभा! तुमने जाना है तूष्णीं होना मुक्ति है और वचन करना

बंध है, परन्तु यह नहीं तूर्णीं और वचन दोनों अहंकार हैं। कुलंगने कहा—हे कोकिला ! जानना न जानना तथा अहंकार अनहंकारको त्याग। जो तुझको समस्वरूप आत्माकी प्राप्ति होवे, तूर्णीं वचनादि सर्व संघातके धर्मोंका साक्षी निज स्वरूपमें माया और मायाके कार्य तूर्णीं और वचनादि सर्व व्यवहार कल्पित होनेसे सम हैं। अपरोक्ष आत्मा स्वरूपको ज्ञातावत्, ज्ञाता संत चाहे तूर्णीं होवें चाहे वचन करैं। हे कोकिला ! अहंकार, जो तूने कल्पा है तिसका रूप कह। कोकिलाने कहा—अहंकारका रूप यही है कि, मनकी एकाग्रतामें वा तूर्णींमें सुख मानना और मनकी विक्षेपतामें वा वचन करनेमें आपमें दुःख मानना। विना अनात्म अहंकार अनात्मधर्म अपनेमें मानने होते नहीं और पूर्व जो तूने कहा है कि, अहंकारको त्याग, सो हे कुलंग ! मुझ अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे भिन्न कुछ नहीं जिसका मैं ग्रहण त्याग करूँ; जैसे—पंचभूतोंसे भूतोंका कार्य भिन्न नहीं; इसीसे पंचभूतोंको अपने कार्यमें ग्रहण त्याग नहीं। मयूरने कहा--हे कोकिला ! तू कौन है ? कोकिलाने कहा--तू कौन जिसकर यह अंतर मन बाणीका कथन चिंतन अपरोक्ष जाना जाता है वही मैं हूँ, यह सब दर्शन मेरा है मुझ विषे दर्शन नहीं। सब तूर्णीं हुए।

कोकिलाने कहा--सबोंका गुरु मैं हूँ। हंसने कहा--तेरे विषे गुरु शिष्य कहां हैं ? कोकिलाने कहा--जो सर्व मैं हूँ तो गुरु शिष्य भी मैं हूँ; मुझ चैतन्यसे क्या भिन्न है। मयूरने कहा--मैं शिष्य तेरा होता हूँ पर पहले तेरा नाश करूँगा। कोकिलाने कहा--तुझ सहित सर्व नामरूप दृश्य मुझ सच्चिदानंद अधिष्ठान प्रत्यक् आत्माके शिष्य हैं पूर्व तुम दृश्यरूप शिष्यने मुझ अधिष्ठानका नाश न किया तो

अब कैसे करेगा ? जैसे--स्वप्नसृष्टि सर्व स्वप्नद्रष्टाके शिष्य हैं ! सारांश यह कि, कल्पित पदार्थोंका अधिष्ठान ही गुरु (आश्रम) होता है रज्जुसर्पवत् । हे मयूर ! यह सर्व कौतुक मेरा है, मैं चैतन्य कौतुकी किसीका कौतुक नहीं, जैसे मायारूप इन्द्रजाल, मायावी इन्द्रजालीका कौतुक नाम लीला है इन्द्रजाली किसीका लीला नहीं, हंसने कहा--मैं चैतन्य विना वाक् और कान वाणी वचन कहता सुनता हूँ विना पांव हाथ चलता लेता देता हूँ, विना नेत्र नासिकासे देखता सूँघता हूँ, विना त्वचा रसना स्पर्श रस लेता हूँ, विना मन, बुद्धि, चित्त अहंकारके संकल्प, विकल्प, निश्चय, चिन्तन; अहंपना करता हूँ जैसे--स्वप्नद्रष्टा स्वप्नमें विना इंद्रियोंके व्यवहार शब्दादिकोंका प्रकाश करता है यह बात प्रसिद्ध है कि, अंतर दश प्रकारके शब्दको अनुभव करता है सो विना कानों सुनता है तैसे ही अंतर जो चैतन्यपदार्थ सर्व मनादिकोंके न्यूनाधिक व्यवहारको अनुभव करता है सो विना इंद्रियोंके ही करता है इससे मैं चैतन्य आत्मा स्वप्रकाश रूप हूँ ।

प्राणवायु

कोकिलाने कहा--यह प्राणरूपी पवन ही स्वप्रकाश है। सारसने कहा--निर्बुद्धिके समान मत कह, प्राणरूपी वायु जड़ है तथा आकाशका कार्य है सुषुप्तिमें इसका अभाव हो जाता है तथा न उष्ण न शीत स्पर्शवाला है चैतन्यका दृश्य है। इसीसे परप्रकाश है और आत्मा पूर्वोक्त प्राणोंरूप वायुके विशेषणोंसे रहित है इससे स्वयंप्रकाश रूप है, जो प्राणरूप वायु चैतन्य होवे तो सोया पुरुषका धन तस्कर ले जाते हैं और प्राण ज्योंके त्यों चल रहे हैं क्यों नहीं चोरोंको वर्जित करते ? हे कोकिला ! "पवन स्वप्रकाश है" इससे कथन चिंतनको जिसने

जाना सो स्वप्रकाश है । कोकिलाने कहा--सो अनुभव पवन ही करता है सबने कहा--तेरा कहा नहीं मानते । कोकिलाने कहा--मैं एक अद्वितीय हूँ । मुझ विना कौन है जो वचन मेरा माने, " पवन ही स्वयं है " । मयूरने कहा--तुरीयामें पवन कहां है ? हे कोकिला ! सर्व शास्त्रोंमें पञ्चभूत कहा है और पञ्चभूतोंका कारण माया कहा है तथा पंचभूतोंमें ही वायु है । जो पवन स्वप्रकाश होवे तो भूत चार कहना चाहिये इससे जो सर्वका साक्षी है सोई स्वप्रकाश है । कोकिलाने कहा- सर्वका साक्षी प्राण है । सबने कहा--वचन तेरा अयोग्य है । कोकिलाने कहा--योग्य अयोग्य सब पवन है । मयूरने कहा--सत् कभी असत् नहीं होता असत् कभी सत् नहीं होता । कोकिलाने कहा--यह सत् असत् भी पवन है मैं माया अनंत शक्ति रखती हूँ, सत्को असत् और असत्को सत् कर सकती हूँ । सभी कहो यह सर्व नाम रूप पवन है । मयूरने कहा--जो कहना मात्र है तिसका क्या प्रमाण है ? हंसने कहा--ब्रह्मा कहता है पवन परप्रकाश है, जड चेतनका क्या संयोग है ? कोकिलाने कहा--ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत सब जड चैतन्य नामरूप पवनहीसे प्रगट है ।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! कोकिला आपको कभी मायारूप कहती थी, कभी प्राणकर अज्ञानरूप कहती थी और आत्माको अवाङ्मनसगोचर कहती थी क्योंकि मायारूप द्वैत विना अवाच्य पदमें कहना बनता नहीं, जो कथन चिंतन करेंगे सो माया ही है अवाच्य पदमें कथन चिंतन है नहीं ।

जलकुक्कुट

बृहस्पतिने कहा--हे कच ! पुनः जलकुक्कुट आया और कहा-जब ईश्वर सर्व जगत्को अपनेमें लीन करता है

तब पवनरूप अज्ञान कहां है ? कोकिलाने कहा--ईश्वरता जगत्की लीनतादि व्यवहार पवनरूप अज्ञानकर ही होता है आत्मा अवाच्यपद है। हे सभा! जितना तुम कथन चिंतन करोगे सो पवनरूप मायामात्र है। माया अंगीकार करे बिना अवाच्यपदका कभी कथन चिंतन नहीं होगा। सब तूष्णीं हुए।

गरुडने कहा--ब्रह्मविषे माया कहां है ? कोकिलाने कहा--माया विना अवाच्यपदका ब्रह्म नाम किसने रक्खा है ? गरुडने कहा--हे भुशुण्ड ! तुमने हजारों वर्षोंसे भक्ति तप किया है कोकिलाको उत्तर देओ। भुशुण्डने कहा--असन्तोंकी सभामें आया हूँ, बुद्धि नहीं रही, बुद्धि बिना कहा जाता नहीं इससे क्या कहूँ।

मैत्रेयने कहा--हे गुरु ! भुशुंडने असंत सभा क्यों कही ? हे मैत्रेय ! सन्तनाम श्रेष्ठका है जहां श्रेष्ठता है वहां अश्रेष्ठता भी है इससे सापेक्षक श्रेष्ठ अश्रेष्ठसे रहित जो पद है सो असंत कहिये अथवा नहीं है श्रेष्ठता परे जिसके तिसके अपरोक्ष निष्ठावान् जिस जगहमें स्थित होवें तिसका नाम असंत सभा है।

सबने कहा--हे कोकिला ! मायारूप वायुकर ही सर्व कथन चिंतन बन सकता है और जिसका कथन चिंतन करता है सो भी माया रूपवान् है तिस कथन चिंतनका विषय भी माया तत्कार्य रूप पवन है। कथन चिंतन भी मायारूप है। परन्तु यह सर्व त्रिपुटीरूप माया तत्कार्य रूप पवन, चैतन्य, आत्माकी त्रिपुटी दृश्य होनेसे परप्रकाश है चैतन्य आत्मा ही स्वयं प्रकाश है। कोकिलाने कहा--मैं तुम्हारा निश्चय ही देखती थी कोई पवनको स्वप्रकाश कहनेका मेरा तात्पर्य नहीं किंतु, आत्मवस्तु ही स्वप्रकाश है दृश्य परप्रकाश ही है, जैसे--निद्रारूप अविद्याकर ही

सर्व स्वप्नप्रपंच तथा स्वप्नप्रपंचका व्यवहार है तथा वायु आदित्य भी स्वप्न में हैं परंतु स्वप्नद्रष्टाकर प्रकाशित हैं; इसीसे पर प्रकाश हैं स्वप्नद्रष्टा ही स्वप्रकाश है ।

तिस समय ब्रह्मा, अपने मरीच्यादि पुत्रोंसहित आकाश मार्गमें किसी कार्यके वास्ते चले जाते थे पक्षियोंका अपनी बोलीमें आत्मनिरूपण सुनने लगे ।

हंसने कहा–ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत सब प्रकाश मुझ चैतन्यका है । गरुडने कहा–मुझ अवाच्यपद आत्मामें प्रकाश्य प्रकाशक भाव दोनों नहीं, ब्रह्मादिक सर्व दृश्यका उपास्य मैं ही हूँ ।

कुलङ्गने कहा--उपास्य उपासकभाव द्वैतमें होता है मैं अद्वैत हूँ । ब्रह्मा सुनकर हँसा और मरीच्यादिकोंको कहा--कि तुम आपको बडा मानते हो पर आत्मविचार नहीं राखते, जो आत्मविचाररूपी परम धर्मवान् है वही बडा है अन्य नहीं है । ब्रह्माने कहा–हे पक्षियो ! तुम धन्य हो जो देहाभिमान त्यागकर अपने निर्विकार स्वरूपमें स्थित हुए हो । सबोंने कहा-हे ब्रह्मा तुम्हारे विषे समता न देखी क्योंकि सबको तुमने ही उत्पन्न किया है भला बुरा क्यों कहते हो ? सर्वरूप आत्मा ही जब संसाररूप मठीमें स्थित है तो भला बुरा कौन है ? ब्रह्माने कहा--जब सर्वात्मा है तो भला बुरा भी आत्मा है । हे कुलंग ! जैसे पिता पुत्रोंको उत्पन्न करता है और वही गुणोंके अनुसार भला बुरा भी कहता है ।

प्रणव

पुनः ब्रह्माने कहा--हे कुलंग ! तू कौन है ? कुलंगने कहा--आत्मा हूँ । जिससे ब्रह्मा विष्णु शिवादिक दृश्य सर्व प्रगट हुआ है, क्योंकि सर्व सृष्टि प्रणवरूप है । अकार

उकार मकार क्रमसे स्थूल सूक्ष्म कारण प्रपंचरूप है तथा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिरूप है तथा विराट् हिरण्यगर्भ ईश्वररूप है। तथा विश्व तैजस प्राज्ञरूप है तथा भूर्भुवः स्वः त्रिलोकी रूप है इन्द्रिय विषय देवतारूप है। तथा ऋक् यजुः सामरूप है तथा सत्त्व, रज तमरूप है। तात्पर्य यह कि, सर्व जगत् प्रणवरूप है। माया यह मन शरीरादिक संघात-रूप है और मैं नित्य चैतन्यरूप आत्मा इस मन शरीरादि संघातका द्रष्टा निर्विकार निर्विकल्प आप अपनी महिमामें स्थित हूँ। हंसने कहा–नमस्कार मेरी मुझको है। कुलंगने मुझको त्रिगुण मायारूप प्रपंचसे अतीत जाना है इसकी उपासना सफल हुई है, तीन गुण भी कहने मात्र हैं, नहीं तो मैं चैतन्य ही हूँ। कुलंगने कहा–हे गरुड! जो तू विष्णुसे आत्मनिरूपण सुना है सो कह। गरुडने कहा--सर्व विष्णु है। मयूरने कहा–विष्णु नाम तूने प्रगट किया है नहीं तो विष्णु कहाँ है तू ही है जो सर्व विष्णु होता तो सर्व चतुर्भुज होते।

ब्रह्मा सबके यथार्थ वाक्य सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। सबने कहा--हे ब्रह्मा! पवन स्वप्रकाश है कि, परप्रकाश है? ब्रह्माने कहा--प्राणरूप पवनमें तुमने स्वप्रकाशता और परप्रकाशता सिद्ध किया है इससे तुम हीं स्वप्रकाश हो वायु नहीं। कोकिला प्राणरूप उपाधिके लिये बोलती है परंतु प्राण उपहित चैतन्य आत्माको स्वप्रकाश कहनेका इसका तात्पर्य है। जैसे--बत्तीरूप उपाधिके लिये ही दीपककी स्वप्रकाशता कही जाती है पर जब वस्तु विचार करें तो दीपकमें ही स्वप्रकाशता है बत्तमें नहीं क्योंकि प्राण और बुद्धि आत्माकी मुख्य उपाधि हैं। प्राण बुद्धिकी तथा आत्माकी किंचित् उपचारक समानता भी घटती है जैसे--आत्मा शरीरमें व्यापक है तैसे बुद्धि

और प्राण भी शरीरमें व्यापक हैं । जैसे--आत्मा चैतन्य विना शरीर स्थित नहीं होता तैसे प्राण बुद्धिसे । विना भी शरीर स्थित नहीं होता तथा आत्मा भी शरीरके अंतर है और प्राण बुद्धि भी अन्तर हैं इत्यादि अनेक तरहकी समता शास्त्रमें लिखी है । हे कोकिला ! उपाधि उपहितरूप कभी भी नहीं होती । कोकिलाने दोनों हाथ उठाकर पुकारा--हे ब्रह्मा ! आज तूने समता त्यागी और विषमताग्रहण की, क्योंकि मुझे निर्विकार निरुपाधि चैतन्य स्वरूपमें तूने उपाधि खडी की। ब्रह्माने कहा--क्रोध मत कर । विचार प्राण कैसे स्वप्रकाश हैं ? कोकिलाने कहा--प्राण न होवे तो तुम बोलो कैसे ? ब्रह्माने कहा--प्राण इंद्रिय पंचभूत आत्मासे उत्पन्न हुए हैं उत्पत्तिमान पदार्थ स्वप्रकाश नहीं होते कोकिलाने कहा--मूल और शाखामें क्या भेद है ? प्राण जिससे उत्पन्न हुए हैं वही रूप है। इसके भी प्राण स्वयंप्रकाश है। ब्रह्माने कहा--प्राणोंकी स्थिति होनेसे शरीर स्थित है, शरीरसे ही नित्य स्वयंप्रकाश होता है; पर शरीर प्राण कर्म उपासना ज्ञान स्वप्नके समान कथन मात्र है, स्वप्नद्रष्टाके समान मैं ब्रह्मरूप आत्मा ही नित्य स्वयंप्रकाश अक्रियरूप हूँ । कोकिला ने कहा--जो तू अक्रिय है तो रूप अपना कह ! ब्रह्माने कहा--अज्ञानीको कहना योग्य नहीं, जो समुझै नहीं और ज्ञानीको भी कहना व्यर्थ नहीं, सो कृतकृत्य है ऐसे मुमुक्षुको कहना योग्य है। हे कोकिला ! ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत जो सर्व जीवोंके हृदयविषेमनादकोंका साक्षिरूप करके नित्य चैतन्य स्थित है, सोई मेरा स्वरूप है । कोकिलाने कहा--यह तो सभीका स्वरूप है । ब्रह्माने कहा -जो सभीका स्वरूप है सोई मेरा स्वरूप है और जो मेरा स्वरूप है सोई सभीका

है इसमें संशय नहीं। कोकिलाने कहा--जब तू ही है तो 'स्वरूप किसीने जाना, किसीने न जाना, यह व्यवहार त्रिपुटी विना नहीं होता । ब्रह्माने कहा--जब सर्व मैं हूँ तो त्रिपुटी भी मैं हूँ। ब्रह्मा उठ खड़ा हुआ और कहा, यह उत्तर तुमको विष्णु देवेगा। तब सर्व संत वहां बैठे ही बैठे विष्णुकी स्तुति करने लगे; चतुर्भुज विष्णु की मूर्ति सहित सर्व जगत् हमारे स्वरूप चैतन्य आत्मासे ही प्रकाशमान है, उत्पत्तिवान् है तथा हमारे स्वरूप चैतन्य आत्माकी सत्तास्फूर्तिकर ही इस जगत्की स्फूर्ति है. स्वतः नहीं; जैसे स्वप्नद्रष्टाकर ही सब स्वप्नकी स्फूर्ति होती है और हमारे स्वरूपमें आवागमन नहीं । कोकिलाने कहा--हे विष्णु ! मैं तेरा आवाहन करती हूँ जिसमें तू, मैं, आवाहन तीनों नहीं और तीनों रूप हैं।

हंसने कहा--मेरा आवाहन सुन । न कोई द्वेषी, न प्रीतम, न गमनागमन, न सुख, न दुःख न हेय न उपादेय, न बंध न मोक्षादि, केवल मैं एक चैतन्य आत्मा ही विष्णु हूँ नमस्कार मेरी मुझको है । कुलङ्गने कहा-ब्रह्मा विष्णु रुद्रादि सर्व मुझ चेतन्य आत्मा की उपासना करते हैं उपासना आवाहन अपना आप ही करता हूँ। इतनेमें ही विष्णु आये और कहा--हे पक्षियो ! तुम कौन हो ? कोकिलाने कहा--मैं चैतन्य स्वप्रकाशतुमसहितसर्वका साक्षी आत्मस्वरूप हूँ। हे विष्णु ! तुमको लज्जा नहीं आई जो मायाका कार्य पंचभूतरूप यह शरीर मनादि संघात तो जड है और आत्मा बचनसे अगोचर है कौन तुमको उत्तर देवे कि, यह है । विष्णुने कहा—तुम्हारा क्या प्रश्न है ? कोकिलाने कहा-आप उत्तर पूर्व दे चुके हो तो पूछा "तुम कौन हो ?" जब तुमको अपने स्वरूपकी अप्राप्ति है जो तुमसे क्या पूछें ? शिवलोक विषे जाते हैं।

सुना था विष्णु वेदान्त देशमें हैं पर देखा वेदान्त कहां है ? केवल भ्रम है। विष्णुने कहा-मैं ईश्वर हूँ वेदांत और अवेदांत मुझ चैतन्य आत्मामें दोनों नहीं । पर प्रश्न कहो ? सबने कहा-पवन स्वप्रकाश है कि, परप्रकाश है ? विष्णुने कहा-पवनको स्वप्रकाश और परप्रकाश सिद्ध करनेवाला स्वप्रकाश है क्योंकि प्राण चलते हैं वा नहीं । चलते इत्यादि प्राणोंके व्यवहारको सिद्ध करनेवाला ही स्वयं है अन्य नहीं । सत्को असत् और असत्को सत् कैसे कहें । कोकिलाने कहा-सर्वका सिद्धकर्ता पवन है । विष्णुने कहा-हे कोकिला ! सुषुप्ति मूर्च्छामें पवन तो है पर जो पवन चैतन्य होवे तो सुषुप्ति मूर्च्छादिक वा अन्य कोई शरीरादिक संघातका व्यवहार बतलावे सो कुछ संघातका व्यवहार नहीं बतलाता और न अपना इससे पवन जड है । कोकिलाने कहा--चेतन विभाग पवनमें नहीं । हे विष्णु ! तेरी कल्पना है, पवन तो अखंड है । विष्णुने कहा-जीव मेरा अंश है । कोकिलाने कहा-आप खंड अखंडको क्यों करता है ? अंश अंशीभाव अनित्य होता है। जैसे-जैसे पिता पुत्र अंश अंशीभाव है, इसीसे अनित्य है। हां ! महाकाशका घटाकाश अंश है, चिनगारा अग्निका अंश है अर्थात् वही रूप है । विष्णुने कहा-हे कोकिला ! तेरा रूप क्या है ? कोकिलाने कहा-मैं रूप अरूपते रहित हूँ और सर्व रूप अरूप मैं ही हूँ। विष्णुने कहा-जब पञ्चभूत नाश होते हैं तब पवन कहां है ? पुरुष में पवन नहीं। कोकिलाने कहा--पुरुष चिदाभास किससे प्रकाश रखता है ? विष्णुने कहा-मुझ पुरुषोत्तम चैतन्यसे। कोकिलाने कहा--तू किससे प्रकाश रखता है ? विष्णुने कहा-स्वयं हूँ। कोकिलाने कहा--असत् मत कह, यह आपसे आप ही पवन ईश कथन चिंतनको सिद्ध करे है

इससे पवन स्वयंप्रकाश है। तब ब्रह्मा विष्णु सहित सर्व विलासपूर्वक शिवलोकमें शिवके पास गये। सबने कहा--हमारे रूपको हमारा नमस्कार है शिवने कहा--न तुम सब और न मैं, केवल शिव हूँ वा सर्व मैं ही हूँ। सब तूष्णीं हुए। शिवने कहा--हे रूप! मेरे यह क्या कौतुक है सबने कहा--आप मङ्गलरूप हो और अपक्षपात हो, कोकिला पवनको स्वप्रकाश कहती है और हम कहते हैं स्वप्रकाश हमारा स्वरूप चैतन्य है सो आप कहो स्वप्रकाश कौन है? शिवने कहा–प्रथम तुम आपसमें प्रश्न उत्तर करो, पीछे मैं उत्तर दूंगा।

हंसने कहा--यह दर्शन अदर्शन. रूप अरूप मेरा है और मैं सर्व दर्शनादिकोंसे रहित हूँ जैसे–स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्न रूप भी है और रहित भी है। इससे मुझ चैतन्यकी आश्चर्य महिमा है। कुलंगने कहा--आश्चर्य होना न आश्चर्य होना सर्व रूप आपको जानना, असर्वरूप जानना, वा सव असर्वसे अतीत जानना व आपको सत् चित आनन्द जानना, वा असत् जड दुःख रूप जानना तथा पवनको स्वप्रकाश मानना, अन्यको परप्रकाश मानना, तथा आत्मा ब्रह्मको स्वप्रकाश साक्षी मानना, अन्य दृश्यको परप्रकाश मानना, अहं त्वं परोक्ष अपरोक्ष मानना इत्यादि मनकी मानिन्दी है; जो है सो अवाच्य पद है जो मनकी सर्व मानिन्दीसे परे है सोई अवाङ्मनसगोचर तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का तथा ब्रह्मा विष्णु, शिव आदिकोंका स्वरूप है तिसको अपना आत्मस्वरूप जानो।

शिव ब्रह्मा विष्णु आदिक यह अमृतरूप वचन सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। शिव बोले–हे कोकिला! तू धन्य है, निश्चय चाहिये तो पुरुषको तुझ जैसा ही दृढ चाहिये झूँठ

भी सच कर दिखलाया जो गुरु शास्त्र अपने अनुभव विचारसे जो निश्चय हुआ है सोई सत् है तिससे परे सत्का निर्णायक कोई नहीं इससे पुरुषको सत् निश्चयता त्याग कदाचित् भी न करना चाहिये। हे कोकिला ! तू पक्षपातसे रहित होकर विचार देख पवन तुझ चैतन्यसे प्रगट हुआ है, तू चैतन्य किसी पवनादिकोंसे प्रगट नहीं हुआ। इससे तू ही चैतन्य स्वयंप्रकाश है अन्य नहीं। अपने स्वरूप ऊपर पवनको स्वप्रकाश क्यों राखता है लज्जा तुझको नहीं आती ? कोकिलाने कहा-अस्ति भाति प्रिय सब ब्रह्मरूप आत्मा है सोई स्व रूप है, इससे घट भी विधिपक्षमें स्वयंप्रकाश है, पट भी स्वयंप्रकाश है, तृण भी स्वयंप्रकाश रूप है, जब नामरूप भी अस्ति भाति प्रियरूप कर स्वयं प्रकाश रूप है तो पवन क्या स्वप्रकाश रूप नहीं ? किन्तु स्वयं प्रकाश रूप ही है, क्योंकि, अस्ति भाति प्रियरूप ब्रह्मात्मा ही स्वयंप्रकाश है और पवनादिक अस्ति भाति प्रियरूप हैं पृथक् नहीं, जो पृथक् होवे तो परप्रकाश होवे। इससे पवन भी स्वप्रकाशरूप है। इस दृष्टिको लिये मैं पवनको स्वप्रकाश कहती थी. पवनको आत्मासे भिन्नकर स्वयंप्रकाश नहीं कहती थी। यह कह कर कोकिला तूष्णीं हुई।

पराशरने कहा-हे मैत्रेय ! इतनी कथा कहकर पुनः बृहस्पतिने कहा-हे पुत्र ! निश्चय जो चाहिये ऐसाही दृढ चाहिये, निश्चय विना जो कहता है सुनता है चिंतन करता है सो सब अकार्थ है। कहता है "मैं द्रष्टा सर्व दृश्यका हूँ तथा निर्विकार बंध मोक्षसे रहित हूँ, मुझको किंचितमात्र भी निवृत्ति और मोक्षकी प्राप्ति वास्ते कर्तव्य नहीं, मैं चैतन्य निष्कर्तव्य निर्विकल्प हूँ" पर इस कथन चिंतनपर दृढ निश्चय नहीं तो व्यर्थ है, तिनसे अपने स्वरूप-

अमृतको नहीं पान किया क्योंकि स्वभावसे बंध मोक्षसे रहित जब आपको मनशरीरादिक संघात तथा संघातके धर्मोंसे जुदा सम्यक् जानता है तब बंधकी निवृत्ति मोक्षकी प्राप्तिवास्ते सर्वका यत्न है, तिस यत्नसे रहित हुआ ही शांत होता है. अन्यथा नहीं। हे कच ! तू आपसहित सर्व शिवरूप जान कचने कहा-हे पिता ! दृढनिश्चय होना न होना सर्वरूप जानना तथा न जानना यह अन्तःकरणका धर्म है और मैं चैतन्य निश्चय अनिश्चयका प्रकाशक अवाङ्मनसगोचर हूँ, बुद्धिका धर्म निश्चय अनिश्चय मुझको स्पर्श नहीं कर सकता । बृहस्पतिने कहा-हे पुत्र ! सर्व इन्द्रियोंके व्यवहार होते वा न होत, सर्वकलिपत नामरूप संसारका अधिष्ठान होनेपर भी अवाङ्मनसगोचर संसारसे अपने प्रत्यक् आत्माको अवाङ्मनसगोचर सम्यक् जाननाही ज्ञान निश्चय है, यही परमभक्ति है। हे पुत्र ! शरीर नाश हो तो भी अपना सत् निश्चय न त्यागना और पिता पुत्रका अहंकार भी त्याग। तू चैतन्य आत्मा है, न तू किसीका पुत्र है, न किसीका पिता है। यह संसार भ्रम मात्र है, जैसे-स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नप्रपंचरूप भी तिसमें अगोचर ही है स्वप्नवत् । पिता पुत्रादि रूपभी तू ही है । हे पुत्र ! तेरा स्वरूप आत्मा स्वतःसिद्ध सुख दुःखरूप बंध मोक्षसे रहित निर्विकार, निर्विकल्प है, आकाशके समान तुझे चैतन्य सर्वके साक्षीको बन्ध मोक्षवास्ते किंचित् मात्र भी कर्तव्य नहीं, जैसे-स्वप्नद्रष्टा चैतन्यको स्वप्नप्रपंचकी बन्ध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते किंचित् भी यत्न नहीं (भ्रम विना) जैसे-किसीके कण्ठमें माला है और भ्रमसे खोई जानता है और आपको दुःखी मानता है उसकी प्राप्तिवास्ते यत्न करता है, परन्तु माला खोई जन्य दुःखकी

निवृत्तिवास्ते और मालाकी प्राप्तिवास्ते, किंचित्मात्र भी श्रम विना कर्तव्य नहीं।

कचने कहा--हे पिता ! जो तुम कहो सो मैं करूँ बृहस्पतिने कहा—हे पुत्र ! आप सहित सर्वको आत्मस्वरूप सम्यक् जानना वा आपको पंचकोशरूप त्रिपुटी सहित शरीरका तथा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति आदि सर्व प्रपंचका साक्षी जानना वा साक्षी असाक्षी भाव छोड़ने केवल आपको अवाच्यपद सम्यक् जानना । वा न तू है न मैं हूँ, न जगत् केवल चैतन्य स्वयंप्रकाश मैं आत्मा हूँ यही परम तप है । वा इस तपका साधनभूत अन्नमयादिकोशोंका तथा आत्मा अन्वय व्यतिरेक युक्ति करके, जाग्रतादि अवस्थासे आत्माको भिन्न जानना, साधनरूप इस विचाररूपी तपको जब सम्यक् करोगे तब पूर्वोक्त परम तपरूप फलको पावोगे । इस विचाररूपी तपके शम दम वेदाध्ययनादि अनेक साधन हैं यही मेरा उपदेश यथार्थ जान और मनमें राख । पूर्ण तप अपने स्वरूपका पहिचानना है । जब देहाभिमान परिच्छिन्न दूर हुआ पीछे जो शेष है सो अवाच्यपद है । वही अपना रूप है हे पुत्र ! बध मोक्षरूपकालका भयरूप तप मनसे दूर हो जाना इस सम्यक् अधिष्ठान ज्ञानका नाम परमतप है । हे कच ! त्वं पदनामजीवपनेका अभ्यास तथा तत्पदेनामईश्वरपनेका अभ्यास त्याग और जहां जीवत्व ईश्वरत्वादि संज्ञा नहीं ऐसे असिपद,ब्रह्मरूप चैतन्य अवाच्यपद आत्मा आपको जान । जैसे-जीव ईश्वर स्वप्नद्रष्टा चैतन्यमें समाप्त होते हैं; जैसे-घटाकाश, मठाकाश, आकाश मात्रमें संज्ञा नहीं । कचने कहा-- हे पिता ! संत कहते हैं बुद्बुदा नदीरूप नहीं हो सकता, जल कहें तो बनता है, तुम

कहते हो अपने बुद्बुदेरूप जीवत्वको त्याग ब्रह्मरूप समुद्र हो। बृहस्पतिने कहा हे पुत्र। इन स्वप्नकी बातोंमें तू स्वप्नद्रष्टा बंध मत हो। क्योंकि, त्वं पद, तत् पद और असिपद, केवल मनका मनन तुझ चैतन्यसे पृथक् कथन मात्र है। जैसे-नदी, तालाव, समुद्र जलसे भिन्न कथन मात्र हैं ! जैसे--स्वप्नका जीव ईश्वर ब्रह्म स्वप्नद्रष्टा चैतन्यसे पृथक् कहने मात्र है ! हे पुत्र। तुझ चैतन्य लालकी जीव. ईश्वर, ब्रह्म, दमकां हैं। तू चैतन्य अपनी महिमामें आप स्थित है। कचने कहा--हे पिता जो यह तीनों कुछ नहीं तो जीव, ईश्वर, ब्रह्म भेद संतोंने क्यों कहा है ? बृहस्पतिने कहा हे पुत्र ! स्वप्नके संतोंने स्वप्नमें जीव ईश्वर ब्रह्मकी कथा कही तो तुझ स्वप्नद्रष्टा चैतन्यकी क्या हानि है जो न कही तो क्या लाभ, है ? न लाभ है, न हानि है। हे पुत्र ! जीव ईश्वर ब्रह्मादिक शब्दका अर्थ तुझ अनंत चिद्, सत् रूप आत्मामें ही घटता है इससे तू ही जीव ईश्वर ब्रह्म है अन्य नहीं। हे पुत्र ! संतोंने जो कल्पना तत् त्वम् असि पदकी की है सो जीवोंके कल्याणवास्ते की है इनके विचारसे निज स्वरूपको पाता है। कचने कहा -हे पिता ! एक ही चैतन्यके तीन भेद देखकर संतोंने कहा है कि, सुनकर। बृहस्पतिने कहा -हे पुत्र। सबने सुनकर कहा है क्योंकि आपसे भिन्न कौन है ? जो एक और दो कहे। कहना चिन्तन करना मन वाणीका कर्म है। देखना सुन-नादि श्रोत्र नेत्रादि इंद्रियोंका कर्म है। तू चैतन्य स्वरूप आत्मा मन आदि सर्व इंद्रियोंसे अगोचर है। तुझ चैत-न्यको कौन देखे तथा कौन सुने। कचने कहा--तुम्हारे वचनसे आश्चर्यवान् हुआ हूँ, जो कुछ संतोंने कहा सो

निर्बीज निकला, तिस स्वप्नके सत्संगते क्या लाभ है ? बृहस्पतिने कहा-हे पुत्र ! संतोंमें असंभावना मत कर। संसार समुद्रसे तरनेको सत्संग नौका है । सत्संगसे आत्म विचार होता है । जब विचारकर आत्मस्वरूप सम्यक् अपरोक्ष जाना तब सत्संग कहां है ? हे पुत्र ! वास्तवसे तो ऐसे हैं जैसे-स्वप्नके ही गुरु शास्त्र संत हैं तिनका संग भी स्वप्नका ही है, मुमुक्षु बोध लेनेवाला तथा बोधसे पूर्व अज्ञान और अज्ञान जन्मबंध तथा बंध मोक्ष स्वप्नका ही है सारांश यह कि, अपने सच्चिदानंद स्वरूप आत्मासे जो कुछ पृथक् प्रतीत होता है सो स्वप्न नाम मायामात्र मिथ्या है भ्रम है । हे पुत्र ! भ्रमरूप स्वप्नसे जाग्रत हो । कचने कहा-हे पिता ! कथा उन पक्षियोंकी कहो, जो अमृत समान है । बृहस्पतिने कहा-तू निश्चय नहीं करता कथा क्या कहूँ ? कचने कहा-तुम्हारे संगसे मेरी बुद्धि नहीं रही निश्चय कौन करे । परन्तु तुम्हारे संगसे मुझको यह अनुभव हुआ है सो सुनो, "मैं चैतन्यरूप ब्रह्मात्मा, निरुपाधि, अक्रिय, असंग हूं । शरीरका धर्म बाल, युवा, वृद्धादि तथा शरीरसे असंग तिनका द्रष्टा हूँ मेरे स्वरूपमें न दिन है, न रात्रि है; उदय अस्तसे रहित हूँ। न हेय है, न उपादेय है, न जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति है। न मैं स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर हूँ।" तात्पर्य यह कि; कार्य कारण संघातरूप जगत् मैं नहीं मैं मन आदिक जगत्का द्रष्टा हूँ। अस्ति भाति प्रियरूप द्रष्टा दर्शन दृश्य रूप मैं चैतन्य ही हूँ तथा द्रष्टा दर्शन दृश्यसे परे भी मैं चैतन्य ही हूँ अवाङ्मनसगोचर भी मैं ही चैतन्य हूँ और वाङ्मनसगोचर भी मैं चैतन्य ही हूँ। मुझ चैतन्यकी महिमा अवाच्यपद है, वाणीसे क्या कहूँ ? पर ब्रह्म यज्ञ कहो, मैं कानों विना सुनता हूँ, तुम वाणी विना कहो।

बृहस्पतिने कहा मेरे संगने तुझको फल दिया जो आपा अहंकार तूने विचाररूप अग्निसे जलाया और आप हुआ। अब ब्रह्मयज्ञ सुनो।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय! बृहस्पति कहने लगा कि. हे पुत्र! सब पक्षी एक भाषा कहने लगे कि हमारा स्वरूप है सो न ग्रहण किया जाता है न त्याग किया जाता है। बन्ध, मोक्ष, ज्ञान, अज्ञान, माया, अमाया हमारे स्वरूपमें नहीं और सर्व हम ही हैं। कुलंगने कहा--जो कुछ तुम कथन चिंतन करते हो सो मेरा स्वरूप नहीं तिससे मैं चैतन्य अतीत हूँ, जो तुम कथन चिंतन करते हो सो सब उपाधि है। सबने कहा--उपाधि, अन उपाधि, धनी, दरिद्री, पाप, पुण्य, हम ही हैं और इनसे रहित भी हम ही हैं। दिन, रात्रि, क्रिया अक्रिया, कर्ता, अकर्ता, भोक्ता, अभोक्ता, योग, अयोग सब हमही हैं। भूत भविष्यत् वर्तमान जो कुछ है सो सब हम ही हैं और सर्वसे अतीत भी हम ही हैं; जैसे--स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्न प्रपंचरूप भी है और तिस स्वप्न जगत् से अतीत भी है तैसे अस्ति, भाति, प्रियरूप, सर्व हमही हैं; सर्व नाम रूप कल्पितका अधिष्ठान साक्षी द्रष्टा होनेसे सर्वसे अतीत है। कोकिलाने कहा--तुम सब वायुमें धरे घट शब्दके समान शब्द करते हो. क्योंकि,जो पूर्ण है सो क्या कहे? सबोंने कहा हे कोकिला! जो संतने कहा है सो क्या पूर्ण नहीं? कोकिलाने कहा--कहना, चिंतन करना द्वैतमें होता है संत पद अवाच्य है। संत अनिच्छित हैं, चाहना नहीं राखते तो क्या कहें, कहना चाहनामें है। सबने कहा--आप्तकाम वचन करता है कि नहीं? कुलंगने कहा--सम्यक् अपने ब्रह्मरूप आत्माके अपरोक्ष ज्ञाता पुरुष पर शास्त्रकी विधि नहीं वचन करे वा न करे तिसका द्रष्टा कोई अन्य नहीं; आप स्वयं है।

मयूरने कहा--ब्रह्मा, विष्णु, शिव यह आप्तकाम हैं इसीसे श्रेष्ठ हैं। कुलंगने कहा--हे साधो! सर्वथा विचारें तो मन आदिकोंका साक्षी चैतन्य आत्मा ही आप्तकाम है. क्योंकि, आप्तकाम होना और अनाप्तकाम होना सब मनके स्वभाव हैं, तिनका साक्षी आत्मा निर्विकार निर्विकल्प है तिसमें आप्तकाम अनाप्तकामादि नहीं। शरीरमें भी आप्तकामता तथा अनाप्तकामता नहीं। क्योंकि, जड विकारी है। इस कारण चाहना अचाहना मनविषे हैं और मन असत् है। इससे तिसका कर्तव्य भी असत् है। जब तक शरीर है तब तक सर्व रीतिसे आप्त काम नहीं हो सकता चाहे ब्रह्मा विष्णु शिवादिक होवें। देहधारी किसी काममें तो आप्तकाम होता है और किसीमे तो अनाप्तकाम होता है, यह सर्वके अनुभव सिद्ध है। इस हेतु मनके धर्म आप्त अनाप्त कामोंका साक्षी आत्माही सर्व रूपसे आप्तकाम है। शिवने कहा--हे कुलंग! माता पिता तेरे कौन हैं! कुलंगने कहा--मैं चैतन्य आप ही पिता माता पुत्र रूप हूँ तिनसे रहित भी हूँ। सर्व नाम रूप दृश्य रूपी पुत्रका पिता नाम कारण चैतन्य ही हूँ, मेरा पिता नाम कारण कोई नहीं, स्वयं हूँ जैसे--स्वप्न द्रष्टा ही स्वप्नके निद्रारूप अविद्या कारण माता पिता पुत्र रूप आप ही है, निद्रारूप अविद्यासे रहित तिनसे अतीत भी है तथा सर्व स्वप्न प्रपंचका पिता नाम रूप कारण भी आप ही है, तिसका पिता नाम कारण और कोई नहीं। शिवने कहा--तेरा गुरु कौन है? कुलंगने कहा--मैं चैतन्य गुरु शिष्य भावसे रहित सर्व दृश्य जडका गुरु नाम शासन करने वाला हूँ; तथा नियामक हूँ। गुरु शिष्य भी मैं चैतन्य ही हूँ; स्वप्नवत् हे शिव! यह सब दर्शन मेरा है मैं ही चैतन्य अदर्शन नाम स्वयं प्रकाश

स्वरूप भी हूँ । शिवने कहा--जाति तेरी क्या है ? कुलंगने कहा--अजाति हूँ, जाति उपाधि है तथा मलीन ह, मैं चैतन्य निरुपाधि हूँ तथा माया तत्कार्य रूपी मलसे रहित हूँ हे शिव ! तेरा वचन केवल कथन मात्र है, मैं अवाच्यपद हूँ ।

शिवने विष्णुसे कहा--कुलंग क्या कहता है ? विष्णुने कहा-यह सबका मूल उखाडता है क्योंकि आदि हम तीनों देवतोंको उठाता है पीछे दृश्यको, इससे इसका वचन सुनना योग्य नहीं । शिवने कहा--क्या भय है ? हम चैतन्य इसके आत्मा हैं, अपने आत्माको कोई उखाड़ नहीं सकता । नामरूप दृश्यको तुम भी उठाते नाम असत् कहते हो आत्माको सत् कहते हो सोई बात यह कहता है । धन्य है जो सम्यक् स्वरूपको जानता है मैं सर्व त्रिलोकीको ग्रास (महा प्रलयमें) करता हूँ पर जिसको अहंकार रहित सम्यक् निजबोध हुआ है सो मुझको ग्रास कर लेता है । हे विष्णु ! इसी पर एक कथा सुनो ।

राजा भरतकी कथा

एक समय भरत राजा (जिसके नामसे यह भरतखंड नाम पड़ा है सो) राज्य छोड़कर वनको गया । वहां देखा कितनेक तपस्वी शरीर इन्द्रियोंको कष्ट देना रूप तपमें आरूढ हैं, कितनेक ध्यानमें लगे हैं एक और संत देखा जो आत्म विचारमें है और शिष्योंको उपदेश करता है । कि, न तू, न मैं, न यह जगत्, एक चैतन्य आत्मा ही है । राजाने निकट जाकर हाथ जोडकर कहा कि, हे विद्वन् ! मुझको भी आत्म उपदेश करो ? इस असार संसारसे मुझको वैराग्य हुआ है तुम्हारी शरण आया हूँ । सन्तने कहा--ज्ञान उपदेश यही है कि, हूँ मैं अहं-

कारको त्याग, अर्थात् "न मैं हूँ न यह जगत् है, एक चैतन्य विष्णु ही है" ऐसा जान। राजाने विचारा जो सन्त कहते हैं सो सत् है पर जब सर्व विष्णु व्यापक चैतन्य है तो मैं कौन हूँ, अथवा मैं विष्णु ही हूँ। पुनः विचारा कि, विष्णुको मैंने जाना है मैं जाननेवाला कौन हूँ? पुनः राजाने सन्तको कहा- हे विद्वान् पुरुष! विष्णु शिवको जाननवाला मैं कौन हूँ। सन्तने कहा- तू ब्रह्म है। यह वचन सुनकर विचारा कि, जैसे--मैंने विष्णुको जाना था तैसे ब्रह्मको जाना, पर आपको नहीं जाना कि, मैं कौन हूँ। सन्तने कहा--हे भरत! तत्त्वम् असिपद अर्थात् जीव, ईश्वर, ब्रह्म, तुझ चैतन्य आत्मासे ही सिद्ध होते हैं, जो तू चैतन्य आत्मा न होवे तो इनको कौन जाने। परन्तु तुझ चैतन्य आत्माका कोई सिद्ध करनेवाला नहीं; तू स्वयंप्रकाश स्वरूप है। क्योंकि, तुझ चैतन्य आत्मा सर्वके द्रष्टाका और कोई द्रष्टा है नहीं, इसीसे तू स्वयंप्रकाश है। हे भरत! जो कुछ जीव, ईश्वर, ब्रह्म, जगत्, तत्कारण अज्ञान, मन वाणीका कथन चिंतन है तिससे तू चैतन्य आत्मा अलग ही निकलेगा, इसीसे तू मन वाणीका अगोचर है। जीव, ईश्वर, ब्रह्म सब शेष हैं; तू चैतन्य मात्र निर्विशेष है, जैसे--घटाकाश मठाकाश, महाकाश, निर्विशेष; (निरुपाधिक) आकाश मात्रसे ही सब शेष सिद्ध होते हैं, क्योंकि सविशेष नाम घट उपाधिवाला है इससे तू विज्ञानको प्राप्त हुआ है, चुप हो। भरतने कहा--तूष्णीं अतूष्णीं आदि सर्व व्यवहार मन वाणी शरीर आदि संघातका है, मुझ चैतन्यका नहीं। सन्तने कहा--तूष्णीं नाम निर्विकल्पका है, सो तू चैतन्य आत्मासे स्वतः सिद्ध ही निर्विकल्प है क्योंकि, मनादिकोंकी निर्विकल्पता और सविकल्पताका साक्षी

द्रष्टा है, इससे अपने आत्माको स्वाभाविक निर्विकल्प जानना इसीका नाम तूष्णीं है। भरत यह संतका वाक्य सुनकर स्वरूपमें लीन हुआ।

शिवने कहा-हे विष्णु! काल पायकर धर्मराजने दूतको भेजा। भरतको ले आओ। धर्मराजकी आज्ञासे जाकर दूतने देखा तो भरत नाम मात्र भी नहीं, अन्तर बाहर केवल शिव हैं। सारांश यह कि, "मैं भरत हूँ इस परिच्छिन्न अहंकारसे रहित अस्ति भाति प्रियरूप मैं चैतन्य आत्मा हूँ सर्व मनादिक दृश्यसे रहित और मन आदिक सर्व दृश्यका द्रष्टा, अवाङ्मनसगोचर स्वप्रकाशरूप हूँ" यह तिसका दृढ निश्चय था। अवाङ्मनसगोचर निश्चय भी मन, वाणीका कथन चिंतन रूप ही है सो मैं नहीं, जो मैं सोई हूँ, कथन चिंतन क्या करूं! दूत देखकर आश्चर्यमें हो रहा कि, मैं किस वस्तुको शरीरसे निकालकर धर्मराजके पास ले जाऊं। पुनः धर्मराजके निकट गया और कहा-हे धर्मराज! तू सब सन्तोंको मार, जो लोकोंको हमारे हाथसे आत्म उपदेश करके छुडा देते हैं क्योंकि तेरी आज्ञासे जब हम भरतके निकट गये उसके देह अभिमानको सर्व रूपकर खोजा पर न पाया। देहाभिमान बिना ल्यावें किसको? हे धर्मराज! तेरी फांसमें देहाभिमानी ही पड़ता है अन्य नहीं। तात्पर्य यह कि, इस पांचभौतिक संघातको अहं अभिमान करनेसे ही यह जीव स्वर्ग नरकको जाता है अन्य नहीं कि; जो दूसरेकी वस्तुमें स्वत्व करता है यह जगत्‌में प्रगट है न्यायपूर्वक जेलखानेमें जाता है। हे विष्णु! मैं विचरता हुआ भरतके पास गया, सूक्ष्म दृष्टिसे देखा तो यही कथन चिंतन करता था सर्व मैं चैतन्य ही हूँ और सर्वसे अतीत भी हूँ, पर यह भी कथन चिंतन मन वाणीका मैं चैतन्य

इनसे भी अतीत हूँ, पुनः इस अतीतपनेसे भी अतीत हूँ। मैंने कहा–हे भरत ! तू धन्य है जो स्वरूपसे जुडा है। भरतने कहा–जुडना न जुडना मुझ चैतन्यमें नहीं, यह मायामात्र दृश्यमें है। मैंने कहा जब सर्व तू ही चैतन्य है तो दृश्य अदृश्य जुडना अजुडनादि भी तू ही है। भरत तूर्ष्णीं हुआ (तूर्ष्णीं नाम निर्विकल्प अवस्थामें प्राप्त होनेका है) पुनः मैंने दो तीन बार प्रश्न किया कि, हे भरत ! तू कौन है ? उत्तर कुछ न दिया क्योंकि तिस कालमें परिच्छिन्न भरत भाव नहीं था किंचित् काल पीछे बोला बडा आश्चर्य है कि है आप शिव और पूछता है तू कौन है ? हे शिव ! भरतको ज्ञानरूपी कालने खाया और कालको मैं चैतन्य स्वयंरूपने खाया क्योंकि भरत नाम अज्ञानका है और अज्ञानको ज्ञान नाश करता है सो ज्ञान मुझ चैतन्य अधिष्ठानमें लीन हो जाता है जैसे–रज्जुके अज्ञानको रज्जुका ज्ञान नाश करता है और वृत्तिरूप ज्ञान भी मायाका कार्य होनेसे कल्पित रज्जुसर्पवत् है। इससे सो ज्ञान भी ज्ञानस्वरूप चैतन्य अधिष्ठानरूप है। मैंने कहा–हे भरत ! मैं तेरे पास आया हूँ कुछ आत्मनिरूपण कह। भरतने कहा–निकट दूर मुझ चैतन्यमें नहीं। अवाच्यपदको क्या कहूँ ? और मुझसे भिन्न कौन है जो कहूँ स्वयंरूप हूँ।

जीव दुःखी होनेका कारण

शिवने कहा–हे विष्णु जिस किस योनिमें स्थित हुआ यह बुद्धि आदिकोंका साक्षी चैतन्य आत्मा निर्विकार निर्विकल्प बंध मोक्षादि संसार धर्मोंसे रहित ही स्थित है परंतु जबतक अपनी अद्भुत महिमाको नहीं जानता, तब तक (संसारी भ्रमकर) आपको दुःखी मानता है। जब

पूर्व पुण्योंके प्रतापसे सत्संगद्वारा अपने स्वरूपको सम्यक् अपरोक्ष जानता है; तिस तिस योनि-शरीरके अभिमानसे रहित होकर तथा सर्व विश्वका आत्मा होकर बंधमोक्षादि सर्व संसार धर्मोंसे मुक्त होता है, तिसको कौन नाश करे? विष्णुने यह इतिहास सुनकर कहा--हे शिव! मैं सर्व जगत् की पालना करता हूँ तू सर्व जगत्का संहार करता है, ब्रह्मा सर्व जगत्की उत्पत्ति करता है, पर जो आप्तकाम सम्यक् अपने आत्माका ब्रह्मरूपकर अपरोक्ष बोधवान् है सो जगत्सहित हम तीनों देवतोंका पालन है अर्थात् अपनी सत् चित् आनंदस्वरूप स्फूर्तिकर सर्व असत् जड दुःख रूप दृश्यको स्फुरना करता है नाम सत् चित् सुखरूप प्रतीत होता है, जैसे--स्वप्नद्रष्टा अपने स्वरूप प्रकाशकर अप्रकाश स्वप्न प्रपंचको प्रकाशमान करता है। इसीपर एक कथा सुन।

एक राजपुत्रकी कथा

विष्णुने कहा—हे शिव! एक राजा था और एक ही तिसका पुत्र था सो बालपनमें मेरी उपासना करता था। बैठते उठते खाते पीते सोते जागते सर्व कालमें विष्णु विष्णु कहता रहता था और राजविद्यादि कुछ सीखता नहीं था। पिताने कहा--हे पुत्र! जब मैं शरीर त्यागूंगा तब राज्य कौन करेगा? सर्व कालमें विष्णु विष्णु कहने और भूतके समान तिसके पीछे दौड़नेमें क्या लाभ है? जो कोई किसीका नाम ले वारंवार बुलाते हैं वह क्रोध करता है। तिसका तू दिन रात्रि नाम लेता है क्या वह क्रोध न करेगा? किन्तु करेगा ही। हे पुत्र! विष्णु शब्द जो वाचक है सो किस नामी वाच्य अर्थका वाचक है, यह तुझको विचार करना चाहिये। विष्णु सत्, चित्, आनंद, व्यापक वस्तुका है, सोई बुद्धि

आदिकोंका साक्षी आत्मा तेरा स्वरूप है। सो अपने ऐसे स्वरूपकी प्राप्तिवास्ते जंगलमें जाना और आत्म विचार विना और उपाय करना, पुनः पुनः अपना नाम लेना लज्जाका काम है। हे पुत्र ! विष्णु तेरा आत्मा है, जो तू विष्णुको अपने आत्मासे पृथक् जानेगा तो विष्णु अनात्मा सिद्ध होगा, तो तेरी भक्तिका लक्षण सिद्ध न होगा, इस प्रकार विद्वान् पिताने अनेक रीति कही पर पुत्र वैसेका वैसाही रहा कछुक काल पायकर तिसका पिता कालवश हुआ। पीछे शत्रुओंने राज्य ले लिया. पर राजाके पुत्रको कुछ हर्ष शोक नहीं हुआ, मेरे स्मरणमें ही उन्मत्त रहा। हे शिव ! मैं तिसके पास गया और कहा--हे पुत्र ! तू राज्य कर और प्रजाके पालनका बंदोबस्त मैं करूँगा। उसने कहा-मैं--तेरी भी चाहना नहीं रखता तो राज्यकी क्या बात है, तुझसे विशेष क्या वस्तु है, जो तुझको त्यागकर उसको लूँ ? राज्य सहित त्रिलोकीको मैंने तृणसमान जाना है। उसकी तो यह अवस्था हुई वनोंविषे विचरने और आप सहित सर्व विष्णु ही कथन चिंतन करने लगा।

ज्ञान तथा उपासनादिका स्वरूप और फल

कचने कहा--हे पिता ! आप सहित सर्व विष्णु आत्मा चैतन्य ही है यही ज्ञान है। बृहस्पतिने कहा--हे पुत्र ! "आप सहित सर्व विष्णु आत्मा ही मेरा स्वरूप है" यही अर्थ सम्यक् बुद्धिमें जच जानेका नाम ज्ञान है। यह पूर्वोक्त अर्थ बुद्धिमें नहीं जचता और विष्णु शिवादिकोंको अपने आत्मासे पृथक् मानके तिसका नाम और स्वरूप कथन चिंतन करनेका नाम भेद उपासना (भक्ति) है। आपसहित सर्व विष्णु ही है, वहि ब्रह्म है वासुदेव है इत्यादि तिनको अपनेसे अभेद संभावना करके परमा-

त्माकी सर्व रूपताका जो निरंतर कथन चिंतन है सो अभेद उपासना भक्ति कहाती है। मैं चैतन्य ब्रह्मरूप आत्मा अस्ति भाति प्रिय सर्वरूप भी हूँ और असर्वरूप भी हूँ, सब जगत्की मैं चैतन्य आत्मा ही उत्पत्ति पालन संहार करता हूँ तथा निर्विकार असंग हूँ सारांश यह कि, त्रिपुटीरूप भी मैं हूँ, त्रिपुटीसे रहित भी मैं हूँ अवाङ्मनसगोचर भी मैं हूँ वाङ्मनसगोचर भी मैं ही हूँ। वाङ्मनसगोचर अवाङ्मनसगोचर शब्दमे अतीत भी हूँ, तिस अतीतशब्दसे भी अतीत हूँ इत्यादि अर्थ अपरोक्ष सम्यक् अंत करणमें जच जानेका नाम ज्ञान है। इसी अर्थकी अपने स्वरूपमें संभावना करनेका नाम अहंग्रह उपासना है और तत्त्वदर्शी अभेद उपासना कहते हैं। हे पुत्र! जब अहंग्रह उपासनाके निरंतर चिंतन करते हुए ज्ञान नहीं प्राप्त हो तो अत्यन्त अश्वमेधादि यज्ञोंका फलरूप, वा अहंग्रह उपासना फलस्वरूप वा अत्यंत पुण्योंका फलरूप जो ब्रह्मलोक सप्तमी व्याहृति है तिसको प्राप्त होता है। तहां अनन्त ब्रह्माकी आयुपर्यंत भोगोंको भोगकर, ब्रह्माके उपदेशसे वा सत्त्वगुणकी तहां प्रधानता होनसे स्वतः ही पूर्व अहंग्रह उपासनाके प्रतापसे सम्यक् अपने स्वरूपका अपरोक्ष ज्ञान होता है। पश्चात् ब्रह्माके साथ विदेह कैवल्य मोक्षको प्राप्त होता है; तिसकी पुनरावृत्ति नहीं होती इत्यादि शास्त्रोंका लेख है। जिसको अहंग्रह उपासना करते इसी वर्त्तमान जन्ममें अपने ब्रह्मरूप आत्माका सम्यक् अपरोक्ष बोध हुआ है, सो शरीर होते ही आपको बन्ध मोक्षादि संसारसे रहित शिवरूप जानता है। जीवन्मुक्ति और विदेह मुक्ति तिसको तुल्य है क्योंकि जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति अनात्म मन शरीरादिक संघातके धर्म हैं आत्माके नहीं।

जो पूर्व जन्मोंमें कृत्य उपासक है उसको श्रवण मात्रसे वा स्वभावसे ही, श्रवण विना वा वेदांत श्रवण मात्रसे सम्यक् अपरोक्ष स्वरूपका प्रतिबंधक रहित ज्ञान होता है। हे पुत्र ! वह राजाका पुत्र रात्रिको वनमें विचरता था, तिस समय तिसी वनमें दत्त विचरते हुए स्वभावसे राजाके पुत्रके पास आये और कहा--इस समय तू कौन है ? राज पुत्रने कहा–मैं विष्णुका दास हूँ। दत्तने कहा–बड़ा आश्चर्य है वह स्वामी और तू सेवक परन्तु आपा अहंकार रूप मलिनता तेरी दूर न की, दास स्वामी भाव रूप उपाधि दूर न हुई। राज पुत्रने कहा–जब सर्व विष्णु है तो तू भी विष्णु है। मैं भी विष्णु हूँ, यह जगत् भी विष्णु है दूर समीप भी विष्णु है। पर कहो उपाधि मलिनता (नाम रूप) कैसे दूर होवे। दत्तने कहा–जब सर्व विष्णु है तो तू बीचमें कौन, है जो आपको दास माना है मानो विष्णुको तूने खंड खंड किया है। यही उपाधि मलिनता भ्रम है कि, एक अस्ति भाति प्रिय रूप विष्णु आत्मा में दास यह दास स्वामी भाव बनाना ही भ्रम है। हे राज पुत्र ! सत् चित् आनन्द रूप विष्णु तेरा रूप है, आपा अहंकारको त्यागकर देख। पीछे शेष जो अवाच्यपद है वही तेरा स्वरूप है। दास स्वामी भाव कथन चिन्तन संघातका धर्म स्वप्नवत् है। तू स्वप्न द्रष्टा चैतन्य स्वप्न व्यवहारोंमें क्यों बन्धमान होता है तथा क्यों भयमान होता है, जब विष्णुको तू अपना आत्मा सम्यक् अपरोक्ष जानेगा तो विष्णु प्रसन्न होगा. क्योंकि, विष्णुका स्वरूप यथार्थ यही है; अन्य माया मात्र है। मायाके भजन चिन्तनसे क्या लाभ है ? जो लाभ होगा तो मायाका ही होगा. क्योंकि, जैसे कोई भावना रूप उपासना करता है वैसा ही तिसका रूप होता है। मैं सत् चित् आनन्द रूप आत्मा हूँ, ऐसी दृढ निरन्तर भावना

करेगा तो वही रूप होवेगा । जो इससे पृथक् भावना करेगा तो वही रूप होवेगा । राज पुत्रने कहा-मुझको वैराग्य उत्पन्न हुआ है ज्ञान उपदेश करो ? दत्तने कहा-नाम रूपको त्याग नाम मिथ्या जान । प्रतीति मात्र ही नाम रूपका स्वरूप है; भिन्न नहीं । अपनेको नाम रूपका अधिष्ठान सत् चित् आनन्द स्वरूप जान जो कुछ नाम रूपमें सार है सो तू ही है जैसे स्वप्न प्रपंचका सार स्वप्न द्रष्टा है । जैसे-भूषणोंका सार सुवर्ण है; इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं । राज पुत्रने कहा-हे दत्त ! मैंने अपने स्वरूपको सम्यक् अपरोक्ष जाना है अर्थात् मैं मन वाणी आदि संघातका द्रष्टा मन वाणीसे अतीत हूँ और मन वाणीका विषयभूत त्रिपुटी रूप भी मैं ही हूँ, स्वप्न द्रष्टावत् । दत्तने कहा-हे राजपुत्र ! जबतक जानना न जानना तू अपने स्वरूपको जानेगा तबतक स्वरूपकी अप्राप्ति है, जब जानना न जानना तेरे स्वरूपमें न रहा तो तुझको स्वरूपकी प्राप्ति हुई. क्योंकि, तुझ अस्तिभाति प्रियरूप आत्मासे जानना न जानना भिन्न नहीं । जिसको तूने जाना और न जाना । जब तू ही है किसको जाने और किसको न जाने इतना सुन राजपुत्र स्वरूपविषे लीन हुआ ।

विष्णुने कहा-हे शिव ! मैंने अन्तर्यामी रूपसे जाना कि, दत्तने राजपुत्रोंको अपना सत् उपदेश कर सम्यक् बोधवान् किया है । तब तिस राजपुत्रके पास मैं गया और कहा-हे राजपुत्र ! इस अपने शरीरको मुझको सौंप । मैं इसकी योग क्षेम रूप पालना करूँगा राजपुत्रने कहा-हे विष्णु ! सर्व जगतकी पालना मैं चैतन्य आत्मा करता हूँ क्योंकि, तुझ विष्णु नामरूप सहित सर्व जगत् मुझ चैतन्य आत्मासे प्रकाश राखते हैं मुझ चैतन्य आत्माका प्रकाशक कोई नहीं मैं स्वयं हूँ, जैसे-स्वप्नद्रष्टा ही सर्व स्वप्न जगतकी पालना करता है स्वप्नके कल्पित पदार्थ कोई किसीकी

पालना नहीं कर सकते तैसे मैं चैतन्यही सर्व इस नामरूप मिथ्यापदार्थोंकी पालना नामस्फुर्णा करता हूँ, मैं तू मिथ्या पदार्थ कोई किसीकी पालना नहीं कर सकता । हे शिव ! मैं तिस राजपुत्रके वचन सुनकर आश्चर्यवान् हो रहा कि, इसको क्या हुआ है। दास दमन पुकारता था आप हुआ । यह कृपा दत्तकी है । मैंने पूछा रूप तेरा क्या है ? कहा-रूप मेरा तू है। मैंने कहा-मैं कौन हूँ ? कहा मैं हूँ। हे शिव ! इत्यादि अनेक वचन परस्पर कहे, पर राजपुत्रको अचल बोध हुआ था अपने स्वरूपसे न चलायमान हुआ । यह अवस्था तिसकी देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ और अपने वांछित स्थानको गया ।

बृहस्पतिने कहा-हे पुत्र ! इस प्रकार आपसमें आत्मनिरूपण कर ब्रह्मा आदिक देवता और पक्षी आप अपने वांछित स्थानको गये ।

पराशरने कहा-हे मैत्रेय ! तब कच अपने अवाच्यपद स्वरूपमें स्थित हुआ, तू भी तिसके समान हो । मैत्रेयने कहा-मैं नहीं हूँ तो तिसके समान क्या होऊँ ? जहां कुछ क्रियाकर होना है सो ठीक केवल स्वांगमात्र मिथ्या है, जो कुछ है सो आगे ही स्वतःसिद्ध है केवल जानना ही योग्य है। पराशरने कहा-तू कौन है ? मैत्रेयने कहा-मुझ चैतन्यसे भिन्न कौन है जो कहे तू अमुक है मैं अमुक हूँ। जो किसी रीतिसे मुझ चैतन्य आत्मासे भिन्न दृश्य कहोगे तो तिसको असत् जड़ दुःखरूप होनेसे अहं त्वं फुरणा नहीं और मुझ अवाङ्मनसगोचरमें भी अहं त्वं फुरणा नहीं । अब कौन कथन चिंतन करे कि, मैं अमुक हूँ ? पराशरने कहा-हे मैत्रेय ! तू स्वरूपको प्राप्त हुआ है, अपने दृढ बोधके वास्ते एक कथा सुन ।

भुशुण्ड राजाकी कथा-(ज्ञानकी दृढ़ताके हेतु)

एक समय स्वाभाविक विचरते हुए दत्त कागभुशुण्डके आश्रममें गये (कागभुशुण्ड एक राजा हुआ है जो सगुण विष्णुरूप रामका उपासक था) तिसके आसनसे बाहिर सो रहे। भुशुण्डके कुमार नामा पुत्रने दत्तको देखा और पिताको कहा--कि, एक संत नगरसे बाहर सोया पड़ा है आपको दर्शन करना योग्य है। पुत्रका वाक्य सुनकर कागभुशुण्ड अभिमानसे रहित दत्तके पास आया। देखा तो सारा शरीर धूलिकर लिप्त है, नहीं जाना जाता यह कौन है ? प्रश्न किया--हे रामरूप ! तू कौन है ? दत्त सुनकर हँसा और कहा-बड़ा आश्चर्य है, कहता है--हे रामरूप ! और पूछता है--तू कौन है ? हे कागभुशुण्ड ! जब सर्व राम है तो तू और मैं भी राम हैं। कागभुशुण्डने कहा--जब सर्व राम है तो पूछना अपूछना भी राम है। दत्तने कहा--हे कागभुशुण्ड ! तेरे समान जो वर्ण आश्रम राखता होवे तिससे पूछ तू कौन है ? कागभुशुण्डने कहा--हे दत्त ! वर्णाश्रमकी पोटका बोझ किसीने लादा नहीं है वर्णाश्रम मानना न मानना केवल मनका मनन है, जबतक शरीर है तबतक कोई न कोई वर्णाश्रममें रहेगा. क्योंकि, वर्णाश्रम शरीरके धर्म हैं, जब धर्मी है तब धर्म भी है। इन दोनों धर्म धर्मीसे रामरूप आत्मा रहित है शरीर नहीं। दत्तने कहा--हे कागभुशुण्ड ! यही तो मैं भी कहता हूँ कि, जो कुछ तूने अन्तर वा बाहर कथन चिंतन माना है सो सब मनका मनन है, तू रामरूप आत्मा इससे अतीत है। पर तुझको चाहिये एकांत बैठकर राम राम जप। कागभुशुण्डने कहा--हे दत्त ! तू आप ही कह चुका है यह सर्व नामरूप मनका मनन है तो रसना राम राम कथन करे मन तिस राम

शब्दके अर्थको चिंतन करे, पर रामरूप आत्मा इनसे परे है और उरे भी रामरूप आत्मा ही है। इससे राम वा अन्य कथन चिंतन करना न करना राम ही हुआ। पुनः भुशुण्डने कहा–हे दत्त ! नगरको चलो, दत्तने कहा–स्थूल सूक्ष्म कारण समष्टि नगरका वा स्थूल सूक्ष्म कारण व्यष्टि नगरका तथा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीनों नगरोंका तथा नगरनिवासी विश्व तैजस प्राज्ञ जीवोंका मैं चैतन्य एक ही आकाशके समान (सर्वका) आत्मा हूँ और सर्व मेरे आत्मा हैं । मैं कहां चलूँ ? चल अचल संघातका धर्म है मुझ चैतन्य आकाशका नहीं। मैं चल अचलसे अतीत सदा चल अचलका साक्षी हूँ। जो शरीरकी प्रारब्ध है, सो ईश्वरकी भी शक्ति नहीं जो बढ घट करे। हे भुशुण्ड ! देहाभिमान त्यागे पीछे अवाच्य राम ही तेरा स्वरूप है। भुशुण्डने कहा-देहाभिमानसे रामकी भक्ति होती है, कैसे त्यागूँ ? दत्तने कहा-सुना था कि, कागभुशुण्ड परमहंस है, पर देखा तो काग है. क्योंकि, स्याना काग विष्ठापर ही बैठता है माता पिताका मलरूप यह शरीर मल है शरीराभिमानी काग है। मैं शरीरादिक हूँ तथा शरीरके जन्म मरणादिक धर्म-वान् हूँ यह चिंतन ही मलका भक्षण है। हे कागभुशुण्ड ! जिस रामचंद्र अयोध्यावासीका तू भजन करता है तिसका स्वरूप चैतन्य आत्मा मैं हूँ सो मेरा ही तू भजन करता है । वास्तवसे हे भुशुण्ड ! मुझ चैतन्यके अनेक रामादिक नाम हैं। भजन रामका यही है "आप सहित जाने सर्व वही है, न और पर" यह बुद्धि तुझको कहांसे प्राप्त होवे पिता तेरा काग और माता तेरी हंसनी। तूने जाना है कि, माया मेरे निकट नहीं आती, पर मायारूप

शरीरके साथ तू एकमेक होकर मायारूप ही है; तेरे निकट माया कैसे आवे ? इसीको माया कहते हैं जो स्वामीदास भावसे रहित चैतन्यमात्रमें स्वामी दासभाव कल्पना । हे भुशुण्ड ! ज्ञानदृष्टिसे वा भक्तिदृष्टिसे देख, जब तू परिच्छिन्न कुछ बनता है तो राम भी है, जब तू नहीं शेष जो है सो अवाच्यपद है तिसका अनेक रामादि (नामीके बोधवास्ते) नाम रखते हैं । पर कह माया किसको कहते हैं ? भुशुण्डने कहा-रामरूप आत्मासे पृथक् जो कुछ जानना है सोई माया है । दत्तने कहा--इसीसे नित्य चित् सुख निजआत्मासे भिन्न तत् त्वं ब्रह्मकी प्रतीति करना माया है । भुशुण्डने कहा-हे दत्त ! संत जो यह चिंतन करते हैं "अहं ब्रह्मोस्मि" यह कैसे है ? दत्तने कहा यह चिंतन मनका मनन मायारूप है. क्योंकि, तत् त्वं ब्रह्मादिक पदोंकी इसने कल्पना की है, यह कल्पना नहीं करे तो तत् त्वं आदिक कहां हैं ? ज्ञानके प्रथम कालमें मैं ब्रह्म नहीं जीव हूँ और ज्ञान पीछे ब्रह्म हूँ; विचारकर देखें तो जीव ब्रह्मसे प्रथम ही इस साक्षी चैतन्यकी सिद्धि होती है और इस साक्षी चैतन्यने ही जीव ब्रह्मको प्रकाश किया है जो यह प्रथम सिद्ध नहीं होता तो वृत्तिरूप ज्ञानसे पूर्व अपनेमें ब्रह्मका अभावपना, जीवका सत्पना और ज्ञान पीछे अपनेमें ब्रह्मका सत्पना और जीवको अभावपनेका कैसे अनुभव होता किंतु नहीं होता। इससे मनके मननरूप सर्व पद इस साक्षी चैतन्यसे ही प्रकाश रखते हैं. क्योंकि, ज्ञान पूर्वकालमें मनने आपको जीव माना ब्रह्म नहीं माना, इस व्यवहारको भी साक्षी चैतन्यने प्रकाश किया और ज्ञान उत्तरकालमें मनन ही आपको ब्रह्म माना जीव नहीं माना, यह भी व्यवहार साक्षी चैतन्यने सिद्ध किया । विचार देखो तो

कभी जीव मानना कभी आपको ब्रह्म मानना केवल मनका मनन है। प्रत्यक् आत्मा तो सर्व मनकी कल्पनाका साक्षी और मनके मननते परे है। जैसे--स्वप्न तत्त्वम् असिपद तथा सर्व स्वप्नके पदार्थ एक स्वप्नद्रष्टासे ही सिद्ध होते हैं और स्वप्नद्रष्टा सर्वसे प्रथम सिद्ध है। सुख दुःखसे रहित यह पद विज्ञानसे प्राप्त होता है भुशुण्डने कहा-रामरूप आत्माविषे प्राप्त अप्राप्त दोनों नहीं। सब में रमण करनेवालेको राम कहते हैं, तिसमें सुख दुःख दोनों नहीं। हे दत्त ! अंतःकरणरूपी दर्पणके मलके दूर करनेके अनेक साधन हैं साधनों विना साध्य नहीं प्राप्त होता, राम सर्व साधनोंका साध्य है।

मीमांसा

तहां मीमांसा आया और कहा-कि जो वेदोक्त कर्म नहीं करेगा तो रामरूप कैसे होवेगा ? दत्तने कहा--आत्मा अक्रिय है शरीर जड है, कहा कर्म कौन करै ? कर्मोंसे राम रूप होता भी नहीं. क्योंकि जो यह राम नहीं तो हजार वेदोक्त कर्मोंके करनेसे राम कैसे होगा ? दो रामरूप आनेहीसे है भ्रमसे रूप आपको मानता है भ्रमकी निवृत्तिसे वही रूप होता है, जैसे चिनगारी भ्रमसे आपको अग्निरूप न माने तो भी भ्रमकी निवृत्तिसे वही अग्निरूप होता है। अनेक कर्म करनेसे भी अग्नि शीतलरूप नहीं होता। जल अग्निरूप नहीं होता। मीमांसा तष्णीं हुआ।

वैशेशिक

तिस समय वैशेषिक आया और कहा--सर्व जगत् कालके आधीन है। दत्तने कहा--कर्म है तो आधीनता भी है, जब कर्म नहीं तो अक्रिय अविनाशी स्वतंत्र असंग आत्मामें कालका क्या संबंध है ? वैशेषिक तूष्णीं हुआ।

न्याय

पुनःन्याय आया और कहा--जो कुछ करता है सोई ईश्वर करता है। दत्तने कहा--कर्म है तो करता भी है, जो कर्म नहीं तो करता कहां है ? दंडसे दंडी है। दण्ड नहीं तो दंडी कहां है ? यह कह न्याय तूष्णीं हुआ।

पतंजलि

पतञ्जलि आया और कहा-योगसे मुक्ति होती है। दत्तने कहा-योग स्वप्रकाश है कि, किसीका किया होता है ? पतञ्जलिने कहा-किसी कर्तासे योग होता है। दत्तने कहा-कर्ताका क्या स्वरूप है मन वा आत्मा ? पतञ्जलिने कहा-प्रत्यक् आत्मा असंग निर्विकार है। शेष जड चेतनके मध्यवर्ती साक्षी चेतनके आभास सहित अंतः-करण ही योगका करता है। आत्मा पुरुष योगका अनु-भव करता है। दत्तने कहा--अधिकारी पुरुषको अपनेको क्या जानना चाहिये आत्मा कि अंतःकरण ? पतञ्जलिने कहा-आत्मा। दत्तने कहा--आत्मामें योग है वा नहीं ? पतञ्जलिने कहा-नहीं। दत्तने कहा--फिर योगसे क्या प्रयोजन है ? पतञ्जलि तूष्णीं हुआ।

सांख्य

पुनः सांख्य आया और कहा--नित्य अनित्य विचार करे विना स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती। दत्तने कहा--नित्यका अनित्य विचार द्वैतमे होता है और मनके धर्म नित्य अनित्य विचारसे आत्मा असंग है साक्षी होनेसे। यह कह सांख्य तूष्णीं हुआ।

राम

लक्ष्मण सीतासहित राम आये। दत्तने कहा--हे भुशुण्ड ! कह मैं रामरूप हूँ नहीं तो तुझको (तथा राम तुम दोनों जीव ईश्वरको भस्म करूँगा, जैसे--स्वप्नके

ईश्वर जीव स्वप्नद्रष्टाके जाग्रत् हुए नाश होते हैं राम सुन-कर हँसे और कहा--हे भुशुण्ड ! निःसंशय निर्भय होकर कह "मैं रामस्वरूप हूँ" क्योंकि, जब सर्व राम है तो जुदा कहां है । तू भी राम है । भुशुण्डने प्रसन्न होकर कहा-राम कहनेसे नहीं होता दृश्य द्रष्टा नहीं हो सकता, द्रष्टा दृश्य नहीं हो सकता, यह न्याय है । रामने कहा--हे भुशुण्ड ! स्वप्नमें द्रष्टा ही दृश्यरूप होता है और दृश्यका स्वप्नद्रष्टासे भिन्न स्वरूप कुछ नहीं । इससे वह निषेध पक्ष अपने स्वरूप आत्माकी असंगता तथा निर्विकार-ताके बोध अर्थ है । सर्व राम है । यह विधि पक्ष फल-रूप है ।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! राम और दत्तके वचनसे भुशुण्ड स्वरूपको प्राप्त हुआ । हे मैत्रेय ! तूने कभी भी वर्णाश्रम अभिमानका कारण जो देहाभिमान है तिसको न त्यागा । मैत्रेयने कहा--मुझ चैतन्यविषे देह होवे वा मुझ चैतन्यका देह धर्म होवे तो त्याग भी करूँ अनहुई वस्तुका त्याग कैसे करूँ ? दूसरा यह कि, मुझ चैतन्यको देहाभिमान किंचित् मात्र भी हर्ज नही करता । जैसे--स्वप्ननरका देहाभिमान स्वप्नद्रष्टाको हर्ज नहीं करता । क्योंकि मुझ चैतन्यको असंग स्वप्रकाश होनेसे द्रष्टाका हर्ज दृश्य कुछ नहीं कर सकता, जैसे-पृथिवी, अप्, तेज, वायु तथा तिनके कार्य तिनमें व्यापक असंग आकाशका हर्जा नहीं कर सकते, देहाभिमान मन करता है तथा नहीं करता है; इन दोनों अवस्थाका साक्षी मुझ असंग चैत-न्यकी क्या हानि है जो मुझमें अभिमान हो तो मैं त्यागूँ भी, जो नहीं हो तो त्यागूँ कैसे ? पराशरने कहा--यह सब तू बातें बनाता है, तुझको निश्चय नहीं । मैत्रेयने कहा--आपने कहा सो ठीक है क्योंकि, मुझ अवाच्यपदको बुद्धि

निश्चय कैसे करे ? बुद्धि तो नामरूपका ही निश्चय करती है मैं नामरूपसे रहित हूँ ।

कपिल और एक राजाका संवाद

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! इसपर एक इतिहास सुन । एक राजा था, वह नित्य कपिलमुनिके दर्शन करता था । एक दिन प्रश्न किया कि, हे ऋषि ! यह जगत् क्या है ? तू कौन है ? मैं कौन हूँ ? ऋषिने कहा--न तू, न मैं, न यह जगत्, एक ब्रह्म ही है । तू मैं यह जगत् सब ब्रह्मस्वरूप है । राजाने कहा--मैं तू जगत् नहीं तो ब्रह्म क्या है ? ब्रह्मको नहीं जानता । कपिलने कहा--ब्रह्म तुझसे प्रकाश रखता है क्यों जब तूने शास्त्र सन्तोंका वचन नहीं सुना था तब तू ब्रह्म शब्दके अर्थको जानता ही नहीं था, ब्रह्म-शब्द वा ब्रह्म शब्दका अर्थ ग्रन्थोंमें लिख रक्खा है, कोई तुझ चैतन्यसे पृथक् देशांतरमें वा सम्मुख देशमें ब्रह्म खेलता फिरता नहीं, जो जाना जावे अथवा न जाना जावे परन्तु गुरुशास्त्रसे ब्रह्मादिशब्द और ब्रह्मादिशब्दके अर्थ सुने, पूर्व तू प्रत्यक् आत्मा था, जो तू पूर्व न होता तो ब्रह्मको सुनता कौन ? पुनः सुनकर ब्रह्मको जाना अपने आत्मासे भिन्न करके वा अभिन्न करके; हे राजन् ! जो वस्तु जानने न जाननेमें आई तो जानने न जानने वालेका प्रकाशक सिद्ध होता है, जो जाननेमें आवे सो प्रकाश्य सिद्ध होता है, जैसे-नेत्र नीलादि रूपके जानने-वाले प्रकाशक सिद्ध होते हैं और रूप प्रकाश्य सिद्ध होता है इससे तुझ प्रत्यक् चैतन्य आत्माहीसे ब्रह्म प्रकाश रखता है । राजाने कहा-ब्रह्मको सिद्ध करने-वाला मैं कौन हूँ ? कपिलने कहा-सत चित् आनन्दरूप तेरा है । राजाने कहा-"सत् चित आनन्दरूप ब्रह्म है" ऐसे श्रुति कहती है । कपिलने कहा-ठीक है यह पूर्वोक्त

लक्षण तुझ बुद्धि आदिकोंके साक्षीमें ही घटता है इससे तू ही ब्रह्म है, जैसे--निरुपाधि महाकाशमें अवकाशदातृता, असंगता, अलिप्तता. व्यापकतादि लक्षण हैं सोई घटाकाशमें घटते हैं इससे घटाकाश महाकाशरूप ही है। हे राजन् ! सत् चित् आनन्दरूप स्वरूप वस्तुको ब्रह्म कहो चाहे प्रत्यक् साक्षी कहो, नामांतरका भेद है नामीका भेद नहीं । राजाने कहा--मैं शरीरसे भिन्न हूँ कि शरीररूप हूँ ? कपिलने कहा--तू शरीर नहीं, शरीर तुझसे प्रगट हुआ है, जैसे--स्वप्नद्रष्टा शरीर नहीं स्वप्नके शरीरादिक स्वप्नद्रष्टासे प्रगट हुए हैं। राजा यह वचन सुनकर हँसा और कहा--हे मुने ! मुझ एक चैतन्यविषे द्वैतपद कैसे कल्पते हो ? प्रथम मुझको अद्वैत कहते हो, पीछे कहते हो तू शरीर नहीं, जड चैतन्य दो पद हुए-मुझ चैतन्य अवाच्यपदमें एक पदकी भी समाई नहीं तो दो कैसे होवेंगे ?

साधन

कपिलने कहा--सम्यक् स्वरूप जाने विना हे राजन् ! यह कहनामात्र ही है स्वरूप जानना कठिन है। राजाने कहा--हे गुरो ! वह कहना जानना क्या है सो कहो। कपिलने कहा--जो तुझ चैतन्यमें कहना जानना हो तो मैं कहूँ, दोनोंसे तू परे है। हे राजन् ! कहना जानना वही है जिसके कहने जाननेसे मायासे लेकर देहपर्यंत वा ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत सर्वका कहना जानना हो जावे। हे राजन् ! अपरोक्ष निश्चय तब होता है जब विज्ञान होता है जब विज्ञान परोक्ष ज्ञानसे होता है और ज्ञान उपासनारूप भक्तिसे होता है, भक्ति वैराग्यसे होती है, वैराग्य शुभ कर्मोंके अनुष्ठानसे होता है । इससे हे राजन् ! इनको तू क्रमसे कर। राजाने कहा--जब मैं आप ही हूँ

तो अपनी प्राप्ति वास्ते निश्चयादि करनेसे क्या प्रयोजन है ? कपिलने कहा--जो तू है तो निश्चय भी तू कर । राजाने कहा--निश्चय कल्पनासे होता है, मैं चैतन्य निर्विकल्प हूँ, निश्चय अनिश्चय मुझविषे नहीं, यह बुद्धि आदि संघातका धर्म है । अथवा किस वस्तुका निश्चय करूँ, मुझ अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे पृथक् क्या है ? जिसका निश्चय करूँ । कपिलने कहा--वेद कहता है जाग्रत्में नेत्रोंविषे, स्वप्नमें कंठविषे, सुषुप्तिमें हृदयविषे, तुरीयामें दशवें द्वारविषे, ब्रह्म रूप आत्मा निवास करता है सो यही निश्चय कर । राजाने कहा--और अंगोंने क्या पाप किया है जो उनमें आत्मा नहीं, क्या आत्माको सर्व अंगोंमें रहनेमें शर्म आती है ? आकाशके समान आत्मा सर्वमें पूर्ण है ऐसे नहीं कि एक स्थानमें है एकमें नहीं है, सर्व कालमें सर्वस्थानमें एकसा है । कपिलने कहा--सूर्यका प्रकाश सब ठौर पूर्ण है, परन्तु जहां दर्पण जलादि होवें तहां प्रतिबिंब सहित सूर्यका विशेष प्रकाश होता है, अन्य घटपटादि पदार्थोंमें आभास भी नहीं और सूर्यको घटपटादिकोंमें विशेष जलादिकोंके समान प्रकाश करते परिश्रम भी नहीं होता उसका स्वभाव ही है । इससे जो आत्माको अपरोक्ष सम्यक् देखा चाहे तो पूर्वोक्त स्थानोंमें सुखपूर्वक दर्शन होगा अन्यत्र नहीं ।

दत्तात्रेय

तिस समय विचरते हुए दत्त आये और कहा सर्व जगद्रूपी भूषणों विषे मैं ही एक सुवर्णरूप आत्मा हूँ । कपिलने कहा--जो तूही सर्व है तो सुनाता किसको है । दत्तने कहा--आप ही वक्ता. श्रोता तथा वक्तव्यरूप हूँ और इनसे अतीत भी हूँ । यह वचन सुनकर राजा

स्वरूपविषे लीन हुआ और कपिल तथा दत्त भी अपने आत्मस्वरूपके चिन्तनमें निमग्न हुए।

कुछ काल पीछे दत्त हँसकर बोले। कहा-बड़ा आश्चर्य है कि, मुझ चैतन्य स्वरूपमें मनका लीन होना, न होना, उदय होना, उदय न होना तथा सम होना यह सब मनकी ही अवस्था है, मुझ इन अवस्थाओंके साक्षी भूतकी नहीं है इन अवस्थाके होने मिटनेसे मेरा हानि लाभ भी नहीं है। हे कपिल! जीव ईश्वर ब्रह्मकी मुझ चैतन्यने संज्ञा बांधी है, जीव ईश्वर ब्रह्मने आयकर मुझ चैतन्यकी संज्ञा नहीं बांधी। कपिलने कहा-हे राजन्! ब्रह्मयज्ञ कर, स्वाभाविक ब्रह्मयज्ञ आके प्राप्त हुआ है। राजाने कहा-करना न करना मुझ विषे नहीं, पर करता हूँ। कपिलने कहा हे दत्त! तेरा रूप क्या है? दत्तने कहा-नाम रूप मुझमें नहीं। जो तू स्वरूपसे अज्ञात है तो सहस्र वर्ष पर्यन्त नाम रूपको कहूँगा तो तुझको क्या लाभ है स्वरूप जानना है तो तूष्णीं हो। कपिलने कहा-तूष्णीं अतूष्णीं जानना न जानना मन वाणीका धर्म है, मुझ चैतन्यको इनके व्यवहारमें तुल्यता है। दत्त तूष्णीं हुआ। राजाने कहा तूष्णीं मत हो, सर्व रूप तेरा है तू सर्वकारूप है, कुछ कह और कुछ सुन। कपिलने कहा-वचन बुद्धि-तक है, बुद्धि नहीं रही, वचन कैसे करूँ? दत्तने कहा-तू चैतन्य बुद्धिके आधीन नहीं, उलटा बुद्धि आदिक जड तुझ चैतन्यके आधीन हैं। कपिल तूष्णीं हुआ।

स्कंद

पुनः स्कंद आया और कहा-हे सभा! कुछ कहो जिसमें कहना नहीं। क्या मैं चैतन्य अवाङ्मनसगोचर और वाङ्मनसगोचर हूँ? राजाने कहा-तू कौन है?

स्कन्दने कहा--वही हूँ जो तू है। तुझको कौन कहे कि, तू कौन है ? राजा तूष्णीं हुआ।

कपिलने कहा--हे दत्त ! तू कहांसे आया है ? कहां जावेगा ? तेरे माता पिता कौन हैं ? तेरा गृह कौन है ? दत्तने कहा--जहांसे तू आया है तहांसे ही मैं आया हूँ, जहां तू जावेगा वहाँ ही मैं जाऊँगा, जो तेरे. माता पिता हैं सोई मेरे हैं, जो तेरा गृह है सो मेरा है कपिलने कहा--तेरा गोत्र कौन है ? दत्तने कहा--मैं अगोत्र हूँ परन्तु जो तेरा गोत्र है मेरा सोई गोत्र है। हे कपिल ! तू अपनी उपमा सर्वमें जानले। आना जानादिक शरीरका है, शरीर पंचभूतरूप है, सर्व शरीरोंके माता पिता प्रकृति पुरुष हैं और चैतन्य ही सर्व शरीरोंका गोत्र है सारांश यह कि, चैतन्य दृष्टिकर वा माया दृष्टिकर वा पंचभूत दृष्टिकर वा पंचभूतोंका रूप दृष्टि कर जो तेरा प्रकरण है सोई सर्व जगत्का प्रकरण है अन्यथा नहीं। जो एक स्वप्ननरका हाल है सोई सर्व स्वप्ननरोंका हाल है, स्वप्नद्रष्टा दृष्टिसे भी सर्वका हाल एक ही है अन्यथा नहीं। कपिलने कहा--मुझमें नाम रूपके अभावका अभाव है। दत्तने कहा--नामरूपमें भेद मत जान नामरूप भी तू ही है। कपिल तूष्णीं हुआ और सर्व निर्विकल्प हो गये।

प्रणव और प्रणवके चिंतनके अधिकारी

कुछ काल बीता तब स्कंद बोला-आत्मज्ञानका साधन प्रणवके अर्थ रूपका चिंतन वा अंतर प्रणवका मानसी उच्चारण, अधिकारी जनोंको करना चाहिये। कपिलने कहा-सर्व वचनोंकी समाप्ति प्रणवमें है, प्रणवसेउपरांत वचन नहीं। प्रणवका जो उच्चारण श्रद्धापूर्वक सदा करता है मानो चारों वेदोंका पाठ नित्यप्रति तिसका होता रहता है क्योंकि, चारों वेद प्रणवरूप हैं और एक अक्षरका छंद

है। इसीसे इसके उच्चारणसे शुद्धि अशुद्धि भी नहीं होती। सर्व स्त्री, पुरुष, चारों वर्णाश्रम प्रणवके अर्थ चिंतनके तथा प्रणवके मानसिक वाचिक उच्चारण करनेके अधिकारी हैं। दत्तने कहा--हे कपिल! प्रणवका माहात्म्य ऐसे ही है, परंतु प्रणव शब्दमात्र है, परतंत्र है तथा जड है आत्मा अधिष्ठानमें जैसे--घटपटादि सर्व नामरूप दृश्य कल्पित हैं तैसे प्रणव भी कल्पित है आत्मा विषे भेद नहीं जैसे--स्वप्नमें घटपटादि स्वप्नद्रष्टामें कल्पित हैं तैसे स्वप्नका प्रणव भी स्वप्नद्रष्टामें कल्पित है न्यूनाधिक भाव नहीं, आत्माही सत् है, आत्मा पृथक् सर्वप्रणवादि मिथ्या माया मात्र है। हे कपिल! मन वाणीकी क्या शक्ति है कि आत्मा विना एक अक्षरका अर्थ तथा उच्चारण चिंतन कर सके। संतोंका पद बुद्धिसे परे है, बुद्धिमान् संत पदको क्या जाने क्योंकि बुद्धिमान् बुद्धिके अधीन है, संत बुद्धिसे परे पदविषे स्थित हैं। हे कपिल! वचन मेरा ज्ञानी सुने तो तिसको दृढ ज्ञान हो, भक्त सुने तो तिसको भक्ति हो, अज्ञानी सुने तो तिसको भक्ति ज्ञान प्राप्ति हो। स्कंदने कहा-जो तू ऐसा है तो मुझको क्या सुख है? हे दत्त! जिसमें जो गुण दोष हैं सो उसीको सुख दुःख देते हैं अन्यको नहीं। दत्तने कहा-वचन मेरा वही है जिसमें वचन नहीं पर कहता हूँ। सर्व जगत्की उत्पत्ति पालन संहारादि सर्व व्यवहार तथा इस संघातका व्यवहार मायासे करता हुआ भी मैं चैतन्य निर्विकार सर्वसे अतीत हूँ, जैसे स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्न व्यवहार करता भी निर्विकार सर्वसे अतीत है, जैसे--नट सर्व स्वांग करता भी अपने नटत्वभाव निश्चयको नहीं त्यागता। इसीसे सर्व स्वांग करता भी स्वांगोंसे अतीत है क्योंकि स्वांगोंके अभिमानसे रहित है।

पराशरने कहा -हे मैत्रेय ! वे संत अपने वचन कहते थे, तू कुछ नहीं कहता। मैत्रेयने कहा--कहना मेरा वहां ही योग्य था, अब क्या कहूँ पर मैं संत असंत दोनों नहीं, कहे कौन ? और सर्व मैं ही कहता हूँ यह तुमको भ्रांति है जो वह संत कहते थे। वहां भी मैं ही कहता सुनता था, अब भी मैं ही कहता सुनता हूँ। आगे भी मैं चैतन्य हूँ पीछे भी मैं हूँ, ऊर्ध्व अधः दशों दिशा मैं ही हूँ। पराशरने कहा--सत्संग कर। मैत्रेयने कहा-तुम्हारे सत्संगते मैं नहीं रहा; जैसे--पारसके संगसे लोह भाव नहीं रहता, इससे परे और सत्संग क्या है यही परम सुख है। पराशरने कहा-जो आप न रहा तो सुख क्या ? आपे तक ही सुख है। मैत्रेयने कहा परिच्छिन्न आपा अहंकारका न रहना और सर्वरूप होना यही आपा न रहना है। पर ब्रह्म यज्ञ कहो।

पराशरने कहा--अबतक अज्ञानमें तू बँधा है ब्रह्मसे भिन्न क्या है, जो कहूँ ब्रह्मको अपना आत्मा जानता ही ब्रह्म यज्ञ है पर ब्रह्म यज्ञ सुने। स्कंदने कहा--मैंने सुना था कपिल परमहंस है पर तुझको तो स्वरूपकी प्राप्ति नहीं क्योंकि, हे सर्व ब्रह्म ! तू बीज जुदा कहांसे रहता है। कपिलने कहा--तूने सत्य कहा, अज्ञान ज्ञानकी मुझ चैतन्यमें समाई नहीं। दत्तने कहा--मुझ स्वप्रकाश चैतन्यसे ही तुम ज्ञानी अज्ञानी आदि सर्वकी स्फूर्ति होती है जैसे--रज्जुकर ही सर्पादिकोंकी स्फूर्ति होती है। कपिलने कहा--हे स्कंद ! स्वरूप तेरा क्या है ? शरीर वा मनादिकोंका साक्षी आत्मा। स्कंदने कहा--शरीर और आत्मा दोनोंके अहंकारसे नग्न हूँ क्योंकि, अवाच्य पद हूँ। इसीसे तू भी देहाभिमानरूपी पहरावेसे रहित हो। कपिलने कहा--हे दत्त ! जहां मैं तू जगतादि शब्द नहीं

सो कौन है ? दत्त तूष्णीं हुआ क्योंकि वचनकी आगे ठौर नहीं ।

लोमष ऋषि

तिस समयमें लोमश ऋषि आया और कहा-मैं चैतन्य कालका भी काल हूँ । यह सब प्रजा मुझ चैतन्यरूप कालके मुखमें महाप्रलयमें आन पडती है जैसे--समुद्रमें नदियां आन पडती हैं, मुझहीसे प्रगट होती हैं, मुझ चैतन्यमें ही स्थित हैं, पर मैं चैतन्य आत्मा एकसा हूँ । दत्तने कहा-इस तेरे कथन चिंतनका द्रष्टा मैं हूँ । लोमशने कहा--द्रष्टा दृश्य दर्शन तीनोंके द्रष्टाका द्रष्टा कोई नहीं यह अनुभव सिद्ध है, तू कैसे द्रष्टाका द्रष्टा हुआ है ? दत्तने कहा--हे लोमश ! तूने जो कथन चिंतन किया कि, मैं त्रिपुटीका द्रष्टा हूँ सो कहो यह चिंतन किसने किया ? लोमशने कहा--मनने किया । दत्तने कहा--हे लोमश ! तूने आपको मनरूप माननेसे त्रिपुटीका आपको द्रष्टा माना है । मैंने भी कहा--कि, मैं द्रष्टाका द्रष्टा हूँ, यह भी मनका चिंतन है । मैं चैतन्य अवाङ्मनसगोचर वस्तु हूँ आदि अंत मध्यकी मुझमें समाई नहीं । लोमशने कहा-और किसमें समाई है ? दत्तने कहा--पूछे तिसीमें है । लोमशने कहा-हे बुद्धि खाये ! स्वप्नसृष्टिकी आदि अंत मध्य स्वप्नद्रष्टामें ही समाई है कहो अन्य किसमें है ? दत्त तूष्णीं हुए ।

सप्तऋषि-(सत्संगमाहात्म्य)

तिस समय सप्तऋषि आये और कहने लगे--हे मित्रो ! आत्मसुख सत्संगमें आत्मनिरूपण परस्पर करनेसे होता है; तूष्णीं होनेसे क्या प्रयोजन है । क्योंकि, सम्यक् आत्म अपरोक्ष विद्वान् पुरुषोंसे सत् उपदेश द्वारा अनेक मुमुक्षु पुरुषोंका कल्याण होता है । आत्मबोधका कारण

भगवान्की भक्ति करे; भगवान्को पूर्ण जाने । दत्तने कहा--भगवान्की भक्तिसे वर्तमान विद्वानोंकी भक्ति श्रेष्ठ है । विद्वानोंके संग विना स्वतः दासत्व अहंकाररूपी मलिनताको त्याग नहीं करता, इसीसे स्वरूपसे अप्राप्त रहता है । अपनेसे भिन्न परोक्ष ईश्वरकी भक्ति करनेसे शांति नहीं होती और विद्वानोंके संगसे शांति विचारसे होती है । विद्वानोंके संगसे ही निरहंकार विचारद्वारा वैराग्यादिपूर्वक भक्तिको प्राप्त होता है । भक्ति नाम "आप सहित सर्व भगवान् है" निरंतर देहाभिमान रहित पूर्वोक्त भक्तिरूप उपासनाके अभ्याससे इसी जन्ममें वा प्रतिबंधके वशते भावी जन्ममें स्वरूपकी प्राप्ति होती है और भगवान् विश्वेश्वरको निज आत्मा जानता है । सप्त ऋषियोंने कहा--शरीर तेरा नाशी है, विष्णुसे समता कैसे करता है ? दत्तने कहा--जैसे मेरा शरीर नाशी है तैसे विष्णुका शरीर भी नाशी है । हे लोमश ऋषि ! हे कागभुशुंड तुमने अनेक ब्रह्मांडोंकी उत्पत्ति तथा संहार ब्रह्मा विष्णु शिव सहित होते देखे हैं; सत् कहो विष्णु आदि शरीर नाशी हैं कि, नहीं ? दोनोंने कहा--दृश्यमान शरीर मायामात्र है किसीका शरीर अविनाशी नहीं सबका नाशी है । अनेक बार ब्रह्मा विष्णु महेशादिक शरीर जलतरंगवत् उत्पन्न होते मिट जाते हैं । एकरस केवल साक्षी चैतन्य आत्मा ही है अन्य दृश्यमान मायाका कार्य स्थित नहीं । सप्तऋषियोंने कहा-वैराग्य विना विज्ञान नहीं मिलता । दत्तने कहा-परिच्छिन्न अहंकार संतोंके संग विचार द्वारा त्यागना ही वैराग्य है । पुनः दत्तने कहा--हम नहीं शेष भगवान् हैं । पर जब हम नहीं तो वैराग्य करनेकी आवश्यकता कहां है आप न रहना यही वैराग्य है । जब आप नहीं तो वैराग्य तथा भगवान्से क्या प्रयोजन है ? शेष अवाच्य

पद है। तिस अवाच्यपद चेतन कर ही सर्वकी सिद्धि होती है। उन्होंने कहा--विष्णु ईश्वर है हम नहीं। दत्तने कहा--तुम नित्य सुख चैतन्यसे पृथक् ईश्वर वस्तु क्या है! कहो। हे ऋषे! यह आत्मा ही ईश्वर है।

षट् प्रमाण

तिस समय प्रत्यक्षादि षट् प्रमाणरूप सिद्ध आये और कहा--सर्व वस्तुओंकी सिद्धि हमसे होती है। दत्तने कहा--तुम्हारी सिद्धि किससे होती है? जिस चैतन्य साक्षी आत्मासे तुम्हारी सिद्धि होती है तिससे सर्वकी सिद्धि होती है। प्रत्यक्ष प्रमाणने कहा--जब नेत्र मूँदे तब रूपकी सिद्धि नहीं होती; नेत्र खुले रूप मालूम होता है। इससे नेत्रकर ही रूपका ज्ञान होता है; आत्माकर नहीं (इसी प्रकार सर्व प्रमाणोंमें जान लेना) दत्तने कहा -हे सिद्धो! आत्मा साक्षी नेत्रोंका नेत्ररूप है, श्रोत्रका श्रोत्ररूप है (इसी प्रकार सर्व इंद्रियोंमें जोड लेना) सारांश यह कि, आत्मा पूर्ण है तथा सर्वका स्वरूप है। इससे आत्मा चैतन्य ही नेत्रादि इंद्रियोंमें स्थित हुआ रूपको देखता है। जब नेत्र मूँदे जाते हैं तब अन्धकारको प्रकाश करता है। आत्माकी ज्ञानरूप दृष्टि किसी कालमें भी रुक नहीं सकती, नेत्रादिक इन्द्रिय नष्ट होवें चाहे रहें; जैसे--राजाका हुकुम मन्त्री द्वारा प्रजामें प्रवृत्त होता है परन्तु मन्त्री और प्रजा राजाके ही गुलाम हैं, जैसे--स्वप्नद्रष्टाकी ज्ञानरूप दृष्टि स्वप्न पदार्थोंसे रुकती नहीं क्योंकि स्वप्न कल्पित और स्वप्न द्रष्टा स्वप्रकाश है। सिद्धोंने कहा--न तुम, न हम, न जगत्, केवल चैतन्य मात्र हम हैं। दत्तने कहा--तुम हँसो। सिद्धोंने कहा--हमारे आत्मस्वरूपमें हँसना रोना दोनों नहीं और हँसना रोना भी हम ही हैं।

कुमार सिद्ध-(सिद्धि आदिके विषयमें)

कुमारसिद्धने कहा--जब मैं योग करता हूँ तब अपने स्वरूपको देखता हूँ। दत्तने कहा--जब तू स्वरूपका देखनेवाला हुआ तब स्वरूप तुझसे भिन्न हुआ। हे बुद्धिखोये ! जो कुछ तू योगविषे देखता है सो दृश्यको ही देखता है। इससे योग तेरा दृश्य और तू द्रष्टा हुआ बालक है सत्संग कर जो निर्मल होवे। कुमारने कहा--ठीक मैं बालक हूँ क्योंकि मन वाणी शरीरसे सर्व लीला करता भी मैं असंग चैतन्य हर्ष शोकको नहीं प्राप्त होता, इसीसे बालक हूँ। पर योगके बलसे जो मैं चाहूँ तो इस शरीरका त्यागकर अन्य शरीरमें प्रवेश करूँ। किसीको वर शाप दूं तो हो सकता है और आयुको अधिक न्यून कर सकता हूँ। सर्व प्रकारकी सामर्थ्य योगसे हो सकती है ज्ञानसे क्या प्राप्ति है ? दत्तने कहा--हे मूर्ख ! यह बात कहते तुझको सभामें लज्जा नहीं आती ? योगी एक शरीरको त्यागके अन्य शरीरमें प्राप्त होता है और अनेक प्रकारके कष्ट पाता है; ज्ञानी इसी शरीरमें स्थित हुआ सुख पूर्वक ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत आपको पूर्ण जानता है। सर्वका भोक्ता एक कालमें ही होता है, सर्व जगत् पर आज्ञा चलानेवाला होता है। सर्व रूप भी आप होता है, सर्वसे अतीत भी आप ही होता है। सर्व शक्तिमान् होता है; सर्व अशक्ति रूप भी आप ही होता है। सर्व व्यवहार करता भी आपको अकर्ता जानता है। जिस अवस्थाको सम्यक् आत्म अपरोक्ष विद्वान पुरुष प्राप्त होता है सो अवस्था स्वरूप अज्ञातवर शापादि पूर्वोक्त सामर्थ्य योगीको स्वप्नमें भी नहीं प्राप्त होता। कुमारने कहा--योगके बलसे जो चाहूँ तो आकाशमें जाऊँ। दत्तने कहा--पक्षी आकाशमें

उडते फिरते हैं क्या सिद्ध हैं ? कुमारने कहा--योगी एक एक श्वासमें अमृत पान करता है अन्य नहीं । सोहं जाप करता है, सुख पाता है । दत्तने कहा--हे बालक ! ज्ञानको लज्जा है । अपने सुखरूप आत्मासे भिन्न योगादिकोंसे सुख चाहे, जैसे--गुडको लज्जा है कि, अपनेसे पृथक् चणकादिकोंसे मधुरता चाहे । चित्तकी एकाग्रतारूप योगसे सुख मानता है और योग विना आपको दुःखी मानता है, ज्ञानी योग अयोग दोनोंको अपने दृश्य मानता है यह सब मनके ख्याल हैं, योगरूप मनके ख्यालसे मैं चैतन्य प्रथम ही सुखरूप सिद्ध हूँ सुखरूप अपनी सिद्धिवास्ते मुझे योग क्यों करना है ? जैसे--कोई भी अपने शरीरकी प्राप्तिवास्ते योगादिक साधन नहीं करता क्योंकि योगादि करनेसे शरीर प्रथम सिद्ध है । प्राणोंके रोकनादिकरूप योगसे क्या सुख है ? आपसे अप्राप्त होना; आशा मुक्तिकी प्राणोंसे चाहना केवल विचारहीनता है ।

दूसरे सिद्धने कहा--योग नामजुडनेका है, यह जो सनकादिक ब्रह्मादिक स्वरूपमें लीन होते हैं, सो योगसे रूपज्ञानको पाते हैं । दत्तने कहा--जिस स्वरूपमें ब्रह्मादिक लीन होते हैं, तिस वस्तुको ज्ञानी अपना आत्मा जानता है । हे सिद्धो ! मिथ्या मत कहो ज्ञान और योगका क्या संयोग है । योग साधनरूप है, ज्ञान फलरूप है । ज्ञानमें बिछुरना मिलना दोनों नहीं, योग कर्ताके अधीन है तथा क्रियारूप है । कपिलने कहा--आत्माके सम्यक् अपरोक्ष ज्ञानरूपी योगसे सर्व पदार्थोंका जाननारूप योग हो जाता है, केवल क्रियारूप योगसे सर्व पदार्थोंका जानना नहीं होता । क्योंकि, अधिष्ठानके ज्ञानसे ही सर्व कल्पित

पदार्थोंका ज्ञान होता है; योगसे नहीं । योग आत्म अधिष्ठानविषे आप कल्पित है (अन्य पदार्थवत्) । कल्पितके ज्ञानसे अन्य कल्पितका ज्ञान नहीं होता; अधिष्ठानके ज्ञानसे ही कल्पितका ज्ञान होता है, जैसे--एक कल्पित स्वप्नपदार्थके ज्ञानसे अन्य स्वप्नकल्पित पदार्थका ज्ञान नहीं होता किंतु स्वप्नद्रष्टाके ज्ञानसे सर्व स्वप्नकल्पित पदार्थोंका ज्ञान होता है, जैसे रज्जुके ज्ञानसे सर्प दंड मालादिकोंका ज्ञान होता है, कल्पित सर्पके ज्ञानसे कल्पित दंडादिकोंका ज्ञान नहीं होता, यह नियम है ।

स्कंदने कहा--आत्माके जाननेके अनेक साधन हैं । योग, भक्ति, ज्ञान. पर आत्मा इन पदोंसे अतीत है, यह सब बुद्धिका विलास है । लोमशऋषिने कहा- हे सिद्धो ! योग मुझसे हुआ है, पर मैं चैतन्य योग वियोग दोनों नहीं । योगसे शरीरके अंतर बाहर सर्व अंग दीखते हैं, पर स्वरूपसे अप्राप्त होता है । दत्तने कहा--जब सर्व ब्रह्म है तो उससे भिन्न कौन है ? जो जड कुमार तूर्णीं हुआ ।

दत्तने कहा--हे कुमार ! तुमको लज्जा नहीं आती जो संतोंकी सभामें अयोग्य वचन कहता है ? कुमारने कहा-क्या कहूँ ? तू रूप मेरा है । दत्तने कहा--कह ! मैं चैतन्य मनकी एकाग्रतारूप योग वियोगका साक्षी स्वप्रकाश हूँ । सिद्धोंने कहा--तू कौन है ? दत्तने कहा--तुम्हारे ध्यान अध्यानका तथा तुम्हारी सिद्धि असिद्धिका द्रष्टा हूँ । सिद्धोंने कहा--तुमको भस्म किया चाहिये । दत्तने कहा--प्रथम तुम अपने अहंकारको भस्म करो, जो तुम्हारे अंतर शत्रु है, मुझ भस्मको भस्म क्या करोगे ? हे सिद्धो ! मैं चैतन्य तुम्हारा आत्मा हूँ, अपने आत्माको भस्म कैसे करोगे ? यह कह सिद्ध तूर्णीं हुए । दत्तने कहा--तूर्णीं मत होवो; यह सब कौतुक तुम्हारा है, तुम कौतु-

कीहो, जैसे—स्वप्नसृष्टि सर्व स्वप्नद्रष्टाका कौतुक है स्वप्नद्रष्टा कौतुकी है । सिद्धोंने कहा—तूष्णीं अतूष्णीं आदिक भी कौतुक है। दत्तने कहा—हे सिद्धो ! यह सुख ज्ञानसे प्राप्त होता है । लोमशने कहा--तुझको ज्ञानसे सुख नहीं, अपने आनंदसे आनंद अपने प्रकाशसे प्रकाश है। वृत्तिरूप ज्ञान भी अज्ञानरूप है, तू ज्ञान अज्ञानसे रहित है । राजाने कहा--तुझको लज्जा नहीं आती कि, रहित अरहित भी तू ही है। लोमशने कहा-जब मैं ही हूँ तो लज्जा किससे करूं ? लज्जा इच्छा; संशय, ज्ञान, ध्यान, निश्चय अनिश्चय, बंध, मोक्ष, हर्ष, शोक, मान, अपमान, राग, द्वेष, ग्रहण, त्यागादिक मानने केवल मनके धर्म हैं और मैं चैतन्य मनादिकोंके धर्मोंसहित मनादिकोंका साक्षी हूँ । साक्ष्यके व्यवहारकी मुझ साक्षीको क्या लज्जा है ? जैसे—सूर्य प्रकाशको प्रकाश्य जगत्की लज्जा आदिक व्यवहारोंसे क्या लज्जा है ? हे दत्त ! मैं चैतन्य निर्लज्ज हूँ, तू भी निर्लज्ज हो । सारांश यह कि, आपको सत् चित आनंद जान जो लज्जारूपी द्वैतसे छूटे । दत्तने कहा--मुझ चैतन्यमें बंधन हो तो छूटूँ, मैं तो निर्बंध हूँ ।

हे मैत्रेय ! तिस सभामें यही निश्चय हुआ कि, अस्ति भाति प्रियरूप ब्रह्मात्मा हम हैं। मैत्रेयने कहा--हे पराशर ! तिस संतोंकी सभामें और कोई था कि, न था ? पराशरने कहा--इतने कहनेसे तुझको निश्चय न हुआ तो बहुत कहनेसे क्या लाभ होगा ? तुझको ज्ञान न हुआ, सब उपदेश मेरा अकार्थ गया। मैत्रेयने कहा--मुझ चैतन्यमें निश्चय धर्म नहीं निश्चय कैसे करूं ? शिष्य, गुरु, रूप, अरूप, मुझमें नहीं अथवा मुझसे भिन्न कौन है ? जिसका मैं निश्चय करूं ? पराशरने कहा--भय मत कर जो तू सर्व

है वो निश्चयादि भी रूप तेरा है। मैत्रेयने कहा--वह कहो जिसमें विकार न होवे निश्चयादि भी विकार हैं। पराशरने कहा--यही चिन्तन कथन कर "मैं निर्विकार चैतन्य साक्षी आत्मा हूँ" मैत्रेयने कहा--जो मैं ऐसा हूँ तो चिन्तन कथनसे क्या गुण है? जैसे--कि, कोई अपने नामको और नाम अनुसारी अर्थको कथन चिन्तन हरवक्त करता रहे तो क्या गुण है? उलटा विकल बाजता है। पराशरने कहा--हे मैत्रेय! आप सहित सर्वको ब्रह्मरूप जान मैत्रेयने कहा--इस चिन्तनसे क्या गुण है? यह सब मनका मनन है मैं चैतन्य अवाङ्मनसगोचर हूँ। पराशरने कहा--शरीर नाश होय तो होय पर इस निश्चयको त्यागिये मत। मैत्रेयने कहा--मुझमें ग्रहण त्याग नहीं स्वतः होय सो होय। पराशरने कहा--हे मैत्रेय! यह आनंद कहने मात्रसे नहीं निश्चयसे है। मैत्रेयने कहा--मैं वह शिष्य नहीं जो गुरुके उपदेशसे केवल देहाभिमान त्यागूँ और द्वैत बना रहे। देहाभिमानसहित द्वैतदृष्टि त्यागे और गुरुकी वाक् रसनासे सुनकर अमृतके समान अचवे। पराशरने कहा-कह सर्वरूप मेरा है? मैत्रेयने कहा--जो मैं हूँ तो कहनेसे क्या प्रयोजन है? पर ब्रह्मयज्ञ कहो, उस सभामें जो सन्त थे तिनोंने और क्या कथन किया? पराशरने कहा--उसके वचन सुननेसे तुझको क्या लाभ है जो तू आपको न जाने! मैत्रेयने कहा--तुम्हारे कहनेसे आश्चर्यवान् होता हूँ, जो कुछ मुझ चैतन्यसे भिन्न होय तो तिसको जानूँ, जब मुझमें जानना नहीं तो क्या जानूँ? पराशरने कहा--हे मैत्रेय! सो और अयं पद तुझमें नहीं सो अयं पद सिद्ध किया है।

स्वरूप पानेका साधन

राजाने कहा--हे दत्त! जिसको चाहना स्वरूपके पाने-

की हो सो कैसे पावे ? दत्तने कहा--प्रथम निष्काम कर्मसे अंतःकरणकी शुद्धि करे, निर्गुण वा सगुण उपासनादिकर अंतःकरणकी चंचलता दोषको दूर करे। वैराग्यादि साधनों सहित, शास्त्रोक्त रीतिसे गुरुकी शरणागत होवे। पुनः गुरु उपदेशसे अपने आत्माको ब्रह्मरूप और ब्रह्मको अपना आत्मारूप सम्यक् अपरोक्ष जाने। जैसे--महाकाश घटाकाश रूप है और घटाकाश महाकाश रूप है। हे राजन्! अपने स्वरूपके पावनेमें देहाभिमान ही आवरण है. जैसे सूर्यके दर्शनमें बादल ही आवरण है। हे राजन्! जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिमें तथा भूत भविष्यत् वर्तमान कालमें, मन वाणीका गोचर. मन वाणीसहित जितना प्रपंच है, सो सर्व तुझ साक्षी चैतन्यकी दृश्य अनित्य है; तू तिस सर्व जड दृश्यके न्यूनाधिक भावका प्रकाश करनेवाला चिद्घनदेव है, तुझको कोई नहीं जानता तू सर्वको जानता है। इसीसे तू चैतन्य स्वप्रकाशरूप है। अज्ञानी अनित्य दृश्यमें ही मग्न हैं. विज्ञानी अपने आत्म स्वरूपमें मग्न है, पर मेरे स्वरूपमें ज्ञान अज्ञान दोनों नहीं। राजाने कहा--तू कौन है ? दत्तने कहा--तेरे हृदयविषे ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकोंके हृदयविषे तथा सर्व प्राणिमात्रके हृदयविषे मनादिकोंके साक्षीरूपता करके स्थित हूँ। साक्षीमें भी त्रिपुटी होती है तिसका प्रकाशक त्रिपुटीसे परे अवाच्य पद हूँ, जहां बुद्धि नहीं तहां रूप मेरा है। राजाने कहा--जहां एक, अनेक, मैं, तू नहीं वही रूप मेरा है। दत्तने कहा--आप अहंकारको त्यागकर, जो अवशेष रहे सो आत्माका स्वरूप है। राजाने कहा--जिसमें शेष अवशेष हैं दोनों नहीं वही अवशेष। कपिलने कहा--यह भी अहंकार है, जो है सोई है। राजाने कहा--हे कपिल ! तुझे बुद्धि नहीं जो सर्व अवशेष है तो अहं-

कार कहां है ? अहंकारका नाश अवशेषसे होता है। कपिलने कहा--जो वचन चिंतनमें आता है सोई अवशेष है नहीं तो अवाच्यपदमें शेष अवशेष कहां है ? राजाने कहा--जिसमें वचन मौन दोनों नहीं, वही अवशेष है। कपिल तूर्ष्णी हुआ क्योंकि जिसकर विधि निषेध सिद्ध होते हैं. जिसमें विधि निषेध समाप्ति होती है, विधिनिषेधका और जो अवधिभूत है, तिसका नाम अवशेष है।

रोमशने कहा--फुर्णा, अफुर्णारूप शेष अवशेष मनका धर्म है, आत्मा इन मनके धर्मोंसे अतीत है। राजाने कहा--वही मैं अवशेष पदोंसे अतीत हूँ। दत्तने कहा--जिसमें अशेष व शेष नहीं, सो क्या है ? राजाने कहा--वही अवशेष है । रोमशने कहा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तुरीया अवशेष है, मुझ चैतन्य तुरीयातीत अवाच्यपदमें अवशेष कहां है ? राजाने कहा-जैसे तुरीयातीत अवाच्यपद नाम है तैसे अवशेष नाम है, जो तुम कथन चिंतन मनका करोंगे तिनका जो साक्षी है सोई और उस सर्वके साक्षीका साक्षी और कोई नहीं। सिद्धोंने कहा--अवशेष पद योगसे प्राप्त होता है। राजाने कहा योगसे अवशेष होता है, यह किसने जाना ? जिसने जाना वही अवशेष है, जो अवशेष नहीं होवे तो योगको कौन सिद्ध करे ?

मीमांसा

पुनः मीमांसा आया और कहा--कर्म करनेसे अवशेषकी प्राप्ति होती है। राजाने कहा--हे मीमांसा ! जो कर्म उपासनाका फल है सभी अनित्य है, हां कर्म उपासनासे अंतःकरणके दोषोंकी निवृत्ति होती है, सो दोष भी अनित्य हैं, इसीसे दूर होते हैं । जहां कर्म उपासनाका फल नहीं और जिस चैतन्यकर मन शरीरके

धर्म उपासना कर्म सिद्ध होते हैं जो उपासनाके आरम्भमें तिनका साक्षी है; आदिमें स्वतः सिद्ध हैं कर्म उपासनाकी समाप्तिका जो अधिष्ठान साक्षी अवधि भूत है, वही अवशेष है। सो स्वप्रकाश सर्वकी आदि सिद्धि है। पीछे होनेवाले कर्म उपासनासे तिसकी कैसे प्राप्ति होगी ? किंतु नहीं होगी। मीमांसा तूष्णीं हुआ।

वैशेषिक

वैशेषिकने आकर कहा--अवशेष कालसे हुआ है। राजाने कहा--सुषुप्तिमें काल कहां है ? अवशेष आत्मा कालके भावाभावको अनुभव करनेवालेसे ही काल होता है. अवशेष आत्मा स्वतः सिद्ध है, उत्पत्ति नाश तिसका नहीं, यह सर्व धर्म मन आदिक दृश्यके हैं।

न्याय

पुनः न्यायने कहा--सर्व जगत्के कर्ता ईश्वरमें अवशेष कहां है ? राजाने कहा--जो अवशेष आत्मा न हो तो सर्व जगत्का ईश्वर कर्ता है, यह कथन चिंतन धर्म, मन वाणी सहित, धर्माधर्मी कैसे सिद्ध होवे ? जब यह कथन चिंतन नहीं था तो भी अवशेष आत्मा सिद्ध है और जब नाश हुआ तब भी नाशका साक्षीरूप कर अवशेष आत्माही सिद्ध है। इससे सर्व ब्रह्मरूप अवशेष आत्मासे यह नामरूप जगत् होता है। हे न्याय ! तिसीका नाम ईश्वर कहैं तो ठीक है। नामांतरका भेद है। न्यायने कहा--जबलग अवशेष विशेषको न त्यागे सुख स्वरूपको न पावेगा। राजाने कहा--मुझ चैतन्य आत्मा सुख स्वरूपको सुख पानेसे क्या प्रयोजन है ? सुखरूप अपनेसे पृथक् जितने सुख पानेके समाधि आदिक साधनोंमें प्रवृत्ति है सो भ्रमसे है जैसे--जलको तथा अग्निको शीतल उष्ण होनेकी इच्छा भ्रमसे है। न्यायने कहा--तू सर्वसे ऊँचा है। राजाने

कहा--मैं चैतन्य आत्मा ऊंच नीचसे रहित एकरस सम हूँ। यह कह न्याय तूष्णीं हुआ।

पातंजल

पातंजल बोला--हे राजन्! तू कौन है? राजाने कहा--मैं चैतन्य आत्मा योग वियोगका कौतुक देखनेवाला अवशेषरूप हूँ। याज्ञवल्क्यने कहा--अनहद शब्दविषे अवशेष कहां है? राजाने कहा--जो अवशेष आत्मा इंद्रियद्वारा बाहरका कौतुक देखनेहारा है, सोई अवशेष आत्मा अंतर इंद्रिय विना सोहं ध्वनि आदि कौतुकको देखने नाम अनुभव करनेवाला है सारांश यह कि, अनहद शब्दके भावाभावका जाननेवालेकी जो अवशेष नहीं हो तो अनहद शब्दके भावाभावका सिद्धि कैसे होवे? याज्ञवल्क्यने कहा--योग विना सुख नहीं और सर्व अंग शरीरके देखे नहीं जाते। राजाने कहा--सुखरूपमें योगसे क्या प्रयोजन है? "शरीरसहित सर्वरूप प्रपंचका मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्या सम्यक् अपरोक्षको जानता और पूर्वोक्त प्रपंचका अपनेको सम्यक् अपरोक्ष अधिष्ठान जानना" यही जगत्रूप अंगोंका देखना है, हाड मांसादि अंगोंको योग कर देखना बुद्धिहीन पुरुषोंका काम है। जब यह आप है तो योगसे क्या प्रयोजन है? याज्ञवल्क्यने कहा-जब तू है तो ज्ञानसे क्या प्रयोजन है? राजाने कहा--मुझ चैतन्य अवाच्यपदमें ज्ञान अज्ञान, तज्जन्य बन्ध मोक्षादि प्रपंचका अत्यंताभाव है परन्तु मुमुक्षुको ज्ञान निष्क्लेश है, ज्ञानरूपी विचार कर वस्तुका सम्यक् अपरोक्ष स्वरूप जाना जाता है योगसे नहीं। योगसिद्ध हुए योगीको भी विचारकी अपेक्षा अवश्य होती है। इससे गौरवताके दोषते प्रथम ही वस्तु विचार करना योग्य है सम्यक् अपरोक्ष स्वरूपका जाननेवत् जानना ही

राजयोग है। हठयोग हठियोंके वास्ते है विचारशीलोंके वास्ते नहीं।

सांख्य

याज्ञवल्क्यके तूष्णीं होनेपर सांख्यने आयकर कहा–जौलों नित्य अनित्यका विचार नहीं करे तौलों आत्म सुखसे अप्राप्त रहेगा। राजाने कहा–जिसकर नित्य अनित्यका अंतर विचार सिद्ध होता है और जो विचारके आदि, अंत, मध्यमें साक्षीरूपकर स्वस्थित सुखरूप है सोई मेरा रूप है. तिस नित्य सुखरूप आत्माकी प्राप्तिवास्ते नित्य अनित्यका विचार भ्रमसे है, अन्यथा नहीं। यह कह सांख्य तूष्णीं हुआ।

वेदान्त

पुनः व्यासने आकर कहा-जब मैं चैतन्य ही हूँ तो नित्य अनित्यसे क्या प्रयोजन है? मुझ चैतन्यसे अवशेष भिन्न नहीं, जो भिन्न होवेगा तो जड सिद्ध होगा। हे राजन्! जहाँ, में, तू अवशेष तीनों नहीं सो मैं हूँ। राजाने कहा–यदि मैं चैतन्य सर्वात्मा हूँ तो अहं त्वं आदि भी मैं ही हूँ। व्यासने कहा–बारंबार उसका नाम लेनेसे क्या प्रयोजन है? राजाने कहा–विलासमात्र है, नाम लेना न लेना मुझमें तुल्य है। दत्तने कहा--जो कुछ कथन चिंतनमें आता है सो अवशेष है, जहां यह नहीं सो रूप मेरा है राजाने कहा--वही अवशेष है।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय! मैं भी तिस सभामें गया और कहा--हे रूप मेरे! जिसने अवशेष थापा है? सो अवशेष कैसे होता है? राजाने कहा--किसने थापा है? मैंने कहा--तुम चैतन्यने थापा है। राजाने कहा--इसीसे मैं चैतन्य ही अवशेष हूँ। हे मैत्रेय! राजाने अपने स्वरू-

पको सम्यक् अपरोक्ष जाना था; तिसको कौन अपने निश्चयसे चलायमान करे । राजाने कहा--हे सन्तो ! सर्व पदोंसे अवशेषको ऊपर राखो । दत्तने कहा--सर्व-पदोंको कथन करनेवाला शास्त्र तथा पद स्वप्नवत् मूलसे है ही नहीं तो अवशेष मुझ अवाच्यमें ठौर कैसे पकडेगा और अवाच्य चैतन्य अवशेषको कहां राखेगा ? यह कह राजा तूष्णीं हुआ ।

हे मैत्रेय ! उस राजाने किंचित् काल ही सत्संग करके अपने स्वरूपको पाया, मैं तुझको अनेक प्रकार उपदेश करता हूँ पर तुझको कुछ प्रवेश न हुआ । हे मैत्रेय ! इस समयको दुर्लभ जान अपने सम्यक् स्वरूपके जाननेवास्ते ही यह मनुष्य शरीर है नहीं तो अकार्थ है । मैत्रेयने कहा--हे गुरु ! जितनेके नामरूप प्रपंच हैं सो सब अकार्थ हैं, अर्थरूप मैं चैतन्य आत्मा ही हूँ, जैसे--सब स्वप्नप्रपंच अकार्थ हैं स्वप्नद्रष्टा ही अर्थरूप है । पराशरने कहा--तेरा रूप क्या है ? मैत्रेयने कहा--मैं रूप अरूपसे रहित हूँ ।

निदाघ और ऋषभदेवका संवाद

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! एक समय निदाघ राजाने ऋषभदेवसे प्रश्न किया--कि, हे प्रभो ! मुझको संसार समुद्रसे पार करो । ऋषभदेवने कहा-संसार समुद्र मेरी दृष्टिमें है नहीं तुझे नौका बनाकर कैसे पार करूं । हे मैत्रेय ! जैसे--मैंने तुझको बहुत कालसे उपदेश किया है और तुझको प्रवेश नहीं हुआ तैसे ही ऋषभदेवने निदाघको उपदेश किया पर उसको कुछ भी प्रवेश न हुआ । हे मैत्रेय ! जब लग यह आप विचार न करे तब लग गुरु शास्त्र क्या करे ? हे मैत्रेय ! जो देहाभिमानरूप कीचडमें फँसे हैं और मन विषयोंकी इच्छारूप जेवडेसे बांधा है तिसको कौन छुडावे ? इस हेतु अपना विचार आप करे

जो अपने स्वरूपके अज्ञानसे बन्ध मोक्ष भ्रांति दूर होवे अन्यथा नहीं। हे मैत्रेय ! पुनः निदाघने कहा–हे गुरो ! आज मुझको रात्रिमें स्वप्न हुआ था कि, शरीर मेरा विनाशी है और यमदूत मुझको धर्मराजके पास ले गये हैं। धर्मराजने कहा–तू कौन है ? अपने भले बुरे कर्म प्रगट कर । मैंने कहा–मैं आपको नहीं जानता । धर्मराजने कहा–जो तू आपको नहीं जानता तो शासना अपने करे हुए कर्मोंसे तुझको होगी। पर उपदेश तुम्हारा संस्कारोंके वशसे स्मरण हुआ और मेरी रसनासे यह निकला कि, हे धर्मराज ! मैं सत्, चित्, आनंद सर्व मन आदिकोंका साक्षी आत्मा हूँ, देहादिक संघात मैं नहीं ये मायामात्र है। तब धर्मराजने सैन किया कि, इसको परमसुख देवो, यह दुःखदायक नहीं क्योंकि इसको अपने स्वरूपमें अहं-प्रत्यय है देहमें नहीं। यह वृत्तांत होते नेत्र खुले, देखा तो न धर्मराज है न यम है न यमलोक है मैं अपनी शय्यापर आप स्थित हूँ।

हे मैत्रेय ! आत्मनिष्ठाका महान् माहात्म्य ह, जो यम लोकमें भी सत्, चित; आनंद आत्मा मैं हूँ, इतने कहनेसे दुःखसे छूटा, जो साक्षात् सम्यक् अपरोक्ष अपने स्वरूपका बोध होवे तो क्या बात है ? तू सम्यक् आत्माको जाननेवत् जान ।

पुनः--हे मैत्रेय ! ऋषभदेवने कहा--हे निदाघ ! जैसे--तुझको स्वप्न आया और अनेक प्रकारका प्रत्यक्ष वृत्तांत देखा, पर जब जागा तब भ्रम जाना। तैसे ही जबतक तू अपने स्वरूपके अज्ञानरूपी निद्रामें सोया है तबतक अनेक प्रकारका बन्ध मोक्षादि जगत् तुझको भासता है, जब सम्यक् अपरोक्ष बोधरूपी जाग्रत् तुझको होगी तब जानेगा कि, यह जगत् भ्रममात्र है। निदाघने कहा--योग

करूँ तो स्वरूपमें जाग्रत् होऊँ। ऋषभदेवने कहा--तेरी बुद्धि हँसने योग्य है मैं और कहता हूँ तू और समझता है तो कैसे अहंकारसे छूटे। हे मूर्ख ! योगनिद्रा है, मैं अहंकारको कहते हैं। हे राजन् ! यह ज्ञानरूपी खड्ग ले कि; मैं देह नहीं आत्मा हूँ। अहंकाररूपी फाँस जीवके गलेमें पड़ी है तिसको काट अर्थात् "जीवत्व, ईश्वरत्व, ब्रह्मत्व, प्रपंचत्व तिसमें बन्ध मोक्षादि मानना केवल मनका मनन है, मैं चैतन्य मन वाणीसे अगोचर हूँ" यही फाँसका काटना है। फाँसके काटनेसे कालसे अभय होवेगा नहीं तो काल तुझे दुःख देवेगा। हे राजन् ! शुद्धरूप विचार सत्का तब हाथ आवे जब ताली वैराग्यकी होय और वैराग्य यही है कि, अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा है अन्य कुछ नहीं, न होगा, न हुआ है। इस निश्चयका नाम वैराग्य है।

ज्ञानी (तत्त्ववेत्ता) की पहँचान

निदाघने कहा--जिनके ज्ञाननेत्र खुले हैं तिनकी क्या पहँचान है ? ऋषभदेवने कहा--जब लग तेरे नेत्र न खुलें तब लग न जान सकेगा. जैसे--सोया--पुरुष जागे विना जाग्रत् पुरुषको नहीं जानता। जिसका देह अभिमान सम्यक् मिटा है और आत्माको सम्यक् अपरोक्ष जाना है तिनको गृह वन तुल्य है। जो प्रारब्ध कर प्राप्त होता है, हर्ष शोकसे रहित तिसीपर प्रसन्न रहते हैं। ग्रहण त्यागकी कल्पना मनमें वास्तव नहीं. व्यवहारमें ग्रहण योग्यको ग्रहण करते हैं त्यागने योग्यको त्यागते हैं। हँसनेके स्थानमें हँसते हैं, रोनेके स्थानमें रोते हैं. सारांश यह कि, जैसा देशकाल होवे तिसके अनुसारही चेष्टा करते हैं पर अपने सुख स्वरूप आत्मासे पृथक् जगत्को जानते नहीं।

अहंकारके त्यागका उपाय

निदाघने कहा--अहंकारके त्यागका उपाय अतीत होना है, इससे मैं अतीत होता हूँ। ऋषभदेवने कहा-गृहस्थ त्याग अतीत होनेसे अहंकार नाश नहीं होता, उलटा वृद्धिको पाता है. यह सबके अनुभव सिद्ध है। कोई विरला निरहंकारी होता है प्रयोजन भी सूक्ष्म अहंकारके ही त्यागनेका है स्थूलका नहीं । क्योंकि, सूक्ष्म अहंकार त्यागेसे ही आवागमन मिटता है। इससे तू सूक्ष्म अहंकार त्याग कर जो सर्व त्यागी होवे। कोई अहंकारके त्यागने वास्ते योगाभ्यास करते हैं पर त्यागा नहीं जाता, उलटा बढ जाता है क्योंकि, उन्होंने अहंकारके त्यागनेका मार्ग नहीं जाना।

लौकिक गुरुका उपदेश

कदाचित् लौकिक गुरुसे अहंकारके त्यागनेका प्रश्न करता है तो गुरु कहता है तीर्थ करना, व्रत नेम करना, तिससे तिसके मन विषे अहंकार उलटा दृढ होता है, जब दृढ अहंकार हुआ तब बुद्धि क्षीण होती है, जब बुद्धि क्षीण हुई तो आवागमनको प्राप्त होता है और अपने स्वरूप ज्ञानसे दूर जाय अंधे कूपमें पडता है, तिसको परमेश्वर निकाले तो निकले अन्यथा नहीं निकल सकता।

निष्काम और सकामरूप दो प्रकारका भजन

हे राजन्! दो प्रकारका भजन है। एक निष्काम और दूसरा सकाम। सकामसे स्वर्गादि सुख पाता है परन्तु निज स्वरूपसे अप्राप्त रहता है। निष्कामसे अंतःकरणकी शुद्धिसे ज्ञान द्वारा मोक्षरूप आत्माको सम्यक् अपरोक्ष जानता है। आप सहित सर्वको ब्रह्मरूप जानना, यही परम भजन है।

सूक्ष्म अहंकारसे छूटनेका उपाय

निदाघने कहा--हे गुरो ! सूक्ष्म अहंकारसे कैसे छूटूँ ? ऋषभदेवने कहा--तेरी क्या शक्ति है कि, सूक्ष्म अहंकारसे निकसे ? मरीचि आदि लेकर सर्व ऋषि चाहना सूक्ष्म अहंकारके त्यागनेकी राखते हैं परन्तु किसी एकका ही पूर्वके महान् पुण्य प्रतापसे सूक्ष्म अहंकार नाश होता है। सूक्ष्म अहंकार अथाह समुद्र है तिसका तरना अति कठिन है। जिसको सूक्ष्म अहंकार है तिसका भ्रांतिरूप जन्ममरण भी दूर नहीं होता। सूक्ष्म अहंकार तप आदिकोंसे दूर नहीं होता परन्तु सम्यक् विचारसे दूर होता है।

निदाघने कहा--"जब सर्व अस्ति भातिप्रिय ब्रह्मरूप आत्मा है तो सूक्ष्म तथा स्थूल अहंकार कहां है ?" मधुरता, शीतलता; द्रवतासे फेन बुद्बुद तरंग क्या जुदे हैं ? नहीं। ऋषभदेवने कहा--जीव आवागमनमें बंधा है तू कैसे जीवको ब्रह्म कहता है ? निदाघने कह--हे गुरो ! सहित जो तुम्हारा हमारा कथन चिंतन है, सो सर्व रज्जुसर्पवत् मिथ्या हैं, तिससे जो रहित ह तिसको जीव ईश्वर ब्रह्म क्या कहै ? अवाच्य पद है। ऋषभदेवने कहा--आपको अवाच्य पद जानना यह भी सूक्ष्म अहंकार है।

अष्टावक्र

तिस समय अष्टावक्र आये और कहा--हे राजन् ! मनको वशकर, अहंकार और मन कहां है ? कौन है जो मनको वश करे ? राजाने कहा--हे अष्टावक्र ! तू कौन है ? कहा--मैं ब्रह्म हूँ। ऋषभदेवने कहा--ब्रह्म एक है कि; अनेक ? अष्टावक्रने कहा--तेरी बुद्धि हँसने योग्य है, जो ब्रह्म है तो एक अनेक क्या है ? तू भी कह, मैं पूर्ण ब्रह्म

हूँ। ऋषभदेवने कहा--जबतक कामादि पाँचोंका त्याग न करे तबतक सुख नहीं पाता। अष्टावक्रने कहा--जब तू ही चैतन्य है तो चार और पांच क्या ? ऋषभदेवने कहा--रूप तेरा क्या है ? कहा--जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिसे परे तुरीया मेरा रूप है ? तिनकी अपेक्षासे तुरीया है, मैं चैतन्य तुरीयाते भी अतीत हूँ। मुझमें गिनती नहीं। दत्तने कहा--मैं चैतन्य देशकाल वस्तुसे अतीत हूँ। अष्टावक्रने कहा--देशकाल वस्तु किसमें है ? दत्तने कहा--स्वप्नवत् देशकाल वस्तु मुझ चैतन्यमें कल्पित प्रतीत होते भी स्वप्नद्रष्टावत् मैं चैतन्य अद्वितीय हूँ। कल्पित प्रपञ्चका मुझ चैतन्य अधिष्ठानके साथ क्या सम्बन्ध है ? जो सम्बन्ध है तो कल्पित तादात्म्य सम्बन्ध है। मैं पूर्ण हूँ। अष्टावक्रने कहा--जहां अतीत कहना है, तहां द्वैत है, जहां पूर्ण है तहां अपूर्ण भी है। तेरा वचन हँसने योग्य है। जब सर्वात्मा ही है तो पूर्ण अपूर्ण अतीत भी प्रत्यक् आत्मा ही है। दत्तने कहा--निरहंकार होना भी अहंकार है। कहो निरहंकार कैसे होवे ? अष्टावक्रने कहा--ऋषभ-देवसे पूछ, जो अपने शिष्यको ऐसा भय दिया है कि, स्वतः सिद्ध प्रथम प्राप्त आत्मस्वरूपको भी जान नहीं सकता। दत्तने कहा--हे ऋषभदेव ! मैं तेरा शिष्य होता हूँ उपदेश कर। ऋषभदेवने कहा--हे दत्त ! चौबीस गुरुसे तुझको निश्चय न हुआ तो मुझसे कैसे होगा ? दत्तने कहा -मैं चैतन्य आप ही गुरु हूँ, आपही शिष्य हूँ, कहे तो शिष्य सहित तुझे भस्म करूं। ऋषभदेवने कहा--जब सूक्ष्म अहंकार नाश हुआ तब आपसे आप भस्म होगा पर अहंकार तब नाश होय जब जाने सर्व शिव है तो स्थूल सूक्ष्म अहंकार कहां है ? दत्तने कहा--जब सर्व शिव है तो कैसे जाना जावेगा कि, सर्व शिव है तथा अहंकार

नाश हुआ वा नहीं क्योंकि सर्व शिव है और अहंकार नाश हुआ है, इस चिंतनके चिंतन करनेवालेको तथा चिंतनीयको शिव होनेसे । इसी हेतु अवाच्यपद है । अष्टावक्रने कहा--मन वाणीका वाच्य भी आत्मा ही है और मन वाणीका अवाच्य भी आत्मा ही है; जैसे-स्वप्न द्रष्टा मन वाणीका वाच्य स्वप्न भी आप है और अवाच्य भी आप है इससे अद्वैत है ।

योग

वसिष्ठने कहा-मुक्त हुआ चाहे सो योग करै । अष्टावक्रने कहा--सत् कहो योग कौन करै ? सत् और असत्के योगका योग नहीं क्योंकि आत्मासे भिन्न सर्व असत् है और आत्मा सत् है, सो कैसे योग करनेके योग्य होवे ? तम प्रकाशके समान दोनोंका सम्बन्ध नहीं । वसिष्ठने कहा-तुम बालक हो, किया नहीं, इससे तुम्हारा मन शुद्ध हुआ नहीं । अष्टावक्रने कहा--बिछोहा हो तो मिलाप करना, मिलापका मिलाप क्या करना है ? उसका तो सदा योग ही है । आत्मामें विकाररूप संसार कदाचित् भी है नहीं । इससे संसारका सदा वियोग भी है । कहो आगे ही स्वतः सिद्ध योग वियोगको मैं अब नवीन क्या करूँ । जो मन वाणी शरीरके कर्त्तव्यसे सिद्ध होता है सो अनित्य है; सो अनित्य देहरूप संसार भी नित्य प्राप्त है और नित्य ब्रह्मरूप आत्मा भी नित्य प्राप्त है वा दुःखकी निवृत्ति सुखकी प्राप्ति वास्ते योग करना है सो सुखरूप आत्मा नित्य प्राप्त है और संसाररूप दुःखकी निवृत्ति भी नित्य प्राप्त है । इससे कल्पित दुःखकी निवृत्तिरूप भी आत्मा ही है सो आत्मा अपना स्वरूप है, स्वरूपकी प्राप्ति वास्ते योगका कुछ काम नहीं । सो कहो दोनोंमें किसकी प्राप्ति वास्ते यत्न करना ? इस

प्रकार योग निष्प्रयोजन है; तुम पद्मादि आसनोंका योग लिये शिष्योंको उपदेश करते हो और प्राणोंका रोकना कहते हो मैं कहता हूँ, अपनी रुचिके अनुसार आसन करे वा न करे, लंबा होयकर सोय रहे वा बैठा रहे वा चले वा खडा रहे; प्राणोंको भी सुख नहीं, आने जाने देवे रोके नहीं, मनको भी पीडन क्यों करे, पर मन वाणी सहित मन वाणीके गोचर अगोचरको शिवरूप आत्मा जाने, यह जानना ही योग्य है करना कुछ नहीं । जो कुछ है आगे सिद्ध है ।

योगीको खेचरी मुद्राद्वारा अमृत पीना

जो कहते हैं लंबिकाको छेदकर बढाके योगी जब खेचरीमुद्रा करता है तब अमीरस पीता है; हे साधो ! सो अमीरस यह है कि, जब योगी खैंचकर दशवें द्वारमें रोकता है, तब शरीर अग्निके समान उष्णरूप हो जाता है तिस उष्णतासे शीशमें जो मेद मज्जा रुधिर है, जो बर्फके समान जमा रहता है सो प्राणोंके रोकनेकी उष्णतासे पूर्वोक्त रुधिर मज्जा आदि नीचे गिरता है, तिसको योगी अमृत जानकर पीता है । इससे अज्ञानी है क्योंकि अंतर बाहर एक ब्रह्म ही है सोई हुआ अथाह समुद्र, तिसको त्यागकर एक बूँदपर निश्चय करता इसीसे अज्ञानी है । वसिष्ठने कहा--तूने संसारको भ्रष्ट किया है । दत्तने कहा--मैं चैतन्य नामरूप संसारसे भ्रष्ट हूँ नाम अतीत हूँ । योगीको योग्य है कि, सोवे नहीं तथा वचन न करे, आसन करे, प्राणोंके मार्गको देखता रहै, इत्यादि अनेक साधन करता रहै पर यह नहीं जानता कि; निर्विकार शिवात्मामें बिकार मिलावना आत्मघात है पंचत्व ही रज्जुसर्पवत् मिथ्या है एक प्राणरूप पवनका

क्या चलता है। कपिलाने कहा--जो ईश्वरको आत्मासे कुछ भिन्न जाने सो योग करे. जिसने सर्व ईश्वर आत्मा जाना है सो चुप रहे। दत्तने कहा--वचन और तूष्णीं दोनों मेरे स्वरूपमें नहीं और मैं ही सर्वरूप भी हूँ इससे दोनों सम हैं। अष्टावक्रने कहा--न कहता हूँ न तूष्णीं होता हूँ और आप ही कहता भी हूँ। आप ही तूष्णीं भी होता हूँ सारांश यह कि, द्रष्टा दर्शन दृश्यादि त्रिपुटी भी मैं चैतन्य ही हूँ और त्रिपुटी रहित भी मैं ही हूँ स्वप्नद्रष्टावत् किसी पदमें भी बंधमान नहीं हूँ।

नारद

तिस समय नारद बांसुरी विषे नारायण नारायण गाते हुए आये सबने कहा--तूष्णीं हो नारदने कहा--जहां संत इकठ्ठे होते हैं, तहां आत्मनिरूपण करते हैं; तिससे मुमुक्षुओंको परमार्थ प्राप्त होता है, तूष्णींसे क्या सिद्ध है ? दत्तने कहा--स्वतः ही नारायण है तो कहनेसे क्या लाभ है ? नारायणको तूने भुलाया है, नारायणका और तेरा वियोग हो गया है; तू नारायणको ढूँढता फिर, हमारे स्वरूपमें भुलावना चिन्तना संयोग वियोग दोनों नहीं। नारदने कहा--वैकुण्ठमें भी इस सभाकी चर्चा हुई थी सो संतोंके दर्शनवास्ते विष्णु भी आते हैं। दत्तने कहा--असत् मत कह, तेरे वचनसे लोग हँसेंगे क्योंकि व्यापक विष्णु चैतन्य आत्मा विषे आवना जावना कहां है ? हम विष्णुके मिलनेकी इच्छा नहीं रखते क्योंकि, विष्णु हमारा आत्मा है हम विष्णुके आत्मा हैं। अपने आत्माके मिलने जुदा होनेकी इच्छा कोई नहीं करता।

विष्णु

तिस समय विष्णुने आकर कहा--जिसने मुझ व्यापक चैतन्य विष्णुको व्यापक जाना है सो अचिन्त्य मेरा रूप

है, तिस विषे और मेरे विषे कुछ भेद नहीं। दत्तने कहा--तुझको जाने विना प्रथम क्या तेरा रूप नहीं ? क्या घटाकाशको महाकाश जाने विना प्रथम घटाकाश क्या महाकाश नहीं ? हे नारद ! परमेश्वर आप कहता है सर्व विष्णु है. तू आपको तिससे भिन्न नारद दास जानता है। जब सर्व विष्णु है तब नारद कहां है। नारदने कहा--जब सब विष्णु है तो नारद भी विष्णु ही है, दास स्वामी भी विष्णु ही है।

जडभरत

जडभरतने आकर कहा--सर्व जडभरत है। विष्णुने कहा--न जडभरत न विष्णु एक मैं चैतन्य अद्वैत हूँ। पर कहो जडभरत शब्दका अर्थ क्या है ? कहा--कि, जड नाम अफुर चैतन्यका है, भर नाम आनन्द पूर्णका है, तकारका सत अर्थ है इससे सत् चित, आनंद जडभरतका अर्थ है।

जडभरत और एक योगीका संवाद

जडभरतने कहा--हे सभा ! एक समय मैं विचारता हुआ पर्वतमें गया, तहां एक योगीको देखा। मैंने नमस्कार करके प्रश्न किया कि, हे योगी ! तेरा स्नान क्या है ? योगीने कहा--निरहंकाररूपी जलसे स्नानकर जीवत्व रूपी मैलको धोया है। मैंने कहा--भस्म तेरी क्या है ? उसने कहा--अपने नित्य सुख चिद्रूप आत्मा पृथक् प्रतीति रूपी काष्ठको निज स्वरूपके सम्यक् ज्ञानरूपी अग्निसे जलाकर भस्म लगाई है। मैंने कहा--आसन तेरा कौन है ? कहा--सर्व मायासे लेकर देहपर्यंत दृश्य जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, संहारका आसन नाम आधार मैं चैतन्य हूँ, मुझ चैतन्यका आधार कोई नहीं, इसीसे स्वयंप्रकाश हूं, जैसे--फेन बुद्बुदे तरंगादिकोंकी उत्पत्ति स्थिति संहा-

रका जल आसन है. जलसे स्वर्णका आसन भूषण है वा तरंगादिकोंका आसन जल है इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं वा सर्व कार्य वर्गमें कारण स्थित होता है सर्व कार्य कारण नामरूप प्रपंच मेरा आसन है वा अचल स्थिति ही मेरा आसन है । मैंने कहा--आना जाना तेरा कहांसे हुआ है ? उसने कहा--आकाशके समान पूर्ण हूँ, मुझ चैतन्यमें आना जाना नहीं, जैसे--सुवर्णका भूषणोंमें आना जाना नहीं, जैसे--रज्जुका सर्पादिकोंमें आना जाना नहीं । मैंने कहा--प्राण अपानका इकट्ठा करना क्या है ? उसने कहा-एक जीव एक ईश्वर दोनोंको एक जाना है, जैसे--घटाकाश और महाकाश एक है, यही प्राण अपानका इकट्ठा करना है । मैंने कहा--इडा पिंगला सुषुम्नाका कैसे अभ्यास किया है ? कहा--इडा जीव, पिंगला ईश्वर, सुषुम्ना ब्रह्म यह मुझ चैतन्यसे प्रकाश राखते हैं, मैं स्वयंप्रकाश हूँ । मैंने कहा--धारणा कहो ? कहा--सर्व मैं हूँ । मैंने कहा-सोऽहंका अर्थ क्या है ? कहा--ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत अंतर बाहर पूर्ण हूँ । मैंने पूछा--कि, नासिका दृष्टि क्या है ? कहा--मायाकर कल्पित प्रपंचकी उत्पत्तिसे पूर्व जो मैं चैतन्य अवाच्यपद हूँ सो अब भी वही हूँ । वा नाश नाम अभावका है सो भाव पदार्थोंकी तथा मनकी कल्पनाके प्रथम निर्विकार स्थित हूँ, यही नासादृष्टि मेरी है मैंने पूछा--कि, त्रिपुटी क्या है ? कहा--सत्त्व, रज, तम इस त्रिपुटीका साक्षी चैतन्य मैं हूँ । मैंने कहा--योगीका शरीर कभी गिरता नहीं यह क्या जानना ? कहा--प्रकृति पुरुषके संयोगकर जगत्की उत्पत्ति करनेवाला जो चैतन्य योगी है सो अशरीर होनेसे गिरता नहीं, वा जैसे--देहीका यह देह शरीर है तैसे पूर्वोक्त मुझ चैतन्य योगीका माया शरीर है सो माया अपने देहादि कार्यकी अपेक्षासे अडिग

अग्रिम है इससे योगीका शरीर अगिड कहा है। वा शरीर नाम स्वरूपका है सो पूर्वोक्त चैतन्य योगीका स्वरूप अगिड है, वा पंचभूतरूप देहसे अतीत हूँ। मैंने कहा--मैं तेरा शिष्य होता हूँ। कहा--आगे ही सर्व दृश्य मुझ द्रष्टा गुरुका सेवक है अब क्या शिष्य होगा? पुनः मैंने कहा--चौका किसका किया है ? कहा--चतुष्टय अंतःकरणका चौका किया है, नाम मायामात्र जाना है। मैंने कहा--चूल्हा रोटी करनेका तेरा कौन है? कहा--अहं त्वं वा जीव ईश दोनों ईंटा बनाकर "मैं ब्रह्मात्मा हूँ" यही रोटी करता हूँ। सारांश यह कि, जीव भाव तथा ईशभाव त्यागके अवाच्य पदमें स्थिति की है। मैंने कहा--अन्न तेरा क्या है? कहा--ज्ञान विज्ञान दोनों मेरे अन्न हैं। पूँछा-खाना तेरा क्या है ? कहा--विज्ञान। मैंने कहा--ईंधन तेरा क्या है? कहा--सर्व भोगोंकी अचाहना ईंधन किया है। मैंने कहा--भगवान्‌को भोग क्या लगता है? कहा--देह अभिमान प्रत्यक् आत्मा भगवान्‌को भोग लगाकर स्वस्वरूप हुआ हूँ। सारांश यह कि, मैं देहादि संघात नहीं, किन्तु मैं प्रत्यक् आत्मा हूँ। मैंने कहा--सोना तेरा क्या है ? कहा--सर्व दृश्यमान रूप मेरा है, जैसे--स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्न सृष्टिमें शयन कर रहा है; नाम व्याप रहा है। मैंने कहा--तू मेरा गुरु है। कहा--मैंने गुरु शिष्य भावको त्यागा है। पुनः ऐसे दुःखको मुझ चैतन्यमें मत चितव।

उसने पूछा--तेरा नाम क्या है? मैंने कहा--जडभरत ! उसने कहा--मेरे साथ तेरा संग नहीं होगा क्योंकि, जड मृतकको कहते हैं, मैं चैतन्य जीवता हूँ; तू उसके संग रह जो जड भावको न त्यागे। सारांश यह कि, जो आपको देहादिक जड संघात माने, यथायोग्य ही संग चाहिये। जड चैतन्यका क्या संघ है ? जड तू अपने

जडभावको त्यागे; मैं अपने चैतन्यपनेको त्यागूं तब एकता हो अन्यथा नहीं। हे सभा! अमृतरूप तिसका वचन सुनकर मेरा जो जडभरत पनेका अभिमान था सो निवृत्त हुआ।

वामदेव

पराशरने कहा-हे मैत्रेय! इतनेमें वामदेव आया और कहा-अस्ति भाति प्रियरूप नारायण आत्मा ही है। हे मित्रो! नारायणसे भिन्न जो तुमने निश्चय किया है तिसका त्याग करो। दत्तने कहा-नारायणका रूप क्या है? कहा-अन्तर साक्षी रूप कर जो मन आदिकोंको प्रकाश करता है और जो मायाकर एकसे अनेक हुआ है, पर वास्तवसे एक ही ह इंद्रजालीवत्। दत्तने कहा-मुझे चाहना एककी भी नहीं अनेकको क्या करूँगा। कपिलने कहा-जो सर्व तू ही है तो एक अनेक भी तू ही है।

दुर्वासा

पुनः दुर्वासा आया, पर अहंकाररूपी अग्निमें जलता था। दुर्वासाने कहा--सर्व भजन गोविंदका करो, नहीं तो सर्वको भस्म करूँगा, जानते तुम नहीं हो। मैं रुद्र हूँ। दत्तने कहा--रुद्र रुदनको कहते हैं इससे रुदन कर। दुर्वासाने कहा--हे दुष्ट! मैंने सुना है कि, तूने सर्व संसारको भ्रष्ट किया है। पहले तुझे भस्म करता हूँ। दत्तने कहा--घटके आदि माटी, अंत माटी, मध्य माटी, अपने फूटनेमें घटको क्या भय है? जैसे--तरंगके आदि भी जल है मध्य भी जल और अंत भी जल है तो तरंगके निज परिच्छिन्न स्वरूपके फूटनेमें क्या भय है? तैसे ही इस पञ्चभूतरूपी देहके आदिमें भी चैतन्य आत्मा है अंतमें भी चैतन्य आत्मा है और मध्यमें भी चैतन्य आत्मा है शरीरके भस्म होनेसे क्या भय है? मैंने तुझ

सहित सर्व नाम रूप प्रपंचको ऐसा भस्म किया कि, वह भस्म भी नहीं मिलती; जैसे--स्वर्ण तथा जलादि सम्यक् दृष्टिवान् पुरुषने भूषणोंको तथा फेन बुद्बुदे तरंगादिकोंको भस्म किया है, नाम अत्यंताभाव जानता है तैसे ही अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे पृथक् नामरूप प्रपंचका सम्यक् अपरोक्ष बोधकर ऐसा भस्म किया है मानो तिसका अत्यंता भाव जाना है, यह निश्चय जिसको है सोई नाम रूपसे भ्रष्ट है। दुर्वासाने कहा--तुम सभी शिष्य मेरे होवो, नहीं तो शाप दूँगा। विष्णुने कहा--सर्व उपाधियोंका मूल दत्त है, तिसीको शाप दे। दुर्वासाने कहा--हे मित्रो! तुम कर्म करो भ्रष्ट मत होवो। दत्तने कहा--हम अकर्म हैं, कर्म कैसे करें। कर्म देह मनादि संघातके हैं, सो स्वतः सिद्ध कर्म संघातसे होता है, करनेसे नहीं। दुर्वासाने कहा--हे विष्णु! कर्मोंकर जगत्का ठाट है जो तुझे यह जगत्का ठाट रखना है तो कर्मोंकी प्रधानता राख। विष्णुने कहा--स्वप्न प्रपंचका किन कर्मोंका ठाट है, अविद्या रूप निद्रासे ही स्वप्न ठाट है। जहां अविद्या है तहां कर्म आपसे आप है, प्रधानता करनेसे नहीं; परन्तु कर्मकांड, उपासनाकांड, ज्ञानकांड, अधिकारी, काल, अवस्था भेदसे स्वस्व फलको सम्यक् देते हैं। ज्ञान कोई जगत् के व्यवहारको बाधा करने वाला नहीं किन्तु कर्मादि वस्तुका सम्यक् स्वरूप बोधन करता है। ज्ञानी कर्मकर्ता भी अकर्ता है और अज्ञानी कर्म अकर्ता भी कर्ता है, इससे सर्वको अपना स्वरूप जान जो शांत होवे। दत्तने कहा--कर्म रूप जगत् मुझ चैतन्यसे उत्पन्न होता है और मुझमें ही लीन होता है, पर मैं चैतन्य ज्योंका त्यों निर्विकार हूँ, स्वप्नद्रष्टावत्। दुर्वासाने कहा--

सर्वको भस्म करे विना न जाऊँगा । दत्तने कहा–जिन्होंने आपा अहंकार प्रथम भस्म किया है सोई दूसरेको भस्म कर सकता है, अन्य नहीं जो तुझसे भय राखता होवे तिसको भस्म कर । मैं भय नहीं रखता हूँ, दूसरा मुझ चैतन्यसे भिन्न तुझसे आदि लेकर सर्व जगत् रज्जुसर्पवत् मिथ्या प्रतीतिमात्र है, कल्पित पदार्थ अधिष्ठानको कैसे भस्म करेंगे ? उलटा अधिष्ठानके अज्ञानसे अधिष्ठानमें कल्पित पदार्थ भस्म नाम निवृत्त हो जाते हैं। इससे अपने भस्म होनेका फिक्र कर, नहीं तो भस्म हो जावेगा; तुझको बचनेका उपाय यही है, जान मैं ब्रह्म स्वरूप आत्मा हूँ यही कथन चिन्तन कर । ब्रह्मात्मासे आपको भिन्न मानेगा तो क्षण मात्रमें भस्म हो जावेगा, नाम मिथ्या हो जावेगा । दुर्वासाने कहा--हे जड भरत ! तूने जड पदका नाश करके पुनः साथ क्यों रखता है ? जड भरतने कहा–जैसे तू पूर्ण होकर खोटको संग रखता है। हे दुर्वासा ! जो मैं चैतन्य इस जड दृश्य वर्गको संग नाम स्फुर्ण नहीं करूँ तो इसकी स्फूर्ति कैसे होवे ? क्योंकि जडको तो जड स्फुर्ण नहीं करूँ, करता दूसरा यह जड दृश्यका उपादान कारण जो माया सो भी जड है। मुझ चैतन्य अवाच्य पदमें माया विना वचन विलास नहीं होता इससे वचन विलास करने वास्ते मायाको संग रखता हूँ, स्वतः नहीं। दुर्वासाने कहा–वो सभा मैं नहीं पावता जो तुम्हारी सभामें आया हूँ. क्योंकि, मार्ग तुम्हारा भ्रष्ट है। दत्तने कहा–ठीक कहा तूने, जन्म मरण रूप संसारमार्ग हमारा भ्रष्ट नाम नष्ट भया है और स्वरूप सम्यक् अपरोक्ष जाननेवत् जाना है। तुझ अज्ञानीका जन्म मरण संसार नष्ट नहीं हुआ इससे तू अभ्रष्ट है।

मीमांसा

इतनेमें मीमांसा आया, दुर्वासा प्रसन्न हुआ और कहा-हे मीमांसा ! तू आगे सन्मुख हो, मैं सहायता करूँगा। मीमांसाने कहा-कर्म विना कार्य सिद्ध नहीं होता। दत्तने कहा-कार्य कारणसे रहित मैं चैतन्य आत्मा स्वतःसिद्ध स्वयं प्रकाश हूँ, मुझको कर्मोंकी अपेक्षा नहीं, जैसे सूर्य और स्वप्नद्रष्टा अपने कार्य नाम प्रकाशमें जगत् रूप कर्मकी अपेक्षा नहीं राखते। जगत् कोटिमें भी कहो तो कर्तासे कर्म सिद्ध होता है, कर्मसे कर्ता सिद्ध नहीं होता, यह सर्वको प्रसिद्ध है, जैसे नेत्ररूप कर्तासे नील पीतादिरूप कार्यकी सिद्धि होती है रूपसे नेत्र सिद्ध नहीं होते। हे मीमांसा ! मन वाणी शरीरसे कर्म होते हैं मुझ चैतन्यमें मन वाणी शरीरादिक ही नहीं तो कर्म कहां है ?

कर्मकी आवश्यकताकी अवधि ?

मीमांसाने कहा-तुम ही कहो शरीर होते कर्मोंसे छूटना होगा ? कदापि नहीं। इससे स्वरूप प्राप्ति वास्ते कर्म करो। दत्तने कहा-अकर्म रूप आत्माके बोधसे कर्मोंसे छूटता है, शरीर होते ही इससे अकर्म रूप आत्मकी प्राप्तिवास्ते कर्म है जब स्वरूप जाना तो कर्मसे क्या प्रयोजन है ? मीमांसाने कहा-हे दत्त ! बीज और वृक्षमें क्या भेद है ? दत्तने कहा-यहां दृष्टांत नहीं लेना साध्यकी प्राप्ति हुए साधनोंकी कुछ अपेक्षा नहीं, जैसे भोजनके सिद्ध हुए तिसी कालमें रसोईके साधनोंकी अपेक्षा नहीं है। हे मीमांसा ! किसी पुरुषको किसी देवस्थानोंमें जाना है और तीन मंजिलोंसे आगे देव-स्थान है, जब एक मंजिल चलकर दूसरी मंजिलको पहुँचता है, तो प्रथम मंजिलके कर्तव्यसे रहित होता है जब तीसरी मंजिलको पहुँचता है, तब दूसरी मंजिलके

कर्तव्यसे छूट जाता है; तैसे ही जब चतुर्थ मंजिलको नाम देवस्थानको पहुँचता है तबतक कृत कृत्य होता है परन्तु तीन मंजिलोंको तै करे बिना कृतकृत्य नहीं होता तब पिछले सर्व मार्गके पूर्व को अनुभव कर्तव्यसे कृतकृत्य होता है तिससे आगे कर्तव्य नहीं । पुनः पिछले मार्गोंका तथा मार्गोंके सुख दुःखका तथा मार्गोंमें स्थित रमणीक अरमणीक पदार्थोंका स्मरण तो होता है परन्तु यत्न नहीं होता है । तैसे कर्म उपासना वृत्ति ज्ञानरूपी तीन मंजिलोंसे परे ब्रह्मरूप आत्मदेव है; तिसकी प्राप्तिवत् प्राप्तिसे एक कर्म क्या तीनों काम निष्प्रयोजन हैं पूर्वोक्त दृष्टांतवत् । तैसे स्वयं स्वरूप आत्मा देवस्थान है, तिसकी प्राप्तिमें कर्मकांड, उपासना, ज्ञानकांड तीन मंजिल हैं। जब निष्काम कर्म कर अंतःकरणकी शुद्धिरूपी पहिली मंजिलमें पहुँचा तो तिससे निष्कर्तव्य हुआ, फलकी प्राप्ति होनेसे । तैसे ही सगुण वा निर्गुण उपासना करनेसे अंतःकरण निश्चलतारूप दूसरी मंजिलमें पहुँचता है पुनः तिससे निष्कर्तव्य होता है तैसे ही सम्यक् ज्ञानकर अज्ञानकी निवृत्तिरूप तिसरी मंजिलपर पहुँचता है। तब तिसके यत्नसे रहित होता है यह नहीं कि, पीछे लौटकर फिर यत्न करता है किन्तु नहीं करता क्योंकि, तत्त्व प्रयत्नके फल प्राप्त होते हैं। तिससे पश्चात् सब दुःखकी हानि और परम आनंदकी प्राप्तिरूप मोक्षरूप देवस्थानको प्राप्त होता है । यह व्यवस्था सब विद्वानोंके अनुभवसिद्ध है इससे स्वरूप प्राप्ति पश्चात् तीनों कांड निष्फल हैं । मीमांसाने कहा--कर्मोंसे जगत् होता है तथा उत्तम सुखरूप लोकोंकी प्राप्ति होती है । कपिलने कहा--कर्मसहित जगत्की चैतन्य आत्मासे (स्वप्न द्रष्टासे स्वप्नवत्) उत्पत्ति होती है, दूसरा जिसको लोकोंमें जानेकी

इच्छा हो सो कर्म करो, जिसको इच्छा नहीं सो मत करो, परन्तु कर्म कर्ता कौन है ? यह विचार मुमुक्षुको अवश्य कर्तव्य है । मीमांसाने कहा–हे साधो ! कायिक, वाचिक, मानसिक तीन प्रकारके कर्म हैं आत्मानात्माका विचार मानसी कर्म है । विचारना न विचारना यह भी मानसी कर्म है । जो कुछ कथन करोगे वा न करोगे सो वाणीका कर्म है, जो कथन चिन्तन करोगे वा न करोगे सो मानसी कर्म है । खान पानादिक शयन जन्म मरणादिक चेष्टा करोगे वा न करोगे सो शारीरिक कर्म है । कहो किस कालमें अकर्म हुआ ? सारांश यह कि, यह देह ही कर्मरूप है, कर्मसे कर्म अतीत कैसे होता है । दत्तने कहा--जो शरीर रूप होवेगा सो कर्मरूप भी होवेगा, शरीरसे ही रहित अशरीरी आत्मा पूर्वोक्त तीन प्रकारके कर्मोंका साक्षी कर्मरूप कैसे होवेगा ? जैसे--देही देहरूप नहीं होता; तैसे कर्मरूप संसारसे मैं प्रत्यक् आत्मा कर्मका प्रकाशक भिन्न हूँ । कर्ताके अधीन कर्म है इससे जड है । प्रसिद्ध कर्ता, कर्म भिन्न भिन्न होते हैं एकरूप नहीं । इसीसे कर्मोंका सार कर्ता है कर्ता कर्म करो वा न करो । हे मीमांसा ! तू चैतन्य सर्वका कर्ता होकर कर्मरूप क्यों होता है ? मीमांसाने कहा--कर्म विना चंडाल होता है । ऋषभदेवने कहा-चंडाल आत्मासे कब भिन्न है जो कर्मके त्यागसे चंडाल होता है तो मैं भी चंडाल हूँ चंडाल नाम ब्रह्मरूप आत्माका है क्योंकि कर्मरहित आत्मा ही है; अन्य नहीं । इससे आत्मा चंडाल हुआ । मीमांसाने कहा--इन्होंने संसारको भ्रष्ट किया है । दत्तने कहा--ठीक कहा, तने अपने स्वरूपसे भिन्नको मिथ्या जाना है । हे मीमांसा ! जो स्वरूपसे अप्राप्त है वही भ्रष्ट है, पर कहो कर्म स्वप्र-

काश है ? कि पर प्रकाश है ? मीमांसाने कहा--यह दोनों कथन चिन्तन मन वाणीका कर्म है । जडभरतने कहा--"यह मन वाणीका कर्म है" यह कथन चिंतन अंतर जिसने जाना, सो आत्मा स्वप्रकाश अक्रिय है कर्मरूप नहीं ।

पराशरने कहा-हे मैत्रेय ! मीमांसाका प्रयोजन यही था कि, सर्व पालन कर्मोंका करे क्योंकि देहाभिमान स्थूल अहंकारसे कर्म नहीं होते सूक्ष्मसे होते हैं, स्थूल शरीरसे भिन्न आत्माको कर्मी भी मानता है क्योंकि शरीर रहित हुआ ही यह जीव कर्मोंका फल स्वर्गादिकोंमें जायकर भोगता है इन शरीर सहित नहीं । परन्तु आत्माको असंग, अक्रिय, नित्य, मुक्त इत्यादि विशेषणोंयुक्त विद्वान्‌वत् नहीं जानता, इसीसे भावी जन्मको पाता है । कर्मोंसे रहित होना अत्यंत कठिन है । मैत्रेयने कहा--सर्व कर्मोंकी आत्मामें आरतीयोंको पालना मीमांसा अनुसार बनती है परन्तु आत्माविषे रति, आत्मा कर संतुष्ट आत्माचारी क्या करे ? पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! वचनसे निश्चय जाय तौ निश्चय नहीं तो कपट है । शरीर नाश होय तो होय पर निश्चय न त्यागे; इसी बातपर एक कथा सुन ।

एक राजपुत्रकी कथा--(जिसको गर्भमें ही आत्मज्ञान हुआ था)

कर्मभूमि भरतखंडविषे एक राजा था, उसकी स्त्री गर्भवती थी, जब दश मास बीते तब पूर्व अनेक जन्मोंके पुण्यके प्रतापसे तथा सम्यक् प्रतिबंधकके अभावसे तथा पूर्व जन्मोंमें किये जो श्रवण मनन निदिध्यासन ज्ञानके साधन वा अनेक जन्म संस्कारोंके वशसे तथा पूर्व किये सगुण वा निर्गुण अनेक प्रकारकी उपासनाके बलसे गर्भमें ही हुआ है सम्यक् अपरोक्ष ज्ञान जिस बालकको, सो पूर्व करे वेद अध्ययनके संस्कारकी प्रगटतासे गर्भमें ही वेद उच्चारण करने लगा । तिसकी अत्यंत धर्मात्मा माताने

सूक्ष्म दृष्टिसे वेद्ध्वनि सुनकर प्रश्न किया-कि; हे पुत्र! तू कौन है ? पुत्रने कहा-मैं सत् चित् आनंद आत्मा हूँ। माताने कहा-तू पिताके शुक्रसे उत्पन्न हुआ है । पुत्रने कहा हे-माता! जो पिता माताके शुक्रसे उत्पन्न हुआ है सो यह जड शरीर है । मैं शरीर नहीं, केवल चैतन्य मात्र अरूप हूँ; अज अक्रिय अविनाशी आत्मा हूँ, भूत भविष्य वर्तमानमें एकसा पूर्ण हूँ, माता पिताके शुक्रसे कैसे होऊँ ? माताने कहा-मुझसे अपकर्म कुछ नहीं हुआ, तू पिताके शुक्रसे क्यों मुकरता है ? पुत्रने कहा-मैं शुक्रसे मूल ही नहीं क्योंकि यह शरीर काष्ठकी पुतरीके समान नाम रूपात्मक जड है और मैं चैतन्य नाम रूपसे रहित हूँ। हे माता ! जो नाम रूप शरीरसे रहित होवे उसको कैसे कहिये कि अमुकका पुत्र है ? तेरी दृष्टि शरीरपर है, पर इसको स्वप्न तथा मृग तृष्णाके जलवत् जान। माताने कहा, पिताके शुक्रसे मुकरता है तो शास्त्रसे भ्रष्ट होवेगा। पुत्रने कहा-सत् कहा, तूने जो नाम रूप स्वरूप नहीं राखा सो शास्त्र जगत्से भ्रष्ट है। हे माता ! शास्त्र तिसको दंड देता है, जिसने आपको शरीर माना है ! जिसने इस मलीन शरीरका अभिमान सम्यक् त्यागके अपने आत्म-स्वरूपको जाना है तिसपर शास्त्रकी विधि नहीं। माताने कहा-हे पुत्र ! तू कौन है? देवता कि, पिशाच कि, मनुष्यादिक वा कोई और है पुत्रने कहा-हे माता ! पूर्वोक्त शब्द और शब्दोंके अर्थसे रहित हूँ। सर्वका प्रकाशक हूँ और सर्वरूप भी मैं चैतन्य ही हूँ। स्वप्नद्रष्टावत्। माताने कहा-जो तू ऐसा था मेरे उदरमें क्यों आया ? पुत्रने कहा-हे माता ! तू विचारके नेत्रोंसे अंध है ! क्या आदि मैं चैतन्य तेरे उदरमें न था. जो अब आया हूँ ? मैं चैतन्य आकाशके समान सर्व व्यापक हूँ, मुझमें आना जाना

नहीं। सत् चित् आनंद आत्मा मेरा स्वरूप है, मुझको आत्म-देव कहते हैं। जन्म मरणका कारण जो देहाभिमान पूर्वक कर्मोंका सेवन है तिससे अतीत हूँ। मेरा नमस्कार मुझको है। माताने कहा–योग कर जो मलिनतासे छूटे। पुत्रने कहा–योगका मुझ चैतन्यमें वियोग है। जो मुझ चैतन्यमें मलिनता होवे तो तिसके दूर करनेवास्ते योगादि करूँ, पर मुझमें मलिनता है नहीं। इस हेतु योगसे क्या प्रयोजन है? जैसे-आकाशमें मलिनता हो तो यत्न भी करे, जो नहीं तो कुछ नहीं। मैं चैतन्य आत्मा नित्य मुक्त हूँ। तुझे भ्रमने आच्छादन किया है। अपने नित्य मुक्त, नित्य प्राप्त आत्म स्वरूपको पानेवास्ते योग ध्यानादिक हैं सो भ्रम है। सत् चित् आनंद आत्मरूप मेरा स्वतः प्रकाशमान है करना कुछ नहीं जो करे सो भ्रमी है। हे माता! मुझ स्वरूप असंग चैतन्यका किसी वस्तुके साथ योग नाम जुडना नहीं और कोई वस्तु मुझ चैतन्यके साथ जुडती नहीं, मैं आपसे आप असंग रूप हूँ। किससे जुडूं मुझसे कौन जुडे? सर्वसे अयत्न ही जुड भी रहा हूँ अजुड भी रहा हूँ। सर्व मुझसे अयत्न ही जुड रहे हैं, यत्न नहीं, जैसे- स्वरूपसे ही असंग आकाश किस वस्तुसे जुडे नाम संबंध करे वा न करे, कौन वस्तु है जो तिससे जुडे और न जुडे किंतु कोई नहीं। सर्व वस्तुमें जुड भी रहा है, अजुड भी रहा है। सर्व वस्तु तिससे भी जुड रही है, जैसे--स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्न पदार्थोंसे अयत्न जुड भी रहा है, अजुड भी रहा है। कल्पित सर्व स्वप्नपदार्थ स्वप्नद्रष्टासे अयत्न ही सबंध पा रहे हैं, यत्नसे नहीं। माताने कहा--कर्मों विना सुख नहीं। पुत्रने कहा--हे माता! जिसके आदि अंतमें दुःख है, मध्यमें सुख कैसे होगा? हे माता! यह सर्व नाम रूप संसार कर्म रूप है, अनादि कालका

तुझको प्राप्त होता चला आता है, आज तक इस संसार रूप कर्मसे तुझको सुख न हुआ तो आगे कैसे सुख होगा ? किन्तु नहीं होगा। उलटा जन्म मरणादि दुःख है। इसीसे तू आपको अकर्म रूप आत्मा जान। यह सुन माता तूष्णीं हुई। पुत्रने कहा--तूष्णीं मत हो, जो तुझको निश्चय हो सो कह और सुन। हे माता ! यह कोटानकोट ब्रह्मांड मुझ चैतन्यसे प्रगट पडे होते हैं पुनः मुझमें जलतरंगवत् लीन हो जाते हैं। मैं ज्योंका त्यों एक रस निर्विकार हूँ सोई चैतन्य तेरा स्वरूप है। माताने कहा--अंतरसे बाहर आ, संतके दर्शनसे कल्याण होता है। पुत्रने कहा--मुझ व्यापक चैतन्यमें अंतर बाहर आना जाना नहीं, यह सर्व दर्शन मेरा है, मैं चैतन्य सर्वका दर्शन नाम अधिष्ठान हूँ। विना सत् विचारके अज्ञान नाश नहीं होता। सत् विचार सत्संगसे होता है। सत्संग निरहंकारसे होता है नहीं तो सब काम अकार्थ जान। इससे सूक्ष्म स्थूल कारणका अहंकार मनसे त्याग पीछे जो शेष रहै सो तेरा निर्विकल्प स्वरूप है। माताने कहा-मेरा शरीर स्त्रीका है, मैंने कुछ वेद पुराण पढा नहीं; न मैंने सत्संग किया है, न कोई मुझसे विशेष साधन होता है बहु कुटुंबी गृहस्थ होनेसे। इससे हे पुत्र ! ऐसा कुछ उपदेश कर जो कृतार्थ होऊँ। पुत्रने कहा--हे माता ! मुझमें पुत्रबुद्धि त्याग, जो कहूँ सो सो सत जान। हे माता ! अपने आत्म स्वरूप बोधमें स्त्री और पुरुषकी अपेक्षा नहीं। किंतु यथार्थ ब्रह्मवेत्ता वक्ता चाहिये और सम्यक् मुमुक्षु चाहिये। प्रतिबंधका अभाव भी चाहिये तो अवश्यमेव आत्म बोध होता है, क्योंकि ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत ब्रह्मात्मा सर्वका अपना आप है। जो सम्यक् अपरोक्ष जाननेके समान आत्माको जाने सोई रूप होता ह, क्या स्त्री क्या

पुरुष इससे हे माता ! "हौं मैं" अहंकार भ्रम त्याग, शेष अवाङ्मनसगोचर स्वरूप तेरा है। हे माता ! जो मन वाणीके कथन चिंतनमें आता है सो वाणी मन सहित सर्व तुझ चैतन्य द्रष्टाकी दृश्य है; जैसे--स्वप्नमें जो कुछ प्रतीत होता है सो सर्व स्वप्न चैतन्य आत्माकी दृश्य है। इससे तू आपको द्रष्टास्वरूप जान। देह मन आदिक पंचभूत रूप संघात आपका स्वरूप मत जान, क्योंकि दृश्य द्रष्टारूप नहीं होता, द्रष्टा दृश्य नहीं होता यही नियम है। हे माता ! दुःखरूप देहादिकोंविषे भ्रमसे आत्मा ध्यासकी निवृत्ति वास्ते और सुखरूप आत्माकी भ्रमसे प्राप्ति वास्ते अनेक उपाय शास्त्रोंमें कहे हैं, परन्तु सत्संग द्वारा द्रष्टा दृश्यका विवेचनही सुखेन सम्यक् अपरोक्ष आत्म बोधका कारण है अन्य नहीं, क्योंकि, द्रष्टा दृश्य दोही पदार्थ हैं। द्रष्टा अपना स्वरूप है, जो जो दृश्य है सो माया मात्र मिथ्या है। माताने कहा--हे पुत्र ! द्रष्टा दृश्यभाव द्वैतमें है और मैं अद्वैत हूँ, जब अस्ति भाति प्रियरूप सर्व मैं ही हूँ, तो द्रष्टा दृश्यका भेद कहां है ? पुत्रने कहा -हे माता ! जब सर्व तू है तो द्रष्टा दृश्यका भेद भी तू ही है।

तिसी समय जैसे--सूर्य पूर्वदिशासे उदय होता है तैसे माताके उदरते बालक बाहर निकसा, सो सुनकर राजा आया और देखा तो रानीको पुत्र जन्मका हर्ष किंचित् भी नहीं और न शोक है। एकसे स्थित है सो देख आश्चर्यवान हुआ और कहा--हे रानी ! तूने कौन समतारूप अमृत पान किया है कि, सुख दुःखविषे सम है। रानीने कहा-- हे राजन् ! मैं चैतन्य आप अमृत स्वरूप हूँ, मुझ सत् चैतन्य अमृतसे भिन्न सर्व असत् जड दुःखरूप मृत्यु है।

राजाने कहा-तू इस देहसे भिन्न है तो पुत्र कौन है? मैं क्या हूँ? रानीने कहा-न तू, न मैं, न पुत्र, एक सत् चित् आनन्द साक्षी आत्मा मैं हूँ। जब सर्व मैं चैतन्य आत्मा हूँ तो मैं पुत्रादि सर्व जगत् मैं ही हूँ, राजाने कहा-यह विचार तुझे किससे प्राप्त हुआ है? रानीने कहा-विचार और विचार करने योग्य, विचार कर्ता इत्यादि त्रिपुटियां स्वप्नवत् सर्व मायामात्र हैं, मैं चैतन्य (स्वप्न द्रष्टावत्) आत्मा सर्वसे असंग सर्वका प्रकाशक, आप स्वयं प्रकाश हूँ। इससे मुझ चैतन्य द्रष्टाको विचार पूर्वोक्त दृश्यसे कैसे प्राप्त होवेगा? हे राजन्! असली विचारे तो स्वप्नद्रष्टा ही स्वप्न दृष्टिरूप होता है; तैसे अस्ति भाति प्रियरूप मैं चैतन्य आत्मा ही सर्व रूप हूँ। राजाने कहा-हे पुत्र! तू धन्य है कि तेरे संगसे रानी और मैं अपने स्वरूपको प्राप्त हुए हैं। पुत्रने कहा-हे पिता! तू स्वरूपसे आगे कब भिन्न था जो अब पाया है, तू आपसे आप है। राजाने कहा-तृष्णाने पिशाचके समान मनको पकडा है; जबतक यह नाश न होय आत्मसुख कैसे प्राप्त होय? पुत्रने कहा-तृष्णाका क्या रूप है? राजाने कहा-अप्राप्त भोगोंकी इच्छा, प्राप्तके नाशके अभावकी इच्छा। पुत्रने कहा-सो इच्छा किसमें उठती है? राजाने कहा-अंतःकरणमें। पुत्रने कहा--वचन तेरा हांसी योग्य है, जो इच्छा अंतःकरणमें है तो तुझे क्या पहुंचता है जो नाश करे? तू चैतन्य इच्छासे रहित इच्छाका साक्षी है। इससे तू इच्छाके त्यागका त्याग कर। राजाने कहा--राज्य छोड़के अतीत होता हूँ। पुत्रने कहा--हे राजन्! अतीत हुए भी पुनः सत्संग द्वारा आत्माका सम्यक् अपरोक्ष बोध हुए विना, शांति न होगी। इससे

आत्मबोधकी प्राप्ति सुखका हेतु है, कोई राज्य छोड़ वनमें जाना सुखका हेतु नहीं ।

चलो ऋषभदेवके आश्रममें संत इकट्ठे हुए हैं, तहां आत्मनिरूपण रूप ब्रह्मयज्ञ होता है। राजा, रानी और पुत्र तीनों तहां पहुँचे। सर्व सन्तोंको नमस्कार किया। उस समय मीमांसा कहता था कि, सर्व कर्म रूप है। दत्तने कहा ठीक, यह सर्व जगत् कर्मरूप है, परन्तु कर्मका कर्ता कर्मसे पृथक् मानना चाहिये । बालकने कहा--हे मीमांसा ! कर्म किससे होता है और किसमें लीन होता है । मीमांसाने कहा--कर्म किसीसे नहीं स्वप्रकाश है । बालक हँसा और कहा--हे बुद्धिखोये ! इतनी धूमधाम काहेको तूने डाली है ? स्वप्रकाश पूर्ण है कि ऊण ? मीमांसाने कहा--पूर्ण ! बालकने कहा-- पूर्णविषे कर्तव्य नहीं तो कर्म कहां है ? यह सुन मीमांसा तूष्णीं हुआ ।

पिताने कहा--हे पुत्र ! तू सबसे उच्च हुआ । पुत्रने कहा-ऐसे कहनेको अग्निविषे जला दे, ऊँच नीचादि सर्व रूप मेरा है किससे ऊँच होऊँ किससे नीच ? पिताने कहा--हे बालक ! तुझे पूर्ण ब्रह्म देखता हूँ। बालकने कहा--जो मैं ब्रह्म हूँ तो ब्रह्मका द्रष्टा कोई है नहीं, स्वयं है । तूने कैसे जाना है मैं पूर्ण ब्रह्म हूँ । दत्तने कहा--नाम तेरा क्या है ? बालकने कहा--मैं अनाम हूँ। दत्तने कहा--अपना स्वरूप कह । बालकने कहा-- रसना नहीं क्या कहूँ ! दत्तने कहा--तूष्णीं हो । बालकने कहा--हे दत्त ! तू विचार कर इतने वचन जो मैंने कहे हैं, क्या रसनासे कहा है ? रसनादि इंद्रियोंकी क्या ताकत है कि, मुझ चैतन्यकी ताकत बिना वचनादि करे। दत्तने कहा-जिसने स्वरूप अपना जाना है तिसको

सुख नहीं। बालकने कहा--मेरे स्वरूपमें सुख दुःख दोनों नहीं, मुझको बोलनेसे कुछ हानि नहीं, तूर्णींसे लाभ नहीं। पर निर्वाण वही है जिसमें निर्वाण भी निर्वाण है। दत्तने कहा तेरा स्थान कौन है ? बालकने कहा-आकाशके समान सर्वमें पूर्ण हूँ, यह भी द्वैत है। जब सर्व मैं चैतन्य ही अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा हूँ तो पूर्ण हूँ कहां मैं ही हूँ। हे दत्त ! तू अहंकारको त्याग, जो परमपद पावे। दत्तने कहा—मुझमें अहंकार है नहीं तो क्या त्यागूं ! सुखको सब चाहते हैं और दुःखको नहीं चाहते, पर वह धन्य हैं जो सुख दुःखकी प्राप्तिविषे आपको सुख दुःखसे असंग जानते हैं। हे बालक ! आत्मा स्वतः प्रकाशरूप है कहनेसे नहीं होता। बालकने कहा—जब ऐसा है तब आपको पापी क्यों मानता है ? दत्तने कहा—पुण्यवान् होनेकी इच्छा सब करते हैं, पर धन्य वह हैं जो आपको पापी मानते हैं। सर्व सेर कहाते हैं पर धन्य वही है जो पाव कहाता है। परन्तु इस पंचभूतके संघातमें पापरूप अहं करनेसे पापी होता है। निरहंकार पुण्यरूप है। वा सर्व जगत्को महाप्रलयमें। पान नाम अपनी मायारूप देहमें लीन करे निश्चय करके सो शबलब्रह्म पापी है वा निश्चय करके सुषुप्तिमें जो अपनी अविद्यारूप देहमें सर्वको लीन करे सो पापी है। अविद्या उपहित चैतन्य साक्षी है, उपाधि रहित शुद्ध चैतन्य पुण्यवान् है।

बालकने कहा—स्वरूपके पावनेका उपाय कहो। दत्तने कहा—स्वतः सिद्ध सम आत्माकी प्राप्तिविषे उपाय क्या कहूँ ? निदाघने कहा—समता असमता करना मुझ चैतन्यमें है नहीं यह मनका धर्म है।

पराशरने कहा—हे मैत्रेय ! सब तूर्णीं हुये नाम अफुर स्वरूपमें स्थित हुए। फिर कुछ काल पीछे उत्थान होकर

कहने लगे-जो कोई वासना न त्यागे सो बंध है। बालकने कहा-वासना न त्यागे तो बंध किसको होता है और त्यागेसे मुक्ति किसकी होती है ? दत्तने कहा-कि, मनही वासनाको ग्रहण करता है और मन ही त्यागता है। इससे मनहीको बंध मोक्ष होता है मन ही वासना ग्रहण करो वा त्यागो आत्मा दोनों अवस्थाका साक्षी है। इससे वासना ग्रहण त्याग, जन्म, बंध मोक्ष भी आत्मामें नहीं। पर भ्रमसे आपमें बन्ध मोक्षकी कल्पना करता है। दत्तने कहा-वासनासे ही जीव है नहीं तो शिव है। बालकने कहा-वासना त्यागे शिव होता है तो शिव होना वासनाके अधीन हुआ स्वतः सिद्ध न हुआ। शिव और वासनाका सम्बन्ध कुछ नहीं, वासना अंतःकरणमें है, आत्मा अंतःकरणसे अतीत है। हे दत्त ! कहो वासना आत्मा बडा होता है न त्यागे क्या छोटा होता है ? जडभरतने कहा--विना वासना त्यागे मन शुद्ध नहीं होता। बालकने कहा--जिसमें मन न होय सो कहो क्या करे ? जडभरतने कहा--तूने जाना है कि, मुझमें मन नहीं यही मन है। इस जाननेके त्यागका त्यागकर। बालकने कहा--आत्माका जानना न जानना मनका धर्म है, इस मनके व्यवहारके द्रष्टा मुझ चैतन्यको जानने न जाननेमें हानि लाभ नहीं। जडभरतने कहा--अज्ञान अंधेरी निशाके समान है, ज्ञान सूर्यके समान है इतना ही भेद है। बालकने कहा--मैं आकाश चैतन्य दोनोंसे परे हूँ, वा दोनोंका आधार हूँ। राजाने कहा--जो तूने जाना है तो तुझको सुख है, न औरको कहनेसे क्या लाभ है ? बालकने कहा--हे पिता ! सम्यक् अपरोक्ष आत्मज्ञानियोंके वचनसे ही मुमुक्षुको बोध होता है बिना कहे बोध नहीं होता। इससे विद्वान् पुरुषोंका

कहना श्रेष्ठ है न तूष्णीं। जडभरतने कहा–हे बालक! तू कहांसे आया है ? कहां जावेगा ? बालकने कहा–मैं चैतन्य देशकाल वस्तुसे अतीत हूँ, आना जाना मुझमें नहीं शरीरादि संघातमें है । जडभरतने कहा–तू कौन है ? बालकने कहा--तू क्या जाने नामरूप विषे तूने दृढ दृष्टि की है कि, मैं जडभरत हूँ। इस दृष्टिको त्यागे तब जान। जडभरतने कहा–जिसमें यह विचार है कि मैं मन देहादिक संघात नहीं किन्तु मैं ब्रह्म हूँ, सो ब्राह्मण हो भावे चांडाल हो मेरा गुरु है। हे बालक! जो आप ही स्वतःसिद्ध है तो सत्संगसे क्या लाभ ? बालकने कहा-इससे अधिक लाभ क्या होगा ? कि भ्रमको भ्रम जाना, स्वतःसिद्धको स्वतःसिद्ध जाना, नहीं तो भ्रमको अभ्रम और अभ्रमको भ्रमरूप जानता है।

तिसी समय हंसारूढ ब्रह्मा आया, विष्णु देखकर हँसा और कहा-हे ब्रह्मा! देख तेरी सृष्टिको इन्होंने उखाडा है। ब्रह्माने कहा-मनुष्य शरीरका फल यही है कि; अपने स्वरूपको सम्यक् जाने । विष्णुने कहा तेरे प्रारब्धादि कर्म कर्मोंको भी नहीं मानते। ब्रह्माने कहा प्रथम मनने प्रारब्धादि कर्म माने थे, अब मन नहीं मानता तो केवल मनका मनन हुआ, चेष्टा मन देहादिक संघातकी जैसे–आगे होती थी तैसे अब होती है। आत्मा आदि, अन्त, मध्य, मन, देहादिक संघातकी चेष्टाका साक्षी है । विष्णुने कहा–इस बालकके माथेपर तूने क्या लिखा है ? ब्रह्माने कहा–यह जगत् सहित तू मैं बालक सर्वस्वप्नवत् आकाशरूप है, आधार विना आकाशमें कैसे लिखना होता है ? जो लिखा है तो यही लिखा है प्रत्यक् आत्मा मन देहादिक संघातसे भिन्न है संघातरूप। नहीं। बालकने कहा–जब सर्वात्मा है तो संघात क्या ? तिससे भिन्न अभिन्न क्या ?

ब्रह्माने कहा-प्रथम नेति नेति कर स्थूल सूक्ष्म कारण समष्टि व्यष्टि शरीरोंको निषेध कर, प्रत्यक् आत्माको तिनके निषेधकी अवधिभूत तथा तिनके आदि अन्त मध्य साक्षीरूप कर बोधन जिज्ञासुको करना । जब सम्यक् जाने पीछे सर्व अस्ति भाति प्रियरूप ब्रह्मात्मा है यह विधिरूप उपदेश करना; जैसे--प्रथम तरंगादिकोंसे भिन्न जलको बोधन करके; पीछे मधुरता द्रवता शीतलता रूप सर्व तरंगादिक जल ही है ।

मरीचिने कहा--हे ब्रह्मा ! ब्रह्मा नाम तेरे किस अंगका है ? ब्रह्माने कहा--सर्व अंग मेरे हैं, मैं चैतन्य अंगी हूँ क्योंकि, सर्व अंगोंका म चैतन्य आत्मस्वरूप हूँ । मरीचिने कहा--चाहता हूँ कि, मनको वश करूँ, संध्या समय चञ्चल हो जाता है; मन वशका उपाय कहो । ब्रह्माने कहा--मन तेरा है मनके वशका उपाय क्या कहूँ । पर कहो मनका रूप क्या है ? मरीचिने कहा--मनका रूप नहीं देखा । ब्रह्माने कहा--जब तूने मनका रूप नहीं देखा तो वश कैसे करेगा ? पर हे मरीचि ! अपने सत् चित् आनंद रूप आत्मासे पृथक् जो कुछ मनादिक प्रतीत होते हैं; सो मृग तृष्णाके जलवत् जान । पुनः संकल्प विकल्प रूप मनके प्रतीत होते भी तुझ चैतन्य अधिष्ठानको खेद न होवेगा । तात्पर्य यह कि, अपने सम्यक् अपरोक्ष आत्मस्वरूपको जानना ही मनके वशका उपाय है । वा मनादि सर्व दृश्य जातिको अस्ति भाति प्रियरूप ब्रह्मात्मा सम्यक् अपरोक्ष जानना परम मन वशका उपाय है । वा मन देहादिक संघातरूप ब्रह्मांडको अपने दृश्य जानना और आपको मनादिकोंका द्रष्टा चैतन्य जानना । दृश्यका धर्म द्रष्टाको नहीं पहुँचता, यह बात ठीक जाननी; यह पूर्वसे भी मन वश करनेका उत्कृष्ट उपाय है । हे मरीचि ! योग

भी मन वश करनेका उपाय है पर जबलग योग है तबलग मन वश है । योगके पूव उत्तर संकल्प विकल्प मनका स्वभाव वैसेका वैसा ही रहता है; जैसे–वानर सर्व अंगोंके बँधनेसे चेष्टा नहीं करता, जब खुला तो पूर्ववत् स्वभाव होता है । मरीचिने कहा–मैं अपने स्वरूपको नहीं जानता, जो जानता तो मन वशका उपाय न पूछता । ब्रह्माने कहा--उपाय मन वशका यही जान कि यह पञ्चतत्त्वरूप संघात, स्थूल सूक्ष्म कार्य भी मैं नहीं, और इनका कारण शरीर अज्ञान भी मैं नहीं, इनका साक्षीभूत मैं चतन्य आत्मा हूँ । अब कहो रूप तेरा क्या है ? मरीचने कहा--नाम रूप स्वरूप मेरा नहीं नाम रूप स्वरूपसे अरूप हूँ । ब्रह्माने कहा--बाहरसे मत कह अन्तर मनसे जान जो तुझको सुख होवे । देहाभिमान ही अपने स्वरूप ज्ञानमें प्रतिबन्धक है । मरीचिने कहा--हे ब्रह्मा ! यह संघात है तो अपने स्वरूपका ज्ञान है, जो यह नहीं होय है तो कौन जाने, " मैं आत्मा हूँ" । ब्रह्माने कहा–जब शरीर गिरता है तब सभी अंग वैसे ही होते हैं, आत्माकी शरीरके अधीन स्थिति होवै तो उस वक्त क्यों नहीं हलता चलता । मरीचिने कहा-- ध्यानके बलसे सब अंगोंके अन्तर बाहर देखा कि, यह शरीर अपने अंगोंसहित मलिन जड दुःखरूप है । मैं शरीरकी तथा शरीरके अंगोंकी मलिनता तथा जडता देखनेवाला शुद्ध चैतन्य शरीरसे भिन्न हूँ जो मैं चैतन्य न होऊँ तो शरीरकी मलिनता जडता कैसे अनुभव होवे ? मरीचिने कहा--हे ब्रह्मा ! मैं शरीर कब हूँ नहीं । पर कहो मैं कौन हूँ । ब्रह्माने कहा--जिसने सब अंग शरीरके तथा शरीरको तथा मनादिकोंको देखा नाम जाना वही तेरा रूप है । मरीचि स्वरूपविषे लीन हुआ ।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! सन्तोंका यह स्वभाव है जिस मार्गद्वारा जिज्ञासु स्वरूपको पहुँचे तिसी मार्गसे पहुँचा देना । तिसी समय एक राक्षस आया और कहा--सबको खाता हूँ और आप हूँ सो आप हूँ । सारांश यह कि, सर्व नामरूप प्रपंचको अपने आत्मस्वरूप अधिष्ठानमें कल्पित जानता हूँ, नाम अत्यंताभाव जानता हूँ । पुनः कल्पितका अत्यंताभाव भी आत्मस्वरूप अधिष्ठान जानता हूँ । दत्तने कहा--जब तूने सर्वको नहीं खाया तब कौन है ? जब खायगा तब कौन होगया ? राक्षसने कहा--तू ही कह स्वप्न द्रष्टाने निद्राकर अपनेमें कल्पित स्वप्नसृष्टिको लीन किया वा सत्य जाना तो क्या होता है ? विचार कर असत् कल्पित जाने वा उदय करे तो क्या रूप होता । दत्तने कहा--एकसा है । राक्षसने कहा--हे बुद्धि-खोये ! तद्वत् मैं चैतन्य आत्मा एकरस हूँ पर नहीं जानता था कि, कोई मेरे वचनका श्रोता है, तुझ सहित बालकको खाऊँगा और आप होऊँगा । बालकने कहा--सर्व अंग तेरे हैं किसको खाता है ? जो अपने अंगोंको खावे तो कौन तुझको वर्जित करेगा । राक्षसने कहा--यही खाता हूँ न तू, न मैं, न दत्त, न यह जगत्, केवल मैं चैतन्य आत्मा हूँ । बालकने कहा--राक्षस तुझको क्यों कहते हैं ? राक्षसने कहा--जैसे--लकडी अग्निके सम्बन्धमें राख होती है, पुनः राख लकडीका काम नहीं देती; तैसे नामरूप सर्व संसार लकडीको विचाररूप अग्निसे राख नाम मिथ्या जाना है, पुनः मिथ्या सम्यक् जाना, संसार जन्म मरणका कारण नहीं होता । पर कहो हे बालक ! तेरा नाम क्या है ? बालकने कहा--नाम मेरा सुराट् नाम स्वप्रकाश स्वरूप है । राक्षसने कहा--कौन ठौर तूने प्रकाश किया है ? बालकने कहा--आप ही प्रकाशक हूँ;

आप ही प्रकाश्य हूँ, आप ही प्रकाशने योग्य हूँ, मुझमें द्वैत नहीं। राक्षसने कहा--मैं कौन हूँ ? बालकने कहा--तू मैं हूँ। तिसी समय कल्याण स्वरूप शिव आये और कहा--हे राक्षस ! तुझे खाता हूँ, राक्षसने कहा मैं राक्षस नहीं चैतन्यरूप शिव हूँ, अपनेको आप मार वा न मार। पुनः निदाघकी तर्फ मुखकर शिवने कहा--हे निदाघ ! तुझे त्रिशूलसे मारूँगा। निदाघने कहा--त्रिगुणात्मकरूप कार्य कारण आप अहंकार सहित संसारको ज्ञानाग्निसे भस्म कर नाम मिथ्या जानकर, त्रिगुणातीत आप हूँ। शिवने कहा--बाहरसे मत कह। निदाघने कहा--अन्तर्यामी होकर देख, अन्तर बाहर निदाघ नहीं तू ही है तो निदाघका क्यों नाम लेता है ? शिवने कहा--निदाघ भस्म हुआ तो पीछे अवाच्यपद है। हे निदाघ ! इस निश्चयका शरीर नाश पर्यंत त्याग न करियो आत्माको सम्यक् अपरोक्ष जाननेसे काल शास्त्र सहित हम तीनों देवतादिकके भयसे रहित होते हैं। शिवने कहा--हे विष्णो ! आप कौन हो ? विष्णुने कहा--तूही है तो किसको पूछता है ? शिवने कहा--जो तू रूप मेरा है तो विष्णुपनेका अहंकार त्यागेगा तो मुझ चैतन्यसे अभिन्न होवेगा। विष्णुने कहा--आगे भिन्न होऊँ तो अब अभिन्न भी होऊँ। पर स्वरूपविषे भिन्न अभिन्न दोनों नहीं जानता था। जो तू पूर्ण है तब तुझको मन देकर शिव हुआ। पर देखा तो ऊण है क्योंकि, ऊणमें ही मिलाप भिन्न होता है भेद पूर्णमें नहीं। शिवने कहा--यह पूर्ण ऊणादि कथन चिंतन केवल मन वाणीका मनन कथन ह, मैं चैतन्य मन वाणीसे अगोचर हूँ। विष्णुने कहा--कहा जो तू मन वाणीसे अतीत है तो मुझको संदेहवान् कैसे देखा ? शिवने कहा-तुझ सहित

सर्व दृश्य मुझ चैतन्यकर प्रकाशमान है, तुझको देखा नाम प्रकाशा तो क्या हानि है ? राक्षसने कहा--न विष्णु, न शिव, न जगत्, न राक्षस, नीरूप मैं अवाच्यपद हूँ यह सब कहनेमात्र है। विष्णुने कहा--शीश तेरा अभी चक्रसे काटता क्योंकि तू अभिमानी है । राक्षसने कहा--मैंने देहाभिमान रूप शीश अपना आत्मविचाररूपी हाथसे काटा है और अशरीर हुआ हूँ पुनः काटनेसे क्या भय है ? हे विष्णु ! तेरा देहाभिमानरूप शीश कटा है वा नहीं ? जो कटा है तो मेरा शीश कैसे काटेगा ? मेरा तूने शीश विना शीश कैसे जाना ? जो कहे नहीं कटा तो भी मुझ अशीशका शीश कैसे काटेगा वा देहअभिमान सहित तेरे लाखों यत्नोंसे भी अभिमानरहित मेरा शरीर नहीं कटेगा, जैसे सोया पुरुष जाग्रत् पुरुषके शीशादिक नहीं काट सकता वा स्वप्ननर स्वप्नद्रष्टाका किञ्चन्मात्र भी अपकार नहीं कर सकता। हे विष्णु ! जो तू कहे तेरा देहाभिमान-रूपी शीश नहीं गिरा तो मैं हाजिर हूँ शीश मेरा काट । विष्णुने कहा--सर्व मैं हूँ, तूने आपको राक्षस माना है तिसको त्याग कर, यही शीश काटना है, जैसे--तरंगभाव त्यागे शेष जल है । राक्षसने कहा--जो तरंगभाव नहीं त्यागे तो भी जल है। विष्णुने कहा--जब जल ही है, तो जलका आपको तरंग मानना यही भूल है । राक्षसने कहा--भूल अभूलादि मनका धर्म है, मुझ आत्मा भूल अभूलके साक्षीकी भूल नहीं। पर कहो मन कैसे जीता जावे ? विष्णुने कहा--आत्मबोध विना मन नहीं जीता जाता और मन जीते बिना आत्मबोध नहीं होता। इससे मन जीतनेका और आत्मबोधका यत्न एक कालमें ही करो अर्थात् आत्मा अनात्माका सम्यक् सत्संग सच्छास्त्रद्वारा विचार करो दोनों सिद्ध होंगे; जैसे--प्रातः

काल ज्यों ज्यों सूर्य उदय होता है त्यों त्यों ही एक कालमें ही अँधेरा निवृत्त और प्रकाश उदय होता जाता है राक्षसने कहा-तूने हमारे कुलको क्यों नाश किया है ? विष्णुने कहा मैं किसीको नाश नहीं करता किन्तु आप अपने शुभाशुभ कर्तव्योंके अधीन, जीव सुख दुःख पाते हैं ।

जलजन्तुओंकी कथा-(जो अपनी ही भाषामें आत्मनिरूपण करते हैं)

पुनः विष्णुने कहा-हे सभा ! एक कथा श्रवण करो, जिस कथाके श्रवणसे हम लोगोंका अभिमान दूर होजावे । मच्छ अवतारने जलजंतुओंकी बोलीमें जलजंतुओंको ज्ञान उपदेश किया था । पुनः तिन्होंने अपनी बोलीमें आत्मनिरूपण किया था सो मैंने अन्तर्यामी रूपसे जाना है सोई तुम सुनो ।

मच्छी

एक मच्छीने अन्य मच्छियोंसे कहा-फाँस कालका हमें कभी दुःख नहीं दे सकता जो तृष्णा प्रारब्धसे अधिककी न करें क्योंकि ईश्वरने हमारे प्रारब्ध जलमें शैवालादिक ही किया है तिसको त्याग कर मांस आटा खानेके लोभसे मृत्यु होती है, इसीसे बन्ध है देहाभिमान अपने स्वरूपके अज्ञानसे होता है । सो अज्ञान स्वरूप ज्ञानसे नाश होता है । कहो ज्ञान कैसे होवे ? अन्य मछलीने कहा-देह और देहधारीके विवेचनसे ज्ञान होता है ।

मगर

मगरने कहा-देहधारी जीव हैं ! मछलीने कहा-जीवका रूप क्या है ? कृष्ण कि श्वेत? मगरने कहा- रूप नहीं देखा । मछलीने कहा--रूप नहीं देखा तो नाम कैसे राखा ? मगरने कहा-सुनकर कहता हूँ । मछलीने कहा--हे बुद्धिखोये ! जब सुनकर आपको तूने जीव निश्चय किया तो जीवका

सत् चित् आनंद स्वरूप है, यह भी शास्त्रसे सुना होगा, वा आगे सुनेगा तो आपको सत् चित् आनंद न माना जीव माना। इसमें कारण क्या ? मगरने कहा--सत् चित् आनंद और जीव दोनों मन वाणीके कथन चिंतनमात्र हैं इसमें क्या विशेषता है ? इस कथन चिंतन पहँचान करनेवाला मेरा स्वरूप अवाच्यपद है। इसी निश्चयसे देहाभिमानरूपी फांसी गलेमें पड़ी है सो काटी जावेगी। अन्य मछलीने कहा--इस शरीरसे आपको भिन्न कैसे जाने ! क्योंकि; चिरकालसे बन्ध है। बडी मच्छीने कहा-पुष्पके तोडनेमें ढील है, परन्तु परमेश्वररूप आत्माके पावनेमें ढील नहीं मूल शरीरका अहंकार है; जब अहंकार नाश हुआ तो आपसे आप। मगरने कहा--अहंकार आपको कहते हैं, क्योंकि, मैं हूँ। जब आपा गया तो जीव किसको मिला और शरीरसे भिन्न किसने जाना आपको त्यागकर दूसरेके शिरपर धरना क्या प्रयोजन है ?

इतनेमें वधिकने जाल डाला ! मछलीने कहा--हे मगर ! शरीरका लेनेवाला आया है, कहो अब क्या करें ? देहाभिमान त्यागकर भगवान्‌की शरण होवें ! मगरने कहा--यम शिरपर खडा है, तू शरण चिंतन करती है। पर कहो भगवान् पूर्ण है; जब पूर्ण है तो आप ही भगवान् है जब आप ही है तो किसकी शरण जावे और वधिक कहां है ? इतना वचन कहकर सब स्वरूपमें लीन हुये ! किसी विद्यानिमित्तकर वधिक तिन जल जंतुओंकी बोली जानता था, सो वधिकने तिनके वचनको सुनकर जाल पृथ्वीपर गेर दिया और मगरसे प्रश्न किया-कि, तेरे वचन मुझको अमृत समान लगे हैं, तेरे घातका मैंने त्याग किया, कुछ वचन कहो। मगरने कहा-हे वधिक ! तू किसको जालसे पकडता है। शरीरको कि, आत्माको ? शरीर तुम्हारा

हमारा मायाके कार्य पंचतत्त्वोंका दृश्यमात्र एक सरीखा है। आत्मा भी तुम्हारा हमारा संघातका साक्षी एकरूप है। हे वधिक ! जो उत्पत्तिमान् वस्तु है सो उसको अवश्य कालरूपी वधिक नाश करता है और जो वस्तु नाश होगी पुनः तिसकी उत्पत्ति भी होगी इससे यह अर्थ अपरिहार्य होनेसे शरीरके नाशकी क्या चिंता है ? आत्मा अविनाशी है ! यह भी अपरिहार अर्थ है । इससे दोनों प्रकारसे मंगल है। हे बधिक ! इस संघातरूपी समुद्रमें, आत्मविचाररूपी जालसे अपने मनरूपी मच्छीको पकड. जो शांतिमान् होवे ! वधिकने कहा-मनका रूप कहो ? मगरने कहा मनका रूप संकल्प विकल्प है, संकल्प विकल्पका अनुभव करनेवाला तू चैतन्य असंग है; विचार कर देख इस शरीर विषे वधिक नाम किसका है। यह शरीर पंच भूतोंका परिणाम अन्नका विकार है, आत्मा शरीरसे रहित इसका साक्षी है। बीचमें व्यर्थ तूने आपको वधिक माना है, इस वधिकपनेके अहंकारके त्यागका त्याग कर पीछे अवाच्यपद है। यह वचन सुनकर वधिकने दुष्ट स्वभावको त्याग दिया और परमार्थको पहुँचा।

मेंढक-(ओंकारका वर्णन)

पुनः मेंढक आया और कहा-मैं निशिदिन ओंकार शब्द करता हूँ। इसके भजनसे जो चाहूँ सो प्राप्त होता है। इससे तू भी सुख चाहे तो ओंकारको रटन कर। मगर मच्छने कहा-मैंने आगे ही इस जालको बडे यत्नसे काटा है, अब मुझको पुनः जालमें मत डाल क्योंकि मुझ चैतन्य निष्कर्तव्यविषे कर्तव्यका आरोपण बुद्धिकी हीनता है अबतक मैंने ओंकारको नहीं जाना। पर कहो ओंकार किसको कहते हैं ? अर्थ उसका क्या है ? मेंढकने कहा--ओंकारसे सर्व जगत्की उत्पत्ति होती है। ब्रह्मा,

विष्णु, शिव, ओंकारकी तीन मात्रासे क्रमसे उत्पन्न हुये हैं। तैसे ही अकार उकार मकार मात्रासे स्थूल सूक्ष्म कारण जगत् हुआ है। सारांश यह कि, सत्त्व, रज, तम, देवता विषय इंद्रियादि त्रिपुटी तीन मात्रारूप ही है। मगरने कहा--हे बुद्धिखोये ! अर्ध मात्रारूप तुरीय ब्रह्मात्मा अद्वितीयको त्यागकर त्रिपुटीरूप अपनी दृश्यविषे क्यों लागिये ? मेंढकने कहा--यह भी ओंकार है। मगरने कहा--जब मैं चैतन्य मन वाणीको सत्ता देता हूँ तब मन वाणी ओंकारका जप चिंतन करते हैं नहीं तो नहीं। इससे मुझ चैतन्यसे ही ओंकार प्रकाश रखते हैं क्योंकि, शब्द जडरूप है और जो जड है सो अनित्य है। जो ओंकार जड न होता तो मुझ चैतन्यका दृश्य न होता। मेंढकने कहा -द्रष्टा तू दर्शन अंतःकरणकी वृत्तियां और दृश्य ओंकार है। तैसे ही द्वैत अद्वैत एक तू ही है इससे यह सब ओंकार ही हुआ। मगरने कहा--ऐसा कुछ कहो जिसमें ओंकार न होवे। मच्छीने कहा--यह सर्व त्रिपुटीरूप ओंकार है। ओंकार प्रकृतिरूप है, प्रकृति ही परिणामकर शरीर रूप हुई है - मैं चैतन्य इस शरीरसे मुक्त हूँ। इससे कैसे ओंकारका रूप हुआ ? किन्तु ओंकारसे भिन्न हूँ।

जोंक

पुनः जोंकने आकर कहा-भिन्न और अभिन्न तथा भिन्नाभिन्न तीनों मेरेमें नहीं। प्रकृति, ओंकार तथा शरीर मुझ चैतन्यसे सिद्ध होते हैं, तिनमें मैं तीनों कालोंविषे एकसा हूँ। ओंकार कथन मात्र है। चैतन्यसे पृथक् ओंकार चार पदोंवाला है। आत्मामें एक कहना भी नहीं बनता तो चार कैसे कहेंगे ? मेंढक तूष्णीं हुआ। मच्छीने कहा--हे जोंक ! तू सदा रुधिरपान करता है, तुझसे

संवाद करने योग्य नहीं । जोंकने कहा--सत् चित् आनन्द रूप शुद्ध आत्मा विना जो कुछ त्वंपद तत्पद असिपदादिक प्रतीत होते हैं सोई हुआ रुधिर, विचार करना रूप पान करता हूँ नाम स्वप्नवत् मिथ्या जानता हूँ । जो तूने कहा, तुझसे संवाद करने योग्य नहीं तो मैंने आप विना कुछ और नहीं देखा, संवाद किससे करूँ ? कौन करे ?

कछुआ

कछुआने कहा--जौलौं सर्व ओरसे षट् इन्द्रियोंका संकोचन न करे तबतक स्वरूपका पाना कठिन है । मच्छीने कहा--सर्वोपरि आत्मस्वरूप पूर्ण है, कहो किस ओरसे इंद्रियोंको संकोचे ? जो नेत्रको संकोचे तो अन्धा होय, कानको रोके तो बहरा होय, इत्यादि अन्य इंद्रियोंमें भी जान लेना । हे कछुआ ! जब सर्व अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा ही है तो षट् ओर कहां हैं ? कछुआ हँसा और कहा--कि, जब सर्व आत्मा ही है तो षट् ओर भी आत्मा ही है । विष्णुने कहा--हे सभा ! इस प्रकार तिन जलजन्तुओंकी चर्चा हुई थी, सो मैंने तुम्हारे आगे निवेदन कर दिया ।

इति पक्षपातरहित श्रीअनुभवप्रकाशस्य चतुर्थः सर्गः समाप्तः ।। ४ ।।

अथ पञ्चम सर्ग ५.

पक्षपातरहित विवेचन

पराशरने कहा--हे मैत्रेय ! ऐसे ही एक और कथा सुन । एक कालविषे भारतवर्षमें विद्वान पक्षपातरहित धर्मात्मा जगत् हितकारक स्त्री पुरुष मिलके आत्मविचार करते थे और मैं भी वहीं था ।

अन्तर दृष्टि

अंतरदृष्टि बोली--हे निर्मल सृष्टिवाली सभा ! असत् जड दुःखरूप कल्पित नामरूप बाहर दृश्यकी दृष्टिसे दृश्यांतर सच्चिदानंद इस बुद्धि आदिकोंका प्रकाशक आत्माका सम्यक् अपरोक्ष नहीं होता; जैसे--पुरुषको कल्पित सर्प दंड मालादि बहिः पदार्थोंकी दृष्टिसे सर्प रज्जुका अपरोक्ष ज्ञान नहीं होता । विचारे तो रज्जु ज्ञानपूर्वक ही सर्पादिकोंका ज्ञान होता है। इससे बहिर्नामरूप दृष्टि त्यागके अंतर मनादि अंतःसाक्षीको निजात्मरूप जानों ।

शांति

शांति बोली--मुझ शांतिको अस्ति भाति प्रिय स्वरूप पदमें अंतर बाहरका विभाग नहीं, जैसे--मनके प्रपंचमें मायाका वा भूत भौतिकोंका अन्तर बाहरका विभाग नहीं तथा भूषणोंमें सुवर्णका अन्तर विभाग नहीं । जो विभागवान् परिच्छिन्न वस्तु होती है सो अनित्य जड दुखरूप होती है । इससे अस्ति भाति प्रियरूप सर्वात्मा शांतरूप द्रष्टाको जो जाने तो शान्त होवे ।

वैराग्य

तिस समय वैराग्य मनुष्य मूर्ति धारकर आय बोला--हे साधो ! वैराग्य विना सुख नहीं; वैराग्य यही है कि शांति, अशांति, अन्तरबाहर वृत्ति आदि नामरूप प्रपंचकी निजात्मसत्तासे पृथक् सत्ताका अत्यंताभाव अनुभव होना । जैसे--पृथिवी आदि भूतोंकी सत्तासे भिन्न शरीरकी सत्ताका अत्यंताभाव है वा वैराग्य नाम त्यागका है, वैराग्यवान्का नाम वैरागी त्यागीका है वा विशेषकर रागका नाम विराग है विशेषकर रागवान्का नाम रागी गृही है। सो दोनों प्रकारसे ही वैराग्यका अर्थ

आत्मामें ही घटता है, अन्य दृश्य पदार्थमें घटता नहीं. क्योंकि मन वाणी सहित मन वाणीके विषय दृश्य प्रपञ्चके अत्यन्ता भाववाला निजात्मा ही वैराग्यवान् है, अन्य नहीं । तथा अस्तित्व स्फुरणत्व प्रियत्व आत्माने अत्यन्त असत् जड दुःखरूप, नामरूप अनात्मा दृश्य प्रपञ्चके साथ ऐसा राग किया है कि, दृश्य नाम रूपको सच्चिदानन्द सरीखा अपना रूप कर दिखाया है, जैसे जलको दूध अपना रूप कर दिखाता है । इससे दूध और आत्मा परम रागी है । तथा जैसे आकाशचारी भूत भौतिक प्रपञ्च साक्षात्कार आकाशका तिरस्कार करे तो भी बिना बुलाये मानके सर्वके व्यवहारका निर्वाहक आकाश अवकाश देनारूप परम प्रीति करता है परंतु सर्व माहिं रहते भी अति अलिप्त होके परम त्यागी है । तैसे यह सुख दुःखके अस्ति भाति प्रियरूप साक्षी आत्माका जड नामरूप सर्व जगत् तिरस्कार करे तो भी बिना बुलाये मानके आत्मा सर्वको चैतन्यता देके चैतन्य सरीखा करता है । इससे सर्वका अति प्रियतम है । मनादि सर्व जगत्के माहिं अलिप्त होनेसे परम वैरागी नाम त्यागी भी है । वा शांति अशांति अंतर बाहर काम क्रोधादि वृत्तियोंके भावाभावको निज सन्निधिमात्रसे ही सिद्ध करता है । और इन गुणोंसे उल्लंघित वर्तता है इसीसे आत्मा गृही और संन्यासी है । इससे पूर्वोक्त वैराग्यवान् आत्मा ही तुम्हारा तथा ब्रह्मासे लेकर चींटीतक सर्व जगत्का निजस्वरूप है ।

क्रोध

पुनः क्रोध अभिमानी देवता मनुष्य मूर्ति धारणकर सभामें आय बोला-हे प्रियवरो ! गुरु उपदेशसे प्रथम

यह वृत्तिरूप क्रोधका साक्षी आत्मा अक्रोधी है। कारण कि. असत् जड़ दुःखरूप, नामरूप देहादि म्लेच्छ सच्चिदानंद शुद्ध आत्माको निजरूपवत् निज रूपकर देखता है तो भी आत्मा क्रोध नहीं करता, उलटा सत्तास्फूर्ति देता है इससे अक्रोधी है। गुरु उपदेश पीछे देहादि नाम रूप जगत्का अत्यंताभाव जाननारूप हिंसाकर देता है, इससे यह आत्मा अति क्रोधी है वा जाग्रत् स्वरूपको ब्रह्मांडको सुषुप्तिमें लयरूप हिंसा करता है इससे क्रोधी है और जाग्रत् स्वप्नमें पुनः सुषुप्तिमें लीन हुए जाग्रत्को उदय करता है, इससे अक्रोधी है वा गुरु उपदेशसे देहाभिमान रूप क्रोधका नामरूप हिंसा करता है इससे क्रोधी है। आत्मा पूर्ण होनेसे क्रोधमें भी स्थित है; जैसे सर्व देहोंका देही आत्मा है, तैसे क्रोधरूप देहीका भी देही आत्मा है इससे क्रोधरूप देहवाला आत्मा क्रोधी है वा आत्मा अद्वितीय होनेसे स्वतः ही द्वैतका हिंसन नाम अत्यन्ताभाव है, इससे भी आत्मा अति क्रोधी है। वृत्तिरूप क्रोधमें आरूढ हुआ आत्मा ही विचारे विना प्रिय लगनेवाले बुरे कामोंसे भी क्रोध करके निवृत्त होता है, इससे आत्मा अति क्रोधी है। वृत्तिरूप क्रोध, क्रोधी आत्माको हिंसन नहीं करता है। हे साधो ! वृत्तिरूप क्रोध तो निज इष्टके साधक, सत्संभाषणादि जो सद्गुण, तिनके शत्रु मिथ्या भाषणादि असुरोंके नाशवास्ते हैं तथा शरीरकी रक्षावास्ते हैं। कोई परस्पर लड़ाई भिड़ाई वास्ते नहीं। सत्तापूर्वक क्रोध व्यवहार परमार्थका साधक है और असत्यतापूर्वक रूप वृत्तिरूप क्रोध ही अनर्थक है यही त्याज्य है। परन्तु पूर्वोक्त रीतिसे अति क्रोधी आत्मा तो अपना स्वरूप है, सो न ग्राह्य त्याज्य है, देहवत् अपनारूप होनेसे।

लोभ

पुनःलोभ अभिमानी देवता मनुष्य व्यक्ति धारकर आया और कहा हे निर्लोभ पक्षपातरहित सभा ! आभास अंतःकरणरूप जीवका अतिशय शब्दादि विषयोंका लोभ अनर्थका कारण है वही त्याज्य है । सत्तापूर्वक शरीरका निर्वाहक लोभ त्याज्य नहीं । निजात्मा तो परम लोभी है । अर्थ यह है कि; सर्व अत्ता नाम भोक्ता है, ब्रह्मासे लेके चींटीके शरीरतक सर्वमें एक सरीखा स्थित होता हुआ सर्व शब्दादि विषयोंका रसिक नाम अनुभव करता नाम भोक्ता है इसीसे यह ब्रह्मात्मा मनका साक्षी आत्मा अति लोभी, सर्वका भोक्ता हुआ भी वास्तवसे (अवाङ्मनसगोचर होनेसे) अति लोभी है । हे मित्रगणो ! स्थूल शरीररूप स्थूल भूतोंसे परे नाम सूक्ष्म भूमि आदि सूक्ष्म भूतरूप इंद्रिय मनादि सूक्ष्म सृष्टि है । तिससे परे नाम सूक्ष्म व्यष्टि अहंकार और समष्टि अहंकाररूप महत्तत्त्व है । तिससे परे नाम सूक्ष्म सर्व नाम रूप जगत्का उपादान कारणरूप प्रकृति माया अज्ञान है । तिससे परे प्रकृति अज्ञान और अज्ञानका कार्य पच्चीस प्रकृति रूप प्रत्यक्षादि प्रमाणोंका विषय भूत यह संघात और मनादि सूक्ष्म सृष्टिका साक्षी आत्मा ही है । यही सर्वकी काष्ठा अवधि रूप है सुषुप्तिमें अज्ञानका ज्ञान होनेसे । इससे परे और कोई पद नहीं, जो माने सो अनुभव, वेद शास्त्र संप्रदायसे बाहर है । तात्पर्य यह है कि, तिसका मानना प्रमाण शून्य वंध्यापुत्रवत् अप्रमाण है । इससे इस अलोभी आत्माको त्रिगुणातीत जानके भ्रमसिद्ध जो बन्ध मोक्षके कर्तव्य तिससे निष्कर्तव्य हो ।

मिथ्यादृष्टि

पुनः मिथ्यादृष्टि आके कहने लगी-हे धर्मात्माओ ! नाम रूप वर्णाश्रमी, देहवान्, सुखी, दुःखी हूँ तथा कर्मकांडी

उपासक, ज्ञानी, अज्ञानी, बंध, मोक्षवान् हूँ तथा त्यागी गृही हूँ, परिच्छिन्न जीव तुच्छ हूँ, मरण जन्म धर्मा हूँ। खाता, पीता, सोता, लेता देता, गमनागमन करता हूँ। देखता, सुनता स्पर्श करता, सूँघता, संकल्प विकल्पादिवान् हूँ। इत्यादि माया तत्कार्यरूप आपको जानना, यह सब मिथ्या दृष्टि है और पूर्वोक्त माया तत्कार्य धर्म धर्मीरूप अनात्म किसी दृश्य पदार्थको अपना स्वरूप नहीं जानना, किन्तु अपने मनादिकोंके साक्षी आत्माको सम्यक् सच्चिदानन्दरूप मानना यही सत् दृष्टि है अन्य सर्व मिथ्या दृष्टि है। इस सत् दृष्टिसे ही मिथ्या दृष्टि नाश होती है।

अहंकार

पुनः अहंकारने आकर कहा-हे सज्जनो ! अहंकार कहीं न कहीं करना ही होगा देह आदि संघातमें अहंकार अनन्त जन्मोंका कारण है और सच्चित् प्रियरूप आत्मामें अहंकार मोक्षका कारण है। दोनोंके मध्ये जो आपको अच्छा लगे, तिसमे अहंकार करो।

नारायणी

नारायणी बोली--हे सन्तो ! यह शरीर मल नरक सम्यक् विचारे तो दोनोंमें किंचित् भेद नहीं सम है परन्तु बाहरके मलको अपनेसे अति भिन्न जानता है और ग्लानि करता है। तैसे इस शरीर रूप मलसे आपको भिन्न जानता नहीं देखो यह शरीर तो निज भिन्न माता पिताका मल है, अपना नहीं और लोकमें प्रसिद्ध है, अपने मलसे ग्लानि कम हुआ करती है और दूसरके मलसे ग्लानि अधिक हुआ करती है। यह आश्चर्य देखो यह शरीर रूप दूसरेके मलमें ग्लानि नहीं और अपने मलमें ग्लानि है ! चाहिये दोनों मलोंको ग्लानिपूर्वक आपसे अति भिन्न मानना वा अभिन्न मानना। एक मलको आपसे भिन्न और एक मलको अपन आत्मासे अभिन्न मानना, यह

हिसाब बाहर बात है, क्योंकि दोनों मल तुल्य हैं। हे पक्ष-पात रहित अकृत्रिम प्रीति करनेवाले मित्रवरो! यह सुख दुःखका प्रकाशक ब्रह्मात्मा तो स्वतः ही माया तत्कार्य मलसे रहित है, मलसे भिन्न जानो, चाहे न जानो।

लक्ष्मी

पुनः लक्ष्मीने आया कहा--हृदयरूप आकाशके चन्द्रमा-रूप प्रिय मोद प्रमोदादि वृत्तियोंका साक्षी यह आत्मा ही ब्रह्म, जीव, ईश्वर, खुदा, गाड, परमात्मा घटपटादि सर्व शब्दोंका लक्ष्य है, वाच्य किसी शब्दका नहीं क्योंकि, अवाङ्मन-सगोचर है, वाच्य लक्ष्य भी समान बुद्धिवाले मुमुक्षुओंके ज्ञान दिये हैं, वास्तवसे अस्तित्व स्फुरणत्व प्रियत्वरूप सर्वात्मा ही तुम्हारा हमारा तथा ब्रह्मासे लेके चींटीतक सर्वका अनुभव स्वरूप आत्मा है।

मन

पुनः मन मनुष्य विग्रह धारकर सभामें आय बोला--हे सद्वक्ताओ! वायुसे भी मैं अत्यंत चञ्चल हूँ, जैसे--वायुकी चंचलतासे आकाश निर्विकार है और वायु है भी आका-शके माँहिं; तैसे ही मैं अनेक प्रकारोंका संकल्प विकल्प तथा कभी बहिर्वृत्ति जाग्रत् कभी अन्तरवृत्ति स्वप्न, अपूर्व-वृत्तिसे सुषुप्तिरूप चंचलता करता हूँ। कभी सात्त्विकी, कभी राजसी, कभी तामसी वृत्ति अपनी करता हूँ। कभी मैं धर्माधर्म, बन्ध, मोक्ष, लज्जा, धैर्य्य, सुख, दुःख, काम, क्रोध, लोभ, मोह अहंकारादि तथा ज्ञान, अज्ञान, शांत, दांत, वैराग्य, त्याग, ग्रहणादि संकल्प धारता हूँ, यह सर्व नामरूप जगत्की उत्पत्ति, स्थिति लय, मेरे ही संकल्प हैं। हे साधो! समष्टि व्यष्टि संकल्प स्वरूपसे फुरण एक ही जानना, जैसे--राजाका संकल्प और राजाके नौकरका संकल्प एकरूप ही है, संकल्प स्वरूपमें

भेद नहीं। यह जगत् गारा मिट्टी लेके नहीं बनाया, व्यष्टि वा समष्टि संकल्पसे ही हुआ है, स्वप्न जगत्वत्। हे मित्रगणो! न कोई दुःखरूप पदार्थ है, न कोई सुखरूप है, सुखरूप पदार्थमें दुःख और दुःखरूप पदार्थमें सुखरूपता जैसे मैं दृढ चिंतन करता हूँ वैसे ही आगे भासता है। इससे संकल्प मात्र ही जगत्का रूप है, अन्य नहीं। जो अन्य रूप होता तो सुषुप्तिमें मेरे अज्ञानमें लीन होनेपर भी भासता, परन्तु सो भासता नहीं। इस हेतु संकल्पसे अन्य नहीं हे सज्जनवरो! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्ररूप होकर मैं ही महानुभाव हुआ हूँ, चींटी आदि होके तुच्छ हुआ हूँ, यह खेल सब मेरा ही है। साधो! चक्षु आदि अध्यात्म रूपादि विषय अधिभूत और सूर्यादि देवता अधिदेव है। शांतात्मा ब्रह्मा, विष्णु, शिवसे आदि लेके चींटीतक इतना त्रिपुटीरूप जगत् मुझ मनका ही स्वरूप जानो। जिनको तुम ईश्वर मानते हो सो तो त्रिपुटीरूप जगत् कोटिमें है, मुझ मनमें सच्चिदानंद साक्षी आत्माका प्रतिबिंब जीव है, सो कर्ता भोक्ता है बिंब नहीं। पूर्वोक्त जीव भी जगत्कोटि मेरा स्वरूप है, हे साधो! जीवभाव, ईश्वरभाव, ब्रह्मभाव, जीवेश्वरका भेद अभेद भाव, सगुण निर्गुणभाव, दैवी आसुरी भाव इत्यादि न्यूनाधिक कल्पना मेरी है। इस कल्पनासे यह आत्मा रहित पूर्ण है, जैसे--घटाकाश ब्रह्मलोकादि पवित्र स्थानोंमें तथा उसमें रहनेवाले विष्णु आदि शरीरोंमें तथा मलिनादि स्थानोंमें, तिनमें रहनेवाले जीवोंमें एक सरीखा निर्विकार सबको अवकाश सम ही देता है तैसे मुझ मनका सच्चिदानन्द साक्षी आत्मा वैकुण्ठादि स्थानोंमें स्थित विष्णु आदि शरीरोंमें तथा नरकादि स्थानोंमें स्थित जीवोंमें एक

सरीखा पवित्र निर्विकार असंग हुआ सर्वको सम ही सत्ता स्फूर्ति प्रदान करता है। मेरे पूर्वोक्त अनेक प्रकारोंके कटाक्षोंसे हर्ष शोक नहीं मानता सम ही रहता है। हे अधिकारी जनो ! जो तुम अविवेकसे इस मनके साक्षी आत्मासे सच्चिदानन्दरूप पृथक् ईश्वरको मानोगे तो मुझ जगत् कोटिमें ही रहोगे क्योंकि, सच्चिदानंदसे भिन्न मेराही स्वरूप है, आगे आप मालिक हो।

पार्वती–(स्त्री पुरुषके गुणदोष वर्णन)

पार्वती बोली–हे सम्यक् पक्षपातरहित सज्जनो ! शास्त्रोंमें जहां कहीं कविलोगोंने स्त्रीका निषेध किया है परन्तु पक्षपातरहित विचार राखैं तो यद्यपि स्त्रीमें दश गुण अधिक काम लिखा है; तथापि स्त्रीसे पुरुष अधिक कामातुर होता है, यह प्रत्यक्ष देखनेमें आता है और स्त्री धैर्यवती देखनेमें आती है, कारण कि, पुरुषकी इंद्रियमें वायु भरके खड़ी हो जाती है, स्त्रीकी नहीं होती; इसीसे स्त्री कामसे व्याकुल नहीं होती। देखो पुरुष ही स्त्रीकी प्राप्ति वास्ते द्रव्य दूती आदि अनेक उपाय विशेषकर करता देखनेमें आता है स्त्री नहीं, स्त्रीसे अधिक पुरुषमें कामातुरता देखो, पुरुष तो पांच पांच विवाह करता है, वृद्ध होके भी एक पुरुष अनेक स्त्रीसे शादी करता है, परन्तु स्त्री बाल विधवा भी वृद्ध अवस्थातक कामातुर नहीं होती। पुरुष ही छल, बल, द्रव्य, कपट, मंत्र, वशीकरण औषधी आदि करता है। तात्पर्य यह कि, पुरुष ही अनेक रीतिका लोभादि देके बाल विधवा स्त्रीसे भोगेच्छा करते हैं, स्त्री कैसी भी कामातुर हुई पूर्वोक्त उपाय आदि बहुत कम करती हैं। स्त्रीको काम विषयमें भी पुरुषसे लज्जा जियादा देखनेमें आती है इत्यादि अनेक रीतिसे पुरुषमें कामातुरता और स्त्रीमें अकामा-

तुरतादि विषम भाव देखेनेमें आता है। विस्तार भयसे लिखे नहीं। इससे पुरुष ही निज स्त्रीको तथा परस्त्रीको परम दुःखका कारण है। पलोसा पलासी करके निज स्त्रीको गर्भाधान करता है सो स्त्री विचारी दशमास बालक पेटमें रखके अनेक दुःख पाती है। बालकके जन्म मरणका पालनका. सगाइ विवाहका संततिके अभावका, निर्धनताका, पापी लुच्चादि होनेका. संततिकी संतति न होनेका संततिके विवाह होने न होनेका, तथा रोगादि-कोंका इत्यादि दुःखोंकर मग्न हुई स्त्रीके इस उत्तम दुर्लभ मनुष्य जन्मके व्यर्थ चले जानेमें पुरुष ही कारण हुआ। तैसे ही उत्तम परस्त्रियोंको भी यह पुरुष ही द्रव्यादि देकर, तिनके जाति मतको बिगाड़के अपने सहित दुःखका परम भागी हो जाता है। इससे अतिशयकर पुरुषही निन्दनीय है। यद्यपि स्त्री पुरुषके संयोग बिना जगत्‌का खाता उठ जाता है, तथापि मुमुक्षु स्त्रियोंके लिये पुरुष काला नाग वा घोरा है इससे भद्र मुमुक्षु स्त्रियोंको पुरुषकी लिखी हुई मूर्ति वा काष्ठकी मूर्तिका दर्शन भी नहीं करना। वरन् स्वनिवासस्थानमें भी उत्तम स्त्रियोंकी लेखक दंपती मूर्तियोंका दर्शन कदाचित् स्वप्नमें भी नहीं करना। बल्कि राधाकृष्णादि आपसमें हास विलास करनेवाली मूर्तियोंका भी निज निवासस्थानमें लेख नहीं करना कारण कि उनके दर्शनसे कामाग्नि प्रज्व-लित हृदयमें उत्पन्न होती है। और आश्चर्य देखो पुरुष तो अनेक स्त्रियोंका विवाह करता है तो भी पामर स्वभा-वसे लाज नहीं पाता और स्त्री जो बाल विधवा हो जाती है यदि पुरुष तिसको नहीं बिगाड़े तो ब्रह्मचर्य तिसका पूर्ण हो जाता है। परन्तु येन केन उपायसे पुरुष स्त्रीका ब्रह्मचर्य भंग कर देता है, बल्कि निज लड़केकी विधवा वा

सधवा बहूसे वा पिताने दूसरी शादी मौसीसे तथा भगिनीसे भी दुष्ट पुरुष मिल जाते हैं, इसमें पुरुषका ही अपराध है; स्त्रीका नहीं। कारण कि पहले पुरुषका ही चित्त निज सम्बधी स्त्रियोंसे बिगड़ता है, पीछे लिहाज लोभादि निमित्तोंसे बिचारी स्त्री भी बिगड़ जाती है। पुरुष तो शास्त्र संस्कार द्वारा धर्माधर्मको भी जानता है, परंतु विशेषकर स्त्री जानती नहीं। इससे भी पुरुष ही बेईमान हैं, स्त्रीके धर्म अर्थ काम मोक्षका बिगाड़ने वाला है। स्त्रीमें पुरुषसे लज्जा अधिक है, क्योंकि पहले पुरुषको विषयकी बात कदाचित् भी नहीं कहेगी, कामातुर हुआ पुरुष ही अनेक ढंग रचता है। स्त्री तो साधु ब्राह्मणका, ईश्वर उत्तम बुद्धि करके, दर्शन करने जाती है, परन्तु मूर्ख शठ तिनमें भोगबुद्धि करते हैं और अनेक प्रकारकी बात चीत कर तिनका मन भी विषय लंपट कर देते हैं। इससे पुरुषको ही धिक्कार है।

हे मेरी प्यारी सज्जनियां हो ! यह पुरुष तुम्हारे दुःखका हेतु है, भ्रमसे तुमने सुखका हेतु माना है। इससे स्वप्नमें भी पुरुष की इच्छा मत करो देखो पुरुष कामातुर हुआ साठ सत्तर वर्षकी भी पुनः भी भोगकी इच्छा कर विवाह करता है। इससे ऐसे कामातुर अजितेंद्रिय असंतोषी पुरुषकी इच्छा मत करो।

हे विधवा भगिनियां हो ! विधवा स्त्री तो संन्यासीके तुल्य है जैसे-संन्यासी जितेंद्रिय ब्रह्मचर्य रूप अष्ट प्रकार स्त्रीके मैथुनसे रहित हुआ; निज शील सहित निर्विघ्न आयु व्यतीत करते हैं, ज्ञान विना उत्तमानुत्तम ब्रह्मलोकादि उत्तम गति पाते हैं। तैसे ही विधवा स्त्री को भी ब्रह्मचर्य रूप अष्ट प्रकारका नियम धारण करना अर्थात्—

अष्ट प्रकारका मैथुन

१-पुरुषके विषय संबंधकी बातोंको भी न श्रवण करना। २-पुरुषकी प्राप्तिका स्मरण भी न करना। ३-पुरुषके विषय संबंधका गीत भी न गाना। ४-पुरुषकी प्राप्तिका चिंतन भी नहीं करना। ५-पुरुषके साथ एकांत बात भी नहीं करना। ६-पुरुषकी प्राप्तिका विधवा स्त्रीने दृढ संकल्प नहीं करना ७-उसके लिये प्रयत्न भी नहीं करना और ८--पुरुषके साथ निज अंग नहीं लगाना। इस अष्ट प्रकारके मैथुनसे (विधवा स्त्री) रहित हुई, उत्तम नाम सम्यक् संन्यासी तुल्य गतिको पाती है। इससे हे मेरी प्राणोंसे प्रिय विधवा स्त्रियां हो! सर्व प्रकारसे निर्दयी कपटी दुःखदायी आदि दूषण युक्त पुरुषका नाम मात्र भी सुनके ग्लानि करनी, जिससे इस दुःखस्वरूप स्त्री पुरुषके व्यवहारसे मन हट जावे और आगे सुख होवे। विचार देखो जो पतिमें सुख होता तो पतिवालियां स्त्री दुःखी न होती और धन गृह पुत्रादिकोंमें सुख होता तो धनी गृही पुत्रवती दुःखी न होतीं। हे प्रियदर्श विधवा स्त्रियो! जो तुम अपने जाति मतमें रहोगी तो तुम्हारा तेज बल योगिराजवत् बढेगा, उभय लोक जीत लोगी। यह वैधव्य नहीं मानो, बिचारो तो उत्तम गतिका साधन है। विचार रूपी नेत्रोंको खोल देखो, कहां तो यह तुम्हारी अवस्था कि, शरीर वस्त्र मन आत्मा पवित्र रहना, दुःखदायी संसारके व्यवहारोंसे निवृत्ति रहनी, केवल अन्न वस्त्रसे ही संतान होजाना संतानकी उत्पत्ति आदि पीडासे छूट जाना इत्यादि सुखरूप और कहां पशु धर्मादि संसारमें मरणतक लिप्त रहना, सधवाकी अवस्था दिन रात्रिका भेद है। जन्म मरण छुटनेका साधन वैधव्यरूपी चिंतामणिको त्यागके जन्म मरणरूप

संसार कांचमणीरूप गढेमें गिरना है। इससे हे मेरी सखियां हो ! इस अमूल्य उत्तम वैधव्यको निर्लज्ज कूकरों-वत् पशुधर्ममें मत खोओ। पशु धर्ममें तथा पुत्रादि सामग्री तो तुमको अनन्त योनियोंमें पीछे हुए हैं आगे होवेंगे। परन्तु यह स्त्रीका वैधव्य जन्म निर्विघ्न बीतना ही दुर्लभ है नहीं तो रंडीपना है। हे प्राणप्रिय विधवा स्त्रियो ! तुम्हारे माता, सासु, ससुर, जेठ, जिठानी देवर, दिवरानी आदि जिन स्थानोंमें विषयकी बातें करें, तिन स्थानोंमें तुमको निज शयन बैठनेका स्थान भी नहीं करना कारण कि, देख सुनके विषयोंके संस्कार मनमें पैदा होते हैं। हे शीलवंत स्त्रियो ! यह पशुधर्म तो तथा बाल बच्चे आदि संसार तो हर योनियोंमें मिल सकता है। इसमें क्या बड़ाई है। यह मोक्षद्वार मनुष्य तन मिलना दुर्लभ है यही काल है काम क्रोधादि शत्रुओंको जीतनेका और यही काल है हार होनेका। मन जीते सब जगत् जीता, मन हारे जग हारा। पशुधर्मादि विषयमें जो तुमको आनन्द आता है सो इन विषयोंमें नहीं, जैसे--अस्थि चाबनेमें जो कूकरको रस आता है सो रस अस्थिमें नहीं, जैसे जहां जहां मधुरता चनकादियोंमें मालूम होती है, तहां तहां शक्करही है तैसे जहां जहां विषय इन्द्रियके सम्बन्धसे आनन्द भान होता है तहां तहां आत्मा आनन्द है, सो बुद्धिके प्रकाशक आत्मा तुम अस्तित्व-मात्र हो।

इसीपर एक कथा है। एक कालमें नारद अभिमानकर पूर्ण हुआ चला जाता था। एक जंगलमें पशु आपसमें निज बोलीमें आत्मनिरूपण करते थे। नारद सुनकर स्थित हो गया।

श्वान

इतनेमें भैरवका वाहन श्वान बोला--हे प्रियगणो ! मुझको यह मनुष्य नीच कहते हैं परन्तु विचारकर देखे तो यह देहाभिमानी कुत्तेसे भी अति नीच हैं, कारण कि, कुत्ता निमक हलाल है, अल्प निद्रावाला है, सन्तोषी है, मान अपमानमें सम रहता है, समय अनुसार--स्त्री भोग करता है, निज मालिकको भूलता नहीं, निज मालिकसे द्रोह नहीं करता, इत्यादि अनेक गुण कूकरोंमें है। परन्तु देहाभिमानी पुरुषोंमें तिससे विपरीत गुण हैं इससे वे अतिनीच हैं। हे साधो नीच उच्च व्यवहार सद्‌गुण असद्-गुण निष्ठ हैं, देह जाति, आत्मा निष्ठ नहीं। इससे तुम आपमें पशुत्वधर्म मानके निजमें नीच बुद्धि मत करो किन्तु अतिकामी, क्रोधी, लोभी, अहंकारी, द्रोही, विश्वासघाती, दम्भी, कपटी, अन्यायकारी, अधीर्जी, परस्पर मित्रोंमें विरोध, कर्ता, मातृ, पितृ, गुरु, बड़े भ्रातृ, अभक्त, झूठा अजितेंद्रिय और निर्दोषमें दोषारोपी इत्यादि अनेक अवगुण विशिष्ट पुरुष ही नीच और पशुत्व धर्मवाला कूकर सूकर है। देह अभिमान रहित सच्चिदानंद मनादि दृश्यके द्रष्टा आत्मनिष्ठावान् हम नीच और पशु नहीं।

देवीका वाहन-सिंह

तिस समय देवीके वाहन सिंहने आकर कहा--हे अन्तर्यामियो ! स्व आत्मा सम्यक् अपरोक्ष ज्ञानवान् सज्जनो ! अज्ञान तत्कार्य पशुओंको अपने अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे पृथक् सम्यक् विचार रूप पंजे कर, पूर्वोक्त पशुओंको अत्यंताभाव वा सम्यक् मिथ्यात्व निश्चय रूप हनन करके और अद्वैत निश्चय रूप भक्षण करे सोई सिंह है।

गजेंद्र और ग्राह

पुनः गजेंद्र आकर बोला--हे सत्यवक्ताओ ! श्रोत्रादि इंद्रिय रूप हस्तिनियोंका यह जीव इंद्र है सो इस संसार रूप वनमें निज पत्नियोंसे क्रीडाकर उन्मत्त हो और अतिकाम क्रोध लोभरूप तृष्णाकर व्याकुल हुआ, अति देहाभिमानरूपी तालाबविषे अतिस्नेहरूप जल पीने लगा, तहां महामोहरूप पुत्र, लोक, धन, एषणा, निजनासहित अज्ञानरूप ग्राहके द्वारा भ्रांति हो जाना ही पकड़ लेना है। अर्थ यह कि, मैं जन्म मरण सुख दुःख बंध मोक्षधर्मवाला हूँ। ऐसे स्वस्वरूपको न जानके मानता है। पुनः श्रद्धाभक्तिसहित ईश्वरके आगे सच्चे मनस कर्म उपासना रूप प्रार्थनासे शुद्ध अचल उपदेश योग्य मन करके पुनः विष्णुरूप ब्रह्मनिष्ठ गुरुसे "तत्त्वमस्यादि" महावाकयोंका तत् त्वं पद शोधनद्वारा अखड अर्थ प्रत्यक् आत्माके अनुभवरूप चक्रसे, वासना रूप तन्तुसहित; अज्ञान तत्कार्यरूप ग्राहको मारके निज शिष्यके जन्म मरण बंध मोक्षादि सुख दुःखरूप बंधन दूर किया। सो मैं जीवन्मुक्त होकर विचरता विचरता तुम्हारी सभामें स्थित हूँ। यही गजेन्द्रके प्रकरणका तात्पर्य है।

शीतला देवीका वाहन गर्दभ

पुनः शीतला देवीकर बोधित देवीके वाहन गर्दभने आकर कहा--हे साधो ! श्रद्धा गुरुभक्ति सेवापूर्वक श्रवण, मनन, निदिध्यासन तथा तत् त्वं पदार्थके शोधनसे उत्पन्न संस्कारविशिष्ट शीतलादेवी रूप बुद्धि, तिस बुद्धिरूप शीतलाकी ब्रह्माकार वृत्तिवाहन मैं गर्दभ हूँ। यह बहिर पशु गर्दभ तो देहाभिमानी अज्ञानी पुरुषोंकी उपमा बोधक करता है। इससे जो दुराचार अन्याय, अजितेंद्रियता, परद्रोह, अनम्रता, अशांति, सदुपदश श्रवणकी

विस्मृति, असारग्राही आदि अवगुणविशिष्ट ही गर्दभ है। सत्संभाषणादि धर्मानुष्ठानपूर्वक, श्रवण मनन निदिध्यासनसे "मनादियोंका साक्षी मैं सच्चिदानंद आत्मा हूँ" इससे दृढ निश्चयवान् पुरुष ही ब्रह्मरूप देव है अन्य सर्व गर्दभ पशु हैं।

वाराह भगवान्

पुनः वाराह भगवान् संबंधी शूकर सभामें आकर बोला–हे सर्वमें आत्म उपमादर्शक सभा! सु नाम श्रेष्ठ कल्याणका है, कर नाम करनेका है, कल्याणको जो करे सो सुकर कहिये वैराग्यादि दैवीगुणोंमें भी पुरुषको कल्याण कारिताकूप सुकरता घटता है, परंतु परमकल्याण तो निज सम्यक् अपरोक्ष बोधद्वारा सच्चिदानंद आत्मा ही करता है इससे सच्चिदानंद आत्माका नाम सुकर है। इस हेतु मुझ पूर्वोक्त शूकरको निज मनादि दृश्यका साक्षी चिन्तन करो। मन तो कोई न कोई चिंतन करेगा ही; एक कालमें दो चिंतन नाम संकल्प होते भी नहीं क्रमसे ही होवेंगे। "मैं सच्चिदानंद आत्मा हूँ" इस चिंतनका नाम ही ब्रह्माकार वृत्ति है अन्य अनात्माकार वृत्तिको त्यागके अनात्माकार वृत्ति करो। वस्तुसे ब्रह्माकार और अनात्मा कार वृत्तियोंके प्रकाशक तुम आत्माको दोनों वृत्तियां सम हैं। हे साधो! सम्यक् जानना ही कर्तव्य है और कुछ करना नहीं।

हयग्रीव

इतनेमें हयग्रीव भगवान्‌कर उपदेशित अश्वने आयकर कहा–हे सम्यक् दर्शियो! "न श्वं जानाति इति अश्वः" अर्थ यह कि, जो अपने स्वरूपको सम्यक् नहीं जानता है, सोई अश्व अर्थात् घोड़ा है। इससे अज्ञानीरूप बन्ध मोक्ष, ज्ञान अज्ञान तथा देहाभिमान, जन्ममरण, राग द्वेष, सुख-

दुःखादिरूप पुरुषोंके अधीन होके खेद पाता है। परंतु निज स्वरूपको जाननेसे ही अश्वपना निवृत्त होके देवभाव होता है।

गणेशका वाहन मूषा

पुनः गणेशके वाहन मूषाने आकर कहा–हे धर्मज्ञ पुरुषो ! तत्त्वमस्यादि महावाक्योंसे उत्पन्न हुई, ब्रह्मात्म अखंडाकार वृत्तिरूप, मूष सो चक्षु मनादि इन्द्रिय-रूप गणोंका स्वामी सच्चिदानंद आत्मारूप गणेश पूर्वोक्त निजवाहन वृत्तिरूप मूषेमें आरूढ होके माया तत्कार्यरूप दृश्यको अत्यंताभाव निश्चयरूप छेदता है, इससे मुमुक्षु जनका सत्संभाषणादि धर्मानुष्ठानपूर्वक ब्रह्मविद्याके गुरुमुखसे श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा, 'अहं ब्रह्मास्मि' वृत्तिरूप मूषाकी उत्पत्तिके लिये ही सर्व कर्म और उपासनाकांडके अनुष्ठानका फल है। और कोई वैकुण्ठादि लोकोंकी प्राप्ति, कर्म उपासनाके सेवनका फल नहीं। हे साधो ! गणेशका मूषा वाहन है, इस कथाका पूर्वोक्त प्रकरणमें ही तात्पर्य है अन्यथा मानोगे तो शास्त्रको अनुभव विरुद्ध कथन करनेसे निष्फलता होवेगी।

नन्दीगण (शिव तथा शिवके वाहन नन्दीका भावार्थ)

तिसी सभामें मनुष्य आकृति धारके नंदीगणने आकर, कहा–हे मित्रवरो ! पंचभूतोंकी सात्विकी साक्षी अंशरूप गौसे मुझ अन्तः-करण बैल नंदीगणकी उत्पत्ति है सो मैं शिवका वाहन हूँ। अर्थ यह है कि, अंतःकरण उपहित चैतन्य ही चक्षु आदि इन्द्रिय देवनका देव नाम प्रकाशक है. सोई शिव नाम कल्याण रूप और अंतः-करण रूप हिमाचलकी बेटी "तत्त्वमस्यादि" महावाक्योंसे उत्पन्न होनेवाली "अहं ब्रह्मास्मि" यह ब्रह्मविद्या रूप वृत्ति गौरी अर्द्धांगा है। तात्पर्य यह है कि, सम्यक् तत्ववेत्ताकी सर्व

चेष्टामें ब्रह्माकार वृत्ति बनी रहती है, सो ब्रह्मवेत्ताका नाम ही शिव है; अज्ञानी लोग अशिववत् अशिव हैं।

हिंगलाज

तैसे 'हिसि हिंसायाम्, जो मनवाणी शरीर कर; सर्व सुख दुःखादि अवस्थामें सर्व जीवोंविषे, आत्मा उपमा दर्शनरूप साधनसे पर प्राणीको पीडनरूप हिंसासे लज्जायमान हो सो ही हिंगलाज है। इस पूर्वोक्त हिंगलाजके स्पर्शन रूप धारणसे अवश्य कल्याण होगा।

पुष्कर

तैसे ही मनुष्य शरीर पुष्कर रूप तीर्थमें, मन मुमुक्षुरूप जीव ब्रह्माने, चक्षुआदि इन्द्रियरूप देवताओंसहित विष्णुरूप आत्मानात्माका सम्यक् विवेकरूप यज्ञ किया। तिसमें जीवरूप ब्रह्माकी अनादि स्त्री प्रवृत्ति रूप बुद्धि सरस्वती किसीके निमित्तसे क्रोधमें होयके निज पति पास बुलाई भी नहीं आई। अर्थ यह कि, वैराग्यवान् विवेकी अशास्त्री प्रवृत्तिको प्रिय नहीं लगता। इसीसे जीवरूप ब्रह्माने पूर्वोक्त यज्ञकी सहायक निवृत्ति रूप प्रिय गायत्री स्त्रीको अंगीकार किया, पश्चात् निर्विघ्न विवेक रूप यज्ञ पूर्ण हुआ।

रामेश्वर

तैसे ही मुमुक्षुओंने निज शरीरमें ही त्वंपदके वाच्यार्थ जीवको राम जानना और त्वंपदके लक्ष्य अर्थको कूटस्थ मन साक्षी ईश्वर जानना, सोई जीवका रामेश्वर स्वरूप है।

ज्वालामुखी

तैसे ज्वाला एवमुखी-ज्वालामुखी। ज्वाला नाम प्रकाशस्वरूप ही है प्रधान जिसका; ऐसी जो प्रत्यक् आत्मसत्ता बुद्धि साक्षी है सो ही मुमुक्षुको ज्वालामुखी जाननी।

हरिद्वार

तैसे ही ब्रह्म एकत्व ज्ञान द्वारा ही सच्चिदानंद निज स्वरूप हरिको प्राप्त होता है, इससे ज्ञानका नाम हरिद्वार है ।

नर्मदा

तैसे वेदरूप नर्मदाके किनारे अर्थात् वेदका सारभूत अकार उकार मकार अर्धमात्रा ये चार मात्रारूप ओंकारको जानना । जिन अकारादिवाचक मात्राओंका वाच्यध्याता, ध्यान, ध्येय, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर और समष्टि अभिमानी विराट् अभिन्न विश्वादि जीव इत्यादि अनेक त्रिपुटीरूप वैदिक लौकिक वाच्य जगत् है । जाग्रत् आदि अनेक त्रिपुटीके प्रकाशक वाचक अर्धमात्राका वाच्य तुरीय प्रत्यक् आत्मा है । इतना ही व्यवहार परमार्थका स्वरूप है । सो वाच्य वाचक भावसे सर्व ओंकाररूप ही है । इससे मुमुक्षुको पूर्वोक्त ओंकारकी यात्रा करनी अर्थात् निज शरीरमें ही विवेचन सम्यक् करना, जिससे मरणरहित दर्शनका फल हो ।

भागीरथी

तैसे ही मुमुक्षुरूप भगीरथके अष्टांगयोग तथा आत्मानात्माका सम्यक् विवेकरूप सांख्ययोग, यत्नरूप तपस्याद्वारा अन्तःकरणरूप हिमालयसे ब्रह्माकार वृत्तिरूप ज्ञान स्वरूप गंगा उत्पन्न होती है, पुनःब्रह्मरूप समुद्रमें एकरूप हो जाती है । मनोनाश, वासनाक्षय वा उपरति, वैराग्य ज्ञानरूपी गंगासे जब मिलती है तब जीवन्मुक्तिरूप त्रिवेणी हो जाती है । पूर्वोक्त ज्ञानरूप गंगामें जो स्नान करता है, पुनः जन्मको नहीं प्राप्त होता ।

बद्री केदार

तैसे ही इस मनुष्य शरीर वा अंतःकरणरूप उत्तराखंडमें अस्तित्व, स्फुरणत्व, प्रियत्वरूप सुख दुःखादि मन सहितमनके धर्मोंका जो अनुभवकर्ता है सो ही केदार और बद्रीनाथ है । इत्यादि बहिर कथाओंका अर्थ अंतर अध्यात्ममें निज बुद्धिसे जोड लेना ।

संसारके अभावका उपाय

इससे सत्, संतोष, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, शांति, दांति, वैराग्य आदि तीर्थोंमें स्नान करके, पुनः गुरुद्वारा वेदांत श्रवण, मनन निदिध्यासनपूर्वक ब्रह्मात्मा निजस्वरूपका सम्यक् अपरोक्ष जिस दिन यह मुमुक्षु करेगा किसी दिन भ्रमरूप जन्म मरणरूप संसार निवृत्त होगा अन्य संसाररूप जन्म मरणके दूर करनेका कोई उपाय नहीं। चाहे सर्व विद्वान् शास्त्रोंमें खोज देखो । आगे जो इच्छा हो सो करो ।

उष्ट्र (गौरीके शापसे सनत्कुमारके उष्ट्र होनेका आशय)

गौरीके शापसे सनत्कुमार (उष्ट्रकी) संततिमें उष्ट्र ज्ञानवान् हुए थे, तिनमेंसे एक उष्ट्रने आयकर कहा-हे नीतिज्ञ सभा ! उ इति वितर्के, ष्ट्र नाम टरनेका है, अर्थ यह कि, माया तत्कार्यसे जो सम्यक् आत्मानात्माके विचारसे निज स्वरूपसे ही असंग रहे तिसका नाम उष्ट्र है, जैसे-आकाश स्वरूपहीसे भूत भौतिक प्रपंचसे असंग रहता है सो उष्ट्रनाम पूर्वोक्तरीतिसे सच्चिदानंद आत्माका है; जैसे-स्वप्नमें उष्ट्रादिरूप स्वप्नद्रष्टा ही होता है, तैसे सर्वरूप आत्माहीके होनेसे भी उष्ट्र आत्मा ही है, जैसे-उष्ट्र सकंटक और निष्कंटक वृक्षको खाता है, तैसे मैं द्वैत अद्वैत द्वंद्वरूप संसार वृक्षोंके निजात्मामें अत्यंताभाव वा मिथ्यात्व निश्चय सम्यक् ज्ञानरूप भक्षण करता

हूँ। हे साधो ! हीरे मोती आदि नगोंसे जडित पलंगमें तथा मंदिरमें शयन किया तो क्या हुआ ? न किया तो क्या हुआ ? राजलक्ष्मी भोगी तथा देव ऐश्वर्य भोगा तो क्या हुआ ? न भोगा तो क्या हुआ ? तैसे निर्द्धनी हुआ तो क्या हुआ ? जो सधनी हुआ तो क्या हुआ ? कारण कि, गुजर सबकी तुल्य है, जिमि गुजरी तिमि गुजरी चार दिना गुजरान जिमि कीनी तिमि कीनी सर्व स्वप्नवत् मिथ्या है; कोई पदार्थ सत् नहीं । इसीसे इनके ग्रहण त्यागमें शांति नहीं होती वैकुंठादिकोंमें भी इस वर्तमान जगत्वत् ही व्यवहार है, न्यूनाधिक कुछ नहीं । इससे शांतिरूप एक आत्माही है अन्य नहीं ।

श्रृगाल

पुनः श्रृगाल आकर सभामें बोला—हे नीतिज्ञ सभा ! श्रृक् नाम मालाका है; अल नाम पूर्णका है । जो इस नामरूप अनंत ब्रह्मांडरूप मणियोंमें तागेवत् पूर्ण होवै उसीका नाम श्रृगाल है वा सूतकी मालावत् आप ही मणि और तागारूप होवै तिसका नाम श्रृगाल है सो मैं सच्चिदानंद श्रृगाल तुम्हारे मनादिका, अपरोक्ष, अवेद्यत्व, सदा साक्षीरूप कर हाजिर हुजूर हूँ, जब मुझ निजात्माको जानोगे तो भ्रमसिद्ध बंध मोक्षादि जगत्से छूटोगे ।

वानर

पुनः वानरने आकर कहा—हे साधो ! शास्त्रमें मन और वानरकी उपमा तुल्य कही है; परन्तु मन भूतोंका कार्य्य होनेसे जड है और मैं तो इस वानर शरीरका तथा मनका प्रकाशक हूँ; इससे समता नहीं । तैसेही नर नाम पुरुषका है, पुरुष नाम पूर्णात्माका है। वा विकल्प नाम वेदानुकूल तर्कसे, दृश्य द्रष्टाका सम्यक् विवेककर भूमाको निजस्वरूपको संशय रहित अपरोक्ष जानता है सोई

वानर है। वा पूर्वोक्त वानरसे भिन्न सर्व दृश्यरूप माया स्त्री है, इससे भिन्न मुझ भूमाको अपना आप जाने बिना सुख तुमको नहीं होगा। आगे आप मालिक हो।

पराशरने कहा-हे मैत्रेय! इस प्रकार सर्व सभा परस्पर नमस्कार करके आप अपने २ वांछित स्थानको गई।

इति श्रीपक्षपातरहित अनुभवप्रकाशस्य पंचमः सर्गः समाप्तः ॥५॥

अथ षष्ठ सर्ग ६.

पराशरने कहा-हे मैत्रेय ! तू भी आत्मदर्शी हो। मैत्रेयने कहा-देखना दूसरेका होता है; मैं स्वयं आत्मा आत्माको कैसे देखूं ? जो जो देखनेमें, सुननेमें, सूंघनेमें, स्पर्शमें, रस लेनेमें, वाक् उच्चारणमें, मनके चिंतनमें, ग्रहण त्यागमें इत्यादि मन कर वाणी शरीरकर जाना जाता है सो सो दृश्य जड अनित्य होता है इससे सेवक द्रष्टा मुझ आत्माका अन्य द्रष्टा नहीं। पराशरने कहा-हे मैत्रेय ! अवाङ्मनसगोचर सर्वाधिष्ठान, जगद् विध्वंस प्रकाशक, अवेद्यत्व, सदा अपरोक्ष साक्षी, सच्चिद्घन, विशुद्धानन्द, ब्रह्मात्मा अपने स्वरूपको सम्यक् अपरोक्ष हस्तामलकवत् (जाननेवत्) जाननेका नाम आत्मदर्शन है।

आतमदर्शीकी कथा-(आत्मदर्शी और वासुकर्णका आत्मतत्त्व निर्णय)

इसी पर एक कथा सुन। एक आत्मदर्शी नाम मुमुक्षुने गुरुसे प्रश्न किया कि-हे गुरो! तुम्हारी कृपासे देवताओंको भोग प्राप्त है, सो मुझको भी प्राप्त है क्योंकि षट् विषय और षट् विषयोंके ग्रहण करनेवाले षट् इन्द्रिय तथा इन्द्रिय विषयके संयोग वियोगजन्य सुख दुःखका

अनुभव, भोग और भोगोंके साधन विषय इन्द्रिय ब्रह्मासे लेकर चींटीतक सम ही हैं न्यूनाधिक नहीं, विचारे बिना न्यूनाधिक भासती है सम्यक् विचारे नहीं तो न्यूनाधिकता देखकर तप्त रहती है। अधिककी प्राप्तिकी इच्छा होती है, न्यूनमें अहंकृति होती है। सर्व प्रकार सम वस्तुमें दोनों नहीं। इसी विचारसे शांति मनमें होती है अन्यथा नहीं। मैंने सर्व कर्तव्य जगत्के स्वभाव शरीरका जाना है। जो दृश्यमान है; सो असत् भ्रम समझा है पर यह नहीं जानता कि, मैं कौन हूँ? कहांसे आया हूँ? शरीर त्यागकर कहां जाऊँगा? मूल मेरा क्या है? जो मैं आत्मा होऊँ तो शरीरविषे क्यों आऊँ? कारण मेरा उत्पत्तिका क्या है? वासुकर्णने कहा-हे पुत्र! मूल तेरा वह है जिससे जगत् प्रकाशमान हुआ है। न तू कहींसे आया है, न कहीं जायगा, आकाशके समान पूर्ण अचल स्थित है, आवागमनका तुझविषे मार्ग नहीं। उत्पत्ति नाश होना धर्म शरीरका है और शरीर शुभाशुभ कर्मोंसे होते हैं। कर्म चाहनासे होते हैं और चाहना अज्ञानसे होती है। अज्ञान अपने स्वरूपके अन पहँचाननेसे होते हैं। औरको अपनेसे भिन्न स्थापन कर और मुक्तिका सहायक मानकर (ईश्वर मेरी मुक्ति करेगा) आपको अर्थी और को दाता जानना ही अज्ञान है, नहीं तो वेद कहते हैं मैं एक ही ईश्वर अनक रूप हूँ, जैसे-स्वप्नद्रष्टा एक ही अनेक रूप होता है। इससे यह सृष्टि ज्योतिरूप ईश्वर ही है; जैसे-सूर्यकी किरणें सूर्यस्वरूप हैं। जब सर्व रूप ईश्वर ही पूर्ण हुआ तो आपको तिससे भिन्न शरीर वा जीव मानना केवल अज्ञान है।

सब एक ही है

एकको भला और एकको बुरा ईश्वररूप आत्माविषे कैसे गनिये? मूलविषे मनुष्य पशु स्थावर जगमादि

विचारवान्को सम है; भेद नहीं । व्यवहारके जो लघु दीर्घ नीच ऊंचादि भेद भासता है सो फल कर्मोंका है और अपने मूलके अज्ञानसे भासता है, जैसे-वृक्षके शाखा पत्र फल फूलका जो भेद भासता है सो मूलके अज्ञानसे भासता है, जैसे-स्वप्न पदार्थोंका जो भेद भासता है सो स्वप्नद्रष्टाके अज्ञानसे भासता है, स्वप्नद्रष्टाकी दृष्टिसे नहीं ।

नरक जानेका मार्ग और मुक्तिका उपाय

हे पुत्र ! इन्द्रियोंका असज्जन रीतिसे पालना जीवको नरक ले जाता है, जौलौं संग संतोंका न हो त्याग नहीं होता । अपने स्वरूपका पहँचानना जो मुक्ति है; सत्संगसे प्राप्त होती है । हे पुत्र ! जो कुछ मनवाणीसे नामरूप कथन चिंतन होता है, सो केवल आभासमात्र जान । जो असत् हो उससे प्रीति मूल अज्ञान है ।

आत्माकी सत्यताका स्वरूप

आत्मदर्शीने कहा-हे प्रभो ! सर्व स्वभाव पंचइंद्रियों संयुक्त यह पंचभूतरूप शरीरसहित सर्व नामरूप जगत् मृगतृष्णाके जलके तरंगके समान है, मूल इन सर्वका चैतन्य आत्मा है सो आत्मा कैसा है ? वासुकर्णने कहा-पाप पुण्यसे पवित्र सर्व वस्तुविषे स्थित भी अलिप्त, कर्मोंविषे बन्ध नहीं होता, मरण जीवन और बन्ध मोक्षसे अतीत है । तत्त्वोंसे आदि लेके सर्व वस्तु तिस आत्माको नाश नहीं कर सकते हैं । तात्पर्य यह कि, नामरूप जगत् असत् है और आत्मा सत् है । दोनोंका स्वभाव अन्यथा नहीं होता ।

उत्पत्ति और नाशवान् पदार्थ आतमासे भिन्न मिथ्या है

तब हे गुरो ! उत्पत्ति होकर जो विनशता है पुनः कर्मोंमें बन्ध होता है सो कौन है ? वासुकर्णने कहा-हे

पुत्र ! स्वप्नप्रपंच विषे जैसे उत्पत्ति विनाश कोई कर्मोंमें कोई मुक्त, कोई सुखी, कोई दुःखी होता है, इत्यादि अनेक प्रकारकी जो प्रतीति होती है सो केवल निद्रारूप अविद्याकर है, वास्तवसे स्वप्नद्रष्टामें नहीं । तैसे ही अपने स्वरूप अधिष्ठानके अज्ञानसे विषमता भासती है वास्तवसे नहीं ।

नाम और नामी

आत्मदर्शीने कहा–नारायणादि नाम भी नाशरूप होवेंगे वा नहीं । वासुकर्णने कहा–नाम शब्दमात्र है आकाशका गुण है, इससे नाशी है परंतु नामी नाशी नहीं क्योंकि, नाम, रूपका तथा तिनके नाशका भी (आत्मा) स्वरूप है । हे पुत्र ! नामरूप जगत्की बुद्धिसे है, नामरूपका अधिष्ठान आत्मा बुद्धि नहीं होता ।

आत्मप्राप्तिक हेतु गुरु शिष्यका बर्ताव

पर इस भेदके पावने निमित्त गुरु पूर्ण और शिष्य श्रद्धावान् चाहिये और संतोंके संगसे अचेत न होवे तो पावे ।

स्वरूप आत्माका

हे पुत्र ! यह सर्व स्तुति चैतन्य आत्माकी है और स्तुतिसे अतीत भी है उपजने विनशनेका इस बुद्धि आदिकोंके साक्षी आत्मामें मार्ग नहीं और न कभी इसको किसीने देखा है, स्वयंप्रकाश होनेसे, जैसे–स्वप्नपुरुष स्वप्नद्रष्टाको कभी भी स्वप्न नर नहीं देख सकते । इस चैतन्यसे भिन्न कौन है जो देखे ? पुरुषको विचार करना चाहिये कि इस जड संघातकी चेष्टा कौन करता है ? जिस चैतन्यकर यह संघात चेष्टा करता है वही मेरा रूप है, नामरूप व्यवहार जगत्का है, जो परंपरा विचारे तो नामरूपभी आत्मारूप है भिन्न नहीं क्योंकि, कल्पित नाम-

रूप जगत्की निवृत्ति अधिष्ठान आत्मरूप है। हे पुत्र! तुझे जो आत्मदर्शी कहते हैं सो कौनसे अंगको कहते हैं? क्योंकि सर्व अंग आप अपने नाम रखते हैं पुनः तिनका भी सूक्ष्म विचार करें तो निकसता भी कुछ नहीं; जैसे-केलेके पत्ते निकासते जाओ तो शून्य ही शेष रहता है। इससे नामरूप केवल कहने मात्र है।

पुरुष नित्य है

हे पुत्र! उत्पत्ति नाश शरीरका धर्म है, क्षुधा तृषा प्राणोंका धर्म, हर्ष शोकादि मनका धर्म है, जैसे-पुराने वस्त्र उतारके पुरुष नवीन ग्रहण करता है, पर पुरुष नित्य है वस्त्र अनित्य हैं; तैसे देह अनित्य है और देही नित्य है।

पूर्ण और पवित्र कब होता है ?

आत्मा देहाभिमान त्यागके पूर्ण होता है; जैसे-बूँद वा नदियां अपना नामरूप अहं त्यागके समुद्र रूप होती हैं। जब शरीर त्यागता है पीछे भला बुरा रह जाता है। हे पुत्र! जैसे-नदीसे थोडा जल निकाल कर अपवित्र ठौर डाला, तब कोई तिसको अंगीकार नहीं करते और अपवित्र कहते हैं जब पुनः नदीसे मिला पवित्र होता है अपवित्र उसका नाम नहीं रहता। तैसे सत् चित् आनंद आत्मारूप समुद्रके अज्ञानसे आपको भिन्न मानकर अल्प जीव जानना और अपवित्र शरीरको अपना आप परिच्छिन्न मानना यही अपवित्रता है।

स्वरूपसे कबतक भिन्न रहता है

जब लग असत् जड दुःखरूप शरीरादिकोंमें अहंकृति है, तब लग अपने स्वरूप समुद्रसे भिन्न रहता है। जब शरीरादिकोंमें सम्यक् विचारसे अहंकृति न रही और आत्मा स्वरूप सम्यक् अपरोक्ष जाना तब पूर्ववत् सत् चित आनंदरूप आत्मारूप समुद्र होता है।

व्यवहारोंविषे असमता है सम कैसे कहैं ?

आत्मदर्शीने कहा—हे गुरो ! तुम्हारे वचनसे मैं आपको पूर्ण ब्रह्मात्मा जानता हूँ, पर शुभाशुभ शरीरके स्वभाव मुझे प्राप्त होते हैं, तिनविषे सम कैसे होऊँ ? मैं देखता हूँ कि, शुभविषे प्रसन्न अशुभविषे अप्रसन्न होना हूँ, जो मैं पूर्ण आत्मा हूँ तो न होना चाहिये। वालुकर्णने कहा—हे पुत्र ! तू आप ही कहता है मैं देखता हूँ, शुभाशुभविषे हर्ष शोकी होता हूँ, इससे यह सिद्ध हुआ तू हर्ष शोकको देखनेवाला है, हर्ष शोक किसी और को होता है, तुझको नहीं। यह हर्ष शोकादिक मनादिक संघातके धर्म हैं इससे इनकी वासनाके त्यागविषे दृढ हो !

अपने विचारे विना सुख नहीं

ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक तुझे उपदेश करें और पहँचान रूप देहादिकोंकी वासना न त्यागे तो स्वरूपकी पहँचान रूप मुक्ति कठिन है, भावे जितनी शुभ कर्म करने विषे तथा विद्या पढने विषे अवधि (आयु) बितावे। जिसकी जगत् (असत्) से प्रीति है विषयोंसे अघाता नहीं, उसको दोनों लोककी अप्राप्ति होती है, जो चाहनासे अचाह है, सोई मुक्त है।

हे पुत्र ! सर्व श्रवण मनन निदिध्यासनादि साधन मनकी शुद्धि वास्ते हैं, जब मन वश हुआ मानो त्रिलोकीका राज्य मिला। तुझे किसी अन्यने बंधन नहीं किया, तुझ चैतन्यने आप ही देहाभिमान कर आपको आप बन्धन किया है। जब तू आप सम्यक् देहाभिमान त्यागे मुक्त होता हुआ मुक्त होवेगा।

स्वरूपकी प्राप्ति अति सुगम और अतिकठिन है

अपने स्वरूपका बोध सत्संगसे होता है, ज्ञान विज्ञान स्वरूप पानेतक है आगे नहीं, इससे आपको नित्यसुख

चिद्रूप जान जो कर्म रूप शरीरके बन्धनसे छूटे। स्वरूप जाने विना अति कठिन भी है और जानेपर अति सुगम भी है!

किसको कठिन है

जिसने इंद्रिय मन नहीं जीता और देहविषे अहंकार पूर्वक वासना नहीं त्यागी तिसको कठिन है।

किसको सुगम है

जिसने पूर्वोक्त मन इंद्रिय जीतपूर्वक सर्व वासना त्यागी है किसको सुगम है।

बुद्धिमान्‌को सैन ही बहुत है; मूर्ख सारी आयु सत्संगमें बितावे तो भी कोराका कोरा रह जाता है; जैसे–गंगामें पत्थर कोरेके कोरे रह जाते हैं। इससे इस शरीरसहित जगत्‌को स्वप्नवत् मिथ्या जान और आपको शरीर मनादि संघातका द्रष्टा जान जो कालके भयसे छूटे।

आत्मदर्शीने कहा–संसारको मैंने असार जाना है, पर कहो मैं कौन हूँ? व्यासकरणने कहा– तू संसारके असार जाननेवालेका अनुभव करनेवाला है, तेरा अनुभव करनेवाला कोई नहीं। यह जगत् तरंग तुझ चैतन्य समुद्रसे हुआ है, तुझ ही विषे लीन होता है, पर तू चैतन्य एकरस है। जगद्रूप कर्मसे अतीत है। जो दृश्यमान् है, तिन सबका तू जीवनरूप है, जैसे–तरंगादिकोंका. समुद्र जीवनरूप है। पर तूने आपको भुलाकर शरीर माना है, इसीसे अनेक तू भ्रमोंमें बध्यमान् हुआ है। मुक्तरूप तू मुक्तिको भ्रमकर चाहता है अपनी पहँचान कर, जब तू आपको सम्यक् जानेगा तो बन्धकी निवृत्ति और मोक्षकी प्राप्तिकी इच्छा न करेगा, उलटा बन्ध मुक्तको भ्रमरूप जानेगा।

साधन कबतक है ?

हे पुत्र ! तीर्थयात्रा, जप, तप, नियम, योग, यज्ञ, व्रत, पूजादि, साधन तबतक है, जबतक साध्यरूप ब्रह्मात्माका सम्यक् अपरोक्ष नहीं हुआ, जब हुआ तो साधनोंसे क्या प्रयोजन है ? जैसे-लडकियां तबलक गुडियोंसे खेलती हैं जबलग पति नहीं मिला, जब पति मिला तो गुडियोंसे खेलनेका क्या प्रयोजन है ? कुछ नहीं ।

ईश्वरकी प्राप्तिका उपाय

जो सत् चित् आनंदरूप ईश्वरकी प्राप्तिवास्ते अपने स्वरूपकी पहँचानका उपाय सत्संग सहित सच्छास्त्रके विचारको त्यागकर अन्य साधनमें प्रवृत्ति करते हैं तो वे जैसे-कोई गंगाके किनारे जायकर गंगाजलको त्यागकर और जल पीवे और स्नान करे, उसके समान है । इससे आपको पहँचान और असत् कर्मोंका त्यागकर ।

सब स्वप्नवत् है

आत्मदर्शीने कहा-हे पिता ! मैंने जगत्को मृगतृष्णाके जलवत् जाना है उसमें मन नहीं बांधता । शरीरको मिथ्या जानकर इनके पालनेकी इच्छा भी नहीं करता । षट् इंद्रियोंको ठग जानकर उनकी चाहना पीछे भी नहीं दौड़ती । चाहनासे अचाह होकर अपने स्वरूपको पहँचा-नना परमार्थ है यह निश्चय किया है । जबतक आपको सम्यक् नहीं जाना तबतक हर्ष शोकादिरूप द्वैतमें बन्ध है, पर आपको कैसे पहँचानूं ? कौन वस्तु है जिससे अत्माका निश्चय करूं ? वह कौन भजन है जिससे उसको प्राप्त होऊं ! मैंने सुना है कि, रूप नहीं राखत अरूपको कैसे देखिये ? ठौर उसकी कौन है ? यह संसार क्षणविषे उत्पत्ति विनाश होनेवाला है इससे कैसे छूटूं ? व्यासकरण हँसा और कहा- हे पुत्र ! हर्ष, शोक, बंध मोक्ष, धर्म

अधर्म राजा, रय्यत, चंद्र, सूर्यादि अनेक प्रकारके स्वप्नमें निद्राकर जगत् भासते हैं, पर जब जागा तब तिनकी रेखा भी नहीं मिलती। तैसे जाग्रत् जगत् भी जबलग अज्ञान है तबलग अनेक भाँतिके प्रतीत होते हैं। जब सम्यक् अपने स्वरूपकी पहँचान करेगा तो नानारूप भासते भी एकरूप जानेगा। तुझ मनादिकोंके साक्षी चैतन्य विना और दूसरा कौन चैतन्य है, जो तुझको जाने ? क्योंकि, ज्ञानरूप तू ही चैतन्य है अन्य नहीं।

जीवकी ईश्वरता प्राप्ति

आत्मदर्शीने कहा--हे पिता ! मैंने जाना है कि, मन इंद्रियोंके वश सहित स्वरूपका पावना सत्संगसे है। पर यह पराधीन तुच्छ अल्पबुद्धि जीव कैसे ईश्वर होता है ? व्यासकरणने कहा--ईश्वरका स्वरूप क्या है ? आत्मदर्शीने कहा--सत् चित् आनन्दरूप ईश्वरका है। संतने कहा--सोई सत् चित् आनंदरूपता इस बुद्धि आदिकोंके साक्षी आत्मामें घटे तो तद्रूपता हुई वा नहीं ? जैसे-दाहकता उष्णता प्रकाशकता महान् अग्निमें है सोई चिनगारीमें है। महानता तुच्छता अग्निमें नहीं काष्ठमें है। जहां काष्ठ बहुत हैं वहां अग्नि महान् प्रतीत होती है, जहां काष्ठ थोडा है वहां अग्निकी तुच्छता प्रतीत होती है। इसी रीतिसे समुद्र जलका और बूंद जलका तथा महाकाश घटाकाशादिकोंका भी दृष्टांत अपनी बुद्धिसे विचार लेना।

स्वरूपप्राप्तिमें अधिकारी

हे आत्मदर्शी ! सार ग्राहीको तो इस बातमें विरोध नहीं पड़ता, विवादीका इस विषयमें अधिकार ही नहीं क्योंकि यह धन सरल बुद्धिवालोंका है अन्यका नहीं।

आत्माकी-सच्चिदानन्दरूपता

आत्मदर्शीने कहा-- यह प्रत्यक् आत्मा सत्, चित् आनन्दरूप कैसे है ? गुरुने कहा--तीनों कालोंविषे तथा

जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तथा सत्त्व, रज, तम जड आदि परस्पर भावाभाव होते भी यह प्रत्यक् आत्मा अबाध्य है इसीसे सत् है । तथा मनादिक सर्व संघातके सर्व व्यवहारको स्वयंरूपताकर जानता है इसीसे चैतन्य है । परम प्रेमका आस्पद होनेसे आनन्दरूप है । हे पुत्र ! ईश्वर व्यापक है, राजाके समान किसी देशमें सभा लगाकर बैठा नहीं सर्वके हृदयमें ईश्वर साक्षी रूपताकर स्थित है, अन्य रीतिसे नहीं । यह वेद महात्मा पुकारते हैं । किसी रीतिसे भी सत् चित् आनन्दरूप आत्मासे पृथक् ईश्वरका स्वरूप सिद्ध नहीं हो सकता । जो भिन्न सिद्ध करोगे तो असत् जड दुखरूप सिद्ध होगा क्योंकि, देशकाल वस्तु भेदवान् पदार्थ अनित्य होता है ।

सबका जाननेवाला सबसे भिन्न है

हे पुत्र ! यह विचार भी रहने दे परन्तु जिसको तू जानता है, चाहे वह वस्तु सत् हो; वा असत् पर तिसको जाननेवाला तू तिससे भिन्न है । इसमें तू आपको मनादिकोंका साक्षी द्रष्टा जान चाहे तू ईश्वर रूप है वा अनीश्वररूप है ।

पंडितापंडित, बंध मोक्ष प्राप्तिका उपाय

हे पुत्र ! आपको बुद्धिमान् जानके विषयोंमें लीन होता है, स्वरूपका विचार नहीं करता पर यह नहीं जानता कि चारों वेद षट् अंगों सहित पढे और आत्मस्वरूप नहीं जाने तो अपंडित है जो एक अक्षर पढना नहीं जानता पर गुरु आदिकी कृपासे अपने स्वरूपको सम्यक् अपरोक्ष जाना है तो वह पंडित है ।

शास्त्रके तीन काण्ड

हे साधो ! शास्त्ररूपी सड़कोंमें यह पाटी लिख रक्खी है कि, सर्व कर्मकांड अंतःकरणकी शुद्धिपर हैं और अनेक

प्रकारकी उपासना सगुण वा निर्गुण मनकी निश्चलताके अर्थ है तथा ज्ञानकांड अज्ञानरूप आवरणका निवृत्तिपर है। बन्ध मोक्षादि जगत् भ्रममात्र है और ब्रह्मात्मा त्रिकालाबाध्य स्वरूप है, यही सर्व शास्त्रोंका तात्पर्य है। देहाभिमान ही मूढताका सूचक है कि, अपने अपने समुद्ररूप स्वरूपको भूलकर तरंग जानना, जैसे--लिखारी कलमको कानमें रखके अन्य स्थानमें ढूँढे तो कैसे मिले जब सुधि आवे तब ही पावे। तैसे आपको बिसारकर औरसे मुक्ति चाहता है यह नहीं जानता कि, मैं आप मुक्तरूप हूँ। इससे जिनके ज्ञाननेत्र खुले हैं और शरीरादिकोंके अहंकारसे अनहंकार हुए हैं सो आपको शुद्ध जानते हैं। अपने संकल्पसे अनेक प्रकारकी देहों विषे तू आता है, तेरी चाह बिना तुझको कोई भी देहविषे नहीं लाता, जैसे--पक्षीको कोई भी दूसरा जालविषे बन्धन नहीं करता लोभमें आप ही बन्ध होता है।

श्रेष्ठ शास्त्र निरूपण

हे पिता ! शास्त्रोंके मध्यमें कौन शास्त्र श्रेष्ठ है ? (उत्तर) हे पुत्र ! जिस शास्त्रकर अपने ब्रह्मात्मा स्वरूपका सम्यक् धर्म पूर्वक शमदमादि सहित सम्यक् अपरोक्ष बोध होवे सोई शास्त्र श्रेष्ठ है चाहे संस्कृत हो, चाहे भाषा हो. चाहे फारसी हो, चाहे बंगाली हो चाहे अंगरेजी हो, चाहे अरबी हो चाहे गीता हो, चाहे इतिहास कथा हो वही परम विद्या है। सर्व शास्त्रोंका परंपरा साक्षात्से आपने सत् चित् आनन्दरूप आत्माके बोधमें तात्पर्य है अन्यमें नहीं और शास्त्रोंमें धर्म अर्थ काम मोक्षके प्रतिपादक वाक्य मिले हुए हैं, वेदांत शास्त्रविषे केवल मोक्ष उपाय कथन किया है।

राजा सत्यव्रतकी कथा

इसीपर एक कथा सुन, हे पुत्र ! पूर्व एक सत्यव्रत राजा हुआ है तिसने विष्णुकी आज्ञासे अनेक अश्वमेध यज्ञ किये थे नित्यप्रात ब्राह्मणोंको भोजन देता था, सुवर्णके पात्र देता था, प्रातःकाल रोज अनेक गौ दूध देनेवाली शास्त्रविधिपूर्वक दान देता था; अनक अश्व रत्नजडित और अनेक हस्ती इत्यादि अनंत सामग्री अर्थियोंको देता था । कभी कठोर वचन मुखसे नहीं कहता था, सत्यवादी वेद--आज्ञाकारी सर्व गुणसम्पन्न राजा था ।

ब्रह्माने पूर्वकालमें एक यज्ञ किया, तिस यज्ञमें ऋषीश्वर मुनीश्वर देवतादि और सर्व पृथिवीके राजा तथा महादेव आये थे । राजा सत्यव्रत भी तिस यज्ञमें था । उसीने महादेवसे प्रश्न किया । हे त्रिलोकीनाथ ! मेरे मनमें एक संशय है, आप अनुग्रह करके दूर करो । हे महादेव ! तीस सहस्र वर्ष आयु मेरी बीती है और बीस सहस्र वर्ष मेरे पिताको शांत हुए हुए हैं, मैं उनकी ठौर राज्य-सिंहासनपर बैठकर राज्य करता हूँ । शास्त्र आज्ञानुसार राज्य किया है, तप दानादिक यथाशक्ति किया है पर अबतक मेरे मनको शांति नहीं हुई । जहां मन चाहता है तहां जाता है, चाहनासे अचाह नहीं होता । हे भक्त-वत्सल ! मैं जानना चाहता हूँ, कि, मैं कौन हूँ ? महादेवने सुनकर ब्रह्मा विष्णु इंद्रादि देवतोंकी ओर देखा । सब राजाके उत्तर देनेके विचारमें पडे, किसीने उत्तर नहीं दिया । यह लीला ब्रह्मा देखकर हँसा और कहा--हे राजन् ! तू धन्य है तूने जो पूछा है सो देवता ऋषीश्वर मुनीश्वरादि सभी इस आत्मज्ञानकी प्राप्तिकी इच्छा करते हैं पर नहीं जानते किसी एक अधिकारीको ही प्राप्त होता है सर्वको नहीं । मैंने इस आत्मज्ञानको चारों

वेदोंमें गुह्य छिपा हुआ देखा है और वेदांत शास्त्रमें वेदोंमेंसे लेकर इकट्ठा कर जमा किया है उसको उपनिषद् बोलते हैं

ब्रह्मतत्वको विशेष प्रगट करनेका फल

ब्रह्मात्मज्ञानके प्रतिपादक शास्त्र अतिप्रगट करनेसे संसारका मूल उखड जाता है, बन्ध, मुक्त, तप, दान, पाप, पुण्य नरक, स्वर्ग, गुरु शिष्य, दास, स्वामी भावादिक मर्यादा उठ जाती है, क्योंकि ज्ञानके अधिकारी धर्मात्मा पुरुष विरले ही हैं। अनधिकारी आत्मज्ञानके प्रतिपादक वाक्य सुनके विषयोंमें उलटा संसक्तिको प्राप्त होते हैं और पूर्वोक्त संसारतारक मर्यादाको कपोल कल्पित जानकर उठा देते हैं इससे गुप्त रखने योग्य है। परंतु यह त्रिनेत्री महादेव ज्ञानके समुद्र हैं, अति कृपालु हैं, इसीसे तेरे प्रश्नका उत्तर देवेंगे। दयाके समुद्र भोलानाथ महादेव कहने लगे -हे ऋषीश्वरो ! मुनीश्वरो ! सत्यव्रतके प्रश्नका उत्तर कहता हूँ।

महादेवजी सत्यव्रतकप्रति आत्मनिरूपण करते हैं (आत्मा संसारसे भिन्न है,) संसार मनोमात्र है,

ईश्वरने कहा--हे राजन् ! मन वाणीका गोचर जो यह नाम रूपात्मक संसार है सो केवल मनोमात्र है, क्योंकि, जब मन सुषुप्ति मूर्च्छाके समय अपने उपादान कारणमें लीन होता है तब संसारकी गंध भी नहीं प्रतीत होती। जो संसार मनोमात्र न होता तो सुषुप्तिमें मनके लीन हुए संसार (पुरुषका) भासता, पर भासता नहीं। इससे जाना जाता है संसार मनोमात्र है अन्य इसका स्वरूप नहीं। तूने जो आपक: सत्यव्रत माना है सो शरीरके अंगोंके भिन्न भिन्न नाम हैं, इसमेंसे कौनसी वस्तुको सत्यव्रत तूने माना है, जैसे--विचारसे यह शरीर असत है, तैसे ही जगत्को जान।

आत्मा सबका ज्ञाता सबसे भिन्न है

तू सत् चित् आनन्दरूप आत्मा; जाग्रत्में मनको फुरणारूप संसारके सद्भावको और सुषुप्तिमें मनके अफुर्णा रूप संसारके असद्भावको अनुभव करनेवाला अन हुआ असंसारका द्रष्टा पुरुष है। जो तू संसाररूप होता तो मनादिक संसारके भावाभावको कैसे जानता ? जो जिसको जानता है सो तिससे भिन्न होता है; जैसे--स्वप्न द्रष्टा स्वप्नप्रपंचके भावाभावको अनुभव करनेवाला स्वप्नप्रपंचसे भिन्न है। ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत सर्वके हृदयमें ईश्वर साक्षी रूप कर सम व्यापक है और इस मन बुद्धि देहादिका संघातको तथा संघातके फुरने आदि धर्मोंको, संघातके धर्मोंके न्यूनाधिक भावाभावको काल व्यवधान रहित एकरस जो जानता है, सोई तेरा स्वरूप है। जो देश देशांतरकी अन्तर कल्पना मनमें होती है, पुनः लीन हो जाती है तिन दोनों प्रकारकी कल्पनाओंको जो जानता है सो तू है। अपने क्रोधादिक कार्य सहित सत्त्व, रज तम गुणोंकी अन्तर प्रवृत्ति निवृत्तिका जिसकर अनुभव होता है सो निर्विकार साक्षी आत्मा तेरा स्वरूप है। तू ही आत्मा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति आदि प्रपंचका द्रष्टा है, आगे तुझ चैतन्य आत्माका द्रष्टा कोई नहीं। तू चैतन्य स्वयंप्रकाश स्वरूप है। यह जो घट पट दृष्टि आते हैं सो स्वभाव पञ्चभूतरूप दृश्य शरीरादिकोंके हैं, तुझ द्रष्टा चैतन्यके नहीं। जैसे--अनेक रूपता स्वप्नकी स्वप्न द्रष्टामें स्पर्श करती नहीं; जैसे--अनेक रूपता इन्द्रजालकी है, इन्द्रजालीको स्पर्श करती नहीं, तैसे कार्य कारण भावसे रहित तू चैतन्य अद्वैत आत्मा है बन्ध मोक्षादि कल्पना केवल मनका मनन है तेरा नहीं,

क्योंकि जब मन आपको बन्ध, अज्ञानी, सुखी, दुःखी, जन्म मरणवान् मानता है तब भी तू चैतन्य आत्मा इस व्यवहारका साक्षी रहता है। जब विचार द्वारा अज्ञानकी निवृत्तिसे आपको मोक्षरूप सत् चित् आनन्दरूप आत्मा मानता है, तब भी तू साक्षी रहता है। तद्वत् और व्यवहार भी जान लेना।

बन्धमोक्षादि मनकी कल्पना है

इससे बन्ध मोक्षादि मनकी कल्पना है वास्तवसे नहीं। जो वास्तव व्यावहारिक वस्तु होती है सो अविचारसे सो उत्पन्न नहीं होती और विचारनेसे निवृत्ति नहीं होती, जैसे--घटपटादिक पदार्थ हैं जिनका अविचार और विचारसे उत्पत्ति नाश नहीं होना। सारांश यह कि, ज्ञान अज्ञानसे जो उत्पत्ति नाशवान वस्तु होती है सो भ्रममात्र होती है, निद्रा दोषकर स्वप्नद्रष्टाके अज्ञानसे तथा निद्राकी निवृत्ति रूप स्वप्नद्रष्टाके जाग्रत रूप ज्ञानसे स्वप्न प्रपंचका उत्पत्ति नाश होता है इससे मिथ्या है। स्वप्नद्रष्टाकी यह रीति नहीं। जिस अधिष्ठान वस्तुके अविचार और विचारसे बन्धमोक्षादि प्रपच भान होता है, तथा उसकी निवृत्ति होती है सो वस्तु सत् है। हे राजन्! बन्ध मोक्ष मनके फुर्णे अफुर्णेसे प्रथम तू चैतन्य स्वतःसिद्धि है। मध्यमें बन्ध मोक्षादि मनके फुरणेका साक्षी है, बन्ध मोक्षके अभाव माननेका अवधिरूप अधिष्ठान है, इस प्रकार सर्व पदार्थ परस्पर भावाभावरूप हैं तथा परस्पर व्यभिचारी हैं. तू चैतन्य साक्षी आत्मा सर्वमें पूर्ण भी है, तथा तुझ चैतन्यकर ही सर्व देह मनादिक जड पदार्थोंकी चेष्टा होती है। देहादिक अपना प्रतीतिकालमें ही हैं अन्यकालमें नहीं, तू चैतन्य सर्वकालमें एकरस निर्विकार मन वाणीसे अगोचर है और सर्व मन वाणीका

गोचर प्रपंच तुझ चैतन्यका दृश्य है, तू एक ही द्रष्टा सूर्यवत् प्रकाशमान है।

न्यूनाधिक प्रतीतिका कारण

तुझ चैतन्य विना और कुछ नहीं तू नामरूप स्थावर जंगमरूप जगत्से अतीत है; कर्मजालसे रहित है। न्यूनाधिक जो प्रतीत होता है सो स्वभाव मायाका है, मूढोंकी दृष्टिमें है। आत्मविद्वान् पुरुषोंकी दृष्टिमें नहीं। जैसे सुवर्ण माटी जलादि स्वरूपके अज्ञात पुरुषोंको तरंग भूषण घटादिकोंमें अनेकता भान होती है, जल माटी सुवर्णके सम्यक् विद्वान् पुरुषोंको नहीं। हे राजन्! उत्पत्ति नाशादिक षट् विकार देहके हैं, तुझ चैतन्य आत्माके नहीं। तू हर्ष शोकादिक मनके धर्मोंसे रहित नित्य मुक्त है, आवागमनका तुझमें मार्ग नहीं।

जप तप और दानादिकोंका फल

हे राजन्! जप, दान, तप, यज्ञादिकोंका फल यही है कि, अपने स्वरूपको जाने। कर्म, शरीर मनादि संघात करता है, मान आप लेता है, जिससे फल तिन कर्मोंका अनेक देहोंमें सुखदुःख भोगता है। जितने मूर्ख कर्म अधिक करते हैं, उतना ही अहंकार तिनको अधिक होता है इसीसे आत्मस्वरूपको पाते नहीं। सर्व पदोंके चाहसे अचाह होवे, चाहना अपने स्वरूपके पहचानने की करे निजस्वरूपके अपरोक्ष हुए ब्रह्मकी जिज्ञासा भी न रहेगी; केतक रेणुवत्।

सर्व दुःखोंका मूल, उससे छूटनेका उपाय

हे राजन्! सर्व दुःखोंका मूल अहंकारपूर्वक देहादिकोंकी वासना है और सुखोंका मूल आपकी पहचान है अर्थात् आपको सर्व मनादिकोंका द्रष्टा जानना--मनादिकोंको दृश्यमिथ्या जानना। शरीरादि संघातकी जैसे

अज्ञान कालमें चेष्टा होती है तैसे ज्ञानकालमें होती है केवल दृष्टिभेद है। आपसहित सर्व आस्ति भाति प्रियरूप आत्मा ही है, यह निश्चय ही परम निर्विकल्प अवस्था है। एक आत्मा अद्वितीय बिना और कुछ नहीं, जब ऐसे जाना तब आप होता है, सर्व कर्मोंके फलका दाता होता है राजावत् । जो देखे सुने सूँघे स्पर्श रस लेवे सो आप ही करता भोक्ता होता है। कर्ता भोक्ता पानेसे अतीत भी आपही होता है, जानता है, मुझे चैतन्य साक्षीको न किसीने उपजाया है और न मैं किसीसे उत्पन्न हुआ हूँ, न मैं इस शरीर विषे कर्मोंसे आया हूँ क्योंकि मैं व्यापक आत्मा शरीरकी उत्पत्तिसे प्रथम स्थित हूँ। जैसे घटकी उत्पत्तिसे प्रथम ही आकाश स्थित है । इस विचारके निश्चयसे शरीररूप संसारमें रहता भी पद्मकमलवत् संसारकी मलिनतारूप बंधनसे मुक्त रहता है। यह आप ऊपर अपनी दया है।

कर्म और उसमें अहंकारका फल

कर्म देहादिकोंसे स्वाभाविक पड़े होते हैं, तिनमें अहंकार करना आपको नरकमें गेरना है। जो अहंकार नहीं करते तो उनका निर्वाह नहीं होता है ? किन्तु होता है।

नाम जपनेका फल

जो नारायणादि नामोंको जपते हैं वे अन्तःकरणकी शुद्धिको पाते हैं, परन्तु आत्मसुखसे अप्राप्त होते हैं। क्योंकि मुझ नारायणविषे और अपने विषे भेद समझते हैं, इसीसे दीन रहते हैं। जब अपने आत्माको मेरा रूप और मुझ नारायणको अपना रूप जाते तो कर्मजाल संसारसे मुक्त होवें जैसे–घटाकाशको महाकाशरूप और महाकाशको घटाकाशरूपता निःसंगता बन सकती है जैसे–मृगकी

नाभिमें कस्तूरी है, तिसको न जानके तिसकी प्राप्तिवास्ते वन वनमें ढूंढता फिरता है। तैसे तू चैतन्य आत्मा नित्य मुक्तस्वरूप ह, भ्रमकर आपको न जानके मुक्तिकी आशा औरोंसे करता है, अनेक कर्म उपासनादिका भ्रमसे क्लेश सहता है।

गुरुशास्त्रादिकी सत्ता

ऐसा भ्रम करता है कि, गुरु शास्त्र ईश्वर मेरी मुक्ति करेगा तो होगी। यह नहीं जानता कि, मुझ नित्यमुक्त चैतन्य साक्षी आत्माकी स्वप्नवत् गुरु शास्त्र ईश्वरादि सर्व संसार कल्पना है; मैं नहीं कल्पू तो कहां हैं ?

सर्व भोक्ता और सर्व कर्ता

आपको शरीर मानके आपबन्धनमें पडा है और भोगों की चाहना करता है। यह नहीं जानता कि मैं चैतन्य ही सर्व जड पदार्थोंमें स्थित होता हुआ सर्वका भोक्ता हूँ तथा सर्वका कर्ता हूँ। वास्तवसे मैं चैतन्य मायाकर कर्त्ता भोक्ता हुआ भी वास्तवसे अकर्ता अभोक्ता हूँ।

बन्धनसे मुक्त होनेका मुख्य कर्तव्य

इससे हे राजन् ! देहाभिमानके त्यागका त्याग कर देख जो शेष है सो तेरा स्वरूप है। जो जो मन वाणीका कथन चिंतन है तिस तिस कथन चिंतनका तू साक्षी होता हुआ तिस तिस कथन चिंतनसे अतीत है। आपको जीव मानकर मनकी तथा शरीरकी चाहनाविषे बन्धा हुआ और मूल अपना विसारा है। सुखरूप तू आप है और अन्यसे सुख चाहता है कैसे प्राप्त हो ? जब तू अपने सम्यक् स्वरूपको जाने तब सब भ्रममात्र बन्धनोंसे मुक्त होवे। अथवा आपको बीचसे उठा देवे कि. म नहीं सर्व भगवत् ही है, कर्ता भोक्ता, सुख दुःख, बन्ध मोक्षादि सर्व ईश्वर ही। इस निश्चयसे भी सर्व बन्धनोंसे मुक्त

होवेगा। करनेकी अकरनेकी इच्छासे छूटकर सदा भगवत् इच्छामें रहे। आपको शुभाशुभमें तप्त न करे, जो शुभाशुभ कर्म करे सर्व भगवत्को अर्पण करे और आपको बीचमें भूलकर भी न लावे, ऐसा दृढ निश्चय करे कि, जो इच्छा भगवत्की होगी सोई होगा अन्यथा नहीं तो इससे मुक्त होगा। हे राजन्! ज्ञान वा भक्ति वा कर्म किसी एक निश्चयपर दृढता राख। ऐसा न करे कि, कभी आपको जीव बन्ध मोक्षवान् मानके यह चिंता करे कि, हम भजन ईश्वरका करेंगे तो बन्धनसे छूटेंगे। कभी आपको सर्व कर्मोंसे तथा बन्ध मोक्षादि सांसारिक धर्मोंसे मुक्त मानना यह कैसे है! जैसे–कोई नदी पार हुआ चाहै और दो नौकापर पग राखे तो वह डूबेगा ही। इससे एक ही निश्चय करना चाहिये।

स्वर्ग नरक पाप पुण्यादिकी प्राप्तिका कारण

सत्यव्रतने कहा–हे गुरो! जो सर्वात्मा ही है तो पाप पुण्य स्वर्ग नरकादिकोंको क्यों प्राप्त होता है? महादेवने कहा–हे राजन्! निस्संशय तू सर्वात्मा ही है आवागमन, मलिनता, शुद्धता, बन्ध मोक्षादि संसार धर्मोंसे मुक्त स्वतः सिद्ध है, कोई यत्नसे नहीं, शुद्ध चैतन्य साक्षी आत्माका न नाश है, न जन्म है; न आना है, न जाना है। क्योंकि तू देश काल वस्तुके परिच्छेदसे रहित पूर्ण सदा निर्भय स्थित है, आपको भुलाकर जीव माना है, इसीसे पुण्य पापादिकोंके भ्रमसे बन्धनमें पड़ा है वास्तवसे नहीं। भ्रमसे ही अनेक शरीरोंमें अभिमान पूर्वक सुख दुःख पाता है। कल्पित बन्ध मोक्षको सत्य मानकर मूल अपना बिसारा है। हे राजन्! जैसे–सुवर्ण भूषणोंमे व्यापक है, पर विचार करनेसे भूषण कहना मात्र है यथार्थ सुवर्ण ही है तैसे अस्ति भाति प्रियरूप

तू ही आत्मा अद्वैत है, नामरूप सर्व जगत् कहना मात्र है। वा आपको ऐसे जान जैसे–इक्षुविषे मधुर रस, दूधविषे घृत, पृथिवी और जलविषे तथा तिनके कार्योंविषे अग्नि व्यापक है; जैसे, पृथिवी अप्, तेज, वायु महाभूतोंविषे तथा तिनके कार्योंविषे आकाश व्यापक है, तैसे तू आकाशके समान सर्वका द्रष्टा सर्वमें सत् चित् आनन्द रूपसे व्यापक है. क्योंकि, जहां तू चैतन्य नहीं, तहां किसी पदार्थकी स्फूर्ति नहीं। जो तू है तो सर्व भान होते हैं। आप ो शरीरादिक मानना भ्रमसे है। शरीररूप जगत् कैसा है ? नेत्रके खोलने मीचनेसे उत्पत्ति नाश होता है। सारांश यह कि, मनके फुरणे अफुरणेसे उत्पत्ति नाश होता है, बुद्धिमान् वही है जो शरीर सहित जगत्को मिथ्या स्वप्न इन्द्रजालवत् जाने और आपको सत्यरूप आत्मा जाने।

सबका जीवन सार

हे राजन्! यह बुद्धि आदिकोंका साक्षी आत्मा सर्व जगत्का जीवनरूप है क्योंकि असत् जड दुःखरूप इस शरीर सहित संसारको अपने स्वरूपसे सत् चित् आनंद रूप करता है, जैसे–तरंगादिकोंको जड़ मधुरता, शीतलता, द्रवता रूप करता है। जैसे–चणकादिक पदार्थोंको गुड़ मधुर करता है तैसे ही आत्माका बल नियंत्रता निर्मलता सर्व वस्तुपर है, सर्व ब्रह्मात्मा ही तो अपने सत् चित् आनंद साक्षी आत्मासे परमेश्वरको भिन्न मानना और आपको दास मानना अखंडको खंडन करना है। दूसरा सत् चित् आनंद रूप आत्मासे भिन्न परमात्माको मान तो परमात्मा असत् जड़ दुःखरूप अनात्मा सिद्ध

१–दोहा-जो जानहु जग जीवना, तो जानहु यह जीव।
पानी चाहहु आपना, तो पानी मांग न पीव॥

होगा और परमेश्वर इस पर अत्यंत कोप करेगा क्योंकि अखण्ड ईश्वरको इसने असत् जड़ दुःखरूप अनात्मा जाना है। इससे इस ज्ञानसे इसका अनिष्ट होगा, क्योंकि, कोई मनकर किसीका बुरा चिंतन वा कथन करता है तो वह जानकर तिसपर महान् रंज होता है। तैसे ही अंतर्यामी परमात्माको पूर्वोक्त प्रकारसे असत् जड़ दुःखरूप अनात्मा चिंतन कथनसे क्यों न कोप करगा? अपनी हानि समझके। हे राजन्! कौन बुद्धिमान् है! जो घटाकाशको महाकाशसे भिन्न माने तथा तरंगोंको भूषणोंको तथा घटादिकोंको जल, सुवर्ण, मृत्तिकासे भिन्न माने। हे राजन्! तू मनादिकोंका साक्षी आत्मा है तुझको कभी जन्म मृत्यु नहीं, सदा जैसेका तैसा समान है। यह मन वाणीका गोचर दृष्टिमान् संसार भी तूही है क्योंकि तुझसे ही प्रगट होता है, तुझमें ही लीन होता है और तुझमें ही स्थित है। इस प्रकार तेरा रूप ही जल तरंगवत् है अस्ति भाति प्रियरूप तुझ आत्मा विना और कुछ नहीं। सम्यक् विचार देख अपनी बुद्धिसे और इन विद्वानोंसे पूछ देख मैं सत् कहता हूँ कि, असत्। हे राजन्! वेदांत सिद्धांत तो यही है और सर्व विद्वानोंका अपने स्वरूपके विषय ही अनुभव है आगे जो तेरी इच्छा हो सो कर। जैसे पंचभूतोंका कार्य घटपटादि सर्व पंचभूत रूप है. तैसे यह नाम रूप प्रपंच अस्ति भाति प्रियरूप तू ही आत्मा है। जब तूने सम्यक् आपको जाना, सर्व जगत्को प्रकाश अपना जानेगा, जैसे घटने जब अपना स्वरूप पंचभूत रूप जाना, तो सर्व जगत्के पदार्थोंको अपना स्वरूप ही जानता है कि, मैं ही सर्वरूप हूँ, ऐसे ही तू जानेगा। हे राजन्! जिसने चाहना बन्ध मुक्तिकी मनसे दूर की है, जगत्से निराश हुआ है, आपको सम्यक् अपरोक्ष जाना है सो

ब्रह्मादि शरीर त्रितय संयुत संसार रूप पुतरी घड़ी घड़ीमें अनेक खेल खेलै है, तिसका आपको द्रष्टा मानता है। करने अकरने, सुख दुःख, बन्ध मोक्षादि संसार सर्व धर्मोंमें लिप्त नहीं होता, जैसे-सूर्य सर्व जगत्का व्यवहार सिद्ध करता हुआ भी अलिप्त रहता है। हे राजन्! जो तूने मन वाणी कर माना है सो तेरा स्वरूप नहीं, तू इस माननेसे भिन्न है। शरीर प्रारब्धको सौंप, सूर्यरूप आपकी जगत् किरण जान, ब्रह्मात्म अपने स्वरूप समुद्रके जगत् तरंग जान। यह जो तूने भ्रम बुद्धिमें की कि, मुक्ति मेरी और कोई करेगा तिस भ्रमको त्याग कर। नित्य मुक्त, नित्य शुद्ध, अक्रिय, अविनाशी सर्वमें आकाशवत् व्यापक आपको जान। अपने अहंकारसे तू आप बँधा है और अपने ज्ञान पहँचाननेसे आप मुक्त है। इतना ही बद्ध मुक्तका स्वरूप है। अपने स्वरूपका सम्यक् अपरोक्ष जानना ही बन्धकी निवृत्ति मोक्षकी प्राप्तिका उपाय है, अन्य नहीं। जो सच्चे बन्ध मोक्ष होते तो स्वरूपके पहँचाननेसे दूर न होते, सम्यक् स्वरूप विज्ञानी पुरुष आपको बन्ध मोक्षसे रहित मानते हैं। इसीसे मिथ्या है इस आत्मासे भिन्न जो इसकी मुक्ति करेगा सो आप ही अनात्मा हुआ बन्ध है, मुक्त कैसे करेगा ?

व्यवहार विचार

हे राजन्! देहाभिमान साथ ही कर्म धर्म भक्ति उपासना संसार है जब देहाभिमान त्यागा मुक्त हुआ अहंकारका नाम बध है, अहंकार मुक्तसे मुक्त है। ईश्वरकी प्राप्ति और मुक्तिका पावना अपना पहँचानना है। परमेश्वर और अपने बीच भेद देखेगा तो दुःखसे न छूटगा। सर्वको आपसहित सर्व ब्रह्मरूप आत्माजान, बढ़घट नीच ऊँच स्वरूपसे नहीं।

देख ! व्यवहारमें जिस वर्णाश्रममें स्थित है तिसीके अनुसार पंक्ति बेटी लेन देनादि व्यवहार करे, कोई व्यवहारको एकमेक करनेसे एकता नहीं होती। किंतु ज्ञानदृष्टिसे सर्व प्रकार एकता है, जैसे–सर्व पदार्थोंमें गुण दोष जुदे २ जिस स्थानमें घट चाहिये तिस स्थानमें पट नहीं चाहिये, जिस स्थानमें पट चाहिय तिस स्थानमें घट नहीं चाहिये, इत्यादि सर्व पदार्थोंमें जान लेना, परन्तु पंचभूतरूपता करके सर्व पदार्थ सम हैं, जैसे–अनेक औषधियोंके अनेक गुण जुदे जुदे हैं और अनेक ही पुरुषोंको रोग होते हैं, यह नहीं कि एक रोगपर सर्व औषधि चलें, परन्तु जल सर्वमें एक है। हे राजन् ! अन्तर कामक्रोधादिकोंका तथा बाहिर शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधादिकोंका साथी ज्ञानस्वरूप तू ही आत्मा है। इस सर्व पदार्थोंके न्यूनाधिक व्यवहारके परिणाम करनेवाले ज्ञानसे पृथक् कोई इस शरीरमें ईश्वर प्रतीत होता नहीं। ईश्वरको पूर्ण होनसे इस शरीरमें भी ईश्वरका स्वरूप मानना पडेगा ही और कोई ज्ञानसे भिन्न ईश्वरका स्वरूप सिद्ध होता नहीं। जो भिन्न सिद्ध होगा तो जड अज्ञानरूप सिद्ध होगा इससे अज्ञानसे लेकर देहतक अंतर बाहर सर्व पदार्थोंका परिणाम करनेवाला अंतर्ज्ञान स्वरूप कोई वस्तु है, तिसको ईश्वर कहो, चाहे आत्मा कहो, चाहे खुदा कहो, चाहे कोई और नाम राखो, चाहे द्रष्टा कहो. हे राजन् ! जो तू और कुछ नहीं जानता तो यह निश्चय कर कि, अतर अज्ञान देहतक मनादिकोंकी व्यवहारकी न्यूनाधिक भावाभावको परिणाम करता है सो वस्तु संसार तथा संसारके धर्मोंसे रहित है सोई सम्यक् स्वरूप मेरा है । इसमं संशय नहीं। चाहे संसार वस्तु सत् हो, चाहे असत् हो, चाहे जीव शिवका भेद हो,

चाहे अभेद हो। हे राजन्! मुक्ति जो तू चाहता है यही तुझमें बन्धनका कारण है, क्योंकि, तू आप मुक्तरूप है और मुक्तिकी इच्छा करता है। हे राजन्! मनका संकल्प विकल्प स्वभाव है कभी आपमें बन्धका संकल्प कर लेता है, कभी मुक्तिका संकल्प करलेता है तू दोनों संकल्पोंका द्रष्टा है इससे बन्ध मोक्ष कुछ वस्तु नहीं, केवल मनका फुरणा है। मनका तो बन्धमोक्ष भ्रममात्र माननेका अभ्यास चला आता है, इससे तू सर्व बन्धमोक्षादि चाहनासे अचाह हो मनके पीछे मत पड। देह वासनासहित बन्ध मोक्षादि वासना त्याग। इनसे विपरीत वासनाका प्रथम अभ्यास ग्रहण कर, पीछे तिनके भी त्यागका त्यागकर क्योंकि जैसे मनका अभ्यास दृढ होता है, तैसे ही आगे भासता है।

मुमुक्षुओंको कर्तव्य अभ्यास (अहंग्रह उपासना अभेद भक्ति का वर्णन)

इससे पूर्वके विपरीत यह अभ्यास कर कि, मैं नित्यमुक्त सत् चित् आनंद आत्मा हूँ, सर्व मनादिकोंका साक्षी हूँ, बन्ध मोक्षादि सर्व संसारके धर्मोंसे अतीत हूँ स्वभावसे ही निर्विकार निर्विकल्प हूँ आकाशके समान असंग पूर्ण हूँ। भ्रममात्र बन्ध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते मुझ चैतन्यको किंचित्मात्र भी कर्तव्य नहीं। इस मन वाणीके गोचर संसारसे अगोचर हूँ इत्यादि अनेक विशेषण अपने आत्मस्वरूपका चिंतन कर। यही देहादिवासनासे विपरीत वासना है! इस पूर्वोक्त दृढ निरंतर अभ्याससे वही रूप होवेगा, क्योंकि विपरीत स्वरूप भी (भृंगीकी न्याईं) अभ्यासके बलसे उलटकर तद्रूप होता है, तू तो वही रूप है। तेरे तद्रूप होनेमें क्या आश्चर्य है ? इसीका नाम अहग्रह उपासना भी है, इसीको अभेद भक्ति भी कहते हैं। हे राजन् ! चाहना बन्ध मुक्तिकी कभी भी न

करियो, क्योंकि बन्ध मोक्ष ते अज्ञानसे हुए हैं अपने में कल्पित बन्ध मोक्षादि पदार्थोंके पीछे मत फिरियो, यह भ्रमियोंका व्यवहार है । तुझ चैतन्यसे ऊँच कोई पद है नहीं, जिसके वास्ते यत्न करे और तेरी मुक्ति करे ऐसा कोई नहीं । तू आपको बन्ध जानता है नहीं तो वेदांत शास्त्रके अनुसार विचार देख । तू चैतन्य निर्बंध नित्य मुक्तरूप है; सर्व जगत्का प्रभु प्रकाशक है । ऐसा होकर भी आशा अपने ऊपर भलाईकी औरोंसे राखे सो अविद्या है । नहीं तो असत् जड दुःखरूप अनात्म पदार्थ तुझकर ही सत् चित् आनन्दरूप आत्मा प्रतीत होते हैं । इससे तेरी ही सर्व पर भलाई है, तुझपर कोई भलाई नहीं कर सकता ।

राजा महादेवके ज्ञानरूप अमृत वचनको धारके अज्ञान तत्कार्य मृत्युसे रहित हुआ सर्व लोग महादेवके यथार्थ वचन सुनकर स्वरूपमें लीन हुए और सभाके लोग आप अपने वांछित स्थानको गये ।

व्यासकरणने कहा–हे आत्मदर्शी ! जिस निश्चयका उपदेश महादेवने राजा सत्यव्रतको किया है और राजा जिससे अपने स्वरूपविषे लीन हुआ है, तू भी तिसी निश्चयको धारण कर । हे आत्मदर्शी ! जो पुरुष बुद्धिके श्रवणोंसे पूर्वोक्त वचन सुनेगा, निश्चय स्वरूपको पानवत् पावेगा और बन्ध मोक्षादि संसार भयसे रहित होवेगा ।

पूजनीय देव कथन

मैत्रेयने कहा–हे पराशर ! देव (पूजने योग्य) कौन है ? पूजन तिसका कैसे होता है ? पराशरने कहा–हे मैत्रेय ! हस्तपादादि संयुक्त ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक भी देव नहीं । सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, पृथिवी, इन्द्र, यम, कुबेरादिक भी देव नहीं । न तू, न मैं देव हूँ । न ब्राह्म-

णादि, न वर्ण, न आश्रम, न मन इंद्रिय देहादिक देव हैं, किन्तु सर्वके हृदयविषे वर्तमान कालका ज्ञाता, अकृत, अनादि सत, चित, सुखरूप, अस्तित्व मात्र देव है। हे मैत्रेय! अहं यह दो अक्षर जबलग कथन चिंतन नहीं करे तबलग भविष्यत् अहंपना है। अकार कथन चिंतनके आरम्भ करते ही, अकार भूतमें गया और हकार भविष्यतमें है, मध्यके कालमें अहं कथन चिंतन नहीं है, सो काल निर्विकल्प है। इसी प्रकार सर्व पदार्थ भविष्यत्के भूत काल होते चले जाते हैं, यही इनमें मिथ्यात्व है। परन्तु पूर्वोक्त रीतिसे वर्तमानका निर्विकल्प है, तिस निर्विकल्प वर्तमान कालका ज्ञाता अति निर्विकल्प निर्विकार है सोई देव है सोई अपना स्वरूप है। हे मैत्रेय! भूत भविष्यत् काल तथा भूत भविष्यत् कालमें होनेवाले पदार्थ, सर्व वर्तमान कालके ज्ञाता देवसे ही सिद्ध होते हैं। परन्तु अपने स्वरूपके सुखेन बोधवास्ते तथा अपने स्वरूपके निर्विकल्पताके बोधवास्ते वर्तमान कालका ज्ञाता कहा है। द्रष्टा दृश्यके मिलापविषे जो आनदरूप अनुभव है सो देव है। तथा अन्तर द्रष्टा, दर्शन दृश्यके मिलाप वियोगको तथा दृष्टादर्शन दृश्यको तथा द्रष्टा दर्शन दृश्यके न्यूनाधिक भावाभावको जो पहँचान करता है और आप पहँचान करना रूप अभिमानसे रहित है आप ही पहँचान नाम ज्ञानस्वरूप है। मनादिकोंसे जो पहँचान किया जाता नहीं, उलटा मनादिकोंके न्यूनाधिक भावाभावकी पहँचान करता सोई स्वयंप्रकाश सबका अपना आप स्वरूप देव है। इष्ट अनिष्टके संयोग वियोगसे जो आनंद उदय होता है, जिसकर विषय आनन्दका अनुभव होता है और आप आनंदरूप है सोई देव है। जो द्रष्टा, दर्शन, दृश्य इस त्रिपुटीके उदय होनेसे प्रथम त्रिपुटीका

प्रकाश है, तथा त्रिपुटीकी जो समाप्तिको प्रकाशता है, आप सर्वको प्रकाशता हुआ भी निर्विकल्प है, स्वप्न-द्रष्टावत् सोई देव है, अन्तर सत् असत् नाम भावाभाव पदार्थ जिसकर सिद्ध होते हैं, तथा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तथा तिनमें वर्तनेवाले मनादि जगत् जिसकर सिद्ध होते हैं, जो आप किसी मनादिकोंसे सिद्ध नहीं होता, सोई सबका अपना आप स्वरूप देव है। यह साकार वस्तु है, यह निराकार वस्तु है, यह वस्तु जाननेमें आती है, यह नहीं यह त्याग करने योग्य है यह नहीं इत्यादि अन्तर जिसकर मनके मननका व्यौरा पढता है सोई देव है। हे मैत्रेय ! जो मनादिकोंका साक्षी है सो देव है। हृदय देशसे प्राणवायु उठाकर नासिकासे द्वादश अंगुल बाहर जाता है, तिसको प्राण कहते हैं तथा सूर्य अग्नि कहते हैं। तैसे ही सो वायु वहांसे लौटकर हृदय देशको प्राप्त होता है तिसको अपना चन्द्रमा बोलते हैं। जब प्राणने अपने प्राणत्व भावको त्यागा, पुनः अपान हुआ नहीं, तिस देश कालको परिमाण करनेवाला है सोइ देव है। तथा प्राणोंकी समाप्तिको तथा अपानके अनुदयको संधिमें निर्विकल्प स्थित होता हुआ तिन संधियों विषे स्थित पदार्थोंको जानता है सोई देव है। तथा प्राण अपानको तिनके न्यूनाधिक भावको जो जानता है सोई देव है। तैसे बाहरसे उठकर अपान वायुने अपने अपान भावको त्यागा और जब लग प्राण उदय हुए नहीं, तिस देश कालको तथा तिन देश कालमें होनेवाले प्राण अपानादि पदार्थोंको संधिमें स्थित निर्विकार निर्विकल्परूप जो वस्तु प्रकाश करता है सोई देव है। तैसे ही जब हृदयसे प्राण उदय होते हैं, तिन देश काल सहित प्राणोंके उदयको, तिनके गमनके आरंभको तथा तिनके

गमनको जो अनुभव करता है सोई देव है। तथा प्राणों-सहित प्राणोंका मध्य, कंठादि देश कालको तथा प्राणों-सहित प्राणोंके नासाग्रांत देशकालको जो जानता नाम परिमाण करता है सोई देव है। तैसे अपानके उदयको तथा अपान गमनारंभको जो जानता है सोई देव है। तथा अपान गमनके मध्य देशकालको तथा अपानकी हृदयमें अंत समाप्ति देशकालको असंग होकर जो प्रकाश करता है सो देव है। जाग्रत्के उदयको तथा स्वप्नके अनुदयको जो जानता है सोई देव है। तथा स्वप्न जाग्रत्के अनुदयको सुषुप्तिके उदयको जो जानता है सोई देव है। तथा सुषुप्तिके अनुदयको तथा जाग्रत् स्वप्नके उदय को जो जानता है सोई देव है। तथा शुभ संकल्पके उदयको तथा अशुभ संकल्पके।

अनुदयको जो जानता है सोई देव है। तथा शुभ संकल्पके अनुदयको तथा अशुभ संकल्पके उदयको जो जानता है सोई देव है। तथा शुभ अशुभ संकल्पके उदय अनुदय देश कालको जो संधिमें स्थित हुआ जानता है सोई देव है। सो यही देव ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत सर्वका अपना आप स्वरूप है, इसीके जाननेसे बन्ध मोक्षके भ्रमसे छूटता है।

देव प्रापक पूजा

इस पूर्वोक्त देवको सम्यक् अपरोक्ष जानना ही देवकी पूजा है। इस बुद्धि आदिकोंके साक्षी देवको जो सम्यक् अपना आप नहीं जानता सो साकारोंकी पूजा करे, सो बालक क्रीडावत् है। पूज्य पूजक पूजा इस त्रिपुटीका इसी देवसे प्रकाश होता है, त्रिपुटी इस देवसे कुछ भी भिन्न नहीं, स्वप्नद्रष्टावत्।

हे मैत्रेय ! यह देव किसी साधन द्वारा नहीं मिलता क्योंकि, अपना आप स्वरूप है। अपने स्वरूपको अवाङ्मनसगोचर जानना ही इस देवका पूजन है। हे मैत्रेय ! मनके संकल्प करके रचित जो देव है सो देव नहीं। सर्व संकल्पसे रहित और संकल्पोंके साक्षी देवको सम्यक् निज स्वरूप जानना ही देवके आगे पूजा है। देश काल वस्तु भेद रहित पूर्ण जानना ही पुष्प है। शब्दादि ग्राह्य जड विषय और श्रोत्रादिक ग्राहक जड इंद्रियोंके संयोग वियोगविषे जो अनुभव सत् रूप है, तिसको अपना आत्म स्वरूप जानना ही इस देवकी पूजा है ऐसा पदार्थ कोई नही जो इस मनादिकोंके प्रकाशक देवमें असत् न होवे और ऐसा भी पदार्थ कोई नहीं जो इस आत्म देवकर सत् न होवे। तात्पर्य यह कि, इस अस्ति भाति प्रियरूप देवसे भिन्न सब नाम रूप असत् हैं और मिले हुए सत् हैं उसीसे यह सर्व है. वही सर्व रूप है, सर्वसे अतीत तभी है सर्वके मध्यमें नित्य स्थित होता हुआ सर्वकी चेष्टाका कारण है; उसका कारण कोई भी नहीं (स्वप्नद्रष्टावत्) संसार रूप नटनीको माया विशिष्ट स्फुरणरूप चैतन्य प्रेरता है, तेरा स्वरूप देव निर्विकार निर्विकल्प साक्षीवत् स्थित है।

देव पूजाविधि

हे मैत्रेय ! तिस देवका तीन कांडोंकी रीतिसे पूजन है। इस सुखरूप मनादिकोंके साक्षी देवके सम्यक् दर्शनवास्ते और अंतःकरणरूप आदर्शकी मलिनताके दूर करनेवास्ते देव अर्पण, निष्काम कर्मकी श्रद्धा, शमदमादि साधनपूर्वक अनुष्ठानरूप पूजा है। दूसरा पूजन यह कि, अन्तः करणकी चंचलताके दूर करनेवास्ते चित्तादिकोंके पहँचान करनेवाले देवका ध्यान करनारूप उपासना ही पूजा है। वा अपने सहित सर्व जगत्को सत्

चित् सुख हरिरूप जानना नाम भावना करना यह दूसरी अहंग्रह उपासना ध्यानरूप पूजा है। वा सम्यक् अवाङ्मनसगोचर करके निजांतर ज्ञानरूप देवका सत् भाषणादि संसाधनपूर्वक ध्यानरूप देवकी पूजा है, पूर्वोक्त ध्यानका विषय देव; सम्यक् मैं चैतन्य हूँ, सोई भया ज्ञान तिस सम्यक् ज्ञानकरके देवकी पूजा होती है, सारांश यह कि, यही पुष्प हैं। हे मैत्रेय! अवाङ्मनसगोचर करके वा अस्ति भाति प्रियरूप करके निज स्वरूप बुद्धिमें जच जाना ही ज्ञान है। जबतक दृढ निश्चय नहीं हुआ तबतक गुरुवाक्यसे बारंबार अहंकार करके निरंतर भावना करना ही अहंग्रह उपासना है। सर्वका कर्ता भी अकर्ता है सर्वविषे सर्व प्रकार, सर्वदा काल, सर्वसे असंग, सर्वका प्रकाशक, सर्वरूप स्वप्नद्रष्टावत् अद्भुतरूप चैतन्य देवको अपना आप साक्षीभूत सम्यक् जानना। मन वाणी शरीरके न्यूनाधिक व्यवहारमें अन्यथाभाव कदापि न होना। तात्पर्य यह कि, संघातमें अध्यास न होना ही देवकी पूजा है। अंतर ज्ञानस्वरूप देवका बाहिर धूप दीपादिकों करके क्लेशरूप पूजन नहीं होता किन्तु क्लेश विना ही संघातके कर्त्तव्यमें अपनेको अकर्ता साक्षी मानना ही ईश्वर देवकी परम पूजा है। हे मैत्रेय! अपना अहं परिच्छिन्न भाव त्याग करनेसे ही पूर्णभावको प्राप्त होता है, पूर्ण होनेवास्ते यत्न नहीं क्योंकि, आगे ही आत्मा पूर्ण है, भ्रांतिकर अपूर्ण था; जैसे–घटाकाशने जबी परिच्छिन्न अहंकार त्यागा तबी पूर्ण महाकाश हुआ। हे मैत्रेय! शास्त्ररीति अनुसार जो कुछ आन प्राप्त होवे सो हेयोपादेय बुद्धिरहित होकर निज देवको भोग लगाना, आप तिस भोगका भी साक्षीभूत

रहना यही पूजन है । यथाप्राप्त समभावरूप जलविषे स्नान कर सर्व नामरूपात्मक दृश्यका सम्यक् द्रष्टा रहना दृश्यरूप कदाचित् भी न होना, यही देवका पूजन है। इन अविद्याके स्वप्न पदार्थोंमें हेय उपादेय बुद्धि न करनी ही देवका पूजन है। मृत्यु आवे तो देव पूजन है। जीवन हो तो देवपूजन है । दरिद्र हो वा राज्य हो पर कायिक वाचिक मानसिक नाना प्रकारका अहं अभिमान रहित चेष्टा करना ही देवपूजा है नष्ट हुआ, सो हुआ, प्राप्त हुआ सो हुआ, अहं त्वं रहित सर्व जगत्को आत्मवत् आत्मा जानना सोई देवपूजा है। अंतर असंग निर्विकार निर्विकल्प बंध मोक्ष रूप सुख दुःखसे रहित स्वभावसे ही मैं निष्कर्तव्य हूँ; मुझको बन्ध मोक्षकी प्राप्ति हानिवास्ते किंचित्मात्र भी कर्तव्य नहीं, इस निश्चयका नाम देवपूजन है।

जो भरूंटकी सली (तृण) वा बालूका कणका यह चिंतन करे कि यह भौतिक दृश्यमान जगत् सर्व मैं ही हूँ, तो यह चिंतन तिसका ठीक ही है क्योंकि, सली पंचभूतरूप है और जगत् भी पंचभूतरूप है। तैसे मैं अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा ही सर्वरूप हूँ, यह निश्चय ही देवका पूजन है। हे मैत्रेय ! जैसे-सुईके नाकेका आकाश यह चिंतन करे कि, मैं महाकाशरूप होता हुआ अनंत ब्रह्मांडोंको अवकाश देता हूं, समुद्रमें स्थित होता हुआ समुद्रको अवकाश देता हूँ, तथा घटमें स्थित होता हुआ मनभर अन्नको अवकाश देता हूँ, तात्पर्य यह कि, सर्व जगत्में स्थित होता हुआ भी तिनके व्यवहारसे निर्लेप हूँ तो यह चिंतन तिसका ठीक ही है । तैसे बुद्धि आदिकोंका साक्षी, मैं चैतन्य आत्मा सर्व जगत्का निर्वाहक हूँ यह चिंतन विद्वान्का ठीक ही है, इस दृढ निश्चयका नाम ही देवपूजा है। इस

निश्चय अनिश्चयमें भी अपने आत्मस्वरूपको सम जानना देवपूजन है। हर्ष हो तो मनको है, शोक हो तो मनको है, मोक्ष हो वा न हो तो मनको है. बन्ध है वा नहीं तो मनको है, जन्म मरणादि विकार षट् ऊर्मि संघातकी हैं, ज्ञान अज्ञानादि मनके धर्म हैं इनके साक्षी मुझ चैतन्यके पूर्वोक्त व्यवहार एक भी नहीं, इस निश्चयका नाम पूजन है। मन, वाणी, प्रणवका चिंतन कथन करै वा न करै वा लौकिक शब्दोंका कथन चिंतन करें वा न करें पर मुझ चैतन्य साक्षी आत्माकी किंचित् मात्र भी हानि लाभ नहीं, इस दृढ निश्चयका नाम पूजन है। द्रष्टाके दृश्यको साथ मिला हुआ न देखना सोई देवका पूजन है। अन्तःकरणके धर्म सत्व, रज, तम गुणोंकी प्रवृत्ति निवृत्तिका आपको द्रष्टा साक्षी सम जानना, हर्ष शोकका न होना ही देवका पूजन है।

मनका धर्म हर्ष शोक होते भी अपने आत्मस्वरूपमें हर्ष शोक न मानना. यह दृढ निश्चय ही देवके आगे पुष्प हैं। नाम रूप भूषणोंविषे अस्ति भाति प्रियरूप आत्माको सुवर्ण रूप जानना ही देवका पूजन है। निर्विकल्प होना, सविकल्प होना, फुरणा अफुरणा सर्व मनके धर्म हैं, मुझ साक्षीके धर्म नहीं, यह निश्चय देवके आगे पुष्प हैं।

भजन करनेकी रीति

हे मैत्रेय! मैं सत् चित् आनन्द स्वरूप द्रष्टा हूँ, असत् जड दुःख रूप दृश्य मैं नहीं यही निरन्तर भजन कर, क्योंकि यह भजन नहीं करेगा तो इससे भिन्न कोई न कोई भजन करेगा ही। बिना भजन किये मन माने नहीं और यह भी वेदोक्त भजन है। इससे यही भजन कर वा अस्ति भाति प्रियरूप मैं आत्मा ही सर्व रूप हूँ, यह भजन करे। वा मैं चैतन्य अवाङ्मनसगोचर हूँ, वाङ्मन-

सगोचर संघातरूप प्रपंच में नहीं, यह निरन्तर भजन कर। जो मन वाणीके गोचर देवताका पूजन करते हैं सो वाङ्मनसगोचर अनित्य ही फलको पाते हैं, परन्तु कुछ न करनेसे यह करना भी अच्छा है क्योंकि परम्परा करके यह भी वाङ्मनसगोचर परम देवके पूजन करनेका साधन है।

अधोगति प्राप्त होनेका हेतु

जो दोनों पूजनोंसे रहित है और निज देह सहित स्त्री पुत्रादिकोंका ही पूजन करता है, तात्पर्य यह कि, शिश्नोदर परायण है सो अधोगतिको प्राप्त होता है इससे तू देहरूप दिवालेमें निर्विकार साक्षी आत्मदेवको अपना स्वरूप जान, जो जन्म मरण फांससे छूटे।

हे मैत्रेय! सर्व शुभाशुभ संघातकी चेष्टा तुझ आत्मदेवके आगे पुष्प हैं, सर्व ब्रह्माण्डोंमें तू ही सच्चिदानंद देव है, जैसे-सर्व स्वप्नसृष्टिमें एक स्वप्न द्रष्टा ही देव है। तुझ चैतन्यकी पूजासे सर्वकी पूजा हो जाती है, तुझ चैतन्यको भोग लगानेसे सबको भोग लग जाता है, तुझ चैतन्यकी प्राप्तिसे सर्वकी प्राप्ति हो जाती है, हे मैत्रेय! कारणकी प्राप्तिसे सर्व कार्यकी बलात्कारसे प्राप्ति हो जाती है।

हे मैत्रेय! जो सच्चिदानंद निज प्रत्यक् आत्माको देव नहीं माने तो माया और मायाका कार्यरूप (नामरूप) इस संघात सहित प्रपंचमें प्रत्यक् विचारकर ही कौन देव है? सत् चित् आनन्दरूप निज देवसे भिन्न असत् जड दुःख अप्रकाशरूप माया तथा मायाका कार्य्य इस संघात सहित सर्व नामरूप प्रपंच तो देव शब्दका अर्थ पक्षपात रहित सम्यक् विचारसे बन नहीं सकता। हे मैत्रेय! दर्पणमें तथा स्फटिक मणिमें अनेक

पर्वतादिकोंके प्रतिबिंब पड़ते हैं परन्तु तिन प्रतिबिंबनसे दर्पण तथा स्फटिक मणिकी हानि नहीं होती; तैसे ही अनेक जाग्रतादिक जगतोंके प्रतिबिंब मुझ चैतन्य रूप आदर्शमें पडते हैं, तथा मिट जाते हैं, परंतु मुझ चैतन्यके हानि लाभ कुछ नहीं होते। यह दृढ निश्चय ही परम देवका पूजन है हे मैत्रेय ! यह आत्मदेव, मनका अपना आप स्वरूप होनेसे किंचिन्मात्र भी स्मरण करनेसे यत्न बिना सबको शीघ्र ही हाजिर हजूर प्राप्त होता है; इससे ऐसे कृपालु देवका ही सब पुरुषोंको श्रद्धापूर्वक अवश्यमेव पूजन करना अर्थात् आपसहित सर्वको अस्ति भाति प्रियरूप देवको ही जानना योग्य है।

ज्ञान प्राप्त होनेपर शिष्यानुभव वर्णन

पराशरने कहा-हे मैत्रेय ! तू अपना अनुभव कह। तुझको क्या निश्चय है ? मैत्रेयने कहा-श्रोत्रादिक इंद्रिय अध्यात्म तथा चक्षु आदिक इंद्रियोंके सूर्यादिक देवता अधिदेव तथा तिन चक्षुआदिक इंद्रियोंके रूपादिक विषय रूप अधिभूत यह संघात है सो मैं नहीं, क्योंकि माया रूप पंचभूतोंसे इस संघातकी उत्पत्ति है, इसीसे जड है तथा क्षणभंगुर है, अनित्य है, ये आप अपने कार्यमें प्रवृत्ति निवृत्ति करते हुए भी आपको परको अपने कार्य्यको तथा अपने प्रकाशकको जानते नहीं, इसीसे जड हैं। एक रस नहीं रहते इसीसे अनित्य हैं। देशकाल वस्तु भेदवाले हैं इसीसे दुःखरूप हैं। अन्यकी सहायता विना जो सत् चित् आनंद रूप प्रत्यक् आत्मा, पूर्वोक्त त्रिपुटीको प्रकाश नाम अनुभव करनेवाला है सोई स्वयं प्रकाश हमारा स्वरूप है; जैसे-दीपक कर घटपटादि पदार्थ भासते हैं, तैसे अंतर मुझ चैतन्य अनुभव कर ही सुख दुःखादिक सर्व पदार्थ भासते हैं जो मैं इनको नहीं प्रकाशता हूँ तो

इन सुख दुःखादिकोंका व्यौरा कैसे होता है ? क्योंकि मुझ नित्य चिद्रूप आत्मासे भिन्न मनादिक जड व्यावहारिक, जाग्रत्, सत्, घटपटादि तथा प्रातिभासिक असत् स्वप्न रज्जुसर्पादिभावाभावपदार्थोंको मैं चैतन्य तुल्य ही प्रकाशता हूँ, मुझको पक्षपात नहीं, जैसे-इंद्रजाल कर रचित जल संयुक्त असत् घटविषे तथा साक्षात् सत् घटविषे सूर्यका प्रतिबिंब सम ही पडता है न्यूनाधिक भाव नहीं। तथा जैसे-सूर्य मृग तृष्णाके जलको तथा गंगादि जलको सम ही प्रकाशता है; तैसे मैं चिद्घन देव, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तुरीया समाधि आदि सब पदार्थोंको सम ही अनुभव करता हूँ, जैसे स्वप्नके सत् असत् पदार्थोंको स्वप्न द्रष्टा ही प्रकाश करता है, विषय इंद्रियके संयोग वियोग विषे, संघात विषे अहंकार पूर्वक जैसे पूर्व मैं सुख दुःख पाता था, तपायमान होता था तथा हर्ष शोक करता था भ्रमकर सो अब मेरे शांत हो गये हैं क्योंकि, भ्रम रूप संघात विषे अज्ञान पूर्वक अहंकारका अभाव है। अब मैं चैतन्य मनके फुरने रूप विक्षेपसे तथा मनके अफुर्णे रूप समाधिसे असंग हूँ, यह मैं नहीं, यह पर है, यह अपर है यह मेरा है, यह मेरा नहीं, यह मेरा शत्रु है, यह मेरा मित्र है, यह उदासीन है इस प्रकार मुझ अस्ति भाति प्रिय रूप सर्वात्मामें भ्रम रूप मनकी कल्पना थी, सो अब शांत हो गई है। यह दृश्य आदि अंत मध्य एक रस नहीं, इसीसे मिथ्या है। मैं चैतन्य आदि अंत मध्य एक रस हूँ, इसीसे सत् हूँ। पाने योग्य पद मैंने पाया है। अब मैं जीवता ही मृतक हुआ हूँ। मृतक हुआ ही जीवता हूँ। अब मैं स्वराज्य हुआ हूँ। सम शांत सुख रूप मैं पूर्व भी था अब भी मैं, परन्तु मध्यमें भ्रांतिकर औरका और जानता था, सो भ्रांति मेरी दूर हुई है। पूर्ववत् शोभाय-

मान हुआ हूँ। अब मैं अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा किस नाम रूप पदार्थकी इच्छा करूँ? अप्राप्त वस्तुकी इच्छा होती है, मैं आगे ही सर्वमें प्राप्त हूँ वा मुझको सर्व प्राप्त है। हेयोपादेय फाँसीसे मैं रहित हुआ हूँ, इसीसे मैं अमृत रूप हूँ। जो हेयोपादेय बुद्धि सहित है सो जीवता ही मृतक है। बुलाये खैंचे बिना मैं सर्वको प्राप्त होता हूँ, सर्व व्यवहार राजसी, तामसी, सात्विकी इस संघातसे करता हुआ भी अकरता निर्लेप हूँ। सर्व संघातकी (मैं चैतन्य ही) चेष्टा करता हूँ, जैसे-वायु सर्व वृक्षोंकी चेष्टा करता है। जैसे-आकाश मुट्ठीमें नहीं आता तथा दीपककी प्रभा बाँधनेमें नहीं आती, तैसे मैं कालका भी आत्मा कालकर नष्ट नहीं होता, उलटा कालकी उत्पत्ति लीनता मुझ चैतन्यसे ही होती है। जो जावे सो जावे और जो आवे सो आवे, न मुझको सुखकी इच्छा है, न दुःखकी इच्छा है क्योंकि अज्ञान-पूर्वक देहमें अहंकाररूप पिशाच था सो सम्यक् आत्म-बोधरूप मंत्रकर शांत हो गया है तथा तिस अहंकारके कर्तृत्व भोक्तृत्व पुत्ररूप कार्य भी शांत हुए हैं, अब चैतन्य सर्वकर्त्ता भी हूँ (स्वप्नद्रष्टावत्), आत्मा अल्प बुलानेसे भी प्रत्यक्ष होता है क्योंकि अपना आप है, जैसे-अपना शरीर भंगादि निमित्तसे भूल जावे; पुनः, स्मरण होवे तो चिरकाल बांधवके मिलनके समान जैसे अपना शरीर मानो अल्प बुलानेमें प्रगट होता है, तैसे ही मैं बुद्धि आदिकोंका साक्षी आत्मा सर्व नामरूप देह मनादि पदार्थोंविषे व्यापक हूँ, जैसे मिरच विषे तीक्ष्णता व्यापक होती है। जैसे-चंद्रमाविषे शुक्लता शीतलता व्यापक होती है। जो पाना था जो जानना था, जो देखना था, जहां पहुँचना था जो जो बन्ध मोक्षवास्ते

कर्तव्य करना था, जिसका अंत करना था, जिस वास्ते कर्म उपासना तथा श्रवण मनन निदिध्यासन समाधि आदि करने थे, जिस भ्रमकी निवृति करनी थी, जिस जन्म मरणरूपी भयको दूरकर निर्भय होना था, जिससे मनुष्य शरीरकी सफलता करनी थी, जो कुछ भोगोंकी सीमाको भोगना था सो सर्व हो चुका है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जो होने थे सो सर्व हो चुके हैं अब सर्व कामोंसे निपटकर पांव पसारकर निश्चिन्त सोवेंगे। मुझ चैतन्यको समाधि असमाधि सम है, जैसे-स्वप्नद्रष्टाको स्वप्ननरोंकी समाधि असमाधि सम है।

कामधेनु और कल्पतरु

पुनः मैत्रेयने कहा-हे गुरु ! कल्पतरु तथा कामधेनु गौ स्वर्गमें सुने जाते हैं, जो स्वर्गमें कल्पतरु तथा कामधेनु गौ होवें तो पुण्योंकी न्यूनाधिकताके अनुसार सुखोंकी तारतम्यता होती है और सर्व जीव स्वाभाविक ही अधिक सुखकी इच्छा करते हैं इससे न्यून सुखवाले देवता इंद्रादिकोंके ऐश्वर्यकी कल्पतरुके नीचे इच्छा करेंगे। इंद्र ब्रह्माके ऐश्वर्यकी इच्छा करेगा तिनका संकल्प भी सिद्ध होना चाहिये। जो सिद्ध न होगा तो कल्पतरुका महत्त्व जो शास्त्रोंने कथन किया है सो असंगत होगा। यह बात विद्वानोंके अनुभवसे भी जच नहीं सकती क्योंकि तिनका संकल्प सिद्ध होगा तो कर्मोंकी व्यवस्था बिगड़ जावेगी। जो कहो कल्पतरुके पास कोई देवतादि जाने नहीं पाता तो कल्पतरु निकम्मा ही हुआ? पराशरने कहा-हे मैत्रेय ! कल्पतरु नाम है शुद्ध मनका, शुद्ध मनमें जो इच्छा होती है सोई पुरुषको पूर्ण होती है, सिद्ध योगीवत्। वा सम्यक् अपने स्वरूपका अपरोक्ष बोध ही कल्पतरु और कामधेनु गौ है, जिसकी प्राप्ति

सर्व कामनाकी पूर्णता वा सर्व कामनाकी कल्पतरुसहित सर्व जगत्की निवृत्तिताका फल पुरुषको प्राप्त होता है। वा सम्यक् संतोष विचारपूर्वक स्वधर्मानुष्ठानरूप तप ही कल्पतरु है अन्य नहीं । वा कल्पतरुके फल और फूल अन्य वृक्षोंसे अतिमधुर सुगंधिवान होवेंगे तथा तिसकी आकृति अन्य वृक्षोंसे सुंदर होगी यह तिसमें विलक्षणता है अन्य नहीं । कामधेनु गौ अन्य गौसे सुंदर स्वभाव-वाली, सुन्दर आकृतिवाली, दूधको अधिक देने-वाली होगी ।

मोक्षप्राप्तिका प्रधान साधन

मैत्रेयने कहा—दुःखरूप संसारबंधकी निवृत्ति और परम सुखरूप मोक्षकी प्राप्तिका प्रधान साधन कौन है ? पराशरने कहा—हे मैत्रेय ! सम्यक् अपरोक्ष सत् चित् आनन्द स्वरूप, निरावरण, शमदमादिक साधन पूर्वक, निजात्मबोध ही प्रधान साधन है, अन्य समाधिका साधन नहीं । शम दम समाधि प्राणायामादि तथा कर्म उपासनादि, अनेक साधन निजात्मबोधकी उत्पत्तिवास्ते हैं, जैसे—अंधकारमें चिंतामणि पड़ी होवे तो मणिकी प्राप्तिवास्ते और अपने भयादि कार्य सहित अंधकारकी निवृत्तिवास्ते केवल दीपकका चसानाही आवश्यक है अन्य जप तपादि साधन नहीं । परन्तु दीपकके चसानेके अनेक साधन हैं, जैसे—काष्ठादि । भोजनकी सिद्धिवास्ते अनेक साधन हैं भी परन्तु प्रधान अग्नि ही साधन है । हे मैत्रेय ! जैसे—सूर्य बादलोंकर पुरुषोंको ढका प्रतीत होता है और किसी रीतिसे बाद-लोंके दूर होनेसे सूर्य स्वयं प्रकाशकर पुरुषोंको स्फुरण होता है तैसे अज्ञानरूपी बादल दूर होनेसे आत्मा स्वयं ज्योतिरूपकर तुझको प्रतीत होवेगा । हे मैत्रेय ! जैसे—

प्रतिबिंबको घटजलसम्बन्धी निज विक्षेपोंके दूर करनेवास्ते और निर्विकार निज भावकी प्राप्तिवास्ते निज बिम्बस्वरूपका सम्यक् जानना ही प्रधान साधन है अन्य नहीं। जैसे-वायु करके विक्षेपवान् जो तरङ्ग है, तिसके विक्षेपकी तथा गमनागमनरूप जन्म मरणकी निवृत्ति और अगाध समुद्रकी प्राप्तिका प्रधान साधन मधुरता शीतलता द्रवतारूप निज जल स्वरूपका सम्यक् जानना है। वा जैसे स्वप्ननरोंको स्वप्नक्लेशरूप जन्ममरणादि दुःखोंकी निवृत्तिवास्ते तथा सुखकी प्राप्तिवास्ते निजस्वरूप स्वप्नद्रष्टाका सम्यक् जानना ही प्रधान साधन है. अन्य नहीं । हे मैत्रेय ! सत् चित् आनन्दस्वरूप निजात्माको अज्ञानकर असत् जड दुःखरूप मानता है और ज्ञानकर अज्ञान तत्कार्यकी निवृत्ति नाम मिथ्यात्व वा अभाव निश्चय होता है । हे मैत्रेय ! सच्चिदानन्दरूप आत्मासे जो कुछ पृथक् प्रतीत होता है सो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति मरण समाधि आदि सर्व प्रपंच स्वप्न भ्रांतिरूप है । स्वरूप अज्ञानकालमें ही भ्रांतिके विषे जाग्रतादि पदार्थ सत्यवत् नाम जाग्रत्वत् भान होते हैं, सम्यक् अपरोक्ष अस्ति भाति प्रियरूप निजात्माका बोधरूप जाग्रत्के हुए नामरूप स्वप्न प्रपंच अत्यंत असत् हो जावेगा । हे मैत्रेय । स्वप्न प्रपंच प्रतीति होते भी स्वप्नद्रष्टा निर्विकार है। जैसे स्वर्गमें नामरूप भूषण प्रतीत होते भी केवल कहना मात्र है, तैसे अस्ति भाति प्रियरूप आत्मामें नामरूप जगत् प्रतीत होता भी कहना मात्र है ।

काशी विश्वेश्वर

हे मैत्रेय ! इस संघात कायारूप काशीमें तू प्रत्यक् चैतन्य (इस देहरूप काशीका प्रकाशक) विश्वेश्वर बन्ध मोक्षसे रहित काशी प्रकाशक है ।

कृष्ण–(गोकुल, मथुरा, वृन्दावन, द्वारका रासक्रीडा आदि)

इस क्षेत्रज्ञरूप द्वारकाका प्रकाशक तू साक्षी चैतन्य क्षेत्ररूप कृष्ण है। हे मैत्रेय ! गोकुल, मथुरा, वृन्दावन और द्वारकाव्रत, जाग्रत् स्वप्न, सुषुप्ति तुरीय तुझ क्षेत्रज्ञरूप कृष्णकी क्रीडाके स्थान हैं। तुरीयरूप वृन्दावनमें " सर्वमिदमहं च वासुदेवः " इस प्रकार सर्व वृत्तियां रूपी गोपी आप अपने सांसारिक शब्दादि विषयरूप पतियोंको तथा विषय जन्म पुत्ररूपी सुखोंको त्याग कर तुम क्षेत्रज्ञरूप कृष्णको ही आश्रयण करती हैं। वा विषय इंद्रियोंको सम्बन्धरूप पतियोंको और विषयजन्य सुखरूपी पुत्रोंको त्यागकर वा विषय इंद्रिय सम्बन्धरूप पतिसे तथा अन्तःकरण अविद्यारूप मातासे उत्पन्न हुई जो वृत्तियां तिनमें जो सत् चित् आनन्दरूप क्षेत्रज्ञ कृष्णका प्रतिबिंब रूप आभास है सोई हुए पति, तिनको तथा विषय वा विषयजन्य सुख सोई हुए पुत्र, तिनको त्यागके नाम मिथ्या जानके, तुझ क्षेत्रज्ञ कृष्णको प्राप्त होती हैं; नाम " सर्वमिदमहं च ब्रह्मैव " इस प्रकार सर्व तुझ क्षेत्रज्ञ ब्रह्मको ही विषय करती हैं । तू क्षेत्रज्ञ कृष्ण तिन सर्व वृत्तियांरूप गोपियोंको प्रकाशता है, यही रासक्रीडा है।

आत्मा और संघातका भिन्नाभिन्न स्वरूप

हे मैत्रेय ! इस पंचकोश रूप अनित्य जड दुःखरूप स्वभाव वाले संघातसे अविवेकीको नित्य सुख चिद्रूप आत्मा भिन्न प्रतीत होता नहीं, परन्तु विवेकी भिन्न जानता है, जैसे–बालक तुषसहित तंदुलोंको,इक्षु रसको, दूध घृतको, जल दूधको, लवण जलको, देह देहीको, प्रकाश प्रकाशकको, आत्मानात्मादिक पदार्थोंको एक रूप जानता है। परन्तु विवेकी बुद्धिमान भिन्न भिन्न स्वभाववाले पदार्थोंको एक रूप प्रतीत होते हुए भी एक रूप

नहीं मानता, इससे तू हे मैत्रेय ! बुद्धिमान् हो मूर्ख मत हो। जैसे-लालादि पुष्पोंके संबंधसे स्फटिक मणि लालादि रूप प्रतीत होती हुई भी विवेकी लालादि रंगरहित केवल शुद्ध स्फटिक मणि जानता है और अविवेकी लालादि रंगोंसहित जानता है। जैसे-लालादिरंग रूप वस्त्र भासता भी है, परन्तु विवेकी वास्तवसे शुद्ध वस्त्रमें लालादि रंग आगन्तुक देखता है सत् नहीं। जैसे-जल लवणादि अनेक रूप भान होता भी वास्तवसे विवेकीकी दृष्टिसे शुद्ध शुक्ल रूप है। तैसे पंचकोश रूप तीन शरीर रूप आत्मा प्रतीत होता भी है, परन्तु विवेकी वास्तवसे अपने आत्म स्वरूपको असंग, निर्विकार, निर्विकल्प, स्वभावसे ही जन्मादि विकार रहित जानता है। अविवेकी ऐसे नहीं जानता, इसीसे जन्मता मरता है। हे मैत्रेय ! आत्मा भिन्न भिन्न जो प्रतीत होता है सो उपाधिसे प्रतीत होता है, वास्तवसे आकाशवत् नहीं।

आतमा के व्यापक होनेपर भी सर्वत्र प्रतीत न होनेका कारण

हे मैत्रेय ! अस्ति भाति प्रिय रूप आत्मा सर्वत्र व्यापक है भी परन्तु जहां स्पष्ट अंतःकरण होता है तहां ही सत् चित् आनंद साक्षी विशेष रूप करके भान होता है, तहां ही इस जड संघातकी चेष्टा होती है। जैसे-उष्णता, प्रकाशता, दाहकता, सूर्यरूपता सर्वत्र व्यापक है भी परन्तु जहां दर्पणादि स्वच्छ पदार्थ होते हैं वहां सर्व लोगोंको प्रसिद्ध एक आभास, दूसरा समान (तेज) द्विगुण प्रकाशक होता है। हे मैत्रेय ! जैसे-राजाका हुक्म अपनी सर्व प्रजाके ऊपर होता है तथा राजा प्रजाके भिन्न ही होता है; तैसे ही देह इंद्रिय मनादि जड़ प्रजाको यह साक्षी आत्मा ही अपनी महिमामें स्थित होता हुआ निज

सत्ता स्फूर्ति देकर ही चेष्टा करता है। तथा आत्मा देह इंद्रिय मनादि प्रजासे भिन्न है तथा देह इंद्रिय मनादि प्रजाके कर्तव्योंसे अकर्तव्य है, जैसे-चन्द्रमा बादलोंके चलनेसे चलता बालकोंको प्रतीत होता है, परन्तु विवेकीकी दृष्टिसे चन्द्रमा अचल है। हे मैत्रेय! यावन्मात्र मन वाणीका गोचर नाम रूप प्रपंच है तथा सुख दुःख है सो सर्व मनोमात्र है। क्योंकि जब मन सुषुप्तिमें लीन होता है तब सर्व नाम रूप प्रपंचका लेश भी नहीं मिलता, जो प्रपंच मनोमात्र न होता तो सुषुप्तिमें प्रतीत होता, सो प्रतीत होता नहीं। इससे मनोमात्र ही कल्पना है। आत्मा तो सर्वदा एक रस सुषुप्तिमें भी है, परंतु सुख दुःखरूप प्रपंच नहीं। इससे यह सिद्ध हुआ कि, आत्मा सुख दुःखरूप प्रपंचसे रहित निर्विकार है।

हे मैत्रेय! नाम रूप संसारको दधिरूप जानो, मनको मंथारूप जानो, ब्रह्माकार वृत्तिको रज्जु रूप जानो और सत् चित् आनंद निजरूप प्रत्यक् आत्माको घृतरूप जानो। इस प्रकार अभ्यास करते २ तुझको अपना स्वरूप साक्षात्कार होगा। पुनः नाम रूप प्रपंच रूप छांछमें तू प्रत्यक् चैतन्य रूप माखन पडा भी कदाचित् भी एक रूप न होवेगा। हे मैत्रेय! जैसे-भींतमें वा खम्भेमें वा अन्यत्र कहीं वस्त्रादिकोंमें चित्रलेकी लिखी जो अनेक प्रकारकी मूर्तियां विशेष हैं सो यद्यपि मूर्खोंको मूरती ही सम्मुख दीखती हैं, थम्भ भींत वस्त्रादि आधार सम्मुख नहीं दीखता, परंतु विचारें तो आधारदर्शनपूर्वक ही सर्व मूर्तियोंका दर्शन है जो आधारको अदृश्य माने और मूर्तियोंको प्रत्यक्ष माने तो दृष्टि विरोध है तथा विद्वानोंके अनुभवसे विरुद्ध है। तैसे ही यह नाम रूप भूत भौतिक कारण कार्यरूप प्रपंच वा अंडज, जरायुज, स्वदज,

उद्भिज्जरूप मूर्तियांही मनरूप चित्रलेकी अनंत चित्सुखरूप आत्मारूप आधारमेंही लिखी प्रत्यक्ष दीखती हैं परंतु नित्य सुख चिद्रूप मूर्तियोंके आधार परमेश्वरको अविवेकी दूर मानते हैं, यह नहीं जानते कि आधारदर्शन पूर्वक ही नामरूप मूर्तियोंकी प्रतीति होती है अन्यथा नहीं तात्पर्य यह है कि, पहले आधार होता है पीछे मूर्तियां लिखी जाती हैं यह नहीं कि, आधारको परोक्ष माने और मूर्तियोंको अपरोक्ष माने यह मूर्खोंकी दृष्टि है। इससे आधार ही अपरोक्ष है मूर्तियां नहीं। जो मूर्तियोंकी अपरोक्ष प्रतीति होती सो आधारदर्शन पूर्वक ही प्रतीति होती है, इससे आत्मारूप आधार सर्वसे पहिले ही सिद्ध है।

आध्यात्मक सिद्धोंकी कथा

हे मैत्रेय ! इसीपर एक कथा सुन। एक समय मैं वनविषे विचरता था, तिस वनविषे एक महान् अद्भुत बँगला था। तिसमें बहुत तपस्वी सिद्ध बैठे थे और आपसमें सिद्धाइयोंकी बातें करते थे। जो पूछे सिद्ध कौन थे ? सो पंच ज्ञानेंद्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय, पंचप्राण, चतुष्टय, अंतःकरण, पंच महाभूत तथा सत्व, रज, तम तीन गुण, देशकालादि अनेक प्रकारके भिन्न भिन्न स्वभावोंवाले सिद्ध बैठे थे। मैंने पूछा-हे मित्रो ! तुम क्या करते हो ? उन्होंने कहा-कि, यहां तप करके अपने, अनंत, चित् सत् रूप आत्मास्वरूपको सिद्ध किया है वा करते हैं वा करेंगे तिन्होंके मध्यमें प्रथम मैंने ज्ञानेन्द्रियोंको कहा-कि हे ज्ञानेंद्रियो तपस्वी ! सिद्धो ! तुम शब्द स्पर्श रूप रस गंधके अपरोक्ष सिद्ध करनेके साधन हो तुम साधनद्वारा आत्मा ही शब्दादिकोंको सिद्ध करता है, जैसे-मंदिर बाहिर धरे पदार्थोंको मंदिर भीतर सचक्षुपुरुषही बारी द्वारा अपरोक्ष सिद्ध करता है,

बारियां नहीं । इससे साक्षात् शब्दादिक भी अपरोक्ष नहीं हो सकते तो आत्माको कैसे अपरोक्ष करोगे ! भला जो तुम किसी रीतिसे अपरोक्ष सिद्ध करते हो तो भी शब्दादिकोंको ही अपरोक्ष सिद्ध करते हो, शब्दादिकोंसे रहित जो अवाङ्मनसगोचर आत्मा है तिसको तुम कोटि जन्मोंमें कोटि तरहके तपसे भी सर्वथा नहीं जानोगे। क्योंकि जो आत्मा शब्दादिरूप होवे तो तुम जानो अन्यथा कैसे जानोगे ? तैसे ही मैंने कहा-हे कर्मेंद्रियो सिद्धो ! तुम तो प्रसिद्ध ही वाक् उच्चारण, ग्रहण त्याग, गमनागमन, मल मूत्रका त्याग मात्र ही व्यवहार सिद्ध कर सकते हो अन्य नहीं, यह बात प्रसिद्ध है। इससे तुम्हारा कहना भी निष्फल है कि, हम आत्माको अपरोक्ष करते हैं।

प्राण

तैसे ही मैंने प्राणोंको कहा-हे प्राण अपान, समान, उदान, व्यान सिद्धो! तुम भी जड़ वायु हो, श्वासोच्छ्वासादिक ही प्रसिद्ध क्रिया करते हो अन्य नहीं। जो आत्मा श्वासोच्छ्वासादिक क्रियारूप होवे तो तुम आत्माको ग्रहण करो अन्यथा नहीं।

अन्त:करण

तैसे ही मैंने चतुष्टय अंतःकरणसे पूछा है-हे मन; बुद्धि, चित्त अहंकार तपस्वी सिद्धो! तुम भी संकल्प, विकल्प, निश्चय अनिश्चय, चिंतन अचिंतन, अहंपण तथा न अहंपण केवल इनहींको सिद्ध कर सके हो पूर्वोक्त संकल्पादिकोंसे रहित जो नित्य सुख चिद्रूप प्रत्यक् आत्मा है, तिसको तुम कैसे सिद्ध कर सकते हो ? जो आत्मा संकल्पादि रूप होवे तो तुमसे ग्रहण होवे सो आत्मा संकल्पादिकोंसे रहित है इससे तुम कोटि जन्मोंमें

तपस्या करनेसे भी आत्माको न सिद्ध कर सकोगे। उलटा तुम अपने धर्मोंसहित मनादि आत्मा करके ही सिद्ध होते हो। तुम जड आपको तथा परको भी नहीं जान सकते तो अन्यको कैसे सिद्ध करोगे ? इससे तुम संकल्पादिकोंके ही सिद्ध कर्ता हो अन्यके नहीं। इससे तुम निष्फल ही अहंकार करते हो कि, हम आत्माको जानते हैं। हां, तुम आत्माके साक्षात् करनेके साधन परंपरासे हो, यह बात तो ठीक है आत्मा तुम्हारी उत्पत्तिसे पहले सुषुप्तिमें स्वतः सिद्ध है। तथा तुम्हारे सुषुप्तिमें लीन हुए पीछे स्वतःसिद्ध है। वर्तमानमें तुम्हारे साक्षी हुए आत्माको तुम नहीं जानते तो सुषुप्ति आदिकोंमें कैसे जानोगे ? हे मनादिको सिद्धो ! जैसे-सूर्य ही नेत्रोंमें स्थित होकर अपने आपको देखता है; तथा अन्य पदार्थोंको भी प्रकाशता है। नेत्र निमित्तकर जो नेत्रोंको सूर्य्यके देखनेकी ताकत होवे तो अन्धकारमें भी किसी पदार्थको प्रकाशें परन्तु नहीं प्रकाशते हैं। तैसे आत्मा ही तुम मनादिकों विषे स्थित होकर तुमको भी तथा अन्य सर्व पदार्थोंको प्रकाशता है तथा तुमसे विना भी सुषुप्तिमें, समाधिमें स्वयंप्रकाश रूपताके समाधि सुषुप्तिमें होनेवाले पदार्थोंको प्रकाशता है।

त्रिगुण

तैसे ही मैंने सत्वादि गुणोंको कहा--हे सत्वादि गुणो ! तुम्हारी प्रवृत्ति निवृत्ति मनको हर्ष शोक करती है। सर्वके द्रष्टा आत्माको तुम्हारा कुछ भी असर नहीं पहुँचता। सत्वगुण होनेसे चित्तविषे शमदमादि तथा जाग्रत् अवस्थाकी प्रवृत्ति होती है। रजोगुणके होनेसे भोगादिकोंकी तथा स्वप्न अवस्थाकी कामना करके चित्त चञ्चल होता है। तमोगुणके होनेसे क्रोधादिक पाप-

कर्म करके तथा सुषुप्ति अवस्थासे चित्त स्तब्धभावको प्राप्त होता है इत्यादि काम ही तुम गुण सिद्ध कर सकते हो अन्य नहीं। आत्मा पूर्वोक्त इन गुणोंसे परे है। इससे तुम्हारा कहना निष्फल है कि, हम आत्माको अपरोक्ष सिद्ध करते हैं।

पंचभूत

तैसे ही मैंने कहा—हे पंचभूतो ! तुम भी मायाके कार्य्य-हो, असत् जड दुःखरूप हो, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध गुणोंवाले हो तथा कार्य कारणरूप हो। इससे मायासे परे तथा कार्य कारण भावसे रहित निर्गुण प्रत्यक् आत्माको कैसे अपरोक्ष सिद्ध कर सकते हो ? नहीं कर सकते हो।

अज्ञान

तैसे ही मैंने अज्ञान सिद्धको कहा—हे आवरण, विक्षेप-शक्तिवाले अज्ञान सिद्ध ! ज्ञानरूप प्रकाशसे विलक्षण अज्ञानरूप अन्धकार होता है। प्रकाश स्वरूप आत्माके तुम सम्मुख ही नहीं हो सकते तो आत्माका दर्शन कैसे करोगे ? उलटा तुम ज्ञान अज्ञान दोनों भाई आत्मा करके ही अपरोक्ष सिद्ध होते हो। जो तुम दोनों आत्माको तथा पदार्थोंको निरावरण सर्व अपने कार्य मनकी तरफसे कर सकते हो, स्वयंप्रकाश आत्माकी तरफसे नहीं कर सकते हो। जैसे—बादल मनुष्योंकी तरफसे सूर्यको आच्छादन निरावरण कर सकते हैं सूर्यकी तरफसे नहीं। इससे तुम्हारा वृथा अभिमान है कि, हम आत्माको अपरोक्ष सिद्ध करते हैं।

शब्दादि गुण

तैसे ही मैंने शब्दादिक गुणोंको कहा—हे भूतोंके पुत्र-रूप शब्दादिक गुणो ! जब तुम्हारे आप अपने आकाशादि

पञ्चभूतरूप पिता तथा पंचभूतोंका अज्ञानरूप परपिता तुम्हारा पितामह आत्माको नहीं अपरोक्ष कर सकता तो तुम कैसे करोगे किन्तु नहीं करोगे। इससे यह जगत् मूर्तियां भी अपरोक्ष सर्वके अनुभव सिद्ध हैं और इनका आधार अधिष्ठानरूप सुख नित्य चित्त आत्मा भी अपरोक्ष ही मानना चाहिये।

हे मैत्रेय! अनित्य जड दुःखरूप जो जाग्रत् स्वप्न समाधि-सुषुप्ति आदि, कार्य कारण भाव; नाम रूप चित्ररूप दृश्य प्रपंचमें क्या स्थित होना है ? जिसमें यह भासमान चित्र है तिसीमें स्थित हो जो निर्भय होवे, अन्यथा नहीं। धन्य वही है जो शरीरकर, मनकर, वाणीकर, व्यवहार करते भी विचारसे इस दृश्यरूप जगत्को साक्षीके समान देखते हैं ! हे मैत्रेय ! जैसे--भारवाही बैलादिक पशुओंको नफे टोटेका हर्ष शोक नहीं होता, चाहे चन्दन, कस्तूरी, सुवर्णादि उत्तम पदार्थ लादो चाहे मलीन पदार्थ लादो, तिसके अभिमानी पुरुष स्त्रियोंको नफे टोटेका हर्ष शोक होता है। अभिमान रहितको हर्ष शोक नहीं। तैसे मन इंद्रियादिक पशु शुभ कृत्य करें अथवा अशुभ कृत्य करें, वे अभिमान नहीं करते, तब तू चित् सुख नित्य असंग अक्रिय आकाशके समान आत्मा अभिमान क्यों करता है ? अभिमान करनेसे दुःख होगा। हे मैत्रेय ! जिस नगरमें कुम्हारके गधोंकी उत्पत्ति नाशमें कुम्हारको ही सुख दुःख होता है (अभिमानी होनेसे), स्वमहिमा स्थित राजाको नहीं। जो राजा हर्ष शोक करेगा तो मूर्ख बाजेगा। तैसे ही इस देह रूप नगरमें इंद्रिय रूपी गदहोंके जन्म मृत्युरूपी; इष्ट अनिष्टकी प्राप्ति निवृत्तिमें मनरूपी कुम्हार ही हर्ष शोकवाला है तू सम्यक् विचार देख, तू

चैतन्य राजा स्वमहिमामें स्थित हर्ष शोकका भागी कहां है ? जबर्दस्ती करे तो तेरी इच्छा है ।

इति पक्षपातरहिते अनुभवप्रकाशे षष्ठः सर्गः समाप्तः ।। ६ ।।

अथ सप्तम सर्ग ७.

जगदुत्पत्तिप्रकरणवर्णन

मैत्रेयने कहा—हे भगवन् ! अमायिक निरवयव आत्मासे यह जगत् कैसे उत्पन्न होता है ? कोई प्रत्यक्ष दृष्टांत कहिये । पराशरने कहा—हे मैत्रेय ! जैसे--आकाश निरवयव पूर्णसे वायु उत्पन्न होती है, जानी नहीं जाती कि, किस रीतिसे उत्पन्न हुई है, पुनः तिसमें लीन हो जाती है और स्वप्नद्रष्टाका दृष्टांत अनुभव सिद्ध है । मैत्रेयने कहा--मुझको शिष्य करो । पराशरने कहा--शिष्य नाम सेवा करनेवालेका है सो इंद्रिय मनादि मेरी सेवा करते हैं इसीसे मेरे शिष्य हैं । मैत्रेयने कहा--मुझको उपदेश करो । पराशरने कहा—उपदेष्टा, उपदेश और उपदेश करने योग्य त्रिपुटी मुझमें है नहीं, क्योंकि, मैं उनका साक्षी हूँ । परंतु उपदेश यही है कि, जान आप सहित सर्व हरि है । उपदेश तो वीथियोंके तृण भी सारग्राहीको कर रहे हैं, संतने तो उपदेशकी गिरमिट ही ले रक्खा है, संत बिना उपदेश किसीको लगता भी नहीं क्योंकि संत निष्काम होनेसे सर्व बातोंका सार निकालके यथार्थ उपदेश करते हैं । इसी पर एक कथा सुन ।

स्थूल समष्टि अभिमानी वैराट् भगवान्‌ने व्यष्टि अभिमानी विश्व नाम जीवको उपदेश दिया है । वा प्रतिबिंबी रूप जीवको बिंब रूप ईश्वरने उपदेश दिया है । तिस

स्थानमें संतोंने आप अपना पक्षपातरहित संभाषण भी किया है ।

विश्वात्मा और विराटात्माका संवाद

विश्वने कहा—हे भगवन् ! तुम्हारे हजारों शीश हस्त पादादि अवयव शास्त्रमें कहे हैं परंतु यह मनुष्य व्यक्ति तुम्हारी हमारी एक सरीखी है इसके तो हजारों हस्त पादादि अवयव बन सकते नहीं जो तुमको आकाशवत् निरवयव पूर्ण मानै तो भी अवयव बन सकते नहीं और जो स्थूल ब्रह्मांड रूप तुम अपना शरीर कहो तो शीश आपका आकाश, पाद पाताल, अग्नि मुख, दशों दिशा भुजा इत्यादि तुम्हारे अवयवोंका शास्त्र वर्णन करते हैं सो तो भावना मात्र चित्तके ठहराने वास्ते प्रतीक उपासना है, कोई विचारे तो अवयव मालूम नहीं होते । जो माने तो अग्नि पातालादियोंसे प्रजाकी उत्पत्ति हमको नहीं प्रतीत होती । सर्व.वैराट् रूप वैश्वानरने कहा—हे विश्व ईस ! जैसे तुम देहके देही हो, तैसे मैं ब्रह्मांड रूप देहका देही हूँ । अनंत जीवोंका समुदाय रूप ही ब्रह्मांड है । जो तुम्हारे अनंत व्यष्टि जीवोंके हस्त पादादि अवयव हैं सोई सर्व मेरे अवयव हैं. जैसे एक वृक्षके अवयवोंसहित अवयवीका वृक्षाकाश अभिमानीके जो अवयव हैं सोई सर्व वनाकाश अभिमानीके अवयव हैं, जैसे-स्वप्नमें जो व्यष्टि स्वप्ननरोंके हस्त पादादि अवयव हैं सोई सर्व अवयव समष्टि वैराट् स्वप्नद्रष्टाके हैं अन्य कोई व्यवस्था है नहीं ।

वर्णाश्रम और वेदादिकी उत्पत्ति

जैसे-स्वप्नमें चार वर्णाश्रम तथा वेद पदार्थ प्रतीत होते हैं परन्तु विना हुए पदार्थका ज्ञान होता नहीं, क्योंकि पदार्थ अपने ज्ञानमें निमित्तकारण होते हैं । जाग्रतके

वर्णाश्रम तथा वेद स्वप्नमें हैं नहीं, क्योंकि, जो जाग्रतमें देशकाल वस्तु है सो स्वप्नमें तिससे देशकाल वस्तु विलक्षण है। इससे स्वप्नमें किसी रीतिसे सत् वा मिथ्या नवीन वर्णाश्रम, वेदकी उत्पत्ति होती है सो तुम विचार देखो। स्वप्नके विराट् स्वप्नद्रष्टाके किस अवयवसे किस वर्णाश्रम और वेदकी उत्पत्ति माने सो तुम ही पक्षपात-रहित विचार कर कहो ! यह सर्वके अनुभवकी बात है। क्योंकि जो स्वप्नमें स्वप्ननरोंके मुख हस्त ऊरूपादादि अवयव हैं सोई अवयव स्वप्न वैराट् स्वप्नद्रष्टाके हैं।

यदि हिंदू समाजके सर्व शास्त्र अनुकूल वर्णाश्रमकी उत्पत्ति माने भी तो "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" ब्राह्मण इसका मुख है नाम प्रधान है। पंचमीके अभाव होनेसे उत्पत्ति नहीं बनती। तैसे ही राजन्यादि पदोंका अर्थ भी जान लेना। जैसे—स्वप्नमें वर्णाश्रम तथा वेदादि पदार्थोंकी उत्पत्ति माने तो स्वप्ननरोंकी देहमें मुखादि अवयवोंसे ही वर्णाश्रमकी उत्पत्ति माननी होवेगी परन्तु स्वप्नद्रष्टा निरवयव है तिसको मुखादि अवयव बनते नहीं और भी शब्दादि लेन देनादि क्रिया गुण विना और किसी वर्णाश्रमकी तो उत्पत्ति मुखादि अवयवोंसे देखनेमें आती नहीं। दृष्टकल्पनाके अनुकूल ही अदृष्टकल्पना की जाती है; अन्यथा नहीं की जाती। शास्त्रमें भी समष्टि व्यष्टिकी सर्व प्रकारसे व्यवस्था तुल्य कही है जो पिंडे सोई ब्रह्माण्डे; जो खोजे सो पावे। इससे व्यष्टिके दृष्टांतसे समष्टि वैराट्में दार्ष्टांत जोड लेना।

वर्णाश्रम के स्थापक और स्थापनाका फल

इस वास्ते पक्षपातरहित धर्मात्मा, सत्यवक्ता पुरुषोंने बेटी पंगत लेन देनरूपी व्यवहारकी सुखपूर्वक सिद्धिके लिये तथा संकर वर्णकी निवृत्तिके लिये तथा धर्मके न्यूना-

धिककी उत्कर्षता और अधर्मकी न्यूनाधिककी अपकर्षताके लिये, तत् धर्माधर्म संबंधी पुरुषोंकी सात्विकी, राजसी, तामसी स्वभावोंके अनुसार उत्तम, मध्यम, निकृष्ट अधम चार प्रकारकी संज्ञा ईश्वरने वा पूर्वोक्त सज्जन पुरुषोंने बांधी है ।

मुखादि अवयवोंसे ब्राह्मणादि वर्णोंकी उत्पत्ति

हां ! मनके चिंतनपूर्वक और मुखको शब्द उच्चारणपूर्वक ही उत्तमादि संज्ञा कल्पना की जाती है, इससे मुखादि अवयवोंसे वर्णाश्रमकी उत्पत्ति कही है नहीं तो और किसी भी समाजके शास्त्रोंमें ईश्वरके मुखादि अवयवोंसे वर्णाश्रमरूप जगत्की उत्पत्ति कही नहीं ? हां ईश्वरकी इच्छासे जगत्की उत्पत्ति बनती है और सर्व शास्त्रोंमें कही भी है. सो इच्छा अन्तःकरणमें है मुखमें नहीं वा इच्छा मायामें है । इससे सर्वसम्मत सिद्धांत ही ठीक होता है । ईश्वरके मुखादि अवयवोंसे वर्णाश्रमरूप जगत्की उत्पत्ति सर्वसम्मत सिद्धांत नहीं, किंतु आप अपने घरके सिद्धांत स्थापन करते हैं, किसको सत् कहें किसको असत् कहें । समाज अनुसारी शास्त्रमध्ये अनादि पक्ष माननेवालोंमें तो वर्णाश्रमरूप जगत्की उत्पत्ति ईश्वरसे वा जीवसे बनती ही नहीं सादिमें बनती है सो भी मुखादि अवयव देहमें ही बनते हैं, देहीमें बनते नहीं, देहीको निरवयव होनेसे । तैसे ईश्वर देहीकी यह कार्य्य कारणरूप माया देह है, सो मायाके सत्व, रज, तमादि मुखादि अवयववत् अवयव हैं सो मायाके सत्वादि गुणरूप मुखादि अवयवोंकी प्रधानता अप्रधानतासे तत् तत् संबंधी पुरुषोंकी भी प्रधानता अप्रधानता संज्ञाकी गई है सो अदृष्ट वा संगतिके प्रतापसे सात्विकीसे तामसी राजसी होता है, तामसीसे राजसी सात्विकी होता है । मायारूप उपाधिके धर्म

माया उपहत ईश्वरमें वर्तते हैं, इससे ईश्वरके मुखादि अवयवोंसे वर्णाश्रमरूप जगत्‌की उत्पत्ति कही है अन्यथा कहोगे तो निरवयव पूर्ण आकाशवत् ईश्वरके कौन मुखादि अवयव हैं ? किंतु कोई नहीं । जैसे-निरवयव पूर्ण आकाशके किस अवयवसे वायु उत्पन्न होता है ? तद्वत् ही ईश्वर भी निरवयव पूर्ण सब शास्त्रोंमें लिखा है तिसके मुखादि अवयव बनते नहीं ।

सर्व देशोंमें भिन्न २ व्यवहारोंकी कल्पनाके कर्ता और परस्पर भेदका कारण

जो ईश्वरको सगुण मानो वा निर्गुण मानो तो पूर्व कही व्यवस्था ही ठीक मालूम देती है आगे ईश्वर जाने क्या तदबीर है परन्तु उत्तमादि व्यवहार, देश काल वस्तुओंमें देखनेमें आता है । क्या जाने यह उत्तमादि व्यवहार ईश्वरने स्थापन किया है वा जीवोंने किया है वा अनादि वा सादि है परन्तु यह भी देखनेमें आता है कि, देश काल वस्तुओंमें उत्तमादि व्यवहार तत् तत् देश निवासी पुरुषोंने किया है वा आप अपने सामाजिक पुरुषोंने सर्व देश काल वस्तुओंमें उत्तमादि व्यवहार स्थापन किया है । क्योंकि जिन देश काल वस्तुमें हमारे सामाजिक पुरुषोंने उत्तमादि व्यवहार किया है सो अन्य सामाजिक पुरुषोंने नहीं किया, जो अन्य सामाजिक पुरुषोंने जिन २ देश काल वस्तुओंमें उत्तमादि व्यवहार स्थापन किया है सो हमारे सामाजिक पुरुषोंने नहीं किया, इसी रीतिसे सर्वमें जान लेना । इस रीतिसे सर्व देश काल वस्तुओंमें उत्तमादि व्यवहार जीवोंने मनके चिंतन पूर्वक वाणीसे बांधा है ।

सम और साधारण नियम

परन्तु सत् संभाषणादियोंकी न्यूनाधिकता प्रयुक्त उत्तमादि व्यवहार सर्व देशमें सर्व समाजोंमें सम है ।

चार वर्ण

इसी रीतिसे तो सर्व वर्णाश्रमोंकी उत्पत्ति मुखसे ही बन सकती है। इन उत्तमादि पुरुषोंके ही पर्याय शब्द ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र संज्ञा हैं।

चार आश्रम

इन ही पुरुषोंमें हिंदुओंके समाजमें प्रथम विद्या पढने तक ब्रह्मचर्य रखनेसे ब्रह्मचारी संज्ञा, पुनः गृहस्थ करनेसे गृहस्थी संज्ञा, वनमें तप करनेसे वानप्रस्थ संज्ञा और सर्वको त्याग करनेसे संन्यस्त संज्ञा बांधी है।

सब देशोंमें चार वर्णाश्रम

यह चार वर्णाश्रमोंकी संज्ञा सर्व देशों, विलायतोंमें, आप अपने समाजमें, मुसलमान और अंग्रेजादि अच्छे पुरुषोंने निज निज देश भाषाके अनुसार कल्पना की हुई है केवल नामांतरका भेद है स्वरूपसे भेद नहीं।

उत्तम होनेका कारण

आप अपने समाजमें बेटी पंगती खान पानादि व्यवहार भिन्न २ करनेसे वा एकमेक करनेसे तो उत्तमादि संज्ञा पुरुषोंको प्राप्त नहीं होती किन्तु उत्तमादि संज्ञा तो गुणोंसे प्रयुक्त है। जाति समाजके अनुसार उत्तमादि संज्ञा नहीं प्राप्त होती किन्तु धर्म अधर्मकी उत्कर्षता अपकर्षताके अधीन है।

नीच होनेका कारण

यह नहीं कि, ब्राह्मणसे क्षत्रिय नीच है, क्षत्रियसे वैश्य नीच है, वैश्यसे शूद्र नीच है, वरन् नीच कर्म करनेसे नीच कहाता है ऊँच कर्त्तव्य करनेसे ऊँच कहाता है। भले बुरे कर्तव्यके अधीनसे ऊँच नीच हो जाता है, नीच ऊँच हो जाता है। यह प्रकरण शास्त्रोंमें भी लिखा है और प्रत्यक्ष देखनेमें भी आता है।

भिन्न २ जाति आदि संज्ञा बांधनेका फल

सर्व पुरुष एक कामको नहीं कर सकते और सर्व कामोंको एक पुरुष भी नहीं कर सकता। अनेक ही काम हैं, अनेक ही पुरुष हैं। इस वास्ते जुदे २ कामोंके अनुसारी पुरुषोंकी जुदी जुदी संज्ञा बांधे बिना व्यवहार सुख पूर्वक सिद्ध होता नहीं।

ब्राह्मण निरूपण

इस वास्ते शास्त्र अध्ययन पूर्वक तथा शास्त्रोक्त कामोंके अनुष्ठानपूर्वक पक्षपातरहित और मर्यादा बाहर लोभरहित, उपदेशक पुरुषोंकी ब्राह्मण संज्ञा की गई है, क्योंकि पक्षपातरहित उपदेशका पुरुषों बिना प्रजाके कल्याण रूपी उन्नति नहीं होती।

क्षत्रिय निरूपण

वैसे ही पक्षपातरहित धर्म पूर्वक युद्धमें उत्साही तथा अदालती प्रजा पालक पुरुषोंकी क्षत्रिय संज्ञा की है क्योंकि ऐसे शूरोंके बिना प्रजाका कल्याण होता नहीं; प्रजाको चौरादि लूट लेवें।

वैश्य निरूपण

व्यापार कर धन संग्रह करनेकी जिन पुरुषोंकी बुद्धि है, तिनकी वैश्य संज्ञा की गई है। इन बिना भी प्रजाका कल्याण नहीं होता क्योंकि अन्य देशकी वस्तुओंको इस देशमें इस देशकी वस्तुओंको अन्य देशमें ले जाने बिना प्रजा सुखी नहीं होती।

शूद्र निरूपण

तैसे ही काष्ठ, लोह, कपडे, दर्जी, धोबी, नाई, सोनी आदि जो पूर्वोक्त तीन बुद्धि रहित जो पुरुष हैं; तिनकी शूद्र संज्ञा की गई है। इन बिना भी प्रजाका कल्याण

नहीं होता क्योंकि मकानादिकों बिना प्रजाको सुख कैसे होगा ? किंतु नहीं होगा।

नीचनिरूपण

इन मध्यमें जो नीच कामोंको करेगा सो नीच होगा अन्यथा नहीं। जीवोंके जीवन वास्ते काम अनंत हैं, धर्म पूर्वक तिन कामोंको करनेसे नीच नहीं होता। जो जाति वा समाज नीच हो तो जज्जके बेटेको जज्जी अधिकार लायकी बिना मिलना चाहिये, पंडितके बेटेको पढे बिना पांडित्यताका अधिकार नहीं मिलता। इस प्रकार कर्म ही प्रधान है इसी वास्ते "स्वस्वकर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः" आप अपने धर्मपूर्वक नाम सचावट पूर्वक व्यवहार करते अंतःकरणकी शुद्धि सर्व जीवोंकी होती है, यदि इनमें कोई नीच होता तो तिसके चित्तकी शुद्धि नहीं होनी चाहिये।

वर्णाश्रम विभागसे प्रजाकी उन्नतिका कारण

इससे कर्त्तव्योंके अधीन ही उत्तमादि व्यवहार रखनेसे प्रजाकी उन्नति तथा कल्याण होता है, क्योंकि नीच कर्म करनेसे नीच पद मिलनेका भय होता है, ऊँच कर्म करनेसे ऊँच पद मिलता है। इस संकेतसे सर्व जीव सर्व विद्यामें प्रसन्न शील रहते हैं आलसी नहीं होते। आलस ही बुद्धिकी क्षीणताका कारण है, आलससे ही सर्व काम बिगड़ते हैं।

परशुराम

इतनेमें परशुराम आकर बोले-हे सत्सभा ! इन अधिकारी पुरुषोंको कामादि क्षत्रिय नाम शूरोंने (इक्कीस २१ को चार बार गिननेसे चौरासी ८४ होता है, सो चौरासी लक्ष योनियोंसे इन कामादिकोंने अस्मदादि जीवोंको) जीता था सो अब माया तत्कार्यसे परे अर्थात् तिस माया

तत्कार्य मनादिकोंका सच्चिदानंद स्वरूपसे जो साक्षी है सोई मेरा स्वरूप राम है। इस दृढ निश्चयवान् मुमुक्षु वा आत्म ज्ञानीरूप परशुरामने अब कामादि क्षत्रिय नाम शूरोंको (चौरासी लक्ष योनियोंमें जो शत्रु थे तिनका) निक्षत्रायण किया अर्थात् जीता है। वा पूर्वोक्त लक्षण युक्त जो मुमुक्षु परशुरामको ब्रह्मवेत्ता गुरुके इक्कीस वार अन्वय व्यतिरेक करके स्वजातीय विजातीय स्वगत भेद रहित वा देश काल वस्तु भेद रहित जो सच्चिदानंद ब्रह्म एक है सोई बुद्धि आदियोंका ईश नाम नियामक तू चैतन्य सत् सुख रूप है। पश्चात् नववार उपदेशसे मुमुक्षु निक्षत्रायण नाम अज्ञान तत्कार्यका अत्यंताभाव वा मिथ्यात्व निश्चय करता है यही अंतर परशुरामके निक्षत्रायणका अर्थ है।

राम - (कथाका यथार्थ आध्यात्मिक आशय)

पुनः दशरथके पुत्र राम आयकर सभामें बोले-कि, हे पक्षपातरहित सभा! रामनाम है. सर्व नाम रूप वाङ्मनसहित दृश्यमें अवाङ्मनसगोचर जो अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा रम रहा है नाम पूर्ण हो रहा है, तिसका तिस अवेद्यत्व सदा अपरोक्ष मनादिकोंके साक्षी रामको जो अपना स्वरूप संशयरहित जानता है सोई योगी ज्ञानी है सो अज्ञानरूपी समुद्रको ज्ञानरूपी सेतु बनाके अज्ञान तत्कार्य जो काम क्रोधादि राक्षस तिनको स्वरूपसे पृथक् सत्ताका अत्यंताभाव वा मिथ्यात्व निश्चयरूप धनुषसे मार करके निष्कर्तव्यता बुद्धिरूप सीतासहित, प्रारब्धरूपी पुष्पक विमानपर बैठकर इस संघातरूप अयोध्यामें जीवन्मुक्तिरूपी सिंहासनपर स्थित होते हैं सोई पुरुष राम जानना

ईश्वर भावना

पुनः रामने कहा—हे जगत् हितचिंतक सत् सभा ! सर्व स्त्रीमात्रमें प्रकृतिरूप सीताकी भावना करे और पुरुष मात्रमें सच्चिदानन्द आत्मा ब्रह्मरामकी भावना करे, वा आपसहित सर्वस्थावर जंगम, स्थूल सूक्ष्म मूर्तामूर्त, नाम रूप, जड चेतन सर्व सृष्टिमें केवल सच्चिदानंद हरि भावना करे तो सर्व दर्शन हरिका ही सर्व देशमें सर्व कालमें सर्व वस्तुमें इनको होता रहेगा क्योंकि परोक्ष वा अपरोक्ष जड वा चैतन्य हस्त पादादि अवयवोंसहित, वैकुंठादि देशनिवासी वा ऐहिक (इस) लोक निवासी, ब्रह्मा विष्णु शिव राम कृष्ण नरसिंहादि मूर्तियोंमें वा अन्य मूर्तियोंमें ईश्वर भाव वा देव भाव तुम्हारी भावनामें ही सिद्ध है नहीं तो तिनमें निज ईश्वर भावकी स्फूर्तिः नहीं कि, हममें ईश्वर भाव करो वा न करो। संघात और संघातके सर्व धर्म सर्व सामग्री दृश्यमान प्राणीमात्रमें सम ही है तथा अंतर्यामी मनादिकोंका साक्षी आत्मा भी संघातोंमें सम ही है (घटादिकोंमें आकाशवत्) । इससे माया तत्कार्यविषे, जिस किसी व्यक्तिमें ईश्वरभाव कल्पना है सो पुरुषकी भावनाके अधीन ईश्वरता है व्यक्तिके स्वरूपसे नहीं । सो मायामें वा मायाके कार्य पंचभूत व्यक्तियोंके मध्य किसीमें भी ईश्वरताका अंगीकार है तो शास्त्र प्रमाणसे केवल पुरुषकी भावनाके अधीन ईश्वरता है और कोई नियामक है नहीं, क्योंकि, निर्गुण निराकार ईश्वर, ध्यानकर्ताका निजात्मा है सो ध्यानमें आता नहीं जो ध्यानमें आता है सो माया वा मायाका कोई न कोई कार्य ही होता है। इस वास्ते एक मूर्तिमें भी ईश्वरता शास्त्र प्रमाणसे भावनाके अधीन है और सर्व सृष्टिमें भी ईश्वरता शास्त्र

प्रमाणसे भावनाके अधीन है और सर्व सृष्टिमें भी ईश्वरता शास्त्र प्रमाणसे भावनाके अधीन है। जो एक मूर्तिमें शास्त्र प्रमाणसे ईश्वरभावसे पवित्रता मनकी होगी तो सर्व सृष्टिमें शास्त्र प्रमाणसे ईश्वरभावसे पवित्रता क्यों न होगी ? किंतु तिससे भी अधिक होगी। जैसे तुमको धातु पाषाणादि एक मूर्तिमें ईश्वरभाव करके मंदिरमें दर्शन करनेसे पवित्रता होती है तथा तिस कालमें तुम कोई भी असत् संभाषणादि तथा काम क्रोध दंभ कपट द्रोहादि पाप कर्म नहीं करते। तैसे जब तुम स्थावर जंगमोंके देहरूपी मंदिरोंमें शास्त्रप्रमाणसे ईश्वरभाव करोगे तो एक तो तुमको पवित्रताकी अत्यंत उत्पत्ति होगी; दूसरा मन वाणी शरीरसे किसीसे भी तुम द्रोहादि तथा अनिष्ट संपादनादि न करोगे क्योंकि जो द्रोहादि तुम किसीसे करोगे तो तुम्हारा सांगोपांग सर्वमें ईश्वरभाव ही नहीं सिद्ध होगा। जो किसी एक दृढ भावनामें गोलमाल करोगे तो सर्व भावनामें गोलमाल होगा क्योंकि, सर्व भावना शास्त्रप्रमाण होनेसे तथा अंतःकरणके धर्मरूप होनेसे समही है। एक भावना माननी एक न माननी यह सिद्धांत घरके हैं। भावनाके दृढ अदृढके भेद हैं, स्वरूपसे नहीं। जो आगे इच्छा हो सोई करो यह पक्षपातरहित रामके वचन सुनके सर्व सभाके लोग श्लाघा करने लगे।

कृष्णावतार

इतनेमें कृष्ण आकर बोले—हे सर्वमें आत्मोपमादर्शी अधिकारी जनो ! अज्ञान तत्कार्य मनादि यह संघात समष्टि व्यष्टि क्षेत्र है, इस क्षेत्रके न्यूनाधिक भावाभावको तथा इसके धर्मोंको जो चैतन्य जानता है, तिसका नाम क्षेत्रज्ञ है। सो क्षेत्रज्ञ ही तुम्हारा हमारा तथा सर्व

जगत्का स्वरूप है। इस क्षेत्रज्ञको अपना आप स्वरूप जाननेसे सर्व अत्यंत दुःखोंकी निवृत्ति होती है। इस क्षेत्रज्ञका और कोई क्षेत्रज्ञ है नहीं, इसीसे स्वयंप्रकाशरूप है। हे साधो ! जैसे-कपड़ेकी गिरनीमें एक इंजनसे आगे हजारों कलें जुदे जुदे कामकी चलती हैं तैसे एक क्षेत्रज्ञ रूप इंजन करके देहरूप गिरनीमें इंद्रिय प्राण मनादि जुदी जुदी आप अपने कामकी कला चलती हैं। हे सम्यक्-दर्शी जनो ! यह स्वयंप्रकाश क्षेत्रज्ञ ही ब्रह्मा विष्णु शिवा-दिकोंका तथा तुम्हारा हमारा सर्व जगत्का स्वरूप है। इसीके जाननेसे मोक्ष होता है।

नरसिंहावतार

इतनेमें नरसिंह आकर बोले-हे सत्संभाषणादि दिव्य गुणवान् सज्जन लोगो ! अज्ञानरूप जीव हिरण्यकशिपु जानो। विषय बुद्धि तिसकी स्त्री जानो। मोक्षरूप आत्म दृढ़ निश्चयरूप प्रह्लाद जानो। काम, क्रोध, लोभ वा सत्वादि तीन गुण वा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति वा स्थूल सूक्ष्म कारण वा कायिक वाचिक मानसिक भिन्न भिन्न क्रिया वा पृथिवी, अप, तेज, आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधि-भौतिक वा द्रष्टा दर्शन दृश्यादि त्रिपुटीरूप त्रिलोकीका राजा जीवरूप हिरण्यकशिपु हुआ अर्थात् इनका अभि-मानी हुआ। विषय इंद्रियके सम्बन्ध जन्य सुखको यज्ञ कहते हैं "यज्ञो वै विष्णुः"। पूर्ण वस्तुका नाम यज्ञ है, भूमामें ही पूर्ण वस्तु सुखरूप है, इस वास्ते सुखको यज्ञ कहा है। तिस यज्ञको करते जीवरूप हिरण्यकशिपु देह-रूप स्वर्गमें सुख दुःखके अनुभवरूप भोगको भोगने लगा अर्थात् तिनके धर्मोंमें तादात्म्य अध्यास किया। निश्चय रूप प्रह्लाद सत्संगके प्रतापसे विष्णु व्यापक चैतन्य जो जीवरूप प्रतिबिंबका स्वरूप बिंब है तिसका भजन करता था नाम अपना स्वरूप जानता था। परन्तु सगुण भक्तिकी

उत्कर्षता दिखलाने वास्ते सगुणमूर्तिका निश्चय किया। तात्पर्य यह कि, अन्तःकरणरूप जलादिकोंमें आत्मारूप सूर्यका प्रतिबिंब पड़ता है, तिसका आगे दिवालरूपी इंद्रियादिकोंमें भी पड़ता है। सो सर्व प्रतिबिंबादिकोंका स्वरूप चैतन्य आत्मारूप बिंब सूर्य ही है। इससे प्रतिबिंब जीव (हिरण्यकशिपु) रूप विद्वान् अपने बिंबस्वरूप आत्म सूर्यको अपरोक्ष जानता है। देहाध्यासरूप निश्चयको प्रह्लादको पढानेवाला पंडित जानना। मोक्षनिश्चय (प्रह्लादरूप मुमुक्षु) जीव हिरण्यकशिपु रूप राजासे वा प्रारब्धसे वा कुसगसे हुवा जो देहमें पीड़ारूप दंड तिससे (मोक्ष निश्चयरूप प्रह्लाद) न चलायमान हुआ। तथा इंद्रियरूप दैत्योंके शब्दादि विषयरूप लोभ देनेसे भी चलायमान न हुआ। तात्पर्य यह कि, गुरु शास्त्र स्व अनुभवसे हुए यथार्थ निश्चयको मुमुक्षुजन अनेक भयानक रोचक वाक्य सुनकर भी त्यागते नहीं। वही मुमुक्षुताका दृढ निश्चयरूप प्रह्लादके प्रतापसे अन्तःकरण रूपी थंभेसे नृसिंहरूप बोध उत्पन्न हुआ।

नाद और विंदुसे दो प्रकार की सृष्टि

तात्पर्य यह कि, वीर्य और नादसे दो प्रकारकी सृष्टि होती है। माता पिताके सकाशसे वीर्य सृष्टि होती है और गुरुके सकाशसे नादी सृष्टि होती है क्योंकि प्रथम अज्ञान कालमें मैं वर्णी आश्रमी हूँ, मल मूत्रका शरीर रूप भी मैं हूँ, मैं सुखी दुःखी रूप हूँ, मैं कर्ता भोक्ता जन्म मरणवान् हूँ, मैं गमनागमनवान् हूँ, बन्ध मोक्षवान् हूँ, क्षुधा पिपासावान् हूँ इत्यादि देहाध्यासके लिये निश्चय होता है। जो निश्चय अन्तर दृढ होता है सोई पुरुषका शरीर नाम स्वरूप होता है, अन्त भी वही रूप होता है। कदाचित् पूर्व संचित पुण्योंके वशसे

सद्गुरुके उपदेशके सकाशसे पुनः यह निश्चय होता है कि, यह अज्ञान तत्कार्य असत् जड़ दुःखरूप जो समष्टि व्यष्टि संघात रूप स्थूल सूक्ष्म कारण देह है सो देह रूप संघात अपने धर्मोंसहित मैं नहीं और यह मेरा नहीं। यह पंचभूत रूप है वा माया रूप है और इनका साक्षी घट द्रष्टाके समान सत् चित् आनंद रूप अवाङमनस गोचर आत्मा हूँ। यह पूर्वदेह रूप निश्चयको नाश करता ह, तिससे विलक्षण उत्तर कालमें आत्म रूप निश्चय शरीर उत्पन्न होता है। वही तिसकी गति होती है सो आत्म-निश्चय नृसिंह रूप बोधने जगत् सहित जीवत्व रूप हिरण्य कशिपुको मारा नाम मिथ्यात्व निश्चय वा अत्यन्त अभाव निश्चय किया। किंचित् काल पीछे नृसिंह रूप बोध आप भी शांत हो जावेगा जैसे अग्नि काष्ठादि तृणोंको जलाके आप ही शांत हो जाती है।

नरसिंहशब्दका अर्थ

तात्पर्य यह कि, नर नाम देह बुद्धि त्यागके, सिंह नाम आत्मानात्मा नाम विचारसे आत्म बुद्धि होनी यही नरसिंह शब्दका अर्थ है, इंद्रिय रूप देवता बोध रूप नृसिं-हकी स्तुति करते हैं। हे देवतात्मा ! तुझ चैतन्य सत् सुख साक्षीकी सत्ता स्फूर्ति करके ही, हम जड़ मन इंद्रि-यादि संघातकी चेष्टा होती है। हम वाङ्मनसगोचर दृश्यकी तुझ अवाङ्मनसगोचर द्रष्टासे सिद्धि होती है। हम असत् जड दुःख रूप भी तुझ सत् चित् आनंदसे ही सत् चित् सुख सरीखे हो रहे हैं इत्यादि। इससे हे नर बुद्धि रहित आत्म रूप सिंह बुद्धिमान् अधिकारी जानो ! तुम भी जीवत्व रूप हिरण्य कशिपुको मारके बुद्ध्यादि-कोंके साक्षी नरसिंह आत्माको अपना आप स्वरूप जानो। तिससे पृथक् सर्वको अनित्य जानो।

काम क्रोधादि

इतनेमें काम क्रोध लोभ मोह अंहकारादि मनुष्य मूर्त्ति धारकर तिस सभामें आये और कहने लगे-हे प्रजा ! हमारा सज्जन लोगोंकी ।

रीतिसे अनुष्ठान करता कदाचित् भी राजादि दण्डका अधिकारी नहीं देखनेमें आता, उलटा धर्मात्मा बाजता है। अधर्म रीतिसे हमारा अनुष्ठान करता ही राजादि दण्ड पाता देखा है अन्य नहीं। दृष्ट कल्पना के अनुसार ही अदृष्ट कल्पना को जाती है क्योंकि पक्षपातरहित न्यायकारी पुरुषोंको संकेत रूप कायदा जैसे इस भारत-वर्षमें है, तैसे ही अन्य देशोंमें भी है। तैसे ही उम्मेद है कि, परलोकमें भी होगा । जो अन्यथा है तो अन्यथा है न्याय नहीं। जो शास्त्रोंमें हमारा त्याग लिखा है तो दुःखदायक अधिक अंशका ही त्याग लिखा है सामा-न्यका नहीं। सामान्यसे हमारा त्याग हो ही नहीं सकता, क्योंकि ज्ञान इच्छा और यत्नपूर्वक ही सर्व जीवोंके प्रवृत्ति निवृत्तिरूप संघातका व्यवहार होता है । शरीर होते कामादि कैसे त्यागे जावेंगे ? शरीरके कारण होनेसे जो इससे अन्यथा मानोगे तो संसार खाता ही उठ जावेगा क्योंकि समूह अंतःकरणकी वृत्तियां रूप इच्छाका नाम काम है, तिन कामरूप इच्छाओंके मध्यमें स्त्रीके भोगनेकी इच्छाका नाम भी काम है, सो स्त्री संभोग काम गृहस्थ विमुख संन्यासीको नहीं चाहिये, गृहस्थीको तो मना नहीं अधर्मसे भोग मना है, जो धर्मसे स्त्रीसं-भोग मना हो तो आप लोगोंका दर्शन कहांसे होगा ? हां अधिक निज स्त्रीसे भोग करनेसे और तो कोई दोष है नहीं, परंतु शरीरके नाशकती, वीर्यक्षीण- संततिका संशय और शरीरमें रोग आदि परमदोष हैं इस वास्ते मर्यादासे अधिकका त्याग है ।

क्रोध

तैसे ही पूर्व तथा वर्तमानमें भी किसी हेतुसे वर शाप लोगों को लोग भी देते सुनते और देखते हैं। सो क्रोध मोह अर्थात् राग द्वेष विना हो सकता। यह कायदा ही है जो निज अनिष्ट संपादन करनेवालेपर द्वेषरूप क्रोध करना ही पड़ता है। कदाचित् सात्विकादि हेतुसे कोई पुरुष द्वेषरूप अनिष्ट करता पुरुषपर क्रोध नहीं भी करता परंतु हमेशाका नियम नहीं। यह अनुभव सिद्ध बात है।

मोह

तैसे ही मन वाणी शरीरसे वा धनादिसे सेवक पुरुषपर पूर्व तथा अब भी प्रसन्न होते सुनते देखते हैं, किसी रीतिके रागरूप मोह बिना दूसरे पर प्रसन्नता होती नहीं, यह भी अनुभव सिद्ध है।

लोभ

तैसे ही लोभ अनेक रीतिका है, किसी न किसी निज प्रयोजनरूप लोभके लिये ही पुरुषोंकी प्रवृत्ति निवृत्तिरूप अनेक रीतिके व्यवहारमें प्रवृत्ति होती है। प्रयोजन बिना मूढ पुरुष भी निजकार्यमें प्रवृत्त नहीं होता। ऐसा नहीं मानोगे तो संसार खाता ही उठ जावेगा इत्यादि।

अहंकार

तैसे ही अहंकार बिना शरीरकी रक्षा होती नहीं तथा खान पानादि व्यवहार भी सिद्ध होता नहीं, क्योंकि अहंपूर्वक ही त्वं आदि व्यवहार होते हैं और जब लग शरीर है तबलग अहं त्वं व्यवहार होता ही रहेगा अन्यथा नहीं होगा। यह बात सर्वको अनुभव सिद्ध है, ग्रंथविस्तार भयसे विशेष लिखा नहीं। "अति सर्वत्र वर्ज-येत्" इस न्यायसे मर्यादासे अधिक ही कामादिकोंका

त्याग है। इससे हे अधिकारी जनों! आप अपने वर्णाश्रमके अनुसार धर्मपूर्वक लक्षों तरहके विषय इंद्रिय सम्बन्धजन्य सुखदुःखका तथा काम क्रोधादिकोंका भोग भोगो नाम अनुभव करो, तुम किंचिन्मात्र भी दंडके अधिकारी (इस लोकमें तथा परलोकमें) नहीं होंगे। परंतु सज्जन पक्षपातरहित पुरुषोंके संकेत (धर्मरूप कायदे) को उल्लंघन करोगे तो इसी लोकमें पकड़े जाओगे। आगे जो इच्छा हो सो करो।

वैरागादि दैवी गुण

इतनेमें वैरागादि दैवी गुण मनुष्य आकृति धारकर आये और कहने लगे—हे गुरु शास्त्रमें श्रद्धावान् संतो! वैरागादि गुण भी शरीररक्षापूर्वक ही धारण करना चाहिये क्योंकि शरीरकी आरामदारीसे ही सर्व धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारों पदार्थ सिद्ध होते हैं अन्यथा नहीं। अति सर्वत्र वर्जयेत्' देखो अति यज्ञ दानादि शुभ कर्म करनेसे बलि पातालको और युधिष्ठिर वनवासको गये हैं इससे अति कोई बातकी भी करनी नहीं। जिन जिन कामोंसे पापरूप दुःख भविष्यत् वा वर्तमान कालमें होवे तिन तिन कामोंका ही त्याग करना रूप वैराग्य चाहिये, क्योंकि सत्त्वगुणके कार्य चित्तकी एकाग्रतापूर्वक जो जो मनवाणी शरीरसे लौकिक सुख वा पारलौकिक सुखवास्ते शुभ कार्य करोगे तो अत्यन्त वह कार्य फलवान् होवेगा। सो चित्तकी एकाग्रता सत्त्वगुणके अधीन है क्योंकि एकाग्रता सत्त्वगुणका कार्य है, शास्त्री वा अशास्त्री साधनोंसे अत्यन्त पीडित शरीरमें विशेष सत्त्वगुण होता नहीं, तमगुण वा तमगुणोंके कार्य क्रोध आलस्य अहंकारादि ही होते हैं क्योंकि यह मनका स्वभाव है, जो जो वस्तु मनके (इंद्रिय) द्वारा

वा अंतर ही सम्मुख होवे तिसके आकार ही मन हो जाता है। सो दुःखपीडित कालमें दुःख ही सम्मुख है सुख नहीं इससे तिस कालमें दुःखाकार ही मन होवेगा सुखाकार नहीं। इसी कारण अत्यन्त शरीर पीडनपूर्वक वैरागादि तपस्या करनी नहीं चाहिये। यह नहीं कि, हम अत्यन्त पीडित होकर हरिको याद करेंगे तब ही हरि अंगीकार करेगा, जो हम सुखपूर्वक हरिको याद करेंगे तो ईश्वर अंगीकार नहीं करेगा, यह ज्ञान नेत्रहीन मूर्खोंकी दृष्टि है किंतु सच्चे दिलसे ईश्वर प्रेम चाहता है, शरीरका पीडन अपीडन नहीं चाहता।

धर्माधर्म (श्रेष्ठ अश्रेष्ठ, नीच ऊंच कुलीन अकुलीन, भले बुरेका विचार)

इतनेही में, दैव आसुरी गुणरूपी शुभाशुभ कर्मोंके पुत्र धर्माधर्म मनुष्य रूप धारके इसलिये आये और बोले।

अपना सदाचरण ही कल्याणका कारण

हे धार्मिक सज्जन पुरुषो! हम दोनोंका किसीसे भी पक्षपात नहीं शुभाशुभ कर्मोंसे हमारी उत्पत्ति है। इसलिये कोई हिंदू वा मुसलमान व कोई अन्य जाति, सत्संभाषणादि शुभकर्म अथवा असत् संभाषणादि अशुभ कर्म करेंगे तो तत् तत् जन्म हम धर्माधर्म कर्मकर्ताको पक्षपात रहित न्यायपूर्वक सुख दुःखका अनुभवरूप फल भुक्तावेंगे इसमें किसी हिंदू मुसलमानका पक्षपात न होगा।

उत्तमता मध्यमता धन और कुल आदि कर्मके अधीन

तुम लोग प्रत्यक्ष देखो! झूँठा लुच्चा पुरुष बड़ा कुलवान् तथा धनवान् भी हैं तो भी सर्व जगहमें तिरस्कार ही पाता है और जो सच्चा ईमानदार गरीब किसी जातिका भी क्यों न हो परन्तु वह पुरुष सर्व स्थानमें सत्कार ही पाता है अन्य नहीं। चोरी किसी जाति

पंथका करेगा पकडा जावेगा और रीत्यनुसार तिसको सजा मिलेगी अन्यथा सजा नहीं होगी । जो जाति और भेष प्रयुक्त शुभाशुभ कर्मोंका सुख दुःखरूप फल होता तो उत्तमता मध्यमता जातिके अधीन होती है सो ऐसा देखनेमें नहीं आता । इससे उत्तमता मध्यमता कर्मके अधीन है ।

नीचकथन

देखो हजारों देशोंकी बोलियोंमें आप अपने शास्त्रके संस्कारोंके अनुसार ईश्वरका भजन तथा ईश्वर निमित्त भूखे प्यासे दुःखी जीवोंको सर्व मनुष्य अन्न जलादि अर्पण करते हैं सो सर्वका भजन तथा दान ईश्वर अंगीकार करता है । यह नहीं कि एकका लेता है एकका नहीं । जो विषमदर्शी है सो हमारा भाई बन्धु जीव है ईश्वर नहीं । क्योंकि सर्व सृष्टि ईश्वररूपी पिताके बाल बच्चे हैं तथा ईश्वर सर्वज्ञ हैं ! इससे जिस जिस समाज और जातिके पुरुषोंका भजन दानादि किया हुआ ईश्वर अंगीकार नहीं करे तिसको नीच जानना चाहिये । तथा राजा अपराध बिना जिसको दण्ड देवे अर्थात् उत्तम जाति संज्ञक जुलमीको त्यागके तिसके बदले अन्यको दण्ड दे तो उसको नीच जानना चाहिये सो ऐसे देखनेमें आता नहीं । आप अपने समाज शास्त्रके संकेतसे सर्व संमत सत्संभाषणादि रूप धर्म पूर्वक मन वाणी शरीरसे लौकिक वा पारलौकिक कर्म करनेसे सर्वके अंतःकरणकी शुद्धि होती है । "स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः" इससे मन शुद्धि पूर्वक ही सगुण वा निर्गुण ईश्वरकी उपासना होती है । निश्चल मनमें ही ज्ञान होता है । ज्ञानसे ही मोक्ष होता है । इससे सर्व जीव सम ही हैं व्यवहार भिन्न भिन्न हैं । सो व्यवहार एक शरीरमें भी

इंद्रिय भेदसे भिन्न भिन्न हैं तो भिन्न भिन्न शरीरोंमें भिन्न भिन्न व्यवहार हैं इसमें कहना ही क्या है ? परन्तु गुण दोष प्रयुक्त उत्तमता और नीचता श्रेष्ठ अश्रेष्ठ कर्तव्यके अधीन है, शरीर जाति समाजके अधीन नहीं ।

उत्तमता सम्पादन करनेवालेका कर्त्तव्य

इससे जिसको उत्तमा संपादन करनेकी अभिलाषा हो सो सत्संभाषणादि शुद्ध धर्मसे निरंतर प्रीति करे और असत्संभाषणादि अधर्मसे अरति करे ।

प्रयागादितीर्थ

इतनेमें प्रयागादि तीर्थ आये । प्रयागने कहा—हे महाशयो ! तीर्थ नाम पवित्रताका है सो पवित्रता मनको सत्संभाषणादि पवित्र तीर्थोंमें स्नान अर्थात् उनको धारण करनेसे होती है; अन्यथा नहीं । जो पुरुष जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति; वा प्रिय मोद प्रमोद सुषुप्ति आरंभमें वृत्ति; वा भूत भविष्य वर्तमान काल; वा इन जाग्रतादिकोंमें होनेवाले स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर वा सत्व रज तम; वा द्रष्टा, दर्शन दृश्य; वा ध्याता ध्यान ध्येय; प्रमाता प्रमाण प्रमेय ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयादि त्रिपुटीरूप त्रिवेणीमें स्नान करता है अर्थात् "मैं सच्चिदानन्द इन जाग्रतादि त्रिपुटीरूप त्रिवेणी दृश्यका साक्षी आत्मा हूँ" ऐसे दृढ निश्चयरूप जलमें जो स्नान करता है सो पवित्रात्मा जीवन्मुक्त हम लोगोंको भी अपनी चरणधूरि कर पवित्र करता है ।

एकादशी आदि व्रत—(व्रत और महाव्रत)

इतनेमें मनुष्यमूर्ति धारकर एकादशी आदि व्रत आकर बोले—हे सर्व जगत्के मित्रो ! एक केवल व्रत है और एक महाव्रत है । महाव्रतोंके अंतर्भूत ही सर्व व्रत आजाते हैं, जैसे—नव गिनतीके भीतर ही सर्व गिनती आजाती हैं ।

पञ्च महाव्रत–१ सत्य, २ अस्तेय, ३ अहिंसा, ४ ब्रह्मचर्य, ५ शास्त्र आज्ञा पालन

सो देशकाल वस्तु भेदरहित सत्य बोलना १, चोरी (मन, वाणी, शरीरसे) न करना २ वाणी शरीरसे पर प्राणीको पीडित न करना ३, निज पाखानेमें पेशाब करना नाम ब्रह्मचर्यसे रहना ४, मन वाणी शरीरसे सत्य शास्त्रके विरुद्ध कामोंको न करना ५। यह पञ्च महाव्रत हैं। तात्पर्य यह कि, तीर्थ स्थानमें झूँठ नहीं बोलना, अन्यत्र बोलना, एकादशीके दिन सत्य बोलना अन्यत्र नहीं, साधु महात्माके सम्मुख झूठ नहीं बोलना अन्यत्र बोलना (ऐसे ही हिंसा आदिकोंमें भी जान लेना) ऐसा नहीं किन्तु सर्व कालमें सर्व देशमें सर्व वस्तुमें सत् संभाषणादि महाव्रत करना चाहिये।

चार महाव्रत–चार मानसी पाप–१ अमित्रता, २ अमुदिता, ३ करुणा, ४ कुसंगति। और जिनके निवृत्तिकी औषधी ४ महाव्रत। १ मैत्री, २ मुदिता, ३ करुणा, ४ उपेक्षा

वा यह महाव्रत करना, चाहिये चार ही प्रकारके मानसी ताप हैं चार ही तिन तापोंके दूर करनेकी मैत्र्यादि औषधी हैं। सारांश यह कि, सर्व धनादि सामग्रीसे अपने तुल्य जीवोंमें मित्रता करनी, इससे अमित्रताजन्य तापकी निवृत्ति होगी। तैसे ही अपनेसे अधिक सामग्रीवाले मनुष्योंमें मुदिता करनी, अमुदिताजन्य तापकी हानि होगी। तैसे दुःखी जीवोंमें करुणा करनी, अकरुणाजन्य तापकी हानि होगी। तैसे ही कुसंगति जीवोंमें उपेक्षा करनी अर्थात् अनिन्दापूर्वक तिनका त्याग करना जिससे कुसंगतिजन्य दुःख न होवे।

नव महाव्रतोंका फल

हे अधिकारी जनो ! पूर्वोक्त नवे[1] महाव्रतोंके अनुष्ठानवाले मनुष्यमात्रको इसी लोकमें मानसी तापोंकी हानि तथा अभय और सर्वमें सत्कारादि प्रत्यक्ष फल सर्व विद्वानोंको अनुभव है । अंतःकरणकी शुद्धि भी इन ही व्रतोंसे होती है, परम धर्म भी यही है, महाकर्म भी यही है और यही परम मोक्षके साधन हैं । इनहींके अंतर्भूत सर्व पूज्य माननीय कर्म धर्म आचार हैं । इनहींके पालनसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्षका अधिकारी होता है । यही सर्व संमत सिद्धांत है ।

अन्य पञ्च महाव्रत

दृष्ट कल्पनाके अनुकूल ही अदृष्ट कल्पना होती है । इससे परलोकमें भी इनहीका महत्त्व होगा । वा यह पंच महाव्रत जानना । पञ्च अन्नमयादि कोशोंका तथा पंच पृथिवी आदि स्थूल सूक्ष्म भूतोंका तथा पंचज्ञानेन्द्रिय तथा पंच कर्मेंद्रिय तथा चतुष्टयरूप मन बुद्धि चित अहंकार और इन सर्वके कारण माया तथा पंच प्राण तथा पंच शब्दादिक विषयादि ये सब पंचक मुझ सच्चिदानंद आत्माके नहीं और मैं इनका नहीं किन्तु यह माया तत्कार्य भ्रमरूप हैं मैं इनके न्यूनाधिक भावाभावका द्रष्टा हूँ (घट द्रष्टाके समान) इस दृढ निश्चयका नाम पंच महाव्रत है । इनका अनुष्ठान करनेवाला जीवता ही मुक्त होता है ।

सप्त समुद्र

इतनेमें मनुष्यमूर्ति धारके सप्त समुद्र आकर बोले–हे साधो ! इस शरीर संघातरूप पृथिवीमें रस, रुधिर, मेद,

---

१ उपरोक्त १ सत्य, २ अस्तेय, ३ अहिंसा, ४ ब्रह्मचर्य, धर्म परायणता, ६ मैत्री, ७ मुदिता, ८ करुणा, ९ उपेक्षा यही नव व्रत हैं ।

मांस, अस्थि मज्जा वीर्यरूप धातु सप्त समुद्र हैं । वा जीवरूप पृथ्वीमें आवरण विक्षेप ज्ञान अज्ञान गमनागमन निरंकुशता सप्त अवस्थारूप सप्त समुद्र हैं । वा सर्व नामरूप प्रपंचरूप सप्त पदार्थरूप सप्त समुद्र हैं वा भूरादि सप्त व्याहृतियां सप्त समुद्र हैं वा सप्त स्वरूप सप्त समुद्र हैं । जैसे-आकाश सप्त समुद्रोंमें व्यापक भी असंग है । तैसे आत्मा सप्त व्याहृति आदि सप्त समुद्रोंमें व्यापक भी असंग है । सो पूर्वोक्त समुद्र मुझ सच्चिदानंद आत्माके नहीं और मैं आत्मा इनका नहीं; मैं इनके सर्व न्यूनाधिक भावाभावका द्रष्टा हूँ (घटद्रष्टाके समान) वा मुझ अस्ति भाति प्रिय आत्माके पूर्वोक्त समुद्र हैं मैं इनका हूँ, जैसे-स्वप्नसृष्टि स्वप्नद्रष्टामें कल्पित होनेसे स्वप्नद्रष्टाकी है । स्वप्नद्रष्टा स्वप्नप्रपंचका स्वरूप होनेसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्नसृष्टिका है । यह विचारपूर्वक जो दृढ निश्चयरूप जहाज पर बैठे तो ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मश्रोत्री गुरुनानकसे पूर्वोक्त समुद्रोंसे पार नाम बंधमोक्षकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते निष्कर्तव्यता बुद्धि प्राप्त होगी ।

वीरभद्र-(दक्षप्रजापति और यज्ञध्वंश)

इतनेमें वीरभद्र आकर कहने लगे-हे सदसद्विवेचनीय सभा ! प्रपंच कारण कार्य शरीररूप संघात यज्ञशाला है, जीव दक्षप्रजापति है, चक्षु आदि इंद्रिय ऋत्विज हैं; शब्दादिकविषय कुंड है चक्षु आदि इंद्रियों की दर्शनादि वृत्तियाँ शाकल्य आहुतीकी सामग्री है, विषय इंद्रियसंबंधजन्य सुखदुःखका अनुभवी जीवरूप अन्तःकरण ब्रह्मा है, विवेक और ब्रह्मविद्या महादेव पार्वती हैं । तिनोंसे वीर नाम अज्ञान तत्कार्य निजशत्रुको मिथ्यात्व निश्चय वा अत्यंताभाव निश्चयरूप हनन करनेवाला और दुःखरहित कल्याण

स्वरूप वीर भद्ररूप सम्यक् ब्रह्मात्मबोध उत्पन्न होता है। सो पूर्वोक्त कारण कार्य संघातरूप यज्ञशाला सामग्री सहितको ध्वंस करता है अर्थात् मिथ्यात्व वा अत्यंताभाव निश्चय करता है, यही दक्षप्रजापतिके यज्ञध्वंसका आशय है।

सहस्रबाहु

हजारों युद्धादि विद्यारूप भुजा संयुक्त होनेसे सहस्र-बाहु कहते हैं वा हजारों बंधु रूप भुजा होनेसे सहस्रबाहु है। सो सहस्रबाहु है। सो सहस्रबाहु आकर कहने लगा, हे सन्त मंडली! हजारों ही हैं वासनावाञ्छारूप भुजा जिसकी ऐसा मनरूप अहंकार सहस्रबाहु है। तिसको परनाम परमात्मा तत्पद्का लक्ष्यार्थ, स (शु) नाम सोई मेरा त्वंपद्का लक्ष्यार्थ प्रत्यक् आत्मा स्वरूप राम है। इस ब्रह्मात्मा एकत्व ज्ञानीरूप निश्चय परशुरामने ही पूर्वोक्त सहस्रबाहुरूपदेह अभिमानको और आसुरी संपदा निज परिवारसहित मारा है नाम जगत्को मिथ्यात्व निश्चय किया है सोई सहस्रबाहु है। कोई मनुष्य सहस्र-बाहु नहीं हो सकता।

वाराह भगवान्

वाराह संज्ञावाले भगवान्का विष्णु अवतार हुआ है, इस वास्ते विष्णु अवतारको वाराह बोलते हैं। सो वाराह भगवान् आये और कहने लगे-हे यथार्थवक्ताओ! धर्म, अर्थ, काम, मोक्षका जाग्रत् (विद ज्ञाने) जो वेदरूप चार ज्ञान हैं वा अंडज, जरायुज, स्वेदज, उद्भिज्ज चार खानिका जो जाग्रत स्वप्नमें चार वेदरूप चार ज्ञान हैं वा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तुरीयाका जाग्रत् स्वप्नमें जो चार वेदरूप चार ज्ञान हैं वा समष्टि व्यष्टि स्थूल सूक्ष्म कारण महाकारणके जाग्रत् स्वप्नमें जो चार वेदरूप चारों ज्ञान

हैं वा प्रमाता चेतन, प्रमाण चेतन, प्रमेय चेतन, फल चेतन यह एक ही चेतनकी उपाधि भेदसे जाग्रत् स्वप्नमें चार वेदरूप चार ज्ञानरूप परमान हैं, इत्यादि सभास अंतःकरण जीवरूप हिरण्याक्ष वा शबल ब्रह्मरूप हिरण्याक्ष सुषुप्तिरूप समुद्रमें वा अविद्यारूप समुद्रमें व्यष्टि अहंकार-रूप वा समष्टि अहंकाररूप पृथिवीको महाप्रलय रूप (मायारूप) समुद्रमें वा तुलाविद्यारूप पृथिवीको अज्ञान-रूप समुद्रमें सुख दुःखरूप भोग देनेवाले कर्म जाग्रत् स्वप्नमें उपराम निमित्तसे पूर्वोक्त चार ज्ञानरूप चार वेदसहित व्यष्टि अहंकाररूप पृथिवीको पूर्वोक्त सभास अंतःकरण जीवरूप हिरण्याक्ष लेके प्रवेश कर जाता है। पुनः जाग्रत् स्वप्नमें सुख दुःखके अनुभवरूप भोगनेवाले अदृष्टरूप वाराह पूर्वोक्त समुद्रोंसे वेदरूप ज्ञानोंका तथा पूर्वोक्त पृथिवीका, जाग्रत् स्वप्नमें प्रादुर्भाव नित्यनित्य करता है। वा अविवेक रूप हिरण्याक्ष पूर्वोक्त वेदरूप सम्यक् ज्ञानोंको लेके अविद्यारूप समुद्रमें प्रवेश करता है। पुनः जीवके पुण्योंके वशसे विवेकरूप वाराह अविवेकरूप हिरण्याक्षको मारके अविद्यारूप समुद्रसे उद्धार नाम विचा-रकर सम्यक् वेदरूप ज्ञानोंको प्रवृत्त करता है यही वाराह अवतारका यथार्थ आशय है।

शेषनाग

इतनेमें शेषनाग आकर कहने लगे-हे साधो ! नाग नाम समष्टि व्यष्टि माया तत्कार्यका है। तिसका " नेति नेति " इस श्रुतिके वाङ्मनसगोचर माया तत्कार्यको निषेध करनेसे जो अबाधभूत अवाङ्मनसगोचर सच्चिदा-नंद शेष रहता है सो तिसका नाम शेषनाग है। सो पूर्वोक्त शेषनाग तुम्हारा हमारा तथा ब्रह्मासे लेकर चींटीतक सब जीवोंका निजात्मा स्वरूप है। वही इस

माया तत्कार्य जगत् रूप नागका आधार है। कोई अस्मदादि मूर्तिमान् इसका आधार नहीं क्योंकि जो जिसका स्वरूप होता है सोई तिसका आधार होता है। जैसे- स्वप्न सृष्टिका स्वरूप स्वप्न द्रष्टा है सोई तिसका आधार है; कोई भी स्वप्न पदार्थ आपसमें आधार आधेयभाव नहीं। जैसे-भूषण तरंग सर्प दंडादिकोंका स्वरूप सुवर्ण-जल, रज्जु आदि स्वरूप हैं, सोई तिनका आधार है, भूषण तरंग सर्पादि आपसमें आधार आधेयभाव नहीं। तैसे ही नाम रूप मुझ मूर्तिसहित जगत्का अस्ति भाति प्रियरूप ब्रह्मात्मा ही स्वरूप है, सोई इसका आधार है नाम रूप पदार्थ आपसमें आधार आधेय भाव नहीं।

रावण

पुनः रावण आकर बोला-हे विचारशील सभा! यह शरीररूप लंका देश है, रजोगुण अविवेकरूप रावण है। कायदे बाहर सुख दुःखके अनुभवरूप भोग विलासोंमें अनुराग तिसका राज्य है। श्रोत्रज ज्ञान, त्वचा ज्ञान, चाक्षुष ज्ञान, रसना ज्ञान, घ्राणज ज्ञान, अनुमिति ज्ञान, शाब्दी ज्ञान, उपमिति ज्ञान, अर्थापत्तिज्ञान तथा अभाव ज्ञान १० यही उपाधि भेदसे, असम्यक् वृत्तिरूप ज्ञान रजोगुण अविवेकरूप रावणके दश १० शिर हैं। नहीं तो अस्मदादियोंके समान मनुष्योंके सम्यक् ज्ञानरूप एक ही शीश है। पांच ज्ञानेंद्रिय ५, पांच कर्मेंद्रिय ५, पांच प्राण ५, चतुष्टय अंतःकरण ४ और एक प्रवृत्ति निवृत्ति रूप क्रिया १ यही बीश २० भुजा हैं, मान दंभादि तथा अति कठोरतादि आसुरी गुणरूप राक्षस तिसकी सेना है। तमोगुणरूप कुंभकर्ण और सत्त्वगुणरूप विभीषण तिसका भाई है, सो रजोगुण अविवेकरूप रावण विवेकरूप रामकी ब्रह्मविद्यारूप सीता हरण करता है। सो विवेकरूप राम

अमानित्वादि तथा अति कृपालुतादि दैवी गुणरूप बांदरोंकी सेनासहित तथा तत् त्वं पदका जो लक्ष्यार्थ ब्रह्मात्म एकत्व स्वरूप है तिसीमें है मनकी वृत्ति जिसकी तिस लक्ष्मण सहित, नाम नवीन अपरोक्ष ज्ञानसंयुक्त संसाररूप समुद्रमें विचार रूप सेतु बांधके अविवेक रूप रावणकी राजधानी अंतःकरण रूपी लंकामें प्राप्त होकर सत्त्वगुण रूप विभीषणकी सहायतासे तमगुणरूप कुंभकर्ण सहित तथा दंभादि आसुरी सेना सहित रजोगुण अविवेकरूप रावणको विवेक रूप राम हनन करता है। पुनः वाङ्मन सहित नाम रूप वाङ्मनसगोचरका सच्चिदानंद अवाङ्मनसगोचर मैं द्रष्टा आत्मा हूँ; अपने सहित सर्व वासुदेव है वा अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे भिन्न सर्व नाम रूपमें मिथ्यात्वनिश्चय वा अत्यंताभाव निश्चयरूप बुद्धि अर्थात् ब्रह्मविद्यारूप सीताके सहित प्रारब्ध क्षयतक शरीररूपी अयोध्यामें जीवन्मुक्तरूपी तत्त्पर योगी ब्रह्मवित् विराजमान होता है, परन्तु हे प्रियदर्शन ! पूर्वोक्त राम रावण सेनासहित इनकी न्यूनाधिक भावाभाव जिस साक्षी चैतन्यसत् सुख रूप आत्मासे सिद्ध होते हैं सोई वस्तु राम तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत् का स्वरूप हैं।

सप्तव्याहृति

भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम्। तात्पर्य यह कि, ब्रह्मलोकादि सप्तव्याहृतियां मनुष्य आकृति धारकर तिस सभामें आयकर कहने लगीं–हे समदर्शियो ! जैसे–भूव्याहृति अर्थात् इस पृथिवी लोकमें, जो जो व्यवहार हैं, सोई २ सर्व ब्रह्म लोकादि व्याहृतियोंमें व्यवहार हैं विलक्षण नहीं, क्योंकि सबकी भूत भौतिक सामग्री तुल्य ही है। जैसे–षट् प्रकारका रस तथा षट् प्रकारका कृष्णादि रूप यहां है तैसे ब्रह्म लोकादिकोंमें भी है। जैसे–यहां

शब्दादि विषय और श्रोत्रादि इंद्रिय संबंधजन्य सुख दुःखका अनुभव, राग द्वेष ईर्षा निन्दादि, खान पानादि षट् भाव विकार, षट् ऊर्मि संयुक्त शरीर है तथा अपने अनुकूलमें रागपूर्वक प्रवृत्ति, प्रतिकूलमें द्वेष पूर्वक निवृत्ति है; तैसे ही वहां है। जैसे--यहां दैवी गुणोंकी स्तुति है, आसुरी गुणोंकी निंदा है तथा तिन गुणोंका न्यूनाधिक भाव शरीरोंमें है, तैसे ब्रह्म लोकादिकोंमें जैसे--यहां नदियां, समुद्र, तालाव, पर्वत, वनस्पति हैं, तथा गौ बैल जमीन फल है तैसे वहाँ है। जैसे--यहां स्त्री पुरुषका व्यवहार होता है तथा नाक कानादि अवयव स्त्री पुरुषोंके जिन जिन स्थानोंमें यहां शोभा देते हैं अन्यथा अशोभा है, तैसे ही ब्रह्म लोकादिकोंमें हैं। जैसे--यहां सुख दुःखके जो जो साधन हैं, तसे वहां हैं जैसे यहां पंचभूत पृथिवी आदि हैं, तैसे वहां हैं। जैसे यहां १७ तत्त्वका सूक्ष्म शरीर है और स्थूल शरीर अन्नमयादि कोशरूप है कारण शरीर है, रज तम सत्त्वगुण हैं तथा भूल अभूल हर्ष शोकादि हैं तैसे वहां हैं। जैसे--यहां राजाकी अधीनता तथा कायदा धर्माधर्मका है तैसे वहां है। जैसे--यहां मनादिकोंका साक्षी अन्तर्यामी सर्व देहोंमें देही एक आत्मा है तैसे ब्रह्म लोकादि व्याहृतियोंमें है। जैसे-- यहां शास्त्रमें कर्मकांड, उपासनाकांड, ज्ञानकांड हैं, तैसे वहां हैं। जैसे--यहां ज्ञान अज्ञान है जल पाषाणादिकोंका तीर्थोंमें दर्शन है तैसे ही वहां भी है। ईश्वर कहीं इस सृष्टिसे पृथक् देखनेमें आता नहीं, हृदयदेशमें मन आदियोंके साक्षी विना तैसे ब्रह्म लोकादि व्याहृतियोंमें हैं। जैसे-यहां मनुष्योंके हस्त आदि अवयव हैं तैसे ब्रह्म लोकादिकोंमें हैं। तात्पर्य यह कि, सर्व प्रकारसे सर्व ब्रह्मादि लोकोंमें सर्व व्यवहार इस लोकके सम हैं। जसे धर्म

अर्थ काम मोक्ष और तिनके साधन यहाँ हैं तैसे वहां है। इससे यहां ही ज्ञान संपादन करना, ब्रह्मलोकादि लोकोंके जानेकी इच्छा नहीं करना। क्योंकि, अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिवास्ते इच्छा होती है सो पूर्वोक्त प्रकारसे यहां वहां भेद नहीं। जो यह मिथ्या है तो वह भी मिथ्या है। यह सत् है तो वह भी सत् है। इससे मनादिकोंके साक्षी सम ब्रह्मात्माको अपना आप जानो जो शांति होवे अन्यथा नहीं होगी। मूल ग्रहणसे शाखाका ग्रहण आपसे ही हो जाता है।

राजा जनक

पुनः राजा जनक आये और कहा--हे श्रेष्ठ पुरुषो! जैसा जिस वस्तुका स्वभाव है सो कोटि उपाय करनेसे भी दूर नहीं होता। जैसे--अग्निका स्वभाव शीतल नहीं होता तैसे बुद्धि आदिकोंका सच्चिदानंद द्रष्टा आत्मा स्वभावसे ही माया तत्कार्यमें होनेवाले बंध मोक्षकल्पनासे रहित है और दृश्य बंध मोक्षकी कल्पनासे कदाचित् भी रहित नहीं हो सकता। इससे दोनों वस्तुका सम्यक् जानना ही कर्तव्य है, करना कुछ नहीं। हे साधो! विषय इंद्रिय संबंध जन्य सुख दुःखका अनुभव जैसे अज्ञानकालमें होता है; तैसे ज्ञानकालमें भी होता है; संघातका व्यवहार कुछ अदल बदल नहीं होता, केवल मनका संकल्प पूर्वसे विलक्षण हो जाता है। पहले मैं अज्ञानी हूँ पीछे सत्संगसे मैं ज्ञानी हूँ इतना संकल्प मात्र ही बंधमोक्ष हुआ और कुछ अन्य नहीं हुआ। परन्तु ज्ञान अज्ञानादि सभास अंतःकरणकी अवस्था है, तिन दोनों अवस्थाके अनुभव करनेवालेको निजस्वरूप सम्यक् जानना चाहिये।

विश्वामित्र

पुनः विश्वामित्र आकर बोले--हे तपस्वियो ! इस मनादिकोंका साक्षी चैतन्यका ही नाम विश्वामित्र है, क्योंकि इस नामरूप असत् जड दुःखरूप विश्वको अपनी सत्ता स्फूर्त्तिसे सत् चित् आनंद सरीखे कर देता है इससे यह आत्मा सर्व विश्वका मित्र है और असंग होनेसे सर्व विश्वका अमित्र भी है; जैसे आकाश सर्वको अवकाश देता भी सर्व सृष्टिके व्यहारोंके गुण दोषसे असंग है। जैसे--स्वप्नद्रष्टा स्वप्नसृष्टिके सत्ता स्फूर्ति देनेसे विश्वका मित्र और स्वप्नसृष्टिके गुण दोषके न भागी होनेसे असंग है, इससे स्वप्न विश्वका अमित्र भी है। बुद्धि आदिकोंका साक्षी आत्मा विश्वके मित्र अमित्रभावसे रहित भी है अवाङ्मनसगोचर होनेसे और मन वाणीसहित अवाङ्मनसगोचर भी आपही होनेसे सर्व विश्वका मित्र अमित्र भी आप ही है।

आत्मज्ञानसे साधनरूप तपस्या-(सात्त्विकी तपस्या)

हे साधो ! इस समझके समझानेवास्ते अनेक प्रकारकी सत् संभाषणादि परम तपस्या है तथा मैत्रता, करुणा, मुदिता, उपेक्षा सम्यक् धारण करना भी परम तपस्या है तथा अमानित्वादि अति कृपालु आदि भी परम तप तथा सज्जन लोगोंके कायदे अनुसार चलना भी परम तपस्या है तथा यथालाभ सदा सुखी रहना, राग द्वेष न करना, राजयोग भजन करनादि पूर्वोक्त सर्व सात्विकी तपस्यादि है।

तामसी राजसी तपस्या

निज शरीरको पीडित कर तथा अन्यको किसी प्रकार दुःखी कर जो तपस्या होती है सो राजसी तपस्या है।

सर्वोत्कृष्ट तप

परंतु ब्रह्मनिष्ठ महात्माका सम्यक् सत्संग सात्विक सर्वसे अधिक तप है।

तपस्याका फल

सर्व तपस्याका फल चित्तकी एकाग्रता है, चित्तकी एकाग्रतासे सर्व चित्तादिकोंमें अनुगत सच्चिदानंद मनादिकोंके साक्षी निजात्मस्वरूपका स्वयंप्रकाशरूपता करके अनुभव होता है, जैसे-किसी भी साधनसे वायुस्थित होनेसे जलगत सूर्य भी स्पष्ट भान होता है। इससे जिस किसी साधनसे चित्तकी एकाग्रताद्वारा जिस किसी अधिकारीको निजात्मस्वरूपका सम्यक् बोध होवे सोई साधन श्रेष्ठ है। जैसे-आंब खानेसे मतलब है चाहे किसी वृक्षसे मिले। यह लोक प्रथाका दृष्टांत।

शास्त्रोंकी व्यवस्था

हे संतो! बन्ध मोक्ष तो शास्त्रोंमें किंचित् किंचित् कामोंमें मनराखी है। ठाकुरके चरणामृतसे, परिक्रमासे, तुलसी रुद्राक्ष धारणसे, तप्तमुद्रा शरीरमें लगानेसे, काष्ठका दंड धारनेसे मोक्ष लिखा है। गंगाके एक बूँदके पान करनेसे, गंगा यमुनादि तीर्थोंके स्नान तथा दर्शनसे बेल भक्षण करनेसे काशी मथुरादि पुरियोंमें तीन दिन वा एक दिन भी निवास करनेसे तथा एकबार भी भूलसे वा विलापादि करते हुए राम हरि महादेवादि ईश्वरके नाम उच्चारणमात्रसे ही मोक्ष लिखा है। नेति धोति आदि क्रिया करनेसे मोक्षादि फल लिखा है। श्राद्धोंके करनेका फल भी मोक्ष ही लिखा है। सूर्यादिके दर्शनसे, एकादशी आदि व्रतोंसे, सूर्यादिकोंके स्तोत्र पढनेसे मोक्ष लिखा है। गोदर्शन, पंचगव्य ग्रहणके बडा पुण्य लिखा है। गोदान तो मोक्षका कारण ही है। कहांतक लिखे हजारों कामोंमें " पुनर्जन्म

न विद्यते " ऐसा फल लिखा है परन्तु सो सर्व मरे पीछे होगा प्रत्यक्ष नहीं ।

ऐसे ही मरे पीछे दुःखरूप बन्धके कारण भी अनेक लिखे हैं। पेशाब करनेके विधि जो लिखी है सो अत्यंत कठिन है; तिससे अन्यथा करनेसे बन्धरूप नरक लिखा है सो गृहस्थ विमुख सज्जन साधुओंसे भी पेशाब विधि कदाचित् भी पालन नहीं होता तो व्यवहारियोंसे कहां होगा, इत्यादि और भी जान लेना । इससे यह मालूम होता है निर्यत्न ही सर्व स्त्री पुरुष मनुष्य योनि बन्ध होवेंगे, छूटनेका कोई उपाय नहीं और मोक्ष कथनवाले शास्त्रको देखें तो अनायास सर्व मोक्ष होने चाहिये क्योंकि, ऐसा स्त्री पुरुष कोई नहीं जो मोक्षके कारण एक वार भी हरिका नाम उच्चारणादि मोक्षदायक कर्म न करे तथा बन्धके कारण मलत्यागादि विधिको उल्लंघन न करे ।

सर्व बातें शास्त्रकी हैं, किसको सत् कहैं किसको असत् कहैं ? कुछ अकल काम नहीं करती । सत् है तो सर्व सत् हैं, असत् हैं तो सर्व असत् हैं । इससे न बन्ध सिद्ध होता है न मोक्ष सिद्ध होता है । इससे यह सिद्ध हुआ कि, मोक्ष शास्त्र तो शुभ कामोंमें प्रवृत्ति बोधक है और बन्ध बोधक शास्त्र अशुभ पाप कामोंसे निवृत्ति बोधक है । क्योंकि भय लोभ बिना शुभ अशुभ कामोंमें प्रवृत्ति निवृत्ति होती नहीं । इसी बातमें बन्ध मोक्ष कथन-वाले शास्त्रोंकी चरितार्थता है अन्यथा मानेंगे तो सर्व प्रकारसे जगदंध प्रसंग आजावेगा । इससे क्या हुआ कि, अशुभ कामोंके निवृत्तिसे और शुभ कामोंमें प्रवृत्तिसे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है । शुद्ध अन्तःकरणमें ही यथार्थ सर्व संमत सिद्धांत शास्त्रका पक्षपातरहित यथार्थ वक्ताके सत्संगसे यथार्थ अर्थ जाना जाता है, अन्यमें

नहीं तिससे भ्रम निवृत्तिद्वारा यथार्थ अर्थ ग्रहणसे मोक्षरूप सुख शांति प्राप्त होती है ।

सुखशांतिका साधन

मोक्षरूप सुख शांतिका साधन सर्व शास्त्रसंमत सिद्धांत पूर्वोक्त सत्संगसहित सत्संभाषणादि नव व्रतादि हैं और देश काल वस्तु भेदादि दोष रहित पूर्ण वस्तु सम ब्रह्मात्म निजस्वरूप मनादियोंका द्रष्टा ही मोक्ष सुख शांतिरूप है । तिस कारणसे बुद्धि आदियोंके न्यूनाधिक भावाभावके साक्षी ब्रह्मात्मामें ही स्थित होना चाहिये । "मन वाणी सहित मन वाणीके गोचरका मैं सच्चिदानन्द द्रष्टा हूँ, मैं दृश्य नहीं" इस दृढ निश्चयका नाम ब्रह्मस्थिति है ।

द्रौपदी

हे साधो ! संसाररूप इस सभामें मायारूप द्रौपदीका दुःशासन दुर्योधनादि अनेक वादीरूप सत्तादि अनेक युक्तियोंरूप हाथोंसे मायारूप द्रौपदीका स्वरूप नाम शरीरको निर्णरूप नग्न करने लगे परन्तु निर्णयरूप नग्न न हुई । भक्तिमान नाम रूप अनिर्वचनीय स्वभाव होनेसे तथा परमात्मारूप कृष्णके आश्रयरूप सहायता होनेसे । इससे हे साधो ! माया तत्कार्य नाम रूप मनादिकोंको निज दृश्य जानों और अपनेको सच्चिदानन्द द्रष्टा जानो । माया तत्कार्य निज धर्मोंसहित दृश्य तुम द्रष्टा असंगको स्पर्श नहीं करते । आकाशके समान जो तुम सच्चिदानन्द द्रष्टा आपको नहीं मानोगे तो द्रष्टा भिन्न माया तत्कार्य दृश्य मध्ये किसी न किसी पदार्थको अपना स्वरूप मानेंगे तो दृश्य संसार दुःखमयरूप ही होवोगे क्योंकि जो मति ह सोइ अन्त पुरुषकी गति होती है । आगे जो इच्छा हो सोई करो ।

अहंकार—समष्टि व्यष्टि फुरना रूप अहंकार

इतनेमें अंतःकरणरूप अहंकार मन वा समष्टि वा व्यष्टि फुरणारूप अहंकारने मनुष्यरूप धरके सभामें आकर कहा—हे संत मंडली ! व्यष्टि अविद्यारूप वा समष्टि अज्ञान प्रकृति मायारूप मेरी माता है और सच्चिदानन्द मनादियोंका साक्षी ब्रह्मात्मा मेरा पिता है। जिन दोनों स्त्री पुरुषको शबल ब्रह्म और अविद्या उपहित चैतन्य शास्त्रवेत्ता बोलते हैं । विशिष्टसे शुद्ध भिन्न होता है इस शास्त्र प्रक्रियासे शुद्ध ब्रह्म हमारा पितामह है और यह नाम रूप सुख दुःखादि बंध मोक्षरूप पंचभूत भौतिक प्रपंच मेरा परिवार है । मैं निज परिवारसहित पिताके पास नहीं रहता, निज माता पासवत् पास ही हमेशा मैं रहता हूँ। पिताके पास रहनेकी मेरी बहुत मरजी भी है और मैं यत्न भी अनेक करता हूँ पिताके पास रहनेका, परन्तु पिताजी पास मुझको नहीं रखते, वह असंग निर्विकार निर्विकल्प हैं मेरे माता पिताके माता पिता हैं नहीं और मेरी माताके साथ मेरा पिता स्पर्श भी नहीं करता। इससे परिवार सहित मेरी उत्पत्ति और मरण आश्चर्यरूप है। तथा मेरे परिवार नामरूप सुख, दुःखादि बन्ध मोक्षरूप पंचभूत भौतिकरूप जगत्का भी जन्म मरण आश्चर्यरूप है। क्योंकि किसी निमित्तसे जब मैं माता की गोदमें प्रियादि वृत्तिद्वारा बैठता हूँ, तब मैं परिवारसहित मरणवत् मर जाता हूँ नाम माताके साथ एक रूपवत् एकरूप हो जाता हूँ । पुनः किसी निमित्तसे माताकी गोदसे बाहरवत् बाहर आता हूँ तो मैं निज परिवार सहित उत्पत्तिवत् उत्पन्न होता हूँ। यह मेरी दिन दिन प्रति क्रीडा समुद्र तरंगवत् है। हे साधो ! मेरेसे तथा मेरे नाम रूप सुख दुखादि बन्ध मोक्ष रूप प्रपंच निज परिवार

सहित मेरी मातासे मोहरूप स्नेह प्रीति हमारा पिता करता ही नहीं और न अप्रीति करता है, न परिवार सहित मेरी उत्पत्ति मरणमें हर्ष शोक करता है वरन् एकसा रहता है। तात्पर्य यह कि, पौत्रोंसहित हम मा बेटेके कर्त्तव्योंसे अस्पर्श हैं, जैसे-वायुके चलने न चलनेमें आकाश एकसा है। हमारा पिता मेरी माताको तथा हमारे सर्व परिवारसहित सब न्यूनाधिक भावाभाव वृत्तांतको जानता है और हम निज पिताका हाल कुछ जानते नहीं न कह सकते हैं। हमारी माता भी नहीं जान सकती कि मेरा पति कौन है ? रखता रूप कैसा है ! तो हम कैसे जानेंगे जड़ होनेसे। हमारा पिता हमारेमें ही रहता है और हमारी पालना भी करता है, तो भी हम निज पिताको जान सकते नहीं। बड़ा आश्चर्य है, मेरी माता तो पतिव्रता धर्मवाली है और हमारा पिता सदा ब्रह्मचारी है, इसीसे हमारी उत्पत्ति आश्चर्य रूप है। मुझ पुत्रका परिवारसहित स्वभाव सर्व प्रकारसे मातापर हुआ है निज पिता पर नहीं। परन्तु मूर्ख निज परिवारसहित मुझको और मेरे पिताको एक रूप जानते हैं इसीसे दुःख पाते हैं। विवेकी नहीं जानते इसीसे सुख पाते हैं। हे महाजनो ! मेरे पिता तो असंग हैं परन्तु मेरी माता भी किसीको सुख दुःख नहीं देती। सुषुप्तिमें प्रत्यक्ष देख लीजिये। इससे सर्वके सुख दुःखका कारण मैं ही हूँ। निज परिवारसहित हम पिताके धनसे जीवन करते हैं अपनी पूंजी कुछ नहीं रखते। पिताके धनसे ही यह संसाररूप बगीचा हमने खड़ा किया है, परंतु पिताको इसका हर्ष शोक नहीं। पिता विना हम कुछ भी कर सकते नहीं। जहां हम दशों दिशा जाते हैं पिता हमको आगे ही लांघता है, जैसे-वायु जहां जावे आकाश आगे

ही लांघता है। हे साधो ! जो मेरे पिताको अस्ति भाति प्रिय सर्वरूप जानता है वा मनवाणी सहित वाङ्मनसगोचर नाम रूप बुद्ध्यादि दृश्यके (अवाङ्मनसगोचर, सर्वाधिष्ठान, जगद्विध्वंस, प्रकाशक अवेद्यत्व सदा अपरोक्ष, साक्षी, सच्चिद्घन, विशुद्धानन्द, ब्रह्मात्मा) द्रष्टाको निज स्वरूप जानता है सो मेरा बाप है, तिसको माया तत् कार्य हम लोगोंकी गति (प्राप्ति) नहीं होती।

राजा प्रियव्रत—(जिसके रथके चक्रसे सात समुद्र बन जाना लोक प्रसिद्ध है)

पुनः राजा प्रियव्रत आकर सभामें कहने लगे—हे प्रिय दर्शन सभा ! व्रत नाम है नियमका और प्रिय नाम है आनंदका। जो वस्तु नियमसे आनंद रूप होवे तिसका नाम है प्रियव्रत। सो ऐसा मनादिकोंका तथा सुखादिकोंका साक्षी प्रत्यक् ब्रह्मात्मा रथीने अविद्यारूप वा माया रूप रथकी वृत्तिरूप नेमी नाम नियम करनेवालेका नाम प्रियव्रत है। सो पृथिवी, अप, तेज, वायु, आकाशादि पदार्थोंका नियम नाम स्वभाव जो रचा गया है, सो कोटि उपायोंसे भी अन्यथा न होगा, इस संकलपवालेका नाम नेमी है। तिस नेमी वृत्तिसे समुद्र उपलक्ष माया वा अविद्यामें लीन सर्व समुद्रादि जगत् को प्रादुर्भाव किया है, जैसे सुषुप्तिमें लीन जगत् जाग्रत स्वप्नमें प्रादुर्भाव होता है। जो ऐसे नहीं माने तो अनादि पक्षमें तो उत्पत्ति प्रकार ही नहीं बन सकता, जो आदि माने भी तो क्या प्रियव्रत मनुष्य राजासे प्रथम मनु आदि राजाओंके वक्त समुद्र नहीं थे; ऐसे नहीं किंतु थे क्योंकि समुद्रादि जगत् की उत्पत्ति सद् प्रकरणोंमें मनुष्य व्यक्ति राजासे होती है ऐसा नहीं लिखा और योग्यता भी नहीं है जीवकी अल्प सामग्री होनेसे। इससे प्रत्यक् आत्मारूप प्रियव्रतको अपना स्वरूप सम्यक्

जानों जो अनेक अर्थवादोंसे शांत होवोगे क्योंकि जो जो चैतन्य नाम हैं सो मनुष्योंके भी नाम हुआ करते हैं, नामकी समता देखकर भ्रम नहीं करना, दृष्टांत-जैसे सहस्रबाहु एक पुरुषका नाम था । युद्धादि करनेकी हजारों तिसको विद्यारूप भुजा याद थीं, इससे सहस्रबाहु नाम था नहीं तो एक मनुष्य व्यक्तिमें भुजा हजार बनती नहीं ।

पृथुराज

इतनेमें पृथुराजाने सभामें आकर कहा-हे नीतिज्ञ सभा ! अशुद्ध मनरूप वेणु राजा है नीतिको छोडके अधर्मपूर्वक विषयोंमें प्रवृत्ति यह इस मनरूप वेणुकी अन्याय कारिता है । असत्संभाषणादियोंसे मौनी और सत् उपदेशको श्रवण करके मनन करनेवाले जो मुनि हैं तिनके (विचार पूर्वक जो सम्यक् सत्संगका अभ्यास है सोई मन रूप वेणुका मथन है । वा ऋषि नाम है इंद्रियोंका तिनकी जो स्वस्व विषयमें सज्जन लोगोंकी रीतिसे धर्मपूर्वक प्रीतिका अभ्यास सोई है मथन । तिससे रज तमसे दबा नहीं हुआ जो शुद्ध सत्त्वगुणरूपी वा बोधरूपी पृथुराज प्रादुर्भाव होता है सोई विचाररूपी धनुषसे अंतः-करणरूपी पृथिवीके रज तमरूप वा काम क्रोधादिरूप वा नाम रूपादि पर्वतोंको एक तरफ करता है नाम आत्मानात्माके विचारसे आत्माको त्रिकाल अबाध्य सत् स्वरूप सम्यक् जानता है और अनात्मरूप पर्वतोंको आत्मासे भिन्न मिथ्यात्व निश्चय वा अत्यंताभाव निश्चय जानता है । तिसके उपरांत सर्व दोषोंसे रहित अंतःकरणरूप पृथिवी सत् संभाषणादि तथा मित्रतादि गुण रूप रत्नोंको देती है तथा सत्व गुण कर युक्त होती हुई अंतःकरण रूप पृथिवीमें धर्म रूप वर्षाकर मुमुक्षुओंके व्यवहारोंमें सचा-

वट रूप अन्न होता है। तिससे मुमुक्षु स्वरूपमें संशय आदि शत्रुओंसे रहित निकर्तव्यता रूप तख्तमें बैठके निरतिशय आनंदको अनुभव करता है इससे जो मुमुक्षु बोधरूप पृथुराजाको मनरूपी बेणुसे पूर्वोक्त अभ्यास रूप मथनसे उत्पन्न करेगा सो परम आनंदको प्राप्त होवेगा।

शब्दादिविषय

पुनः शब्दादि विषय मनुष्य मूर्ति धार कर सभामें आयके बोले, हे पंचपरमेश्वरो ! सर्व लोक हमारेमें दोष आरोपण करते हैं कि, यह विषय बन्धनके कारण हैं, परन्तु पक्षपात रहित होकर यथार्थ विचार देखें तो हम किसीके भी बंधनके कारण नहीं, सर्व अपनेको आप ही बंधन करते हैं बंदरवत्। क्योंकि आकाशादि पंच भूतोंके हम शब्दादि पंचगुण रूप पुत्र हैं वा हम शब्दादि पंच सूक्ष्म भूत हैं। प्रथम पक्षमें तो पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेंद्रिय, पंचप्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार यह हमारे भ्राता हैं। दूसरे पक्षमें स्थूल पंचभूतोंसहित यह हमारे पुत्र पौत्र हैं। सो हम निज भ्रातनसे वा निजपुत्रनसे स्वाभाविक वा रागद्वेषसे आपसमें व्यावहार कर रहे हैं। अनुकूलता प्रतिकूलता हम शब्दादियोंसे हमारे भ्राता वा निजपुत्र मनादि वा श्रोत्रादि इंद्रियोंको हर्ष शोक हो वा न हो। तात्पर्य यह कि, हम शब्दादियोंमें अनुकूलता प्रतिकूलता हमारे भ्राता वा पुत्र मनने मानी है श्रोत्रादि इंद्रियोंने भी नहीं मानी वा मनके साथ मिलके श्रोत्रादि इंद्रियोंने भी मानी है। सो हमारे पुत्र भ्राता हमारी अनुकूलता प्रतिकूलताकी प्राप्ति निवृत्तिका अनेक यत्न करे वा न कर वा हम उनके उपायको माने वा न माने वा हमारे माता पिता सबल ब्रह्म (अविद्या अन्तःकरण विशिष्ट चेतन) को हम पुत्र पौत्रोंके कर्तव्योंका हर्ष शोक

हो वा न हो वा हम उनका कहा माने वा न माने । इन कामोंका हर्ष शोक हम लोगोंको हो नहो परन्तु पूर्वोक्त हम लोगोंके साक्षी प्रत्यक् आत्मा तीसरेको हमारे बीच पडनेमें क्या प्रयोजन है ? यह मनादिकोंका साक्षी आत्मा अपनी महिमामें रहो और हम अपने घरमें निज संस्कारोंसे जैसा होगा वैसा भुक्तेंगे । परन्तु हम लोगोंके व्यवहारोंको यह आत्मा निज धर्म मानके दुःखी सुखी होवे तो इसमें हमारा क्या अपराध है ?

आत्माके विहार करनेका स्थान

इस प्रत्यक् आत्माने हम लोगोंको अपनी क्रीडावास्ते बनाया है हम सर्व लोक इस आत्माके खेलनेके खिलौने हैं विरोधी नहीं । अब हमसे दुःख माननेसे क्या मतलब है ? अब भी हमको खेलनेके साधन ही जानना चाहिये । जिसके भोजन करे पीछे जाती पूछनी नादानीका काम है हम शब्दादि विषयोंसे ही इस साक्षी आत्माके रमनेका यह नामरूप संसार चमन शोभ रहा है । जो हम नहीं होवें तो चमनमें वृक्षोंके समान तो फिर संसार क्या है हम लोगोंकाही तो संसार है ।

शब्दादि विषयके सुग्रहणसे सुखोत्पत्ति

श्रोत्रादि इंद्रियोंसे शब्दादि विषय ग्रहण वेशक करो कोई दोष नहीं । परन्तु जुल्मसे असज्जन पुरुषोंके समान मत ग्रहण करो । हम इस जीवके आनंदवास्ते ही उत्पन्न हुए हैं, दुःखदके लिये नहीं । न्यायपूर्वक श्रोत्रादि इंद्रियोंसे शब्दादि हम विषयोंको ग्रहण करता पुरुषको राजदण्ड और अपयश होता नहीं देखा । दृष्ट कल्पनाके अनुसार ही अदृष्ट कल्पना होती है अन्यथा नहीं । जिन जिन कामोंसे यहां दंड और अपयश होता है तिन तिन कामोंसे ही परलोकमे भी दंड और अपयश होता होगा ।

श्रोत्रादि इंद्रियोंका शब्दादि विषयोंको ग्रहण करना स्वाभाविक धर्म है, धर्मीके होते धर्मका निवारण नहीं होता यह ईश्वरी नियम है। जो स्वाभाविक धर्मका निवारण किसी उपायसे होगा तो जगदांध प्रसंग होजावेगा ! पुनः जो हमको बुरा निज बंधनका कारण जानता है तो तिसको शपथ है । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधादि हम विषयोंको मत ग्रहण करे हम तिसको निमन्त्रण नहीं भेजते। हमारी निंदा भी करता है पुनः हमारा ग्रहण भी करता ह सो वान्ताशी है। हमारे विना किसी भी ब्रह्मासे लेकर चींटीतक ज्ञानी अज्ञानीके व्यवहार सिद्ध होते नहीं। जो अभिमान करे त्रिषय क्या है ! सो हमसे रहित होकर देख लेवे।

हे साधो ! हम शब्दादि विषयोंका किसी भी ज्ञानी अज्ञानीके साथ पक्षपात नहीं जो श्रोत्रादि इंद्रियोंसे हमारा ग्रहण करेगा, तिसको जैसा हमारा स्वरूप है तैसा अनुभव करना ही पड़ेगा । शब्दादि विषय इसको दुःख नहीं देते, इसके अनाचार कर्म ही इसको दुःख देते हैं। जो शब्दादि विषयोंके साथ श्रोत्रादि इंद्रियोंके संबन्धजन्य दुःखोंका जनक पाप होता होवे तो किसीको भी सुख नहीं होना चाहिये। क्योंकि, यह बात अनिवारण है जो तीनों कालोंमें सुषुप्ति विना किसी भी साधनसे निवारण न होवे तिसके भोगनेसे पाप नहीं होता। इन विना शरीर तो रहता ही नहीं तो पाप कैसे होगा ! किंतु नहीं होगा।

पंच विषयोंसे दुःख होनेका कारण और समय है

स्व स्व वर्णाश्रम अनुसार यथायोग्य धर्म पूर्वक शब्दादि विषयोंमें श्रोत्रादि इंद्रियोंका प्रवृत्तिरूप कायदेको छोड़के अकायदेसे बरतेगा तो दुःखोंका जनक पाप होगा

अन्यथा नहीं। हे साधो ! यह पुण्य पाप, हर्ष शोक, सुख दुःख, बन्ध मोक्षादिकी पंचायत माया तत्कार्यमें हम लोग असत् जड़ दुःखरूप दृश्य कोटिमें वर्तनेवालोंकी है, हम दृश्यका द्रष्टाको देश काल वस्तु भेद रहित सत् चित् आनन्दरूप प्रत्यक् आत्मा असंग होनेसे उसको पूर्वोक्त पञ्चायत नहीं चाहिये अर्थात् कार्य कारणरूप अनात्माके धर्म आत्मामें नहीं मानने चाहिये। आत्मानात्माका सम्यक् दर्शन ही कर्त्तव्य है असम्यक् दर्शन ही अज्ञान है, शारीरक धर्म ज्ञानी अज्ञानीके तुल्य ही है केवल संकल्पका भेद है।

वामन भगवान्

वामन भगवान् आकर बोले-हे शांतिदा सभा ! निश्चय कर वो प्रसिद्ध जो अमन वस्तु है तिसका नाम वामन है। सो मन रहित मनादिकोंका द्रष्टा प्रत्यक् आत्मा है। कार्य सहित मूलाज्ञारूप कश्यपकी परम्परा सन्तति सत्त्वगुण न्यूनाधिक रज तमगुण विशिष्ट तुलाज्ञानरूप बलिराजा जानना। "यज्ञो व विष्णुः" यज्ञ नाम विष्णुका है वा "विश प्रवेशने पूर्णे" वा विष्णु नाम पूर्ण वस्तुका है; जो पूर्ण वस्तु है सोई आनन्दरूप वस्तु है, जो आनन्द रूप वस्तु है सोई सत् ज्ञानस्वरूप वस्तु है जो सत् ज्ञान रूप वस्तु है सोई आनन्दरूप वस्तु है। इससे पूर्वोक्त बलिराज असत् जड़ दुःख अनात्मारूप ही है, परन्तु कार्याध्यासके बलसे वा चिदात्म अध्यासके बलसे आपको सत् चित् आनन्द आत्मा पूर्व यज्ञ प्रतीतिरूप यज्ञ करता है कैसा ह तो बलि ! तीन शरीरादि त्रिक त्रिपुटीरूप त्रिलोकीका ब्रह्मात्म अपरोक्ष ज्ञानवान् पुरुष रूप वैकुण्ठ देश छोड़के राज्य करता है और शुद्ध अन्तः-करणरूप स्वर्गमें शुद्ध सत्त्वगुण रूप मुमुक्षु वा विवेकरूप

मुमुक्षु इन्द्र विचार करता है कि, पञ्च ज्ञानेंद्रिय ५, पञ्च कर्मेंद्रिय ५, पञ्च प्राण ५, मन बुद्धि २, पंच महाभूत ५, देश और काल २ ये जो चौबीस भाव कार्य पदार्थ हैं एक अभाव पदार्थ है, सब मिलके पच्चीस २५ हुए वा काम क्रोधादि पच्चीस प्रकृतिरूप पदार्थ जानना। वेदांतोक्त वा सांख्योक्त पच्चीस २५ तत्त्वरूप पदार्थ जानने इत्यादि और पच्चीस ही २५ तिनके देवता, पच्चीस २५ ही तिनके विषय, पच्चीस ही २५ तिनकी वृत्ति वे सर्व मिलके शत पदार्थ असत् जड़ दुःख अनात्मारूप हैं। इनमें जब क्रमसे सत् चित् आनन्द आत्मबुद्धि पूर्वोक्त अज्ञानरूप बलिराजाका पूर्वोक्त यज्ञ पूर्ण हो जावेगा तो शुद्ध अन्तःकरणरूपी स्वर्गमें भी इसीका राज्य हो जावेगा। तात्पर्य यह कि, वह दृढ अध्यास हो जावेगा, तब हम तिरोभाव होते हुए जन्मांतरोंको पावेंगे। इसवास्ते पूर्वोक्त अज्ञानरूप बलिराजाका यज्ञ भंग करो नाम देहाध्यास छोड़के आत्माको सच्चिदानन्द सम्यक् निजरूप जानेंगे तब हम सत्संभाषणादि देवतोंसहित अन्तःकरणरूप स्वर्गमें सुखी होवेंगे यह कार्य ब्रह्मनिष्ठ गुरुरूप विष्णु विना अन्यसे होगा नहीं, यह विचारकर मुमुक्षुरूप इन्द्र सत्संभाषणादि देवतोंसहित विष्णुरूप गुरुके पास शास्त्र रीतिके अनुसार जाकर प्रार्थनाकर बोलता है—हे भगवान्! अज्ञानरूप बलिने सत्संभाषणादि देवतोंसहित हमको अन्तःकरणरूप स्वर्गमेंसे निकालनेकी इच्छाकर पूर्वोक्त शतयज्ञ पूर्णमें दृढ प्रवृत्ति की है, हमारे रक्षक आप ही हो अन्य कोई नहीं, क्योंकि, ब्रह्म श्रोत्री ब्रह्मनिष्ठ विष्णु ही अज्ञानरूप तमको ज्ञानरूप दीपकसे दूर कर सकता है अन्य नहीं। इत्यादि प्रश्न सुनके गुरुरूप विष्णु ब्रह्मविद्याका मुमुक्षुरूप इन्द्रको उपदेश करता है—हे देवतो!

तत्पदका लक्ष्य अर्थ जो सत् आनन्द लक्षणोंवाला मैं ब्रह्म ही तुम्हारे अन्तःकरण देशमें त्वंपदका लक्ष्यार्थ मनादिकोंका साक्षी रूप करके स्थित हूँ। तत् पद और त्वंपदके वाच्यार्थ अज्ञान तत्कार्यको असत् जड दुःख अनात्मा जानो इत्यादि गुरु रूप विष्णुके उपदेशसे इंद्र रूप मुमुक्षुको उत्पन्न हुई जो ब्रह्मात्माको विषय करनेवाली अन्तःकरणकी परमात्मा रूप वृत्ति और इस वृत्ति आरूढ वृत्तिका साक्षी चैतन्य दोनों मिले हुएका नाम बोध रूप वामन अवतार है। जैसे-महाकाश घटाकाश अवतार होता है सो बोध रूप वामन तुला अज्ञान रूप बलिके निकट जाके तीन कदम रूप पृथिवीका दान माँगता है। तात्पर्य यह है कि, तीन कदम रूप सत्व रज तम त्रिगुणात्मक रूप ही अज्ञान तत्कार्य जगत है और अज्ञान तत्कार्यको असत् जड दुःख रूप सम्यक् जो जानना नाम मिथ्यात्व निश्चय वा अभाव निश्चय जाना है यही तीन कदमोंका नापना है। मैं सत् चित् आनन्द स्वरूप आत्मा अज्ञान तत्कार्य ब्रह्मांड कार्यका साक्षी हूँ। यही ब्रह्मांडका फोडना है, क्योंकि, आत्मा अज्ञान तत्कार्य ब्रह्मांडका साक्षी होनेते ब्रह्मांडसे बाहर है। तिसके दृढ निश्चय रूप पादसे जीवन्मुक्ति रूपी गंगा उत्पन्न होती है। तिसमें मुमुक्षु स्नान कर पवित्र होते हैं। तात्पर्य यह कि, उपदेशसे सद्गति रूप पवित्रताको प्राप्त होते हैं।

श्रोत्रादि इन्द्रिय

इतनेमें श्रोत्र मनादि इन्द्रिय मनुष्य मूर्ति धार कर आय बोले- जितेंद्रिय पूर्वक आत्मदर्शियो ! शब्दादि विषयोंको ही हम श्रोत्रादि इंद्रिय ग्रहण कर सकते हैं। शब्दादिकोंसे भिन्न शब्दादिकोंके साक्षी प्रत्यक् आत्माको हम ग्रहण नहीं कर सकते; क्योंकि, शब्दादि आकाशादि

पंच भूतोंके गुण नाम पुत्र हैं और हम श्रोत्रादि इंद्रिय भी पृथिवी आदि भूतोंके कार्य नाम पुत्र हैं इससे इनका हमारा ही आपसमें सम्बन्ध है, इसीसे ही हमारा इनका हमेशा (सुषुप्ति विना) संयोग बना रहता है । शब्दादिकोंके अनुकूलता प्रतिकूलतादिसे हमारे भ्राता मनको हर्ष शोक होता है । हम श्रोत्रादि इंद्रियोंको भी होता नहीं । तब हम लोगोंके साक्षी आत्माको कहांसे हर्ष शोक होवेगा ? जो आत्मा हमारे धर्मको अपना धर्म मानेगा तो तिसको भ्रांति सिद्ध होगी । हमारा बड़ा भ्राता अन्तःकरण रूप मन भी जाति गुण क्रियावान् सम्बन्धवान्, माया तत्कार्य पदार्थोंका ही शोभन अशोभन चिंतनपूर्वक हर्ष शोक करता है । मनादिकोंके साक्षी आत्माको तो वृत्ति रूप मनादि चिंतन ही नहीं कर सकते क्योंकि चिंतनका भी आत्मा साक्षी है जो शब्दादि विषय रूप तथा संकल्पादि वा जाति गुण क्रिया सम्बन्धादि पदार्थ रूप आत्मा होवे तो हम लोगोंका विषय आत्मा होवे सो शब्दादि विषय रूप आत्मा है नहीं इससे हमारी विषय भी आत्मा नहीं । हम लोग तो शब्दादि विषयको विषय करके ही चरितार्थ हैं, उससे आगे हम अन्ध हैं । विधि पक्ष देखते हैं तो चक्षुआदि इंद्रियोंका विषय सुवर्ण चीनी मृत्तिका तन्तु स्वप्न द्रष्टा जल पंच भूतादि हैं, भूषण खिलौने घट पट स्वप्न पदार्थ तरंग भौतिकादि पदार्थ नहीं । कल्पितकी सत्ता तथा कार्यकी सत्ता अधिष्ठानकी सत्तासे तथा उपादान कारणकी सत्तासे भिन्न नहीं होती इससे सर्व नामरूप माया तत्कार्य असत् जड दुःख रूप जगत्का सत् चित् आनंद रूप आत्माधिष्ठान विषे कल्पित होनेसे सर्व प्रकारसे अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा ही श्रोत्र मनादि इंद्रियोंका विषय है । कल्पित नाम रूप पदार्थ हम

लोगोंके विषय नहीं और कर्मेंद्रिय तथा प्राण हमारे भ्रातनमें तो ज्ञान शक्ति है नहीं। केवल वाक् उच्चारण, लेन देन, गमनागमन, मल मूत्रका त्याग एतावन्मात्र ही व्यवहार करते हैं और प्राणादि अन्न पानादि व्यवहार करते हैं इतनी ही क्रिया मात्रसे हम चरितार्थ हैं। इससे साक्षी आत्मा अवाङ्मनसगोचर है।

भैरव

इतनेमें भैरव आकर बोले–हे अभयदायक सभा! जिसके भयसे इंद्र, सूर्य, चंद्रमा, अग्नि, वायु, यमादि चलते हैं नाम आप अपने व्यवहारमें नियम पूर्वक प्रवृत्ति निवृत्ति करते हैं (सूर्य चंद्रमादि ग्रहणसे चक्षुमनादि इंद्रियोंका भी ग्रहण करना) सो ऐसा भैरव ब्रह्मात्मा है, सोच देखते हैं अभय भय जड़ पदार्थोंमें नहीं होता और चैतन्यमें भी भय देना बनता नहीं, जैसे आकाश चार भूत भौतिक पदार्थोंको अवकाश देता है, तैसे ब्रह्मात्मा सर्व नाम रूप माया तत्कार्य प्रपंचको अभयदान नाम सिद्ध करता है। चैतन्य पूर्वक ही जड पदार्थोंके न्यूनाधिक व्यवहारको, जसे चलानेका संकेत करता है तैसा ही चलता है। बुद्धि विना चैतन्य पुरुष भी कुछ नहीं कर सकता यह सर्वके अनुभव सिद्ध है संकेतको तोड़ना न तोड़ना तथा भय अभय जड़ पदार्थ जानते ही नहीं, चैतन्य पुरुष ही संकेतको तथा तिसके तोड़ने न तोड़नेको तथा तिनके न्यूनाधिक होने न होनेसे भय अभयको जानता है और चैतन्य भिन्न सर्व जड़ है।

अनादि पक्षमें तो जगत् कर्ता ईश्वर है नहीं, तिसमें तो ईश्वरके भयसे सूर्य्यादि चलते हैं यह बात बनती नहीं। जगत् के अवांतर अनेक प्रकारके द्रव्य गुण संयोगसे पुरुषोंकी बनावट बन सकती है। सादि पक्षमें ही

उत्पत्ति बनेगी परन्तु सादि अनादिका कुछ मालूम पड़ता नहीं ।

सादि अनादि पक्ष

मनुष्योंके बनाये शास्त्र द्वारा ही जगत् को सादि अनादि आदि व्यवहार कहना पड़ता है । जीवतोंने शास्त्र बनाये हैं, मृतकोंने बनाये नहीं । क्या जाने क्या तदबीर है ! प्रत्यक्ष दृष्टांत तो तार रेलादि अनेक जड़ पदार्थोंको अनेक प्रकारके प्रजाके व्यवहारकी सिद्धिके लिये चैतन्य पुरुषोंने ही संकेत किये हैं। रेलादि पदार्थोंको भय अभयादि कुछ नहीं। इससे भय शब्दका अर्थ संकेत करना । तात्पर्य यह कि, जिस रीतिका जड़ पदार्थोंको चैतन्य पुरुषने संकेत बांधा है वैसे ही चलता है, अन्यथा नहीं । सो संकेत चैतन्य पुरुष है, चाहे ईश्वर हो, चाहे जीव हो, चाहे आत्मा हो, चाहे खुदा हो। नामांतर भेद बेशक हों परन्तु चैतन्य पुरुषोंमें भेद नहीं।

हिमालय पर्वत

पुनः हिमवान् पर्वतोंका कोई मनुष्य राजा था तिसका नाम हिमालय पर्वत था सो आकर बोला–हे एकाग्रचित्तवान् सभा ! गुरुका शरीर हिमालय पर्वत है और जिज्ञासुका शरीर तिसकी स्त्री मैना जानो । तिनके परस्पर आत्मानात्माके विचार रूप मैथुनसे ब्रह्माकार वृत्ति रूप पार्वती होती है और मैत्र्यादि वृत्तियां तिसकी सखियां होती हैं । सो प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मात्मारूप महादेवका तथा पूर्वोक्त पार्वतीका अज्ञान तत्कार्य अनर्थकी निवृत्ति और निरतिशय परम आनंदकी प्राप्ति रूप विवाह करता है नाम " यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः" यही अर्थ जिज्ञासुओंको उपादेय है। नहीं तो बाहरकी कथाका

मुमुक्षुओंको कुछ उपयोग नहीं। मनुष्योंके व्यवहार जड़ पर्वतोंसे नहीं होते।

मच्छ कच्छ

तैसे ही मच्छ कच्छ संज्ञावाले समुद्रके तीर मनुष्य योनियोंमें विष्णुके अवतार हुए हैं वा तिनके राजोंके भी मच्छ कच्छ नाम थे सो मच्छ कच्छ पूर्वोक्त सभामें बोले- कोई जलजंतु मनुष्यवत् बोल नहीं सकते।

ध्रुव

पुनः ध्रुव बोला-हे साधो! जीव रूप स्वायंभुव मनुके कुलविषे मन उत्तान पाद जानना। तिसकी राजसी तामसी वृत्ति रूप प्रवृत्ति तथा सात्त्विकी वृत्ति रूप निवृत्ति दो स्त्री हैं। तिस निवृत्तिरूप स्त्रीसे पूर्व पुण्योंके वशसे सर्व वैरागादि दैवी गुणोंसंयुक्त मुमुक्षुतारूप व्यवसाय दृढ सात्त्विकी वृत्तिरूप निश्चय उत्पन्न होता है, सोई ध्रुव जानना। प्रवृत्ति वृत्तिरूप स्त्री मनरूप उत्तानपाद राजाको अतिप्रिय होनेसे सदा सम्मुख रहती है, निवृत्ति नहीं यह सर्वके अनुभवसिद्ध है और प्रवृत्ति निवृत्तिका विरोध भी सर्वके अनुभव सिद्ध है। तज्जन्य प्रजाका विरोध भी सर्वके अनुभव सिद्ध है। कदाचित् सो निवृत्तिका पुत्र दृढ सात्विकी निश्चयरूपध्रुव प्रवृत्तिरूप स्त्रीके सम्मुख होता है, तब प्रवृत्ति अपना तथा निज बालबच्चोंका मुमुक्षुतारूप दृढ सात्विकी निश्चयरूप ध्रुवको अनिष्ट जानके तिरस्कार करती है। तात्पर्य यह कि राजसी तामसी प्रवृत्तिमें जो प्रवृत्त पुरुष हैं तिनको वैरागादिसहित मुमुक्षु पुरुषोंका संबंध नहीं बनता यही तिरस्कार है। कदाचित् जो वैराग्यवान् मुमुक्षु पुरुष किसी अदृष्ट निमित्तसे प्रवृत्ति करते भी हैं तो तिस राजसी व्यवहारमें अवश्यमेव दुःख पाते हैं परन्तु निज पूर्व पुण्योंके वशसे वा ईश्वर अनुग्रहसे

कल्याणकारी पुरुष पुनः निवृत्तिरूप ब्रह्मविद्या स्त्रीको ही प्राप्त होते हैं। सो ब्रह्मविद्यारूप माता मुमुक्षुओंको उपदेश करती है-हे मुमुक्षुजनो ! जो तुमको प्रवृत्तिजन्य विषय-सुख भोगना है तो प्रवृत्तिके उदर नाम तिसके बीचमें ही रहो और ब्रह्मानंद सम्यक् विचाररूप निवृत्तिरूप स्त्रीमें है आगे जो इच्छा हो सोई करो। सो पूर्वोक्त ध्रुवरूप मुमुक्षु ब्रह्मविद्यारूप माताके उपदेशसे चित्तकी एकाग्रतारूप तपको करता है नाम चित्तकी वृत्ति और प्राणोंके सर्व ओरसे खींचकर एक अंगुष्ठमें धारण करता है तब सकाम मनरूप इन्द्र सज्जनोंकी नीतिसे अधिक शब्दादि विषयों के ग्रहण करनेवालेको श्रोत्रादि इंद्रियरूप देवतासहित यह शरीररूप स्वर्ग ही विषयसुख भोगनेका स्थान है। जब मुमुक्षु चित्तकी एकाग्रतादि तप साधन कर आत्म-ज्ञान संपादन करेगा तो पुनः देहधारणका अभाव होगा। इससे पूर्वोक्त मनइन्द्ररूप कामादि आसुरी संपदासहित देवतोंके समाजका भी मनुष्य देहरूप स्वर्गमें अभाव होगा इस वास्ते इष्टकी अपने रक्षाके हेतु पूर्वोक्त मन इंद्रियरूप देवता मुमुक्षुरूप ध्रुवको विघ्न करते हैं।

जो ऐसा नहीं माने तो इन्द्रकी शास्त्रमें नियत आयु अबाध लिखी है तथा इन्द्र सर्वज्ञ लिखा है। जो किसीके उग्रतापसे इंद्र निजपदसे गिरेगा तो इंद्रकी नियत आयु कथन करनेवाला शास्त्र व्यर्थ हो जावेगा। इससे पूर्वोक्त व्यवस्था ही ठीक है।

हनुमान्

इतनेमें हनुमान् आकर बोले-हे संतो ! षट्वस्तु अनादि पक्षमें जीव ईश्वर दोनों भाई हैं, राम ईश्वर हैं और लक्ष्मण जीवरूप मुमुक्षु हैं। मन इंद्रियरूप देवतोंको जीतनेवाला इन्द्ररूप मुमुक्षु है। मन इंद्रियरूप इन्द्र देव-

तोंको जीतनेवाला इंद्रजीतरूप गुरुके ज्ञानरूप शक्ति मारनेसे मुमुक्षुरूप लक्ष्मणको मूर्च्छा हुई (आवरणविशिष्ट अज्ञानांशका नाश ही मूर्च्छा है) तब विक्षेपविशिष्ट अज्ञानांशरूप हनुमान्ने शरीररूप पर्वतसे प्रारब्धरूप संजीवन बूटीसे तथा रामरूप ईश्वरकी कृपासे निज स्वरूप से भिन्न सर्व नामरूप जगत्का मिथ्यात्व वा अभाव निश्चयरूप बाधित जानना अर्थात् संसारकी प्रतीतिपूर्वक जो जीवन्मुक्ति सोई मूर्च्छा खुलनी है।

"ह इति प्रसिद्धं, नु इति वितर्के" करके जो मान्यके योग्य होवे वा माया तत्कार्य मैं नहीं और यह मेरा नहीं किंतु मैं तिसका द्रष्टा हूँ, इस निश्चयवान्का नाम हनुमान् है। सो मन इंद्रियादि जड पदार्थोंकर प्रत्यक् आत्मा ही चैतन्य होनेसे मान्य देने योग्य हैं, इससे प्रत्यक् आत्माको ही हनुमान् कहते हैं। इस हेतु हे अधिकारी जनो ! मुझ प्रत्यक् आत्मा हनुमान्को ही अपना आप स्वरूप जानो जो जन्ममरणसे रहित जीवन्मुक्त होकर मेरे समान विचरोगे।

इति पक्षपातरहिते अनुभवप्रकाशे सप्तमसर्गः समाप्तः ।। ७ ।।

अथ अष्टम सर्ग ८.

कारण देव तथा कार्य देवके परस्पर संवादद्वारा व्यवहार तथा परमार्थ निरूपण।

कारण देवका पुत्र कार्यदेवने छोटी अवस्थामें ही गुरुके गृहजाके वेदादि विद्या सर्व पढके निज गृहमें आकर माता पिताका शास्त्ररीति अनुसार पूजन किया, परन्तु नित्य नैमित्तादि कर्म रहित तूष्णीं स्थित हो रहा। पिता यह अवस्था पुत्रकी देखकर बोला—हे पुत्र ! कर्मोंकी

पालना तू क्यों नहीं करता ? तात्पर्य यह कि, कायिक वाचिक मानसिक कर्म नाम करनेका है, कर्म नहीं करनेसे शरीर नष्ट होवेगा । पुत्रने कहा-हे पिता ! वेदमें कहा है कर्मोंकर ही बन्धन होता है, इससे मोक्ष प्राप्तिके यत्न- मुमुक्षु पुरुष कर्म नहीं करते । न कर्मोंकर मोक्ष होता है, न धनकर, न पुत्रकर होता है, केवल कार्य कारणरूप इस संघातरूप अहंकारके त्यागकर ही मोक्ष होता है । इत्यादि अनेक वाक्य हैं और पुनः यह भी वेदमें कहा है कि, उप- नयनसे वा विवाहके उपरांत जितने दिनतक जीवे अग्नि- होत्र कर्म करता हुआ ही जीवनेकी इच्छा करे इत्यादि अनेक वेदमें वाक्य देखनेमें आते हैं, इस वास्ते दोनोंके मध्य मुझको क्या कर्तव्य है ? तात्पर्य यह है कि, कर्म नाम करनेका है, कायिक वाचिक मानसिक कर्म करनेसे ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नाम सुखकी प्राप्ति होती है । इस संशयरूप समुद्रविषे मैं डूब रहा हूँ, मुझको पार करो । मैं आपकी शरणागत हूँ । पिताने कहा-हे पुत्र ! कर्म उपासना ज्ञान तीनोंके प्रतिपादक वेदविषे वाक्य हैं । तात्पर्य यह है कि, अन्तःकरणकी शुद्धिवास्ते कर्मकांड है, अन्तःकरणकी निश्चलतावास्ते निर्गुण व सगुण वस्तुकी अनेक प्रकारकी अहंग्रह वा प्रत्यक् ध्यान भक्तिरूप उपा- सना कांड है और अंतःकरणविषे ब्रह्मात्माके आवरणकी निवृत्तिवास्ते ज्ञानकांड है, क्योंकि शुद्ध और निश्चल अंतः- करणविषे ही ज्ञान होता है, अन्यथा नहीं । इससे ब्रह्मात्म एकत्व ज्ञानसे प्रथम ही कर्म उपासनाके प्रतिपादक वाक्योंका मुमुक्षुको अनुष्ठान कर्त्तव्य है और ज्ञान उत्तर- कालमें कर्मोंका त्याग कर्तव्य है; जैसे छोटे वृक्षको ही जलसिंचनादि व्यवहार है, दृढको नहीं तथा पक्षी बच्चोंके माता पिता तबलग ही बच्चेकी सेवा करते हैं, जबलग

पंखवृद्धि नहीं होती उपरांत सेवा करेंगे तो पंख गल जावेंगे। यही तिन वेदवचनोंकी व्यवस्था है। इससे हे पुत्र! तू ब्रह्मात्मा एकत्व ज्ञानके योग्य है।

ब्रह्मका अनुभव

पुत्रने कहा—हे पिता! ब्रह्मका अनुभव क्या है? पिताने कहा—हे पुत्र! जो चैतन्य वस्तु अन्तर आप मन बुद्धि आदिकोंसे अज्ञात हुआ और अज्ञान तत्कार्य मन बुद्धि आदियोंके अन्तर ज्ञाताकरके जो चैतन्यकी स्फूर्ति है, सोई जानना ब्रह्मका अनुभव है तथा देश देशांतर जो वृत्ति जाती है तथा स्वप्नमें स्वप्नांतर जो मनको होता है, तिनको अनुभव करनेवालेको ब्रह्म निजात्म जानना ही ब्रह्मका अनुभव है। मैं ब्रह्मको जानता हूँ यह जो निश्चय है सो अब्रह्म अनात्म मिथ्या निश्चय है, क्योंकि जो जाननेमें आता है सो निश्चय दृश्य होता है, जैसे जो सूर्यसे प्रकाशनेमें आता है सो निश्चय प्रकाश्य सूर्यका दृश्य होता है और सूर्य चैतन्य भिन्न किसी प्रकाश्यरूप दृश्यसे प्रकाशने योग्य नहीं। इससे दृष्टांतविषे सूर्य स्वयंप्रकाश है क्योंकि घटपटादि प्रकाश्य सूर्यको अन्य प्रकाशकके अभाव होनेसे प्रकाशते नहीं तैसे ब्रह्मरूप आत्मा बुद्धि आदिसे जाननेमें आवेगा तो ब्रह्मात्मा दृश्य हो जावेगा और बुद्धि स्वयंप्रकाश होवेगी सो यह अर्थ श्रुति तथा विद्वानोंको अङ्गीकार नहीं। इससे मैं ब्रह्मरूप आत्माको जानता हूँ यह निश्चय ठीक नहीं। किंतु ब्रह्म रूप आत्मा तो जाननेवालेका स्वरूप स्वयं प्रकाश सर्व बुद्धि आदियोंका द्रष्टा है, बुद्धि आदियोंसे जाननेमें कैसे आवेगा? किंतु नहीं आवेगा। जैसे—स्वप्न द्रष्टा स्वप्ननरोंके मन बुद्धि आदियोंसे नहीं जाना जाता है उलटा स्वप्न नरोंको जानता है इसीसे स्वयं प्रकाश है, हे पुत्र! ब्रह्मात्माका स्वरूप

केवल शुष्क तर्कों करके ही सम्यक् अपरोक्ष जाननेमें नहीं आता, न बहुत श्रवण करनेसे जाना जाता है, न केवल चतुराईसे जाना जाता है, न अभिमान पूर्वक वेदादि विद्याध्ययनसे प्राप्त होता है किंतु केवल अहंकार रहित, सरल बुद्धि पूर्वक उत्कट जिज्ञासा सहित सम्यक् श्रद्धालु आचारवान्को ही यह आत्मा सुलभ प्राप्त होता है।

प्रेरक जीव है कि ब्रह्म

पुत्रने कहा—हे पिता ! इस मनादि जड़ संघातका प्रेरक जीव है कि ब्रह्मात्मा ? पिताने कहा-हे पुत्र ! इसमें एक दृष्टांत सुनो जिससे तुमसे जीव ईश ब्रह्म स्वरूप तथा प्रेरक प्रेर्यभाव जाना जावेगा। जैसे—आकाश सूर्यके प्रतिबिंब विना जल नहीं होता है और जल विना प्रतिबिंब नहीं होता है। जल प्रतिबिंब इकट्ठे ही होते हैं जलके ग्रहणसे प्रतिबिंबका भी ग्रहण होता है। तात्पर्य यह कि, जिस सूर्य वा चक्षु वा आकाशने जलको प्रकाशा है वा अवकाश दिया है तथा जिसने सर्व जगत्को प्रकाश अवकाश दिया है सोई जल सहित प्रतिबिंबको प्रकाशता है वा अवकाश देता है यह दृष्ट सिद्ध है। इससे जलको प्रकाश्य योग होनेसे प्रतिबिंब भी अवश्य प्रकाश्य योग्य होवेगा। तैसे ही अंतःकरण रूपी जलमें वा अविद्या अंशमें, ब्रह्मतारूप सूर्य वा आकाशका प्रतिबिंबवत् प्रतिबिंब पड़ता है, दोनों मिले हुएका नाम जीव है और बिंबका नाम ब्रह्म ईश्वर आत्मा है। अंतःकरण वा अविद्यासहित प्रतिबिंब रूप जीवसे भिन्न और कहीं जीवकी सिद्धि होती नहीं और होती हो तो तुम ही कहो तुम भी शास्त्रज्ञ निज अनुभववाले हो। इससे अंतःकरणसहित प्रतिबिंब जीव है। तात्पर्य यह कि, त्वं पदका वाच्यार्थ है

यही पूर्वोक्त जीव ही जल सहित प्रतिबिंबके गमनादिक समान कर्ता भोक्ता परलोकमें गमन पुनः इस लोकमें आगमन, ज्ञान अज्ञान, हर्ष शोक, सुख, दुःख, बन्ध मोक्षादि धर्मोंवाला है बिंब नहीं। जैसे—जलमें प्रतिबिंब का लक्ष्यरूप जो सूर्यादि बिंब है सो पूर्वोक्त सर्व सहित प्रतिबिंबके धर्मोंसे रहित है। तैसे अंतःकरण सहित प्रतिबिंब रूप जीवका लक्ष्यरूप जो ब्रह्मात्मा बिंबस्वरूप साक्षी चैतन्य ईश्वर अंतर बाहिर स्थित ह सो पूर्वोक्त सर्व समान प्रतिबिंब मनका रूप जीवके धर्मोंसे रहित स्वतः ही निर्विकार निर्विकल्प है। इससे यह सिद्ध हुआ कि, अंतर वस्तु मन बुद्धि आदियोंसे अज्ञात हुई और सर्व बुद्धि आदियोंको जो अंतर प्रकाश करे नाम जाने तिस वस्तु को ब्रह्म कहो, चाहे अल्ला खुदा, रहीम, ईश्वर, चाहे नारायण, चाहे कृष्ण, चाहे राम, चाहे अंतर्यामी, चाहे गाड, चाहे परमात्मा कहो, चाहे ईश्वर, चाहे आत्मा प्रत्यक् कहो, चाहे पुरुष कहो चाहे सत् चित् आनंद कहो। परंतु पूर्वोक्त लक्षण युक्त बिंबभूत वस्तु ही तुम्हारा तथा हमारा सर्व जगत्का निःसंदेह स्वरूप है, यही वस्तु सर्व इंद्रिय प्राण देह मनादि संघातका प्रेरक है अन्य जीव नहीं जीव प्रेर्य है। क्योंकि, पूर्वोक्त रीतिसे जीव दृश्य होनेसे मिथ्या है। तात्पर्य यह कि, जो अंतःकरण रूप दृश्यकी व्यावहारिक वा प्रातिभासिक सत्ता है सोई प्रतिबिंबकी भी सत्ता है भिन्न नहीं, अंतःकरणका अनुयायी प्रतिबिंब है क्योंकि बिंब मनके अनुसारी नहीं, परन्तु संसार दशामें नाम ब्रह्मात्म अज्ञात दशामें पूर्वोक्त जीव अबाध्य रूप सत है, इसीसे शास्त्रने जीवको सनातन सत् कहा है, परन्तु जीवका परमार्थ लक्ष्य स्वरूप बिंबभूत ब्रह्मात्मा त्रैकालिक सत्स्वरूप अबाध्य है अन्य जीवादि नहीं। जैसे—जल-

सहित प्रतिबिंब मिथ्या है बिंब भानु सत् है । हे पुत्र ! यह सर्व बुद्धि आदियोंके प्रकाशक प्रेरक ब्रह्म रूप आत्माको श्रुति कथन करती है कि प्राणोंका प्राण है, चक्षुओंका चक्षु है, श्रोत्रोंका श्रोत्र है, त्वचाका त्वचा रूप है, मनको मन रूप है, आकाशका आकाश रूप है इत्यादि सर्वका जान लेना । तात्पर्य यह कि, सर्व नाम रूप दृश्य वस्तुओंका अस्ति भाति प्रिय रूप आत्मा स्वरूप भूत है; जैसे- सर्व नाम रूप तरंगादियोंका मधुरता द्रवता शीतलता रूप जल अपना स्वरूप है तथा जैसे सर्व स्वप्न पदार्थोंका स्वप्नद्रष्टा स्वरूपभूत है, जैसे-भूषणोंका स्वरूप सुवर्ण है जैसे खिलौनोंका स्वरूप चीनी है जैसे कल्पित सर्प दंड माला आदियोंका रज्जु अपना स्वरूप है इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं । तैसे नाम रूप प्रपंचका अस्ति भाति प्रियरूप मैं ही स्वरूप हूँ वा कार्य कारणरूप प्रपंच मन वाणी सहित वाङ्मनसगोचरसे मैं आत्माअवाङ्मनसगोचर हूँ ऐसे निश्चयवाला पुरुष जीवित अवस्थामें ही अमृत भावको प्राप्त होता है । हे पुत्र ! जो चैतन्य मन बुद्धि श्रोत्रादिक इंद्रियोंके अंतर मन श्रोत्रादि इंद्रियोंसे अभिन्न हुएके समान स्थित हुआ जो मन बुद्धि प्राण श्रोत्रादि जड इंद्रियोंको आप अपने व्यवहारमें (जड़ पुतलीको पुरुषवत्) प्रेरकर जोडता है तथा तिनके न्यूनाधिक व्यवहारको जानता है और मन इंद्रियादि जिस (अपने प्रेरक) को नहीं जानते उलटा मनादियोंको जो प्रेरना जानता है नाम सत्तास्फूर्ति प्रदान करता है सोई देव मनादि इंद्रियोंसे भिन्न मनादियोंका साक्षी तुम्हारा स्वरूप ऐसे ही पृथिवी आदि सर्व पदार्थोंमें जोड लेना । हे पुत्र ! जैसे धान काटनेमें शस्त्रको पुरुष धान काटने वास्ते है, प्रेरता है, तैसे यह एक आत्मा मनादि इंद्रियोंको

भिन्न होकर उनके व्यवहारमें प्रेरता नहीं; किंतु जैसे स्वप्न द्रष्टा स्वप्न इंद्रियादि पदार्थोंमें स्थित हुआ निर्विकार होकर प्रेरता है। जैसे आकाश सबमें स्थित हुआ सर्वको अवकाश देता असंग है, यही तिसका प्रेरणत्व है। तैसे तुम ब्रह्मात्मा नाम रूप मनादि दृश्यविषे स्थित हुए तथा मनादि दृश्यके प्रेरक प्रकाशक हुए भी असंग होनेसे स्वतः निर्विकार निर्विकल्प शांतरूप स्थित हो। यद्यपि मनादि जड प्रेर्य और तुम्हारे स्वरूप चैतन्य प्रेरक एक रूप अविवेक दृष्टिसे भासते भी हैं, जैसे काष्ठ और अग्नि अविवेकसे एक रूप भासते भी हैं, तथा दूध घृत विचारे विना एकमेक भासते भी हैं परन्तु एक नहीं तथापि विवेक दृष्टिसे प्रेर्य प्रेरक जड चैतन्य तथा अग्नि और काष्ठ एकरूप होते नहीं। प्रसिद्ध तन्त्र तन्त्रीके समान वा देहविषे देहीके समान वा देहविषे पिशाचवत् वास्तव भिन्न ही हैं। तुम आपको मनादियोंका प्रेरक अन्तर्यामी ब्रह्मात्मा जानों।

जीव शुभाशुभ कर्मोंका भोक्ता

पुत्रने कहा—हे पिता ! जब मनइंद्रियादियोंका उनके शुभाशुभ व्यवहारकी प्रवृत्ति निवृत्तिमें प्रेरक कोई अन्य देव है तो इस जीवको शुभाशुभ कर्मोंका फल सुख दुःख न होना चाहिये। दुःखकी इच्छा न करता हुआ बलात्कार राजपुरुषके शुभाशुभमें जोड़ते हुएके समान दुःखके साधनोंमें पुरुष जुडता है। तैसे ही सुखके साधनोंमें भी जान लेना। हे पुत्र ! शुभाशुभ कर्म संघातके प्रसिद्ध धर्म हैं; धर्म सहित इस संघातके द्रष्टा आत्माके नहीं, परन्तु भ्रांतिसे निज धर्म मानता है। इसीसे कर्मका फल सुखदुःख भोक्ता है, पर संघातका धर्म निजधर्म नहीं माने तो भोक्ता नहीं। जैसे—पुत्रके सुख दुःखसे पिता

भ्रमकर सुखी दुःखी होता है, विचारे तो पिताको पुत्रका सुख दुःख नहीं ।

आत्मा असंग

हे पुत्र ! जैसे घटाकाश तथा स्वप्नद्रष्टा घट स्वप्नको अवकाश सत्ता स्फूर्ति देते भी घट स्वप्नके व्यवहारसे आकाश स्वप्नद्रष्टा सदा असंग निर्विकार है वैसे ही निजात्मा इस संघातको प्रेरताभी सदा असंग है ऐसे जानना ही कर्तव्य है और शारीरिक साधन कुछ करना नहीं । पुनः पिताने कहा—हे पुत्र ! इस प्रश्नके उत्तरका पूर्व ही हम स्वप्न और स्वप्नद्रष्टाके दृष्टांतसे तथा आकाशके दृष्टांतसे समाधान कह चुके थे । अर्थात् धान काटनेवाले पुरुषके समान यह चैतन्य आत्मा मनादि-योंको नहीं प्रेरता, किन्तु जैसे आकाश सर्वव्यापी होकर सर्वको अवकाश देता भी असंग है ऐसे ही आत्मा सर्वमें सर्वको सत्तास्फूर्ति देता भी सबसे असंग है । परन्तु स्वप्नद्रष्टाका दृष्टांत अनुभवरूप होनेसे प्रधान है । तैसे यह साक्षी चैतन्य देव तुम्हारा आत्मा सर्व ध्याता ध्यान ध्येयादि त्रिपुटियोंका स्वरूप भूत हुआ नाम सर्वको सत्ता स्फूर्ति प्रदान करता हुआ भी असंग है हे पुत्र ! जैसे भूमि अनेक बीज अंकुरोंका आधार है तथा अंकु-रोंमें अनुस्यूत है, भूमि विना एक अंकुर भी स्थित नहीं हो सकता । सारांश यह कि, जैसे आकाश सर्व अंकुरोंमें तथा पत्र फल फूलमें तथा भूमिमें व्यापक और असंग हुआ सर्वको अवकाश देता है, जो आकाश अवकाश नहीं देवे तो सर्वका व्यवहार कैसे होवे । परंतु अनेक बीजोंमें तथा अंकुरोंमें आप अपने पूर्व संस्कारके अनुसार अनेक प्रकारके गुण व्यक्ति फल फूल पत्र सहित भिन्न भिन्न अंकुर निकसते हैं और आकाश अवकाश सर्वको

देनेवाला एक ही है तथा भूमि भी एक ही है यह दृष्टांत सम दार्ष्टांतमें जोड़ लेना। तैसे अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा सर्व नाम रूपात्मक जगत्में व्यापक आधार अधिष्ठान हुआ तथा द्रष्टा प्रकाशक हुआ भी तिनके व्यवहारोंसे अलिप्त हैं। कर्तव्य अकर्तव्यके गुण दोषको प्राप्त नहीं होता और असत् जड़ जगत्का नियामक भी हैं। तुम्हारे प्रश्नके अनुसार तो औषधियोंके गुण दोष आकाश और भूमिमें होने चाहिये क्योंकि भूमि और आकाश तिनके निर्वाहके कारण हैं। सो ऐसा देखनेमें नहीं आता। जैसे सूर्यादिकोंके तेजकर सर्व सृष्टि आप अपने व्यवहारमें बहिर जुडती है। परन्तु तेज किसीको अंगुली पकड़के नहीं जोड़ता। इसीसे सूर्य किसीके गुण दोषको नहीं प्राप्त होता आप संस्कारके अधीन सर्व सृष्टि निज निज व्यवहारमें जुडती है। तैसे ही चैतन्यदेव अन्तर्यामी तुम्हारा आत्मा मन बुद्धि आदि सर्व सृष्टिका नियामक हुआ हुआ भी असंग है, सृष्टिके कर्तव्य अकर्तव्यजन्य गुण दोषको नहीं प्राप्त होता, मनादि सृष्टि आप अपने संस्कारके अनुसार आप अपने संकल्प विकल्पादि व्यवहारमे जुड़ती है। इससे–हे पुत्र ! अन्त मनादि दृश्यका द्रष्टा विकाररहित निर्विकल्प एक रस अक्रिय अन्तर अमृत अभय अजन्मा सुख दुःखरूप बंधमोक्ष से रहित है। तात्पर्य यह कि, सर्व संसारके और संसारके धर्मोंसे रहित स्वतः सिद्ध अन्तर कोई वस्तु है, ऐसा अनुभव होता है, सोई आकाशवत् सर्व मनादियोंको सत्ता स्फूर्ति करता हुआ भी असंग है; सोई हमारा तुम्हारा स्वरूप है, यह जानना ही कर्तव्य है करना कुछ नहीं। स्वतः ही बन रहा है। हे पुत्र ! इस निज आत्मवस्तुको मन वाणी कथन चिन्तन नहीं कर सकते क्योंकि

कथन चिन्तनसे प्रथम ही कथन चिन्तनके भावाभावको प्रकाशता है, जो प्रथम सिद्ध न होवे तो कथन चिन्तनकी उत्पत्ति अनुत्पत्ति कैसे जाननेमें आवेगी ? जैसे लड़केकी उत्पत्तिसे प्रथम दाई सिद्ध लड़केकी उत्पत्तिको तथा उत्पत्तिके स्थानको जानती हैं। जो दाई प्रथम सिद्ध नहीं होवे तो लड़केके सर्व व्यवहार जाने कैसे जावें ? इत्यादि अकुंरादि अनेक दृष्टांत हैं। जैसे अंकुरके प्रथम ही पुरुष वा आकाश सिद्ध है। इसीसे स्वतः निजात्मा निर्विकार निर्विकल्प है क्योंकि निर्विकार सविकार निर्विकल्प सविकल्पादि कथन चिन्तन वाणी मनमें ही है । जब सुषुप्तिमें मन वाणी लीन होते हैं तो विकार अविकार निर्विकल्पादि कथन चिन्तन भी नहीं रहते । परन्तु जो वस्तु जाग्रतमें कथन चिन्तनके भावका साक्षी है सोई वस्तु सुषुप्तिमें तिन जाग्रतादियोंके अभाव कल्पनाका साक्षी है। जो चेतन सुषुप्तिमें निर्विकार है सोई चेतन जाग्रत्में है वास्तवमें सोई वस्तु निर्विकल्प निर्विकार है, सोई प्रत्यक्ष आत्मा तेरा स्वरूप है, तू चैतन्य आत्मा ही इस जड संघातकी चेष्टाका कारण है । हे पुत्र ! जैसे—अचल जड वृक्षोंको चलानेसे अरूप वायु अनुमान होता है वा त्वचा इंद्रियसे अनुमान होता है यह घटवत् वायुकी मूर्ति है। ऐसे वायुका चाक्षुष स्वरूप दिखावनेको कोई भी समर्थ नहीं हुआ, न है, न होगा। ऐसे ही ब्रह्मात्मा तेरा स्वरूप है। ऐसा है वा तैसा है इस प्रकार किसी धर्म विशिष्टमें नहीं कह सकते, न उपदेश कर सकते। क्योंकि जब यह मन बुद्धि आदियोंका साक्षी आत्मा मनादि इंद्रियोंका विषय होवे तो जाति गुण क्रिया सम्बन्धादि विशेषणोंसे तुझको उपदेश करें सो आत्मा जाति आदि विशेषणों नाम धर्मोंवाला है

नहीं नाम कैसे तुझको गोशृंगके समान आत्मा दिखलानेको समर्थ होवें किन्तु नहीं, दुर्घट समझ है। अवाङ्गमनसगोचरको अपरोक्ष अपने हस्तविषे अपरोक्ष फलके समान जाननेवत् जानना ही दुर्घट समझ है। इससे जो अन्तर बुद्धि आदि संघात जडका प्रेरक अंतर्यामी हैं सोई तुम्हारा स्वरूप है। यह प्राण मनादि संघात व्यभिचारी है और तुम्हारा स्वरूप आत्मा अव्यभिचारी एकरस है इसीसे सत् है। जो सत् चित् पूर्ण है सोई आनन्द रूप है। इससे सत् चित् सुखरूप तुझ आत्मासे भिन्न असत् जड दुःख अनात्मा अव्यभिचारी रूप मनादि दृश्यका द्रष्टा तेरा स्वरूप है, सो यह द्रष्टा विदित वस्तुसे न्यारा है नाम वृत्ति रूप ज्ञानके विषय समष्टि व्यष्टि भूत भौतिक मायाके कार्यरूप प्रपंच वस्तुसे न्यारा है। तैसे विदितसे विपरीत अस्पष्ट पूर्वोक्त कार्यका कारण प्रकृति, प्रधान, माया, अज्ञान, अविद्या है सो वृत्ति ज्ञानका अविषय होनेते अविदित है। तिस अविदित वस्तुसे भी तेरा स्वरूप न्यारा है। क्योंकि, विदित अविदितका तू द्रष्टा है। तात्पर्य यह कि, प्रसिद्ध सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रत्में अविदित विदित माया तत्कार्यका तू चैतन्य द्रष्टा है। इसीसे तू इनते भिन्न है। हे पुत्र! विदित अविदितपना दृश्य कोटिमें ही है, तिस दृश्यका ही विदित अविदितसे ग्रहण त्याग होता है, जैसे-स्वप्न सृष्टिमें ही विदित अविदितपना तथा ग्रहण त्यागपना है, स्वप्नद्रष्टामें नहीं, तैसे तेरा स्वरूप स्वाभाविक ग्रहण त्यागके योग्य नहीं, जैसे अपना शरीर ग्रहण त्यागके योग्य नहीं क्योंकि, ग्रहण त्याग करनेवाली वस्तु अपनेसे भिन्न परिच्छिन्न दुःखरूप होती है तथा दृश्य मिथ्यात्व स्वप्नवत् वस्तु होती है सो तेरा स्वरूप आत्मा ऐसा नहीं, न सुख

दुःखका साधन है, किन्तु ग्रहण त्याग विदित अविदितादि सर्व पदार्थोंका तथा सर्व पदार्थोंको विषय करनेवाली विदित अविदिताकार सर्व वृत्तियोंका साक्षी है। हे पुत्र ! विचार देखिये तो विदित अविदितरूप ग्रहण त्यागादि वस्तु भी अपने अस्ति भाति प्रियरूप आत्मस्वरूपसे भिन्न नहीं, जैसे सूर्य वा लाल किरणकी दमकामें हम किस किरण दमकका ग्रहण करें किसको त्यागें और कौन किरण दमक विदित है कौन नहीं ? यह सब कहना मात्र है। तात्पर्य यह कि, सर्व नाम रूपात्मक जगत् अपना स्वरूप सूर्यकी किरण हैं। दुःख सुख भी किरण हैं, समाधि असमाधि भी किरण हैं। मन वाणी शरीर सहित जो संघातकी चेष्टा है सो सब आत्माकी दमकां हैं। कोई राजसी किरण हैं, कोई तामसी किरण हैं; कोई सात्त्विकी किरण हैं, कोई मायारूप किरण हैं और कोई आकाशादि किरण हैं। ऐसा हुआ भी आत्मारूप सूर्य लाल अपनी महिमासे स्थित है, जैसे स्वप्नके पदार्थ विदित अविदित ग्रहण त्यागके योग्य प्रतीत होते भी हैं परन्तु वास्तवसे स्वप्नद्रष्टासे भिन्न नहीं। जैसे जलसे तरंगादिक भिन्न नहीं तैसे तुझ मनादिकोंके साक्षी चैतन्य सूर्य लालकी यह नाम रूपात्मक जगत् किरण दमका है। ग्रहण त्याग किसका करे, किसका न करे ? सूक्ष्म विचार तो अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे भिन्न कल्पित नाम रूप पदार्थोंमें वृत्ति रूप ज्ञानकी विदित अविदित रूप विषयता अविषयता है नहीं, किन्तु आत्मामें ही है क्योंकि वृत्ति रूप ज्ञानकी विषयता अविषयताका आवरण भंग अभंग मात्र प्रयोजन है, सो आवरण रूप अज्ञान चैतन्यके आश्रय होवे है, जैसे-नीलिमा आका-

शके आश्रय हैं, तैसे आत्मासे भिन्न सर्व पदार्थ कल्पित अज्ञान आवरण रूप ही हैं। आवरण रूप अज्ञान अज्ञानके आश्रय होवे नहीं, जैसे-अंधकारके आश्रय अंधकार नहीं। जैसे-स्वप्न पदार्थोंके आश्रय स्वप्न पदार्थ नहीं, किन्तु स्वप्न द्रष्टाके आश्रय है। जैसे-रज्जुमें कल्पित सर्प दंड मालादि हैं सो परस्पर किसके आश्रय नहीं किन्तु रज्जुके ही आश्रय है। जैसे-आकाश भिन्न नीलिमा किसीके आश्रय नहीं। इससे वृत्ति रूप ज्ञानकी विदित अविदित रूप आवरण भंग अभंग रूप विषयता अविषयता आत्मा रज्जुमें ही है, भूषणों, तरंगों, घटों, पटोंमें भौतिक पदार्थों और स्वप्न पदार्थोंमें जो वृत्ति ज्ञानकी विदित अविदित रूप विषयता अविषयता भाषती है सो सुवर्ण, जल, मृत्तिका, तंतु, पंचभूत स्वप्न द्रष्टामें ही है, अन्य भूषणादियोंमें नहीं। इस दृष्टिके लिये ब्रह्मात्म अपरोक्ष विद्वानकी वृत्ति जहां जहां जाती है, तहां तहां ही तत्तत् पदार्थ उपहित ब्रह्मात्माको ही विषय करती है। नाम रूप कार्यका विवर्त उपादान, सर्व रूप ब्रह्मात्मा होनेसे वृत्ति ज्ञानका विषय परोक्ष अपरोक्ष ब्रह्मात्मा ही है इसी वास्ते विद्वान्‌की स्वतः सिद्ध नित्य समाधि अयत्न सिद्ध है। इत्यादि श्रुति है।

हे पुत्र! घट, पट, भूषण, तरंग शास्त्र, सर्प रजत, स्तंभस्थित पुतली आदि कल्पित पदार्थोंमें वृत्ति रूप ज्ञानकी विषयता अविषयता प्रतीति होती भी है, परन्तु मृत्तिका, तन्तु, सुवर्ण, जल लोहा, रज्जु, शुक्ति, स्तंभादि वृत्तिके ज्ञान विषय हैं अन्य घटादि नहीं। इससे सर्व भेद रहित सर्वाधिष्ठान जगद्विध्वंस प्रकाशक स्वतः बन्ध मोक्ष रहित अवेद्यत्व सदा अपरोक्ष साक्षी सच्चिद्घन विशुद्धानन्दको श्रुति अनुभव द्वारा जब अपना आप

स्वरूप जानोगे तभी शांति होगी अन्यथा नहीं। हे पुत्र! काम, संकल्प, श्रद्धा अश्रद्धा धैर्य अधैर्य, भय अभय, लज्जा अलज्जा, शांति अशांति, राग और वैराग, बन्ध मोक्ष ज्ञान अज्ञान, क्रोध अक्रोध, उदारता अनउदारता, अहंकारता अनहंकारता, मान अपमानादि जितने आसुरी दैवी सत् असद्गुण रूपी धर्म अधर्म हैं सो अन्तःकरणकी वृत्ति रूप धर्म हैं सो अन्तःकरण अपने वृत्ति रूप धर्मोंसहित अपने प्रकाशक ज्योति ब्रह्मात्माको मनन नहीं कर सकता नाम जानता नहीं। क्योंकि, आत्माको मनादि प्रकाश्य नियमका प्रकाशक नियामक होनेसे। प्रकाश्य अपने प्रकाशकको नहीं जानता, सूर्यादि दृष्टांत प्रसिद्ध हैं। उलटा चैतन्य ज्योति आत्मासे ही मनादि प्रकाशते हैं इससे जिस वस्तुने अन्तर पूर्वोक्त निश्चयादि वृत्ति रूप धर्मसहित मनको मनन किया है तिसको तू ब्रह्मात्मा निज रूप जान। जिस वस्तुको मन मनन करता है सो तुम्हारा स्वरूप नहीं वह माया तत्कार्य रूप है सो मन सहित तुम्हारी दृश्य हैं। इसी प्रकार सर्व इंद्रिय प्राणादिमें तथा अन्य पदार्थोंमें भी जोड़ लेना इत्यादि श्रुति

आतमाका ज्ञयाज्ञयत्व विचार

हे पुत्र! ग्रहण त्याग योग्य वस्तुसे विपरीत तू ब्रह्म रूप आत्मा है। इस हमारे उपदेशसे तुझको निज स्वरूप का अनुभव हुआ है वा नहीं? सो कह पुत्रने कहा-हे पिता! मैं सम्यक् अपने आत्मा स्वरूपको जानता हूं। पिताने कहा-हे पुत्र! मैं सम्यक् आत्माको जानता हूं यह तेरा जानना भ्रांति रूप है क्योंकि जैसे अग्निसे जलावने योग्य काष्ठादि वस्तु हैं सो काष्ठादि जलाने वाले अग्निके स्वरूप नहीं, किंतु भिन्न हैं और दाहक शक्तिका अग्नि आत्मा होनेसे अग्निको जलाता नहीं

तैसे जानने योग्य ब्रह्मात्म वस्तु किसीका विषय होवे तो सम्यक् जाननेको सामर्थ्य होवे परन्तु ब्रह्मात्मा जाननेवालेका स्वरूप हैं। जानना त्रिपुटीमें होता है, ब्रह्मात्मा त्रिपुटीका प्रकाशक त्रिपुटीका विषय नहीं, यह सर्व वेदांतका सिद्धांत है, इससे सम्यक् जाननेवालेका ब्रह्मात्मा स्वरूप होनेसे कोई भी जाननेको शक्य नहीं है जैसे अग्निकी दाहशक्ति अग्निसे पृथक् काष्ठादि वस्तुको जलाती है, परंतु दाहशक्तिका जो अपना आत्मा अग्नि-स्वरूप है तिसको नहीं दाह कर सकती; तैसे दाहरूप वृत्तिज्ञानका विषय काष्ठके समान ज्ञानसे भिन्न ब्रह्मात्मा होवे तो जानने योग्य होवे परंतु दाहकशक्तिका आत्मा अग्निके समान जाननेवालेका स्वरूप ब्रह्मात्मा है इसीसे ब्रह्मात्माका अन्य जाननेवाला कोई नहीं। जैसे स्वप्न-द्रष्टाको स्वप्नर जानने योग्य नहीं, स्वप्ननरोंका स्वप्न-द्रष्टा आत्मा है। जैसे किरणोंका सूर्य आत्मा होनेसे किरणोंसे सूर्य अज्ञात है जैसे देहसे देही अज्ञात है क्योंकि स्वप्नद्रष्टासे भिन्न सर्व स्वप्न कल्पित है इसीसे स्वयंप्रकाश है। जो अन्य किसी साधनसे जाना जाता है; सो स्वयं-प्रकाश नहीं होता, किंतु परप्रकाश होता है! जो पर-प्रकाश होता है सो मिथ्या होता है। इससे हे पुत्र! तू जब ब्रह्मात्माको सम्यक् जानता है तो निश्चय कर परि-च्छिन्न असत् जड़ दुःख दृश्य मिथ्या वस्तुको ही जानता है क्योंकि ब्रह्मात्मा कैसा है? अशब्द, अस्पर्श, अरस, अगंध, अरूप, अचित्, अमन, अप्राण, अनहंकार, अक्रिय, निर्विकल्प, निर्विकार, गमनागमनादिरहित, अशरीर, अव्रण, शुद्ध, पापरहित, जाति गुण क्रियादि धर्मोंसे रहित अस्तित्वमात्र है, बुद्धिके निश्चयमें नहीं आता, बुद्धिका

द्रष्टा होनेसे; क्योंकि जाति गुण क्रिया संबंधवान् पदार्थोंको ही बुद्धि जानती है, इनसे रहितको नहीं जानती। ऐसे अवाङ्मनसगोचर ब्रह्मात्माको तू कैसे जानता है वा तू आपको बुद्धिरूप मानके आत्माको जानता है वा आत्मा आपको जानता है वा आभास आपको मानके आत्माको जानता है। जो आत्मा कहे तो आत्माश्रयादि दोष होवेंगे और चिदाभास सहित निश्चयात्मक वृत्तिरूप बुद्धि सो आत्माकी दृश्य होनेसे स्वप्नद्रष्टाको जानती नहीं; जो जाने तो आत्मा दृश्य मिथ्या होगा घटवत्। इससे हे पुत्र ! अवास्तव स्वरूपके जाननेसे कल्याण नहीं होता। पुत्रने कहा—हे पिता ! जिस धर्मसे जो निरूपण किया जाता है सोई तिसका स्वरूप होता है जैसे मनुष्यका मनुष्यत्वधर्मसे निरूपण किया जाता है; सोई तिसका स्वरूप है। तैसे ब्रह्मात्माका पूर्वोक्त सत् चित् आनंदरूप विशेषणोंसे जो निरूपण किया जाता है, सोई तिसका स्वरूप है। पिताने कहा—हे पुत्र ! जितने शब्द हैं, सोई सर्व सापेक्षक सविकल्प जाति गुण क्रियावान् वस्तुका ही निरूपण कर सकते हैं। ब्रह्मात्मा जाति आदि गुणोंसे रहित निरपेक्ष निर्विकल्प है, आत्मा सर्व मनादि कल्पनाके आदि सिद्ध है, सो कैसे निरूपण किया जावे ? तथापि मुमुक्षुके बोधवास्ते "सत् चित् आनंदरूप जो वस्तु है सोई ब्रह्मात्मा तुम्हारा स्वरूप है" ऐसा श्रुतिने कहा है, सो सत् चित् आनंद भूत भौतिक, कार्य कारणरूप प्रपंचमें किसी भी मन प्राण श्रोत्र इंद्रियादि अनात्म पदार्थोंमें भी घटता नहीं तथा आकाशादि भूतोंमें भी घटता नहीं, भौतिकोंमें भी घटता नहीं। तात्पर्य माया तत्कार्य किसी पदार्थमें भी घटता नहीं किंतु बुद्धि आदियोंके साक्षी आत्मामें ही घटता है। इससे सत्

चित् आनंदरूप वस्तु ही अपना आप आत्मा जान । हे पुत्र ! यह आत्माका स्वरूप भी मन प्राण देह इंद्रियादि संघात समष्टि व्यष्टिके असत् जड़ दुःखरूप उपाधि द्वारा कहा है । वास्तवसे अवाङ्मनसगोचर अपनी आत्मा है; जैसे वृक्षकी चलनरूप क्रियाकर ही वायुका रूप जाननेमें आता है, अन्यथा नहीं । तैसे सर्व मनादि जड पदार्थोंका प्रेरक होनेसे आत्मा जाना जाता है; परंतु वास्तवसे ब्रह्मात्माका स्वरूप जाननेवालेको अज्ञात है और न जाननेवालेको ज्ञात है । तात्पर्य यह कि, वाङमनसगोचर जाननेवालेको अज्ञात है और अवाङ्मनसगोचर कर जाननेवालेको ज्ञात है ।

हे पुत्र ! देह प्राण इंद्रिय मन बुद्ध्यादि आनंदमयादि कोष अध्यात्म उपाधि परिच्छिन्नरूप पदार्थोंके मध्य किसीको तू ब्रह्मात्माको स्वरूप जानता है तो तुच्छ जानता है । तैसे चक्षु आदि इंद्रियोंके सूर्यादि अधिदैव परिच्छिन्नरूप पदार्थोंमें किसी एकको तू ब्रह्मात्माका स्वरूप जानता है सो भी तुच्छ ही जानता है । तैसे भूत भौतिक शब्दादि अधिभूत पदार्थोंमें किसी एकको तू ब्रह्मात्माका स्वरूप जानता है तो तू अत्यंत तुच्छ जानता है । तात्पर्य यह कि, माया तत्कार्यके मध्यमें किसी भी पदार्थको तू ब्रह्मात्माका स्वरूप जानेगा तो ब्रह्म असत् जड दुःख दृश्य मिथ्या सिद्ध होवेगा, क्योंकि जो जाननेमें आता है सो ब्रह्मात्मा नहीं, किंतु ब्रह्मात्मा सर्व मनादियोंको जाननेवाला है । इससे सर्व पूर्वोक्त उपाधि रहित ब्रह्मात्माका स्वरूप जाना जाता नहीं क्योंकि स्वयंप्रकाश है । बुद्धिकी वृत्तिरूप ज्ञानका विषय नहीं । इससे तुमको स्वात्मविचार करना योग्य है । पुत्रने कहा-मैंवत् मैं ब्रह्मात्मा अपने निजस्वरूप स्वाभाविक बन्ध मोक्षरहित

अवाङ्मनसगोचर सर्वाधिष्ठान जगद्विध्वंस प्रकाश अवेद्यत्व सदा अपरोक्ष साक्षी सच्चिद्घन विशुद्धानंदको सम्यक् निजात्मा जाननेवत् जानता हूँ, कोई विषय विषयी भावकर नहीं जानता हूँ, किंतु स्वयंप्रकाश भूमामें सर्वका अनुभवी आत्मा विदितसे भिन्न ग्रहण त्यागके योग्य नहीं और सर्व विदित अविदित ग्रहण त्यागरूप भी मैं ही हूँ (स्वप्नद्रष्टावत्) पिताने कहा-हे पुत्र ! तू धन्य है ऐसा जानना ही सम्यक् जानना है ।

ज्ञानी अज्ञानीका भेद

पुत्रने कहा-हे पिता ! विधिपक्षसे भी ब्रह्मात्मा सर्वथा अज्ञात ही है क्योंकि सर्वरूप आप होनेसे तथा अन्यके अभावसे भी अज्ञात ही हुआ निषेधी पक्षसे भी अवाङ्मनसगोचर होनेसे भी अज्ञात ही हुआ तो ज्ञानी अज्ञानीका क्या भेद है ? तिसके जाननेके साधन भी व्यर्थ ही हुए । पिताने कहा-हे पुत्र ! अनेक विधि आप अपने वस्तुओंके स्वरूप हैं, जो जिस वस्तुका जैसा स्वरूप है सो तैसाही जानता है सोई सम्यग्दर्शी है । जैसे-प्रकाश्य प्रकाशक, दृश्य द्रष्टा, प्रेर्य प्रेरक, आत्मा अनात्माके भिन्न अभिन्न ज्ञानियोंको सम्यक् असम्यक् दर्शी कहते हैं। तथा वाङ्मनसगोचर अवाङ्मनसगोचर ब्रह्मात्माके स्वरूप भिन्न अभिन्न ज्ञानियोंको सम्यक् असम्यक् दर्शी ब्रह्मवेत्ता कहते हैं । जैसे-आत्मा सत् चित् आनंदरूप वा सत् चित् आनंद आत्माके गुण जाननेवाले को सम्यक् असम्यक् दर्शी कहते हैं और सम्यक् ब्रह्मात्मा एकत्व ज्ञानसे सुखरूप मोक्ष और ज्ञान भिन्न अन्य साधनोंसे सुखरूप मोक्ष जानने वालेको सम्यक् असम्यक् दर्शी विद्वान् कहते हैं । तैसे चाक्षुष आदि ज्ञानोंमें भी जान लेना इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं । तैसे ही जो अवा-

ङ्मनसगोचर ब्रह्मात्मा स्वरूपको जानते हैं सोई आत्मज्ञानी हैं अन्य अनात्मज्ञानी नहीं हैं।

हे पुत्र ! शमादिपूर्वक कर्म उपासना के अनुष्ठानसे शुद्ध अचल अन्तःकरणविषे ही गुरु उपदेशद्वारा ऐसा निश्चय होता है अन्य रीति से नहीं। साधन भी कर्म उपासना शमादि सफल है और जो अवाङ्मनसगोचर कर ब्रह्मात्माको जानता है सोई अनात्मदर्शी है। ज्ञानी अज्ञानीके शिरपर कोई शृङ्ग अशृङ्ग नहीं जो भिन्न भिन्न पहँचान होवे।

हे पुत्र ! इष्टसाधनता, योग्यता, स्वीकृति साध्यता ज्ञानपूर्वक ही ब्रह्मासे आदि लेके चींटीपर्यंत सर्व ज्ञानी अज्ञानीकी प्रवृत्ति होती है, इससे विपरीत हेतुओं से सर्वकी निवृत्ति होती है परंतु परमा अपरमा ज्ञानी का नियम नहीं। कह भेद ज्ञानी अज्ञानीका क्या हुआ ? हे पुत्र ! सर्व पदार्थोंके सामान्य विशेष ज्ञानमें मायाविशिष्ट ईश्वर विना सर्व जीव ज्ञानी भी हैं तथा अज्ञानी भी हैं, एक पदार्थके ज्ञानमें भी ज्ञानी अज्ञानी जीव कहे जाते हैं, जैसे--माणिककी सम्यक् परीक्षावाला माणिकका ज्ञानी कहा जाता है अन्य नहीं। तैसे ही शिल्प विद्यावाला शिल्पज्ञ कहा जाता है और वही मनुष्य धनुषविद्यामें अल्पज्ञ है। धनुषविद्यावाला शिल्पविद्यामें अल्पज्ञ है, इसी रीतिसे सर्व समष्टि व्यष्टि पदार्थोंमें जान लेना। इससे यथार्थ स्वरूप पदार्थोंका सम्यक् असम्यक् जानना ही ज्ञानी अज्ञानीपना है और कोई चिह्न नहीं केवल दृष्टिका भेद है, सो भी स्वसंवेद है परसंवेद नहीं।

हे पुत्र ! जब यह अधिकारी अपने नित्य ज्ञान अनन्त रूप सर्वात्माको सम्यक् अपरोक्ष निजस्वरूप जानता है

तब किस चक्षु आदि साधनोंकर वा चक्षु आदि जन्य ज्ञानोंसे किस रूपादिक पदार्थोंको देखे नाम जाने। किन्तु किसीकर भी नहीं देखता क्योंकि सर्वरूप आप ही है! जैसे-पंचभूतोंका कोई कार्य अपने स्वरूपको सम्यक् जानता है तो सर्व नामरूप प्रपंच आप होता है, इदंताकर अपनेसे भिन्न अन्यको नहीं देखता। जैसे-तरंग अपने मधुर शीतल द्रवतास्वरूप जलको सम्यक् जानता है तो सर्व जलरूप आप होता है। जैसा--स्वप्नद्रष्टा निज विज्ञानसे सर्व स्वप्न पदार्थोंको अपना आप ही जानता है सो सर्वात्मा होता है तो किससे किसको देखे किन्तु भिन्न नहीं देखता। अन्यथा आपको भिन्न कल्पता है, अन्यको भिन्न जानके ही दुःख पाता है।

चक्षु आदि इंद्रिय आत्मा नहीं

हे पुत्र! शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध और मैथुनजन्य सुख, अनिष्ट संबंधजन्य दुःख इष्ट संबंधजन्य सुख और संकल्प निश्चयादि जिसकर जाने जाते हैं सोई तेरा स्वरूप है। पुत्रने कहा--चक्षु मन आदि इंद्रियोंकर रूपादि विषय जाननेमें आते हैं, इससे चक्षु आदि इंद्रियें ही आत्मा हुए। पिताने कहा- हे पुत्र! जैसे--तीर (बाण) से वा बन्दूकसे निशाना बेधा प्रतीत होता भी है, परन्तु जब विचारें तो चैतन्य पुरुष बिना जड परतंत्र तीरादि निशानेको कैसे वेधेंगे किन्तु नहीं वेधेंगे क्योंकि निशाना तीर बन्दूक धनुष और हाथ चक्षु मनादि पुरुषप्रयत्न बिना कुछ नहीं कर सकते तथा न जान सकते हैं पुरुष ही सब तीरादियोंके न्यूनाधिक हालको जानता है तथा न्यूनाधिक भाव कर सकता है। जैसे मन्दिरमें दीपक बारियोंद्वारा बाहिर पदार्थोंको प्रकाशता है बारियां नहीं तैसे दार्ष्टांत जान लेना। तीरादियोंके तुल्य मनादि है,

लौकिक पुरुषवत् आत्मा है। इससे जड परतन्त्र मन इंद्रियादि आत्मा नहीं । जैसे-तीरादि पुरुष नहीं । हे पुत्र ! जैसे-रज्जु सर्पके सम्यक् विवेक समकालमें ही रज्जु-विषे सर्पकी निवृत्ति और अकंपादियोंकी प्राप्तिवास्ते भी अन्य प्रमाण वा अन्य साधनादि खोजने जाना नहीं, जो खोजता है सो भ्रांतिमान् है। किन्तु ज्ञान समकाल ही भय कम्पकी निवृत्ति और रज्जुकी प्राप्ति होती है, तैसे प्रत्यक् आत्माके सम्यक् जाननेसे ही बन्धकी निवृत्ति मोक्षकी प्राप्तिवास्ते अन्य प्रमाण वा अन्य साधन वा अन्य फल खोजने योग्य नहीं, जो खोजे सो भ्रांतिमान् है । हे पुत्र ! यद्यपि प्रत्यक्षादि प्रमाणोंकर यह संसार सत् भी भासता है तथा प्रत्यक्षादियोंके ज्ञानमें साधन भी प्रतीत होते हैं तथा रूपादि ज्ञेय भी प्रतीत होते हैं तो भी यह त्रिपुटी मिथ्या मायामात्र है । प्रमाता प्रमाण प्रमेयका ज्ञाता द्रष्टा तुम्हारा स्वरूप है त्रिपुटी तुम्हारा स्वरूप नहीं । जैसे-स्वप्नकी प्रमाता प्रमाण प्रमेय त्रिपुटी सद्रूपसे भासती भी है तथा प्रत्य-क्षादि प्रमाण रूपादियोंके साधन भासते भी हैं तो भी मिथ्या मायामात्र हैं । स्वप्नके सर्व इन्द्रियादि पदार्थ एक द्रष्टा चैतन्य आत्मासे ही प्रकाशमान हैं तिस द्रष्टा विना कोई भी स्वप्नके इंद्रिय सूर्य घटपटादि पदार्थ आपसमें प्रकाश्य भाव नहीं, तैसे आत्मा ही प्रत्यक्षादि प्रमाणोंका तथा सर्व दृश्यका प्रकाशक है, इंद्रिय सूर्या-दियोंसे घट पटादि प्रकाशते नहीं किन्तु आत्मा ही इंद्रिय सूर्यादि पदार्थोंमें स्थित हुआ मन इंद्रियादि सहित सर्व पदार्थोंको प्रकाशता है । जैसे-पुरुष ही मंदिरमें स्थित बारी द्वारा बाहर सर्व पदार्थोंको देखता है बारियां नहीं। जैसे-दर्पणमें अनेक प्रतिबिंबोंको पुरुष ही प्रका-

शता है दर्पण नहीं जैसे-दूरबीनमें पुरुष ही देखता है दूरबीन नहीं। परंतु दूरबीनादि देखनेके साधन हैं। हे पुत्र इस कार्य कारण संघातकी ही अविवेक दृष्टिसे प्रतीतिकी प्रधानता होनेसे आत्मा अधिष्ठानकी स्फूर्ति नहीं होती। जैसे-रज्जुके अज्ञानसे कल्पित सर्पादियोंकी प्रधानताके प्रतीत होनेसे रज्जु भासती नहीं; तैसे आत्मा सर्पादि और इस संघातके अन्तर गूढ छिपा हुआ है। विवेकीको आत्मा रज्जुकी प्रधानता स्फुट भान होती है, अविवेकीको नहीं।

मायावी (इन्द्रजाली) पुरुषके दृष्टांतसे आत्माकी असङ्गता

जैसे-मायावी इन्द्रजालिक पुरुष एक तंतु ऊपर आकाशमें फेंकके आप आयुध सहित तंतु पर आरूढ होके अदृश्य हुआ युद्ध करता है पुनःखण्ड खण्ड होयके आप ही नीचे पतन हुआ भी प्रतीत होता है पुनः पूर्ववत् वैसा ही उठ खड़ा होता है। परन्तु तिस इंद्रजालिकके सम्यक् सत् स्वरूपको जाननेवाले पुरुष तिस इंद्रजालिककी रची माया और मायाके कार्य स्वरूपको प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे अपरोक्ष देखते भी इन्द्रजालकी लीलामात्र मिथ्या मानते हैं। स्वमाया कर आच्छादित भी अमायिक परमार्थ रूप एक इंद्रजालिकको ही सत् मानते हैं, अन्य सर्व लीला मिथ्या मानते हैं। मूर्ख आश्चर्यवान् हुए लीला सहित मायिक इंद्रजालको ही सत् माने हैं तैसे नित्य सुख प्रकाश निजात्मारूप महा मायावी इंद्रजालीने यह नाम रूप जाग्रतादि मिथ्या प्रपञ्च तंतु पसारा है, तंतुपर आरूढ इन्द्रजालीके समान जाग्रतादियोंके अभिमानी समष्टि वैराट् आदियोंसे अभिन्न विश्व तैजस प्राज्ञादि सभास अन्तःकरण जीव हैं सो अपरमार्थ रूप हैं। तिनोंमें ही युद्ध करना खण्ड खण्ड होना पुनः पूर्वरूप होना आदि सर्व व्यवहार

है। जैसे-तंतु आरूढसे भिन्न ही परमार्थ रूप मायावी इन्द्रजाली पृथिवी विषे स्थित भी स्वमायासे आच्छादित अदृश्य है पूर्वोक्त युद्धादि सर्व विकारोंते रहित स्थित है बुद्धिमान् जानते हैं अन्य नहीं जानते। तैसे तुरीय प्रत्यगात्मा तुम्हारा सत् स्वरूप इस कार्य कारण संघातके अन्तर स्थित भी स्वमाया रूप वस्त्रसे ढका हुआ भी स्वतः निर्विकार है। परन्तु प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे अदृश्यमान हुआ भी कोईक श्रद्धा आदि साधनों सहित मुमुक्षु श्रुति अनुभवसे सम्यक् अपरोक्ष कर सकते हैं अन्य नहीं। हे पुत्र। व्यष्टि जाग्रतादि उपाधियोंसे तू ही तुरीय आत्मा भी विश्वादि संज्ञाको पाता है। तैसे ही समष्टि उपाधियोंसे तू चैतन्य ही वैराटादि संज्ञाको पाता है। उपाधियोंसे रहित तू ही शुद्ध ब्रह्म कहाता है। जैसे-क्रिया भेदसे एक ही मनुष्य अनेक संज्ञा पाता भी सर्व क्रिया रहित शुद्ध मनुष्य मात्र है। जैसे-एक आकाश घटादि उपाधियोंसे घटाकाशादि संज्ञा पाता है, उपाधियोंसे रहित शुद्ध आकाश मात्र है। हे पुत्र! तुम्हारा स्वरूप सर्व मन बुद्धि आदिकोंका अनुभव करनेवाला मनादियोंके अंतर स्थित है, इसीसे मनादियोंसे अदृष्ट है। जैसे-सर्व स्वप्न सृष्टिका अनुभव करनेवाला स्वप्न द्रष्टा सर्व स्वप्न सृष्टिके अन्तर स्थित है, इसीसे स्वप्न सृष्टिसे स्वप्न द्रष्टा अज्ञात अचिंत्य हुआ भी सर्वका द्रष्टा है। हे पुत्र! तू चैतन्य सर्व धर्माधर्मसे नाम माया तत्कार्यसे रहित है इसीसे तू शांत है। तुझ द्रष्टाका द्रष्टा कोई नहीं तू चैतन्य अजाग्रत् अस्वप्न, अनिद्रित है इसीसे तू जाग्रतादियोंके अभिमानी विश्वादि भी नहीं क्योंकि, उनका द्रष्टा है। जैसे-काष्ठमें हस्ती आदि पुतलियोंका काष्ठविशेष अधिष्ठान आधार है काष्ठसे हस्ती आदि भिन्न

हैं नहीं तैसे तू चैतन्य इन नामरूप आकाशादि पुतलियोंका अधिष्ठान है क्योंकि असत् जड दुःख दृश्य कल्पितके तुझ चैतन्यका सत् चित् आनंद स्वभाव जुदा देखनेमें आता है अधिष्ठानसे विषम सत्ता भ्रमकी कही है। तात्पर्य यह कि, अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे जो भिन्न भासे सोई भ्रमका रूप है। इससे तू दलीलदेके विचारद्रष्टाका स्वभाव और दृश्यका स्वभाव जुदा जुदा है। क्योंकि, एकमें करता है सम्यग्दर्शी हो। हे पुत्र! वाङ्मनसगोचर करके जो ज्ञान होता है सो नामरूप जाति गुणक्रिया संबंधवान् पदार्थोंकाही ज्ञान होता है सो आत्मज्ञान नहीं किन्तु मिथ्या भ्रांतिरूप ज्ञान है। सम्यक् अपरोक्ष अवाङ्मनसगोचर जो निजात्म ज्ञान है सोई सम्यक् ब्रह्मात्मज्ञान है वास्तवसे इन दोनों वृत्तिरूप ज्ञानोंका निजात्मा द्रष्टा है, इसीसे कथन चिंतनसे अगोचर है जैसे-स्वप्ननरोंके वाङ्मनसगोचर अवाङ्मनसगोचर दोनों ज्ञानोंका विषय नहीं। हे पुत्र! जैसे-शुद्ध स्फटिकमणि दूर स्थितरक्तके प्रतिबिंब सहित भासती भी वास्तवसे शुद्ध स्फटिकमणिको लालरंगवाली जानना भ्रांति है।

जगत् और स्वप्नकी तुल्यता

पुत्रने कहा-हे पिता! स्वप्न अल्पकालस्थायी है और जाग्रत् दीर्घकालस्थायी है, स्वप्नका पदार्थ देखा पुनः वही नहीं देखा जाता और जाग्रत्का देखा पदार्थ स्वप्न वा सुषुप्ति हुआ पीछे भी देखा जाता है तो स्वप्न जाग्रत्को तुल्य कैसे कहा है? पिताने कहा-हे पुत्र! जैसे-रज्जुविषे सर्पकी दीर्घकाल पुरुषको प्रतीति हुई पुनः तिसी रज्जुविषे तिसी पुरुषको माला वा जलकीलकीर अल्पकालप्रतीत होकर पुनः तिसी रज्जुविषे तिसी पुरुषको पुनःपूर्ववत् सर्प प्रतीति दीर्घकाल माला दंड प्रतीति

रहित तो तू ही विचार कि, क्या भेद हुआ कुछ नहीं हुआ। जैसे–स्वप्नमें स्वप्नांतर होता है तो प्रथम स्वप्नके देखे पदार्थ स्वप्नांतरके हुए भी वैसे ही रहते हैं और स्वप्नांतरके देखे पदार्थ प्रथम स्वप्नमें वही नहीं रहते यह अनुभव सिद्ध है। हे पुत्र ! सर्व जाग्रतादि प्रपंच तुझ अधिष्ठानमें स्वप्न रज्जु सर्पवत् समान ही कल्पित हैं किंचित् भेद नहीं।

आत्मा ही सर्व प्रकाशक

हे पुत्र ! जैसे–सूर्य नेत्रोंमें स्थित हुआ नेत्रोंको प्रकाशता और नेत्रद्वारा रूप भी प्रकाशता है तैसे ही तू चैतन्य मन प्राण देह इंद्रियादियोंमें स्थित हुआ मन इंद्रियादियोंको भी प्रकाशता है और मन इंद्रियादियों द्वारा सब जगत्का व्यवहार सिद्ध करता है. क्योंकि, तुझ आत्मासे भिन्न सर्व जड है। हे पुत्र ! मन संकल्पद्वारा क्रमसे सर्व पदार्थोंसे चिंतनरूप संबंध करता है और यह आत्मा मन पहुँचनेसे पहले ही मनविषे तथा नाम रूप पदार्थोंमें अस्ति भाति प्रियरूपसे प्राप्त है। जैसे–वायुके वा वायुसे चलाये तृणके अन्य स्थान पहुँचनेसे पहले ही आकाश वायुमें तथा सर्व पदार्थोंमें प्राप्त है। जैसे–स्वप्नमें स्वप्नरोंके अन्य स्थानमें पहुँचनेसे पहले ही स्वप्नद्रष्टा स्वप्ननरोंको हाजिर हुजूर है जैसे–जहां तरंग जावेगा जल आगे ही लावेंगा। जैसे यह शरीर तहां आगेही पंच भूत लावेंगे। हे पुत्र ! अन्तःकरणकी जो जो वृत्तियां स्वतंत्र वा इंद्रियों द्वारा उत्पन्न होती हैं सो सो आत्माके प्रकाश कर प्रकाशित हुई उत्पन्न होती हैं। जैसे–अग्निकर तपाये लोहेके कूटनेसे जितनेक लोहके चिनगारे निकलते हैं सो सर्व अग्निकर प्रकाशित ही निकलते हैं।

आत्माकी एक रूपता

हे पुत्र ! जैसे--एक ही सूर्य जलके अनेकपात्रोंमें अनेक रूप देख पड़ता है पर वास्तव एक ही है तैसे आत्मा तेरा स्वरूप अंतःकरणादि उपाधि कर अनेक रूप हुआ भी वास्तव एक रूप ही है। सत् चित् आनन्द स्वरूप निजात्मा ही दुःखोंसे रहित अपरोक्ष सुख मोक्ष स्वरूप है। अन्य अनात्म संसार दुःख रूप बन्ध है आगे जो इच्छा होय सोई कर।

ज्ञानीको ध्यानकी कर्त्तव्यता और अकर्त्तव्यता

पुत्रने कहा--ज्ञानवान्को भी ध्यान कर्त्तव्य है वा नहीं ? पिताने कहा--हे पुत्र ! जब शुद्ध दर्पणसे सम्यक् अपना मुख देखा तो कह पुनः मुखका ध्यान करना चाहिये कि नहीं ? पुनः दर्पणसे मुख देखे तो विलास मात्र है कर्त्तव्य नहीं। हे पुत्र ! प्रत्यगात्मा तुम्हारा स्वरूप स्वभावसे ही बन्ध मोक्षादि विकल्पसे रहित है। परन्तु सम्यक् आत्म ज्ञानरहित स्वरूप अपनेमें बंध मोक्षकी कल्पना करके पुनः तिनकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते अनेक प्रकारके यत्न करते हुए दुःख पाते हैं। तैसे आप ही आत्मविचार कर सुख पाते हैं। इससे आप ही सुख दुःख कल्पता है और आप ही मिटता है तो यही मालिक रहा; जैसे आकाशके स्वरूपका अज्ञानी नीलता रजादि मलिनतासे आकाशको मलिन जानके तिसकी निवृत्तिके वास्ते यत्न करे परन्तु सम्यक् आकाशके स्वरूपका ज्ञानी आकाशमें मलिनता जानता नहीं इसीसे यत्न करता नहीं।

हे पुत्र ! जैसे- पंच विषय सर्व ब्रह्मादि लोकोंमें एक सरीखे हैं और जैसे षोडश कला रूप सूक्ष्म शरीर सर्व ब्रह्मादिसे चींटी तक स्थूल शरीरोंमें एक ही सरीखे हैं, तैसे यह मनादिकोंका साक्षी आत्मा विष्णुसे चींटी पर्यंत

निर्विकार असंग निर्विकल्प सत् चित् सुख रूप बंध मोक्षसे रहित एक सरीखा सर्वके हृदयमें स्थित है। इसीसे ग्रहण त्याग आविर्भाव तिरोभाव अपना आप होनेसे होता नहीं।

परम समाधि—परम पदार्थ

चित्तकी एकाग्रता रूप समाधि चित्तके विक्षेप असमाधि दोनोंका द्रष्टा आपको जानना यही परम समाधि है। हे पुत्र ! मन सहित प्रतिबिंब रूप जीवको समाधि आदि कर्म करना है वा नहीं करना, परन्तु बिंब रूप सूर्य आत्माको नहीं करना यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। प्रतिबिंब की समाधि क्या है ? चल अचल जलमें स्थित भी बिंब रूप जानना और प्रतिबिंबकी असमाधि क्या है ? आपको बिंबसे पृथक् जानना; यही समाधि असमाधिका स्वरूप मालूम देता है. जो बिंब प्रतिबिंबके कर्तव्य आपमें माने तो भ्रांति है। तू बिंबभूत आत्मा त्याग कर, वैराग्यसे वैराग कर, समाधि असमाधिको सिद्ध करनेवाला प्रथम स्वतः सिद्ध आपको जाननेवत् जान, जो सुखीवत् सुखी होवे। यही ब्रह्मरूप अस्पर्श योगरूप समाधि है। निर्विषाद सर्वको सुलभ अत्यन्त हितकर है। यही ब्रह्मविदनका धन है। शास्त्र विद्वान् और स्वरूप अनुभवके सम्यक् विचारसे अधिकारियोंको सुलभ प्राप्त है।

आत्मा अनात्माका स्वभाव तथा बन्ध मोक्षके हेतु अकर्तव्यता

हे पुत्र ! आत्मा अनात्मा दो वस्तु हैं, तिनके भिन्न भिन्न स्वभाव हैं आत्मा अनात्मा नहीं होता और अनात्मा आत्मा नहीं होता है तम प्रकाशवत्। दोनोंके मध्यमें आत्मा वा अनात्मामेंसे किसीमें तुझको अहं प्रत्यय अवश्य करना ही पडेगा; क्योंकि तीसरी वस्तुका अभाव है, किसी न किसी पदार्थ विषे अहं प्रत्यय किये विना

मन माने नहीं । इससे तू सम्यक् विचारकर कह दोनोंके मध्यमें तू कौन है आत्मा वा अनात्मा ? जो तू आत्मा है तो कार्य कारण रूप संघातादि अनात्मा तथा तिसके धर्म जन्मादियोंका तुझ आत्माको द्रष्टा होनेसे तुझे नहीं पहुँच सकते । जो तू अनात्मा है तो अनेक यत्नसे भी जन्मादि बन्धन दूर हो सकते नहीं क्योंकि दोनोंका स्वतः स्वभाव सिद्ध है । इससे दोनों रीतिसे तुझको बन्ध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते अनेक साधनोंका कर्तव्यनिष्फल है। यही रीति द्रष्टा और दृश्यविषे, प्रेरक प्रेर्यविषे, असत्, सत्विषे, जड चैतन्यविषे, सुख और दुःखविषे, पूर्ण अपूर्णविषे, संगी असंगी विषे स्वाभाविक निर्विकल्प सविकल्पविषे, संसारी असंसारीविषे, वाङ्मनसगोचर अवाङ्मनसगोचरविषे, निर्विकार सविकारविषे, परमार्थ शुद्ध अशुद्धविषे इत्यादि सर्व पदार्थोंमें जोड लेना । तात्पर्य यह कि, पूर्वोक्त विशेषणोंमें एक तो अनात्मादि कार्यकारण प्रपंच दृश्यकोटिका है और एक आत्मादि विशेषण ब्रह्मात्मकोटिका है । जो अर्थ आत्मानात्मामें किया है सोई अन्यमें भी जान लेना ।

हे पुत्र ! सम्यक् विचारके कह-तू अब आपको क्या जानता है ? पुत्रने कहा-हे पिता ! आत्मानात्मादि विचारका निश्चय मनन, चिंतन, अहंप्रत्यय करना अंतःकरणका स्वभाव है, मैं चैतन्य तो इस स्वभावसे रहित मन वाणीसे अवाच्य स्वयंप्रकाशरूप हूँ, मुझमें, जानने न जाननेका मार्ग नहीं । मुझ चैतन्यको किंचिन्मात्र भी बन्ध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते कर्तव्य नहीं । यही हमारा निश्चय है । हे पुत्र ! वाङ्मनसगोचरादि विशेषण सहित मनादि दृश्यको तथा तिनके संकल्पादि धर्मोंको अपना द्रष्टा स्वरूप मत मानिये ।

कृष्ण और झूलनोत्सव-(कृष्णका ध्यान)

क्षेत्रज्ञ कृष्ण आप हैं। क्षेत्र दृश्यरूप क्षेत्रज्ञ कृष्णको मत करियो। यह भक्ति भी अभक्ति है और पूजा भी अपूजा है। सम्यक् कृष्णकी पूजा यही जाननी कि, क्षेत्र क्षेत्रज्ञको जुदा जुदा जानना । हे पुत्र ! मायारूपी पृथ्वीविषे तूला विद्यारूपी वृन्दावनमें इस संघातरूप मंदिरविषे अन्तःकरणरूप हिंडोलेमें स्थित क्षेत्रज्ञरूप तुझ कृष्णको सत्त्व रज तम रूप डोरियोंसे चिदाभासयुक्त अहंकार रूप जीव पुजारी झुलानेवत् झुला रहा है और तू अनेक दैवी आसुरी गुणरूप पुष्पोंकी सुगंधि लेनेवत् ले रहा है नाम तिनको प्रकाश कर रहा है मन चक्षुआदि इंद्रियरूप लोग तेरे दर्शन कर प्रसन्न होते हैं नाम आप अपने विषयमें तुझ कृष्ण क्षेत्रज्ञकी सत्ता स्फूर्तिकर प्रवृत्ति निवृत्तिरूप व्यवहार करते हैं। शब्द स्पर्श रूप रस गन्धविषयरूप भोग्य नामरूप प्रपंचरूपी थालमें रखके पूर्वोक्त जीव वा माया-विशिष्ट शालब्रह्म चिदाभाससहित मायारूप ईश्वर महंत तुझ कृष्णको सुख दुःखका अनुभवरूपी भोग लगाता है नाम तू चैतन्यही सुख दुखादियोंका अनुभव करनेवाला है, अन्य जड नहीं, शरीरमें रोमावली तुझ आगे वृक्षोंके बगीचे हैं। तू ही क्षेत्रज्ञ कृष्ण अवाङ्मनसगोचरकर कथन चिंतन करनेवाली ब्रह्मविद्यारूप बुद्धि राधासे तथा बुद्धिकी अनेक वृत्तियांरूपी गोपियोंसे पूर्वोक्त वृन्दावनमें रास खेल रहा है नाम सर्व कर्त्ता भोक्ता त्यागी भी अकर्त्ता अभोक्ता अत्यागी अपनी महिमामें स्थित है। पंचभूत तेरी पूजाके पात्र हैं। पंचकोश पूर्वोक्त मंदिरके किवाड हैं। अस्ति भाति प्रियरूप सम्यक् अपरोक्ष निजात्मज्ञान मंदिरकी परिक्रमा है। क्योंकि परिक्रमा करनेसे ठाकुर बीच आजाता है, तैसे सत् चित् आनंद स्वरूपसे भिन्न तुझ

ब्रह्मात्माका स्वरूप है नहीं। श्रुति स्मृति विद्वानोंका अनुभव मंदिरमें घण्टेके समान है। सूर्य चन्द्रमा दोनों झाडोंके समान हैं। तारागण अंतर बाहर छोटे दीपकोंके तुल्य हैं। दिन रात्रि नगारेके समान हैं। जगत्का अत्यंताभाव दृढ निश्चय इस मंदिरकी शोभा है। धर्म अर्थ काम मोक्ष मंदिरके चारों कोने हैं। विषयोंमें आरती मंदिरकी कांति है। पुत्र ईषणा धन ईषणा वित्त ईषणाका त्यागरूप मनोनाश वासनाक्षय तत्वज्ञानरूपी ठाकुरके माथेमें तिलक है। अपने कार्य सहित माया अविद्यारूप मलसे मैं सत् चित् आनंद असंग हूँ। यह निश्चय ठाकुरका स्नान है और अंतर बाहर सर्व नामरूप मनादि दृश्यका मैं सत् चित् सुखरूप द्रष्टा आत्मा हूँ; यही निरन्तर ब्रह्माकार वृत्तिरूप तुलसी ठाकुरपर है। अपने सहित सर्व हरिरूप जानना, पूर्व सर्व कायिक वाचिक मानसिक व्यवहारमें निष्कर्तव्यता चिंतन तुझ ठाकुरके भूषण हैं। मैं परिच्छिन्न नहीं तू ही है यही नमस्काररूप स्तुति है। मुझ अस्ति भाति प्रियरूप आत्मामें नामरूप जगत् है ही नहीं, यह दृढ निश्चय तुझ ठाकुरका चरणामृत है। मैं आत्मा त्रिगुणातीत गुणोंका साक्षी हूँ यह निश्चय ठाकुरकी पान बीडी है। संसाररूप जड पुतलीकी चेष्टा करनेवाला आपको जानना ही तुम्हारी आरती है। मनरूपी वायुके फुरणे अफुरणेमें मैं चैतन्य आकाशवत् सम हूँ, यही तुझको पंखा हो रहा है। जैसे सूर्यकी किरण सूर्यसे अभिन्न है तैसे नामरूप तुझ चैतन्यमें अध्यस्त होनेसे तुझसे अभिन्न ही है यही तेरे आगे धूप है। मन इंद्रियोंका दमन ही मर्दन है जो इस प्रकार ध्यान करता है इसी लोकमें वा ब्रह्मलोकमें ज्ञानद्वारा मोक्षको प्राप्त होता है।

मोक्ष प्राप्तिके अधिकारी

हे पुत्र ! सम्यक् आत्मज्ञानीकी सर्व चेष्टा समाधिरूपी ही है, जैसे--इस संघातकी सर्व चेष्टा पंचभूतरूप ही है। आत्मज्ञानी मोक्षकी नहीं इच्छा करता भी मोक्षको पाता है। जैसे--पक्का फल वृक्षसे न गिरनेकी इच्छा करता भी बलात्कारसे नीचे गिर पड़ता है। और ब्रह्मात्मा अज्ञानी मोक्षके लिये लाखों इच्छा करता भी मोक्षको नहीं पाता; जैसे--कूपमें पडा पुरुष लाखों बार कूदनेसे बाहर नहीं निकसता है। इससे सम्यक् देह अभिमान त्यागपूर्वक आत्मदर्शी हो।

सम्यक् त्याग

पुत्रने कहा--सम्यक् त्याग क्या है ? पिताने कहा--हे पुत्र ! जैसे--तरंग, भूषण खिलौनेमें भौतिक पदार्थ, घट-पटादिमें, रज्जु सर्पादि पदार्थोंमें, स्वप्न पदार्थोंमें, जल, स्वर्ण, चीनी; पंचभूत, मृत्तिका, तन्तु, रज्जु, स्वप्नद्रष्टा आदिरूप सम्यक् विचारपूर्वक बुद्धि करनी नाम जलादि कारणसे भिन्न तरंगादि कार्योंको मिथ्या वा अभाव जल-रूप जानना ही तरंगादियोंका त्याग है। तैसे नामरूप कार्य कारण संघातरूप प्रपंचमें अस्ति भाति प्रियरूप आत्मबुद्धि करनी वा पूर्वोक्त आत्मासे भिन्न सर्व नाम-रूपको मिथ्या वा अत्यंताभाव जानना ही प्रपंचका परम त्याग है, एकको ग्रहण एकको त्याग करना इसका नाम त्याग नहीं क्योंकि, जबतक शरीर है तबतक हजारों बार अनेक पदार्थोंका त्याग ग्रहण होता है। कार्यको कारण-रूप जानना ही कार्यका परम त्याग है, तैसे इस नामरूप प्रपंचका अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा विवर्त उपादान कारण है और नाम रूप कल्पित है, इससे आत्मा रूप

ही है, कल्पित वस्तु अधिष्ठानसे भिन्न नहीं होती, इस निश्चयका नाम त्याग है ।

तीन प्रकारका निश्चय

हे पुत्र ! अपने सहित सर्व कार्यकारण प्रपंच अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा ही है, इस विधिपक्षको ग्रहण कर वा वाङ्मनसगोचर कार्य कारण संसारसे मैं सत् चित् आनंदरूप आत्मा अवाङ्मनसगोचर हूँ, इस निषेधी पक्षको ग्रहण कर वा विधिनिषेध दोनों मन वाणीका कथन चितनरूप अनात्माका इससे दृश्य है, मैं चैतन्य विधि निषेधसे रहित हूँ मुझकर ही विधिनिषेध सिद्ध होते हैं । मैं चैतन्य विधि निषेधका विषय नहीं हूँ । और विधि निषेध भी मैं ही हूँ; सर्व रूप होनेसे । इन तीनों निश्चयोंसे भिन्न और निश्चय तुझको भ्रमका हेतु होगा तथा संसारका कारण होगा । आगे जो इच्छा हो सोई कर ।

मनुष्यमात्रको आत्मतत्त्व पानेका अधिकार

हे पुत्र ! चारों वर्णाश्रम पुरुषके मलरहित सफेद वस्त्रोंपर ही रंग चढता है; मलिनपर नहीं चढता । रंगको कुछ पक्षपात नहीं चाहे किसीका वस्त्र होवे । तैसे शम दम अमानित्वादि तथा सत् संभाषणादि धर्मानुष्ठानकर शुद्ध अन्तःकरणमें ही गुरु शास्त्रद्वारा निजात्मबोध होता है, अन्य कोई जाति निजात्मबोधमें कारण नहीं । यह सर्वके अनुभव सिद्ध है ।

साधन-(शास्त्रका असाधारण संकेत)

हे पुत्र ! निष्काम कर्मोंके अनुष्ठानसे शुद्ध मन कर और सगुण वा निर्गुण उपासनाके अनुष्ठानसे निश्चल मन कर । पश्चात् ज्ञान रूपी रङ्ग चढेगा, अन्यथा नहीं चढेगा, वा निरहंकार सरल बुद्धि आदि साधनसे गुरु भक्ति कर, गुरु सेवासे भी शुद्ध अन्तःकरण

हुए पीछे ज्ञान रूप रंग लगेगा। यह शास्त्रका असाधारण संकेत है।

सगुण और निर्गुण ब्रह्म

पुत्रने कहा-हे पिता! ब्रह्म सगुण है वा निर्गुण ह? पिताने कहा-हे पुत्र किर्लकाटी नाम करके जीव विशेष है, उसके एक दिनमें स्वाभाविक अनेक रंग बदलते हैं। तिसको न जानता हुआ नगर निवासी पुरुषने वनवासीसे पूछा कि, किर्लकाटीका लाल रंग है वा सफेद? उसने कहा-कि, लाल भी यही होता है और सफेद भी यही होता है। तैसे ही हे पुत्र! सत् चित् आनन्द रूप तेरा स्वरूप ही सगुण और निर्गुण दोनों रूप है, अन्य नहीं। मूर्ख विवाद करते हैं। हे पुत्र! जो ईश्वर निर्गुण होवे तो, सगुण माननेवालोंको दंड देवे और जो ईश्वर सगुण होवे तो, निर्गुण माननेवालोंको दंड देवे। जो जीव ईश्वरका भेद होवे तो अभेदवालोंको दण्ड होवे, जो अभेद होवे तो भेद माननेवालोंको दण्ड होवे। ऐसे ही अन्य बातोंमें जोड़ लेना। इससे तुझ सत् चित् आनंद प्रत्यक् आत्मासे भिन्न सब असत् जड़ दुःखरूप कल्पित है।

गुप्त सिद्धांत

हे पुत्र! वाणी बिना कहता हूँ और तुम श्रोत्रों बिना श्रवण करो। तू ही जीव ईश्वरका तथा सर्व जगत्का सिद्धकर्ता है। तू नहीं होवे तो जीव ईश्वर जगत्को कौन जानता है? सो तेरा ही सब मनौत है। आज तक किसीने भी जीवेश्वरका साक्षात्कार किया नहीं। यद्यपि शास्त्र प्रमाणसे साक्षात् विष्णु आदि मूर्तिमान् ईश्वर देखनेमें आये हैं तथापि साक्षात्पञ्च भूत वा माया रूप अन्य पुरुषोंके व्यक्तियोंके समान ही उनका व्यक्ति तथा व्यवहार देखनेमें आया है; ईश्वर है वा नहीं, यह ईश्वर

जाने । जो ईश्वर जगत्को रचके आप तिसमे प्रवेश हुआ है, सर्व ईश्वरही है जो नहीं तो क्योंकि बुद्धि नहीं आदियों का साक्षी, अन्तर्यामी, षट् भाव विकार रहित, सत् सुख अव्यक्त, निज चैतन्य भिन्न सर्व जीवेश्वर मिथ्या जड है, सो चैतन्य तू है, जो चैतन्य तू न होवे तो मनादि जडके समान स्वरूपको तू जाने परन्तु तू ही मनादियोंको जानता है, इससे तू ही चैतन्य सिद्ध हुआ । तू ही मनादियोंको सिद्ध करता है, मनादि तुझको सिद्ध नहीं करते । तैसे ही सूर्यादि सर्व पदार्थोंमें जान लेना । हे पुत्र ! सुन सुनाके अपने ऊपर ईश्वरको तू क्यों थापता है ! जैसे चक्रवर्ती राजा भ्रमसे अपने ऊपर अन्यराज थापे तो भ्रम है विचार देख तुझ मनादियोंके साक्षी चैतन्य अंत व्यापक आत्मासे पृथक् ईश्वर किसी वैकुण्ठादि देशमें है नहीं क्योंकि ईश्वर पूर्ण है । मूर्खवत् मिथ्या दृश्य पदार्थोंका आश्रय मत कर इस मनादि दृश्यका द्रष्टा तू ही सत् चित् आनद रूप आत्मा है । हे पुत्र ! जो अनेक पुरुषोंके मनकी कल्पना दृश्य रूप अनेक वैकुंठादि देशमें विष्णु आदि ईश्वरोंको मनौत सफल होगी तो सर्वके अनुभव सिद्ध सत चित् आनंद साक्षी आत्मा रूप मनौतमें तुझको फल क्यों न होगा ? किन्तु अवश्य होगा क्योंकि दोनों भावना शास्त्र प्रतिपाद्य हैं । अथवा दोनों भावना माया वा अंतःकरणके परिणाम हैं । यदि सत् हैं, तो दोनों भावना सत् हैं असत् हैं तो दोनों असत् हैं । परन्तु सर्वके अनुभव सिद्ध आत्मा रूप ईश्वरका लोप परोक्ष बातोंसे नहीं होता ! बहिर्मुख बुद्धि मुमुक्षुको मनकी निश्चलताके कथन किया जो देश काल वस्तु भेद सहित विष्णु आदि ईश्वर, तिनका मिथ्यापना अर्थात् सम्यक् बाध्य जान कर हो जाता है । तू अपने सत् चित् आनन्दरूप आत्माको

ही ईश्वर जान जो तू आपको ईश्वर माननेमें भय राखे तो मत मान. परन्तु "यह मनादियोंका साक्षी सत् चित् आनन्दरूप निजात्मा मैं हूँ" ऐसी भावना कर, जो वही रूप होवे। जो ऐसे नहीं जानेगा तो असत् जड दुःख रूप माया तत्कार्य पदार्थों मध्ये किसीको तू ईश्वर आत्मा निश्चय करेगा तो, अन्तमें वही माया तत्कार्य असत् जड दुःखरूप होवेगी. क्योंकि, वैकुण्ठ आदि जानेकी भावना ही कारण है तो पूर्वोक्त रीतिसे निज आत्माको ईश्वर जानना भी भावना ही है आगे जो इच्छा हो सो कर।

मनके रोकनेका उपाय

पुत्रने कहा--हे पिता ! मनके रोकनेका उपाय कहो! क्योंकि मन रुके विना दुःख होता है, रोकनेसे सुख होता है, ऐसे शास्त्रोंमें सुना है । पिताने कहा–हे पुत्र ! जैसे– घटाकाश वायुके रोकनेका उपाय पूछे और वायुके रुकनेसे सुख दुःख माने तथा जैसे–स्वप्नद्रष्टा स्वप्ननरोंके मनके रोकनेका उपाय पूछे तथा रुकने न रुकनेसे हर्ष शोक माने तैसे तेरा प्रश्न है हे पुत्र ! आकाशका वायु बाहर जावे तो घटाकाश वायुको रोके, परन्तु वायु आकाशसे बाहर जाता नहीं आकाशके भीतर ही वायु स्थित है आकाशका काय होनेसे । आकाशसे वायुका बाहिर न जाना ही वायुका रुकना है. सो स्वतः सिद्ध है तथा वायुके रुकने न रुकनेसे आकाशको हानि लाभ भी नहीं। तैसे ही स्वप्नद्रष्टाके अंतर्भूत ही स्वप्नसृष्टि है, सो बाहिर जावे नहीं, जो बाहर जावे तो रोकना चाहिये। इससे स्वप्नसृष्टिको स्वप्नद्रष्टाने स्वतः सिद्ध ही रोक रक्खा है अब नवीन नहीं रोकना और स्वप्नके मन रुकने न रुकनेसे स्वप्नद्रष्टाको हानि लाभ भी नहीं इत्यादि और भी दृष्टांत जानके दार्ष्टांतमें जोड लेना।

हे पुत्र ! मनादि प्रपंच तुझ सच्चिदानन्द रूप आत्मामें रज्जु सर्पवत् कल्पित है, सो स्वतः ही कल्पित वस्तुको अधिष्ठानने रोक रक्खा है अधिष्ठानसे पृथक् कल्पित वस्तु भासे नहीं । हे पुत्र ! जैसे—सूर्यके आभास सहित तालाबका जल है तथा नालीका जल भी आभास सहित है तथा केदारेका जल भी सभास ही है । इस बहिस्त्रिपुटीको पुरुष चाहे तोड देवे चाहे बना लेवे, चाहे न्यूनाधिक भाव करे, त्रिपुटीके सर्व न्यूनाधिक भावाभावको जानता है । इस जड त्रिपुटीका पुरुष ही मालिक है यह अनुभव प्रत्यक्ष दृष्टांत है । तैसे ही अन्तर प्रमाता प्रमाण प्रमेयादि जड त्रिपुटीका तू ही तुरीय आत्मा चैतन्य ही मालिक है तथा त्रिपुटियोंका न्यूनाधिक भाव जानता है इससे त्रिपुटीका द्रष्टा तू ही चैतन्य निर्विकार है । हे पुत्र तू अपने पुत्रपनेके अहंकारको त्याग, मैं पितापनेका अहंकार त्यागता हूँ मैं वाणी विना कहता हूँ, तू श्रोत्र बिना सुन और कह । परन्तु ऐसे कह जिससे परे कहना, सूँघना, सुनना, स्पर्श करना, देखना, रसलेना, ध्यान करना, जानना आदि व्यवहार बाकी न रहै अथवा सर्व कहना, सुनना, सूँघना, देखना, स्पर्श करना, रस लेना, ध्यान करना, जानना आदि व्यवहार आजावे । जैसे पंचभूतोंके जाननेसे सर्व भौतिक पदार्थ जाने जाते हैं, ऐसे ही पंचभूतों सहित माया तत्कार्य सर्व पदार्थ जिसके जाननेसे जाने जाते हैं ऐसा जानना सुनना चाहिये ।

वृत्रासुर और इन्द्रकी लड़ाई

हे पुत्र ! इससे तू इन्द्र अज्ञानरूपी वृत्रासुरको विष्णुरूप गुरुकी सहायतासे ज्ञानरूपी वज्रकर हनन करेगा तो निर्भय राज्य भोगेगा ।

अहल्या

हे पुत्र ! तू अहल्यारूपी अविद्यासे तू चैतन्य साक्षी इंद्र क्यों एकमेक होता है ? विद्वानोंकी निष्ठाको ग्रहण कर। मूर्ख मत हो ।

चन्द्रमासे बृहस्पतिकी स्त्रीका हरण और उससे बुधकी उत्पत्ति

हे पुत्र ! शमादि अनेक दैवी गुणोंरूप देवतोंकर पूज्य विवेकरूप बृहस्पतिकी ब्रह्मविद्यारूप स्त्री और चतुष्टय साधन संपन्न पाप रूप तमतासे रहित शुद्ध अधिकारी रूप चंद्रमाके संगमसे बोध रूपी बुध पुत्र उत्पन्न होवेगा तो बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते सर्व कर्तव्योंसे अकर्तव्य होवेगा। आगे जैसी ईच्छा हो तैसे कर ।

सहज समाधि

पुत्रने कहा–चित्तकी एकाग्रता विना आनंद नहीं आता तो चित्तकी एकाग्रता करनी योग्य है । पिताने कहा–हे पुत्र ! चित्तकी एकाग्रता स्वभावसे ही आप होती रहती है तैसे यत्न विना ही हर वक्त नाम रूपात्मक सात्विकी राजसी तामसी पदार्थोंका वा अध्यात्म आधिभौतिक आधिदैविक पदार्थोंका वा माया तत्कार्य रूप पदार्थोंका स्वाभाविक ही चित्तकी एकाग्रता पूर्वक ही ज्ञान होता रहता है क्योंकि, ज्ञान पूर्वक ही हमारी तुम्हारी तथा सर्व जीवोंकी इष्ट अनिष्टमें प्रवृत्ति निवृत्ति होती रहती है । आनंद स्वरूप आत्मा ही सबका इष्ट है सो एक पदार्थोंका ज्ञान एक क्षण रहे वा दो क्षण रहे चार वा आठ वा दश क्षण रहके पुनः दूसरे पदार्थका ज्ञान होता है । इसी तरह हर वक्त हर पदार्थका वृत्ति रूप ज्ञान अदल बदल होता रहता है । परन्तु यह नियम देखनेमें आता है कि, किंचित्‌की एकाग्रता विना पदार्थका ज्ञान होता ही नहीं, किंतु क्षणमात्र वा दो क्षणमात्र वा चार क्षण एकाग्र

बुद्धिसे ही पदार्थका सम्यक् ज्ञान होता है सो आनंदस्वरूप तथा ज्ञानस्वरूप निजात्मा ही है अन्य पदार्थ नहीं, है, सो निजात्मा सर्व देशमें सर्व कालमें सर्व वस्तुमें आकाशके समान पूर्ण है। एक न एक वस्तुका सर्व कालमें स्वाभाविक ज्ञान बना रहता है इससे यह सिद्ध हुआ कि. यत्न विना स्वाभाविक वृति ज्ञान रूप चित्तकी एकग्रता सिद्ध हुई और चित्तकी एकाग्रता निमित्तक आत्म रूप सुखकी प्रगटता भी यत्न विना ही सिद्ध हुई, कर्त्तव्य करनेसे नहीं इस वास्ते सम्यक् आत्मदर्शीको हर वक्त निर्यत्न सहज समाधि कही है। यह नहीं कि, चित्तके अफुर होनेसे ही समाधि है, फुरनेसे नहीं, किंतु चित्तके फुरने अफुरनेसे भी पूर्वोक्त रीतिसे समाधि ही है। हे पुत्र ! जैसे वायुके दशों दिशाके फुरने अफुरनेका आकाश ही विषय नाम सम्बन्धी है क्योंकि आकाश व्यापक है। तैसे मन रूप वायुके दशों दिशा फुरने अफुरनेका सत् चित् आनन्द रूप आत्मा ही विषय नाम सम्बन्धी है क्योंकि पूर्ण है इससे सर्व प्रकारसे निष्कर्तव्य रूप मालाको फेरते रहो। हे पुत्र ! जैसे—समुद्रकी झाल हमेशा होती रहती है परन्तु आकाश तिन झालमें आपको निष्कर्तव्य असंग अक्रिय विकार रहित मानता है; तैसे मनरूपी वृत्तियोंके फुरने अफुरने रूप झालमें तू आकाश रूप आत्मा निष्कर्त्तव्य है यह बात सबके अनुभव सिद्ध है।

ज्ञान अज्ञान आदि मनन मात्र

हे पुत्र ! जब तू पूर्व आपको अज्ञानी मानता था तब जैसे संघातका धर्म खान पान मान लज्जादि व्यवहार था तैसे ही अब ज्ञान कालमें भी होता है कुछ अदल बदल नहीं हुआ। यह नहीं कि, पूर्व शिर पर बोझ था अब उतर गया है। कोई विलक्षणता हुई नहीं है, इससे

विचार देख ज्ञान अज्ञानादि केवल मनन मात्र सिद्ध होते हैं। हे पुत्र ! तू चैतन्य ही निर्गुण ब्रह्मको मन रूप मंत्री कर कल्पता है, तूही सगुण ब्रह्मको तथा तिसकी भक्तिको कल्पता है तथा ज्ञान कर्म उपासना कल्पके आपको अधिकारी अन्यको अनधिकारी कल्पता है तथा तू ही पाप पुण्य धर्म्माधर्म्म बन्ध मोक्ष कल्पता है तथा सत असत, कर्तव्य अकर्तव्य, सुख दुःख,दैवी आसुरी, माया अविद्या, जीव ईश्वर, ब्रह्म, जड़ अजड़, जीवेश्वरका भेदाभेद कल्पता है इत्यादि सर्व पदार्थोंकी कल्पना अकल्पनाका तू ही चैतन्य मालिक रहा। जो तू नहीं होवे तो कौन किसको जाने क्योंकि तुझ सत सुखचैतन्यसे पृथक् सर्व असत् जड़ दुःख-रूप है। हे पुत्र ! जिसजिसकी तू कल्पना करता है पुनः जिस जिसको तू जानता है तथा ध्यान करता है सो तू नहीं क्योंकि जो जाननेमें ध्यान करनेमें आवे तिस तिससे तू न्यारा है।

मोक्षदायक जप

पुत्रने कहा–तुम कौन हो ? पिताने कहा–जो तू है। पुत्रने कहा–तुम आये कहांसे हो ? पिताने कहा–जहांसे तू आया है। जावोगे कहां ? जहां तू जावेगा। करते क्या हो ? जो तू करता है। भोगते क्या हो ? जो तू भोगता है। तुम्हारे माता पिता कौन हैं ? जो तेरे माता पिता हैं। तात्पर्य यह कि, जो तेरी सामग्री है तथा सर्व जगतकी है सो ही हमारी है जो तू ब्रह्मरूप है तो हम भी ब्रह्मरूप हैं जो तू जीव है तो हम भी जीव हैं। जो कुछ तू जानता है सो हम भी जानते हैं जो तुझको अपमानादि अनिष्ट भान होते हैं तथा मानादि इष्ट भासते हैं सोई हमको हैं। जो तेरे सुख दुःखके साधन हैं सोई

हमारे हैं। जो तुझको शब्दादि विषयोंका सब प्रकारसे अनुभव होता है तैसे ही हमको होता है। जो तेरे मन इन्द्रियोंके स्वभाव हैं सोई हमारे हैं। कहां तक गिनें, सर्व रूपसे जो तेरे संघातके स्वभाव हैं सो ही हमारे संघातके स्वभाव हैं। जो तू संघातका साक्षी है तो हम भी संघा-तके साक्षी हैं। सबमें आत्म उपमा जान इसीसे "सर्व ब्रह्म है" ऐसे शास्त्र कहते हैं। सर्व कल्पनाको छोडके सम निष्कर्तव्यरूप जो जप है तिसी जपको जप। जो पूर्वोक्त रीतिसे इस जपके अर्थको सम्यक् जानता है सो ही ज्ञानी है। जो अर्थको न जानके भी इस जपको प्रेमसे जपता है तो उपासनारूप भक्तिमान् कहाता है। राम राम-वत् मन वाणीसे जो इस जपका कथन चिंतन करता है सो मन वाणीका कर्म शारीरिक कर्मवत् कहाता है।

हे पुत्र ! पूर्वोक्त ज्ञानका फल तो अनुभव प्रत्यक्ष है। यदि राम राम जपका विष्णु आदियोंके ध्यानरूप उपास-नाका वैकुण्ठादियोंके प्राप्तिरूप अदृष्ट फल शास्त्रोक्त रीतिसे सत् होगा तो "मैं सत् चित् आनंदरूप आत्मा सर्व मना-दियोंका द्रष्टा असंग त्रिगुणातीत हूँ, मुझ अवाङ्मनस-गोचर आत्माको स्वभावसे ही बन्ध मोक्षकी प्राप्ति निवृ-त्तिवास्ते किंचिन्मात्र भी कर्तव्य नहीं वा सर्व अस्ति भाति प्रियरूप मुझ आत्माके होनेसे भी मैं बन्ध मोक्षके कर्तव्यसे निष्कर्तव्य हूँ" इस शास्त्रोक्त निर्गुण उपासना-रूप जपका भी फल अवश्य होगा। जो गोलमाल होगा तो सर्वका होगा एकका नहीं। जो पोल है तो सर्वमें ही पोल है, सत् है तो सबका कथन चिंतन सत् है। यह नहीं कि, एक शास्त्र सत्य है, अन्य असत् हैं।

हे पुत्र ! अत्यन्त अपनेसे भिन्न दूर वैकुण्ठादिमें विष्णु आदि ईश्वरोंकी दृढ भावनारूप भजनसे प्राप्ति होती है तो

अत्यन्त अपनेसे अभिन्न सच्चिदानन्द निजात्माकी दृढ भावनारूप भजनसे क्यों न तद्रूपताकी प्राप्ति होगी ? किन्तु अवश्य होगी। इससे "मैं सच्चिदानंद सर्व मनादियोंका साक्षी आत्मा हूं वा मन वाणीके विषय जाति गुण क्रियावान् पदार्थोंसहित मन वाणीसे मैं अवाङ्मनसगोचर हुआ भी अस्ति भाति प्रियरूप मैं ही सर्वात्मा हूँ इत्यादि विकल्पोंसे रहित मैं निर्विकल्प हूँ" इस दृढ भावनारूप भजनको कर जो आगे ही स्वतः वही रूप हुए पुनः भावनाके वशसे वही रूप होवेगा। जैसे-घटाकाश तथा प्रतिबिंब यह भावना करें कि, हम महाकाश और बिम्बरूप हैं, सो महाकाश तथा बिंब भावको आगे ही प्राप्त हुए पुनः भ्रांतिकी निवृत्तिसे वही रूप होते हैं। इसी वास्ते शास्त्रोंमें निजरूप आत्मवस्तुमें कारण सहित संसाररूप दुःखोंकी निवृत्तिकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्तिकी प्राप्ति कही है। जैसे-गुणके स्वाभाविक स्वरूपमें कटुताकी निवृत्तिकी निवृत्ति और मधुरताकी प्राप्तिकी प्राप्ति कही है!

मोक्षदायक शास्त्र प्रतिपाद्यकर्म

पुत्रने कहा-हे पिता! किसी शास्त्रमें कर्मोंको मोक्षका साधन कहा है, किसीमें नहीं, दोनों मध्यमें कौनके ठीक है ? पिताने कहा-हे पुत्र ! कर्म नाम करनेका है सो कायिक वाचिक मानसिक संघातके कर्म करनेसे ही धर्म अर्थ काम मोक्ष नाम सुखकी प्राप्ति होती है कुछ न करनेसे ही चारोंकी अप्राप्ति होती है। यह सर्वके अनुभव सिद्ध है। जैसे-क्षुधारूप दुःखकी निवृत्ति और तृप्तिरूप सुखकी प्राप्ति भोजनका करनारूप कर्मसे ही होती है इत्यादि जान लेना। आत्मानात्माका सम्यक् विचाररूपी ज्ञान मोक्षका साधन लिखा है सो भी मानसिक कर्म है

यह नहीं कि, शारीरिक ही कर्म है मानसिक कर्म नहीं किन्तु जो संघातसे करिये तिसीका नाम कर्म है, इससे कर्मोंसे ही सुखरूप मोक्ष प्राप्त होता है और सुखरूप आत्मा है तिस आत्माकी भी संघातरूप कर्ममें ही उपलब्धि होती है अन्यत्र नहीं ।

दूसरी रीतिसे कर्मोंसे मोक्ष नहीं, यह भी ठीक है क्योंकि मोक्ष सुखरूप आत्मा संघातकी चेष्टारूप कर्मकी उत्पत्ति स्थिति नाशके साक्षीरूप करके संघातकी चेष्टासे प्रथम ही स्वतः सिद्ध है इस वास्त आत्मा सुखरूप मोक्ष कर्मोंकर सिद्ध नहीं होता, यह भी ठीक है ।

कर्तव्य

हे पुत्र ! सर्व शास्त्रोंमें स्वपक्षमंडन परपक्षखंडन लिख रक्खा है क्या जाने किस शास्त्रकी बात सत है, किसकी नहीं ? कुछ अक्ल काम नहीं कर सकती । इसके सर्व संमत मृत्युयादपूर्वक, सत्संभाषणादि सद्गुणोंको अपनी सामर्थ्यके अनुकूल ग्रहण करना और असत् संभाषणादि असत् गुणोंका निजशक्ति अनुसार त्याग करना, ईश्वर को स्वस्वरूप करके वा भेद बुद्धि करके अपने व्यवहारके अवसर अनुकूल कालमें सच्चे दिलसे घड़ी वा दो घड़ी एक वक्त वा दो वक्त स्मरण करना । तात्पर्य यह कि, निजशक्ति मुवाफिक सगुणवा निर्गुण ईश्वरका गुरुदत्त नाम उच्चारणादिपूर्वक स्मरण वा ध्यान करना और सचावटका व्यवहार करना इतनेमं अकल्याण होवे तो होने दे तात्पर्य यह कि, धर्म पूर्वक अपना हक किसीसे छोडना नहीं और अन्यायपूर्वक दूसरेका लेना नहीं ।

गृहस्थ और विरक्तका कर्त्तव्य तथा गृहस्थ आश्रमकी महिमा

हे पुत्र ! पूर्वोक्त प्रकार ही सर्व गृहस्थ सज्जन पुरुषोंको उभय लोकके सुखका कारण है। सारा दिन भजनमें रहना,

हय गृहस्थ विमुक्त साधु पुरुषोंका काम है गृहस्थोंका नहीं. क्योंकि-चोर, यार, ठग, राजा, राजपुरुष, अभ्यागत, साधु, पशु, पक्षी, जीव, देवता, बेटी, भगिनी आदि निज संबंधी, ब्राह्मणादि, धाडवी, जुलमी, फकीर, फुकरा, लुच्चा जुआरी, उठाई गीरा, भूत पिशाच, प्रेत डाकिनी इंद्रजाली, भ्रमावक, कालवेलि, स्वांगी, झूठे, मन्त्री तंत्री, रसायनीवैद्य वेश्या कांजड इत्यादि साधु असाधु हजारों जीव फोकट (मुफ्त) माल खानेवाले गृहस्थके आश्रय हैं। गृहस्थ विमुक्त साधु पुरुषोंके तो आश्रय नहीं। साधु ही उलटा गृहस्थके आश्रय हैं खेती व्यापार नौकरी हुनरादि व्यवहार विना धन आकाशसे वा नदीमेंसे तो आता नहीं और न किसीको पूर्व आया है । धन विना कार्यकी सिद्धि होती नहीं । जो गृहस्थ व्यवहार नहीं करे और सारे दिन भजन ही करता रहै तो पूर्वोक्त जीवोंकी तथा अपनी पालना कैसे होवे ? जो व्यवहार करेगा तो हजारों तरहके हानि लाभका चिन्तनरूप दलील भी तथा शरीर वाणीका व्यापार भी कहीं थोड़ा कहीं बहुत ही पडेगा । इतना करनेसे भी नियम कहीं है कि, नफा वा नुकसान होवेगा ।

इससे सम्यक् विचार देखिये तो गृहस्थोंको किंचित् काल भी सच्चे दिलसे ईश्वरका भजन और सचावटका व्यवहार मोक्षदायक होवेगा, जो कोई न्यायकारी ईश्वर है तो जो ऐसा नहीं माने तो गृहस्थ लाचार है । कोई पर लोक तथा इस लोकके भय दूर करनेका उपाय है ही नहीं क्योंकि संघातके धर्म थोडा वा बहुत काम क्रोधादि तथा दर्शन स्पर्शादि संघातमें होवेंगे क्योंकि इनका ही शरीर यह भी ईश्वर संकेत है। शब्दादि ग्राह्य विषय सर्वत्र हाजिर हुजूर हैं तथा श्रोत्रादि इन्द्रिय भी स्व स्व

तिन विषयोंके ग्राहक सर्वत्र मौजूद होनेसे दोनोंका संबंध अनिवारण है, यह भी ईश्वरका संकेत है। इससे श्रोत्रादि इंद्रियकी स्व स्व विषयमें धर्मपूर्वक प्रवृत्ति होने देनी यही पुरुषार्थ रूप तप गृहस्थको मोक्षदायक होगा। अन्यथा कोई प्रकार तप बन सकता नहीं क्योंकि जैसे जो काम क्रोध लोभ मोह अहंकार झूठ कपटादि छलसे ठगी चोरी यारी आदि करते हैं तथा इंद्रियोंकी स्व स्व विषयमें प्रवृत्ति कायदेसे बाहर अन्याय जुलमसे करते हैं तथा जो स्व परके प्राणोंको पीडन करते हैं, तिनहींको राजा दंड देता है, अन्यको नहीं। यह नहीं कि, राजाकी स्तुति करनेवाले जुल्मीको दंड न होवे। किंतु जो कायदे बाहर जुल्म नहीं करे स्तुति करे चाहे न करे राजा दंड उसको नहीं देगा कायदा छोड़ना ही जुल्म है वा कायदा न तोड़ना राजाकी स्तुति है। राजाकी खैरख्वाही करेगा तो नेकनामी पूर्वक तिसका नतीजा आगेसे अधिक सुख होगा, सरकारी तर्फ मेहनत की हुई निष्फल नहीं होगी। यह नहीं कि, राजा सज्जनोंके धर्म रूप कायदे पूर्वक काम क्रोध लोभ मोह अहंकार करते हुए तथा निज इंद्रियोंको सज्जनोंवत् स्व स्व विषयमें प्रवृत्त निवृत्त करते हुए तथा खान पान शयन पहरान सवारी आदि करते हुए तथा निज पुत्र स्त्री आदि अनुकूल मित्रोंसे प्रीति करते हुए तथा निज धनको अन्याय युक्तिसे हर्त्ता चोर ठग दांभिक पुरुषोंसे अप्रीति रूपी द्वेष करते हुए तथा व्यवहारमें किसीका न लिहाज रूपी अदया करते हुए तथा दान तीर्थादि न करते हुए, राजा दंड देवेगा। किन्तु यह पूर्वोक्त सबमेंसे करनेवाले भी अन्यायी जुल्मीको ही दंड होता देखा है, अन्यको नहीं। क्योंकि राजा भी ईश्वर ही है। यही रीति परलोकमें ईश्वरकी भी होगी। जो ईश्वर अन्यथा

है तो अन्याय अनीश्वरता है। तो परलोकमें रहता सुखी होनेका नहीं, क्योंकि, मन इंद्रियादि संघातके गमनागमन बिना व्यवहार नहीं होता कोई न कोई व्यवहार बिना धन प्राप्त नहीं होता, धन बिना गृहस्थको सुख नहीं होता. क्योंकि; धन करके गृहस्थका चित्त स्थिर रहता है। स्थिर चित्तमें किंचिन्मात्र भी भजन महान् फलको देता है, जो ईश्वर गृहस्थका किंचित्काल निरहंकार-सहित सच्चे दिलसे भजन और सचावटका व्यवहार मात्र ही मोक्षका साधन अंगीकार न करेगा तो संसार खाता ही उठ जावेगा। ऐसा भी कहीं लिखा नहीं कि, धर्म पूर्वक व्यवहार करते गृहस्थी नरकको जाते हैं; किंतु अन्यायी जुलमी ही नरकको जाते हैं यही लिखा है। पूर्व भी जो ऋषि मुनि तथा अनेक सद्गृहस्थ हुए हैं क्या वह देखते, सूँघते, स्पर्श करते, रस लेते, सुनते, चलते, बोलते, मल मूत्र त्यागते, लेते, देते, व्यवहार करते नहीं थे? क्या धन संपादन नहीं करते थे ? किंतु सब करते थे। क्या पुत्रोत्पत्ति नहीं करते थे ? क्या उनको स्त्री पुत्रादि संबन्धी अप्रिय लगते थे? वा अबके वक्तमें मन इंद्रियोंका क्या पूर्वसे स्वभाव बदल गया है ? सो भी बदला नहीं । विषयेंद्रिय सम्बन्ध जन्य सुख दुःखका अनुभव उनको क्या नहीं होता था ? वा विलक्षण होता था ? ऐसे नहीं किन्तु हम लोगोंके माफिकही होता होगा क्योंकि विषय इंद्रियोंके स्वभाव पूर्व और रीतिके थे, अब बदल गये सो नहीं, किन्तु ईश्वरने इनका नियत एक ही स्वभाव रक्खा है, अन्यथा होता नहीं । ये भी नहीं कि पूर्व धन आकाशसे यत्न बिना गृहस्थोंको मिलता था, अब व्यवहार करना पडता है । जो पूर्व रीति थी सोई अब है। जो पूर्वोक्त सद्गृहस्थ सद्-

व्यवहारको करते हुए सद्गतिको प्राप्त हुए हैं तो अब वर्तमान गृहस्थलोग भी पूर्वोक्त रीति अनुसार सद्व्यवहार करते हुए तथा विषय इन्द्रियसंबंधजन्य सुख दुःखको अनुभव करते हुए यथायोग्य कायदे बमूजिब काम क्रोध लोभ मोह अहंकारादि करते हुए तथा कायदे बमूजिब निज निज इन्द्रियोंको स्व स्व विषयमें प्रवृत्त निवृत्त करते हुए तथा खान पान शयन पहरान सवारी आदि करते हुए तथा निज अनुकूल स्त्री पुत्र आदि मित्रोंसे प्रीति करते हुए तथा निज धनके अन्यायसे हर्त्ता चौरादि दांभिक पुरुषोंसे अप्रीतिरूपी द्वेष करते हुए व्यवहारमें किसीका न लिहाज करते हुए तथा दान तीर्थादि न करते हुए ईश्वर दंड देवेगा। किन्तु यह पूर्वोक्त सब करनेवालोंमेंसे भी अन्यायी जुल्मीको ही दंड होगा अन्यको नहीं। सदाचारियोंकी तो निश्चय सद्गति होगी, क्योंकि गृहस्थ व्यवहारमें सचावट ही महान् तप है, ईश्वरको परम प्रिय है और सद्गतिका कारण है। कठिन तपस्या तो गृहस्थविमुख विरक्तोंको ही योग्य है और तिन विरक्त पुरुषोंकी श्रद्धासहित सच्चे दिलसे सेवा करनेसे ही तिनकी सर्व तपस्याका फल सद्गृहस्थोंको होगा निन्दक तिनके पापके भागी होंगे और महात्मा तो दोनोंसे विमुक्त हुए मोक्षपदको प्राप्त होते हैं। जैसे तुम्बेके गलेमें पत्थर बांधा होय तो जलके नीचे रहता है और कदाचित् पत्थर टूट जावे तो तूंबा जलके ऊपर आजाता है। हे सद्गृहस्थो ! विश्वास ही बडी चीज है, देखिये मूढ गूजरी एक वक्तके सुननेसे ही राम नामकी नौका बनाके नदीसे उतर पार होती थी। तो विश्वास ही कारण हुआ अन्य साधन नहीं इससे आप लोगोंको भी विश्वास करना योग्य है आगे जो इच्छा हो सोई कीजिये।

अटल सिद्धांत

हे पुत्र ! सर्व जीवोंके हृदयसे पृथक् सत् चित् आनंद ईश्वर कहीं कचहरी लगाकर बैठा मालूम होता नहीं। जो है तो सर्व संघात तिसकी कचहरी है क्योंकि ईश्वर पूर्ण है। जो वैकुण्ठादि देशमें ही ईश्वर कहोगे तो पूर्ण अन्तर्यामी ईश्वर कहा है, सो न हुआ इससे जो कुछ है जीव वा ईश्वर वा पुरुष अल्ला खुदा सो इन संघातोंमें ही यह बुद्धि आदियोंका सत् चित् आनंद संज्ञावालाही स्पष्ट भान होता है। यद्यपि घटपटादियोंके ज्ञानसे वा ग्रहणसे आनंद भी भान होता है। इससे संघात पृथक् भी ईश्वरकी स्फूर्ति होती है तथापि यह स्फूर्ति संघात संबंधपूर्वक ही की जाती है, अन्तःकरणादि संघात सम्बन्ध बिना घटादियोंमें स्फूर्ति नहीं। इससे जहां मनादि संघात है तहां ही जीव ईश्वरादियोंकी तथा तिनके स्वरूप वा तटस्थ लक्षणादिकोंकी स्फूर्ति है पृथक् नहीं। इससे संघातोंमें ही चैतन्य अस्तिमात्रकी स्फूर्ति होती है सो चैतन्य जीव है वा ईश्वर है वा दोनों भावसे रहित है वा साक्षी आत्मा है पुरुष है वा अन्य है इत्यादि अनेक कल्पना होती हैं। परन्तु तिस कल्पनासे हम सत् चित् आनंद अस्तिमात्र पृथक् हैं, क्योंकि जिस जिसको हम जानते हैं तथा जो जो कल्पना करते हैं सो सो हम नहीं। हमारे तो मनादि कल्पना कर सकते नहीं; इससे हम स्वयं प्रकाश हैं यह अनुभव भी संघात सम्बन्धी है पृथक् नहीं। कुछ हो परंतु पूर्वोक्त सर्व मनादियोंका अस्तिमात्र अनुभव ही हमारा स्वरूप है। हिसाबसे देखे तो पृथक् नहीं।

इति श्रीस्वामी विशुद्धानन्दजी प्रसिद्ध काली कमलीवाले बाबा विरचित पक्षपातरहित अनुभवप्रकाशका अष्टम सर्ग समाप्त ।। ८ ।।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः

श्रीः

किञ्चित् बाहिरी कथाका विचार

★

ब्रह्माका अपनी पुत्रीके पीछे कामातुर होकर दौडना

मैत्रेयने कहा–हे गुरो ! ब्रह्मा प्रजापति निज कन्याके पीछे कामातुर होके दौडा है, ऐसा लिखा है सो कैसे जानना ? मुनिने कहा–हे साधो ! जड मन इंद्रियादि नाम रूप प्रजाका जो पति नाम स्वामी प्रेरक होवे सो कहिये प्रजापति सो यह लक्षण चैतन्य सत् सुख रूप आत्मामें ही घटता है । सो वृत्ति इद्बोध, बोध इद्वृत्ति इस शास्त्र प्रमाणसे और निजमायासे नाम रूप वृत्ति सहित दृश्य जातिको यह सच्चिदानंद आत्मा ही उत्पन्न करता है सो आत्मा कामादि वृत्ति आरूढ हुआ चक्षु आदि इंद्रिय द्वारा बाहर जड घट पटादि दृश्य रूप निज कन्याके प्रकाश वास्ते, दृश्य समीप जाता है । जैसे–कोठेसे जलसहित सूर्यका वा आकाशका प्रतिबिम्ब किदारदेशमें जाता है, यही तिस कथाका अर्थ है ।

महादेवका लिंग बढाना

हे गुरो ! महादेवने पार्वतीको लिंग पर चढाके लिंग बढाया है और विष्णुने लिंगके द्वादश भाग चक्रसे किये हैं सो कैसे हैं ? हे साधो ! इस मनादि व्यष्टि, समष्टि, स्थूल, सूक्ष्म जड रूप, मिथ्या दुःख रूप नाम जगत्को प्रकाशे नाम जो सत्ता स्फुरण करे तिस सत् चित् सुख रूप वस्तुका नाम महादेव है । सो निज उपाधिमायासे असत् जड दुःख रूपात्मक यह संसार रूप लिंग खडा नाम उत्पन्न किया है और माया रूप पार्वतीकी योनि नाम कारणमें था पान किया है अर्थ यह कि पूर्वोक्त संसार रूप लिंगका उपादान करण माया ही है । इससे लिंग

अनंतकोटि योजनोंसे भी गिननेसे अनगिनत है ज्ञान प्रथम, पूर्वोक्त लिंगका अविवेक दृष्टि बुद्धि रूप गऊका अंत कहना सो मिथ्या भाषण है और ज्ञानसे प्रथम लिंग विवेक दृष्टि बुद्धि रूप केतकीका अनंत कथन करना सो सत्य भाषण है। तिनको वर शापका अर्थ यह जानना, देह अभिमान पूर्वक पापरूप मलमें सन्मुखता। और पूर्वोक्त पुण्य रूप महादेवके विचार द्वारा सन्मुखता। मुमुक्षु रूप देवतोंसे प्रार्थ्य विष्णु रूप गुरुने पूर्वोक्त जगद्रूप लिंगके द्वादश टुकडे विचार रूप चक्रसे किये अर्थ यह है, कि पंच ज्ञानेंद्रिय पंच कर्मेंद्रिय एक अंतःकरण और एक माया यह द्वादश अध्यात्म हैं और द्वादश ही इनके सूर्यादिक अधिदेव और द्वादश ही इनके शब्दादि विषय अधिभूत हैं इतना मात्र ही त्रिपुटी रूप संसार लिंग है। यद्यपि चौदह त्रिपुटी लिखी है तथापि द्वादशके अंतर्भूत निज बुद्धिसे जान लेना वा यह तत्त्व अहंकार तीन गुण पंच महाभूत, एक इनका कारण माया, एक प्रतिबिंब रूप जीव, यह पूर्वोक्त संसार रूप लिंगके द्वादश टुकड़े जानना। तात्पर्य कि यह गुरुने शिष्योंको अनेक रीतिसे विधि पक्ष कर और निषेधी पक्ष कर प्रक्रियाओंसे नाम रूप द्वैत संसारका अत्यंताभाव बोधन कर, शेष अद्वैत महादेवको निजात्मा स्वरूप बोधन किया। यही बाहिरी कथाका अध्यात्ममें अर्थ है।

जालंधर आख्यान (विष्णुभगवान्‌का जालंधरकी स्त्रीका पातिव्रत्य नष्ट करना)

तैसे ही ब्रह्मात्माका अज्ञान जालंधर असुर है और काम क्रोधादि आसुरी सेना सहित इस शरीर रूपी स्वर्ग का राज्य करता है। सत् संभाषणादि देवतोंसहित निज शत्रु ब्रह्मात्म ज्ञानरूप इन्द्रको स्वर्गसे निकाल दिया है। आत्मादि देहमें दृढ निश्चय बुद्धि रूप तिसकी स्त्री है देव-

तान रूप मुमुक्षुओंसे प्रार्थ्य गुरु रूप विष्णुने अज्ञान रूप जालन्धरके नाशके लिये पूर्वोक्त तिसकी स्त्रीको उपदेश कर पूर्ववाली मिथ्या दृष्टि रूप पतिव्रत धर्मको छुटाके सत् ब्रह्मात्म दृष्टि कराया। यही जालन्धरकी कथाका अध्यात्म अथ है।

छप्पन कोटि यादव

तैसे ही छप्पन कोटि यादव लिखा है सो कोटि नाम प्रकारका भी है इससे छप्पन गोत्र नाम प्रकारके यादव होनेसे छप्पन कोटि यादव ठीक ही थे।

प्रत्येक नन्दकी नौ नौ लक्ष गौ

तैसे एक एक नन्दकी नौ नौ लक्ष गऊ लिखी हैं, तैसे ही उपनन्दोंकी लिखी हैं, सो लक्ष नाम चिह्नका है। काली पीली आदि रंगवालियां नव प्रकारकी गऊ एक घरमें होनी मुशकिल हैं सो नन्दोंके घरमें थीं।

अक्षौहिणी

तैसे ही चौपटवत् किलेकी नाईं फौजका आकार होवे वा नेत्रवत् किलेकी नाईं फौजका आकार होके स्थित होवे उसे अक्षौहिणी कहते हैं सो एक हजार फौजका भी किला होता है और दश हजारका भी होता है।

पद्मव्यूह

तैसे पद्मवत् किलेके आकार फौज होवे तिसका नाम पद्मव्यूह है आगे यथायोग्य गिनतीका हिसाब लगा लेना। जिस गिनतीसे विद्वानोंके अनुभवसे विरोध न आवे तैसे करलेना।

रावणके छप्पन कोटि बाजा बजानेवाले

तैसे ही रावणके छप्पन कोटि बाजा बजानेवाले लिखे हैं सो भी छप्पन प्रकारका बाजा जान लेना।

योजन

तैसे ही शास्त्रमें चार कोशका योजन लिखा है, तैसे ही चार हाथका तथा चार फुटका भी लिखा है। योग्यतानुसार लगा लेना. और कुम्भकर्णादि शरीरोंका भी इसी हिसाबसे शरीर जान लेना तात्पर्य यह है तौल और मापका अनेक प्रकार जिनसोंका निज निज देश अनुसारी संकेत जुदा जुदा न्यूनाधिक है।

कर्णका सवा मन सोना दान करना

तैसे ही पूर्वोक्त तोल मापके हिसाबसे ही कर्णका सवा मन सुवर्ण देना जान लेना।

तेतीस कोटि देवता

तैसे ही देवता तेतीस कोटि लिखे हैं और यह भी शास्त्रमें लिखा है कि, तेतीस प्रकारके प्रधान देवता हैं, अवांतर अनेक भेद हैं।

द्वारकामें ३ कोटि अस्सी लाख शाला

तैसे ही द्वारकामें तीन कोटि अस्सी लाख शाला लिखी हैं। सो भी तीन प्रकारकी कर्मकाण्ड, उपासना कांड और ज्ञानकांडकी वा साधारण तीन प्रकारकी प्रधान शाला थीं और अनेक न्यायादि भिन्न भिन्न विषयके प्रतिपादक शास्त्रके अनुकूल अस्सी प्रकारकी शाला थीं। तिन तिन शाला स्थानों विषे अनुकूल चिह्नवाली ध्वजा पताका लग रही थीं और द्वारकाका बाहर शाला जुदी जान लेनी वा न्यूनाधिक होयँगी, परन्तु अनुभवसे ऐसे ही घटता है आगे ईश्वर जाने।

सुवर्णमय नगर

तैसे ही द्वारका लंका आदि नगर सुवर्णके लिखे हैं सो भी धनाढ्योंके गृहके दरवाजोंमें सुवर्ण लिप्त तांबेके कलश लगे रहते हैं तथा देव मंदिरोंके शिखर तथा दरवाजों पर कलश लगे रहते हैं और कहीं कहीं धनाढ्योंके मकानोंमें मीनेका काम हुआ करता है। जिन जिन राजनगरोंमें पूर्वोक्त कलशादि व्यवहार बहुत होवे सो नगर सुवर्ण मय कहलाता है साक्षात् स्वर्णका नहीं हो सकता यही विद्वानोंके अनुभवमें जँचता है अन्य नहीं। इति ॥

पुस्तकें मिलने के स्थान :–

१. खेमराज श्रीकृष्णदास,
श्रीवेंकटेश्वर स्टीम् प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
सातवीं खेतवाड़ी खम्बाटा लेन
बम्बई–४०० ००४

२. गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मीवेंकटेश्वर स्टीम् प्रेस,
व बुक डिपो,
अहिल्या बाई चौक, कल्याण,
(जि० ठाणे–महाराष्ट्र)

३. खेमराज श्रीकृष्णदास, चौक–वाराणसी.(उ. प्र.)

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई